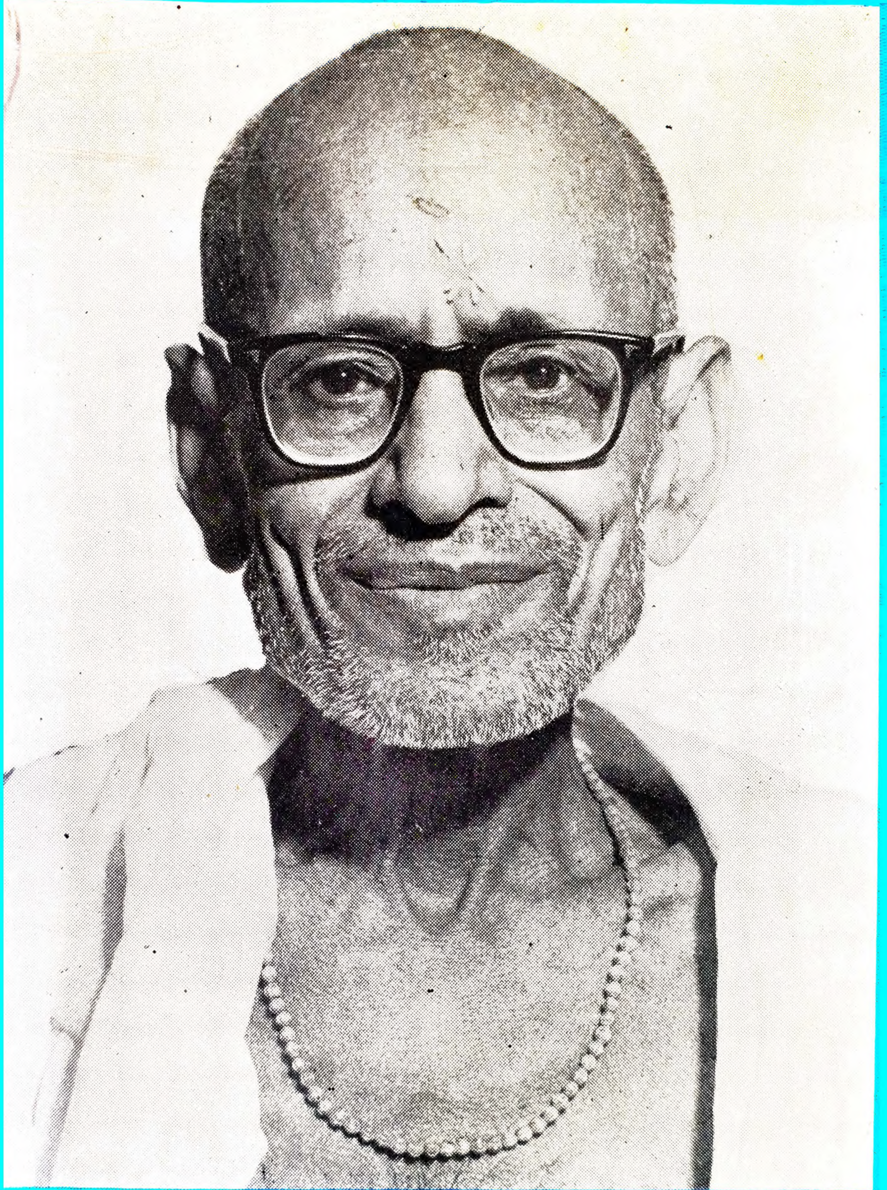
परमात्म स्वरूप सद्गुरुदेव श्री रणछोड़दासजी महाराजजी
(चित्रकूट, राजकोट, बम्बई, पुष्कर)



अहैतुक कृपा

कु. रमा पुरुषोत्तमभाई हरियाणी

।। श्री रामचन्द्राय नमः ।।

।। श्री सद्गुरु परमात्मने नमः ।।



अहैतुक कृपा

प्रथम संस्करण – १००० प्रति (गुजराती में)
द्वितीय संस्करण – १००० प्रति (हिन्दी में)

मंगलमूल लगनदिन आवा, हिमऋतु अगहन मास सुहावा

मंगसर शुक्ल पंचमी

संवत २०४५

दिनांक १३-१२-१९

मूल्य : 40 रुपये

: लेखिका :

कु० रमा पुरुषोत्तमभाई हरियाणा

ईश्वर तुम हो पिता हमारे। तुम हो माता बन्धु प्यारे।
अन्न दूध फल सब कुछ देते। बदले में कुछ कभी ना लेते।।

शुद्ध करो प्रभु बुद्धि हमारी। दुखियों के हम हो हितकारी।
सदा तुम्ही को हम सब ध्यावे। तेरी महिमा प्रतिदिन गावे।।

तुम्हें नहीं हम कभी भूलावे। अच्छे बच्चे हम बन जावे।
यही चाह है आज हमारी। हम बच्चे हो आज्ञाकारी।।

ॐ

।। श्री गणेशाय नमः ।।



विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुतियज्ञ विभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ।।

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला, या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणा वरदंडमंडितकरा, या श्वेत पद्मासन ।।

या ब्रह्माच्युतशंकर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्या पहा ।।

वन्दे देव उमापति सुरगुरु, वन्दे जगत्कारणम्
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं, वन्दे पशूनां पतिम् ।।

वन्दे सूर्यशशांक वह्निनयनं, वन्दे मुकुंद प्रियम्
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरद, वन्दे शिवं शंकरम् ।।

श्री राम स्तवन

श्री रामचंद्र कृपालु भजमन, हरण भवभय दारुणम्
नवकंज लोचन कंजमुख, करकंज पद कंजारुणम्....श्री राम

कंदर्प अगणित अमित छबी, नवनील नीरद सुन्दरम्
पटपीत मानहु तडित रुचिशुचि, नौमि जनकसुतावरम्....श्री राम

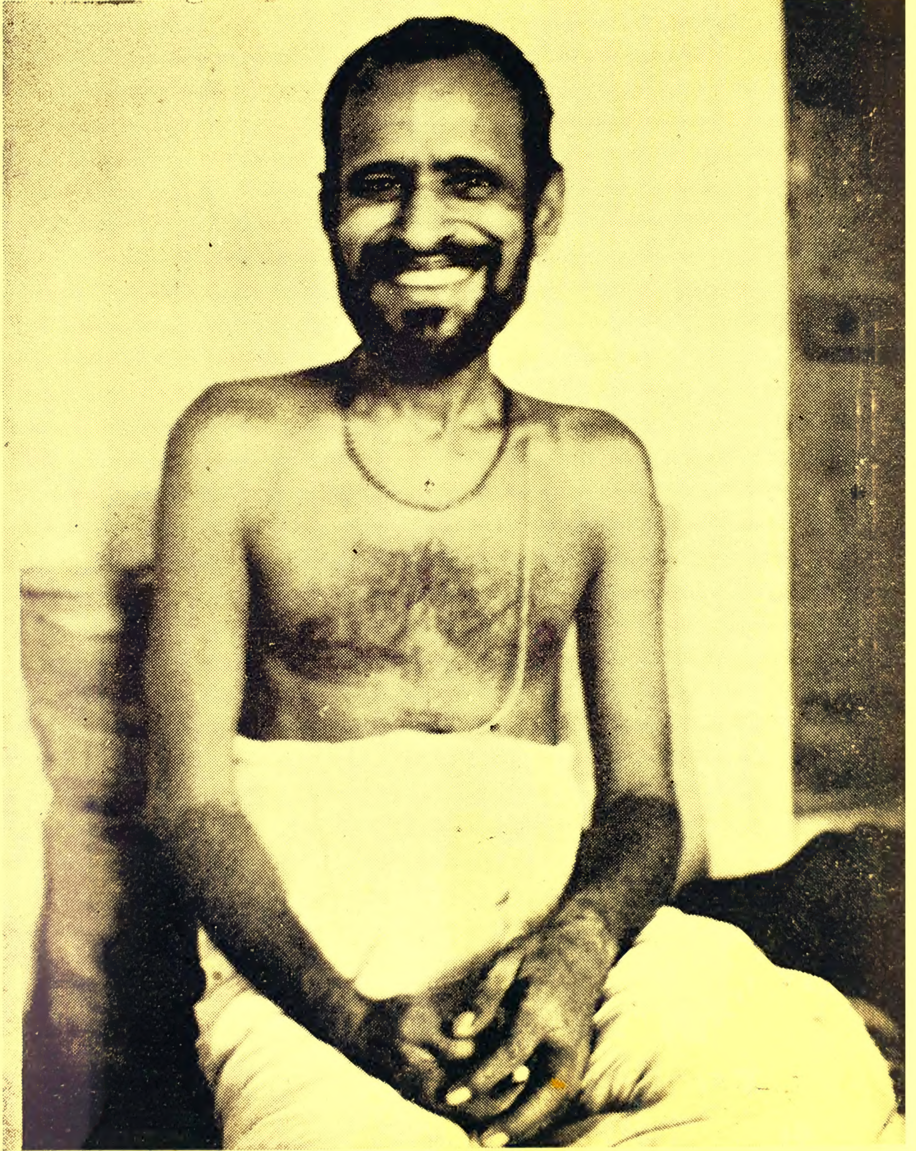
सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु, उदार अंग विभूषणम्
आजानुभुज शर चापधर, संग्राम जित खर दूषणम्....श्री राम

भज दीनबन्धु दिनेश दानव, दैत्यवंश निकंदनम्
रघुनन्द आनन्द कंद कौशल, चन्द दशरथ नन्दनम्....श्री राम

ईति वदति तुलसीदास शंकर, शेष मुनि मनरंजनम्
मम हृदयकुन्ज निवास कुरु, कामादि खलदल गंजनम्....श्री राम

मेरे भगवान

अधरं मधुरं वदनं मधुरं, नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं, मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।



वचनं मधुरं चरितं मधुरं, वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं, मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।

नम्र निवेदन

मूक होय वाचाल, पंगु चढहिं गिरिवर गहन।
जासुकृपा सुदयाल, द्रवहु सकल कलिमल दहन।।

"इन प्रसंगों में एक और एक दो जैसी सम्पूर्ण वास्तविकता है। जीवन में जिस तरह से जो कुछ घटना घटी है उसी तरह से स्पष्ट हकीकत के रूप में कुछ खास भागवती हेतु से ही प्रकट करने को आत्म-श्लाघा नहीं कही जाती....जीवन में जो ठोस स्वाभाविक, वास्तविक रूप से घटी घटना है उसी का उसी तरह से कथन करना और वह भी ऐसा निमित्त प्रगट होने पर कथन करना हमारे लिये एकदम योग्य है। यह तो जीवन की एक हकीकत का प्रागट्य खास हेतु पूर्वक हुआ है। प्रशंसा और ऐसी हकीकत के प्रागट्य में बहुत अन्तर है। आत्मश्लाघा में प्रत्यक्ष जीवन की वास्तविकता के बदले अतिशयोक्ति होती है।"

संत पू. श्री मोटा

संत पू. श्री मोटा ने अपनी पुस्तक में लिखा हुआ यह कथन इस पुस्तक के लिये पूर्ण रूप से अनुरूप है।

आज तक कई स्नेहीजन एवम् गुरुभाई-बहन मिलने पर अपनी इच्छा व्यक्त करते जिज्ञासा से पूछते रहे, "रमाबहन, पू. गुरुदेव के प्रसंग कहो ना! आप किस तरह से गुरुदेव के परिचय में आये? सांसारिक जीवन के बदले आपका यह जीवन किस तरह बना? अभ्यास कहाँ तक किया? परिवार से अलग आप अकेले क्यों रहते हो? अकेले डर नहीं लगता? आपकी दिनचर्या क्या? आपके जीवन व्यवहार की व्यवस्था क्या? और आप पू. गुरुदेव में भगवद्भाव रखते हो तो उस विषय में आपका अनुभव क्या? यह सब बातें जानने की उत्सुकता से सविस्तार कहने के लिये आग्रह करते रहे। समयानुकूल प्रश्नों के उत्तर देती रही। यह सुनकर आनन्द का अनुभव करते हुए कहते रहे कि आप यह सब लिखकर पुस्तक के रूप में प्रगट क्यों नहीं करते? कितने लोगों को मार्गदर्शन मिलेगा और इस मार्ग में उत्साह भी बढ़ेगा। अधिकतर सभी

शास्त्रों में भी प्रश्न से पूर्णविराम तक की ही यात्रा है या शंका से समाधान तक ।

संजोगवशात् इतने समय से इस कार्य के लिये योग नहीं मिला । सन् १९७८ से १९८० तक पुष्कर रामधाम में मेरे मौन समय दौरान पुस्तक की रचना के विषय में विचार करते हुए प्रभु प्रेरणा से "अहैतुक कृपा" नाम मिल गया था ।

अभ्यास बहुत थोड़ा, दसवीं पास करके ग्यारहवीं कक्षा के छः मास होने पर अभ्यास छूट गया । उसमें भी सातवीं कक्षा तक बम्बई में गुजराती भाषा में अभ्यास किया । उसके बाद जयपुर में हिन्दी भाषा में, जिससे दोनों ही भाषा का पूरा शब्दकोष भी मेरे पास नहीं तो फिर व्याकरण शुद्धि की तो बात ही कहाँ रही ? भाषा पर भी पूरा काबू नहीं, उसमें भी आज तक के जीवन में "रामचरित मानस" के सिवा अन्य ग्रंथों का पठन-पाठन भी नहीं और मानसजी का अभ्यास भी पू. गुरुदेव की आज्ञा के कारण बिना समझ के सिर्फ पाठ के रूप में पढ़ती रही । इसलिये :—

कवि न होऊ नहिं बचन प्रवीनू, सकल कला सब विद्या हीनू

इसके अलावा मैंने कभी भी परम पूजनीय गुरुदेव के कोई प्रवचन लिखे नहीं थे । जो कुछ मुझे व्यक्तिगत या समूह में कही हुई बातें यथा-मति याद हैं वही शब्दों में सही रूप में यहाँ पर प्रस्तुत करने का पूर्ण प्रयास किया है । फिर भी अनेक त्रुटियों की संभावना है । स्थल, समय या साल जहाँ तक मुझे याद है तारीख के साथ लिखने का भी प्रयत्न किया है । अब आगे से मेरे भावानुकूल परम पू. सद्गुरुदेव के लिये मैंने "भगवान" संबोधन किया है क्योंकि मेरे लिए पू. गुरुदेव ही साक्षात् राम और कृष्ण हैं यह मेरी ठोस अनुभूति है ।

भगवान के हस्तलिखित और कभी-कभी अन्य व्यक्तियों से लिखाये हुए जितने भी उनके पत्र मेरे पास हैं उसमें से अधिकतर पत्र जो कि साधक जीवन को उपयोगी हो सकते हैं अक्षरशः इसमें लिखे गये हैं । जीव स्वभाव से जो कुछ त्रुटि है वह सब मेरी है और जीव मात्र को उपयोगी जो कोई प्रसंग है, जो कि सत्य हकीकत है वह मेरे परम कृपालु परमात्मा की "अहैतुक कृपा" का दर्शन है ।

करन चहहुँ रघुपति गुणगाहा, लघुमति मोरि चरित अवगाहा
सूझ न एकौ अंग ऊपाऊ, मन मति रंक मनोरथ राऊ
जो बालक कह तोतरि बाता, सुनहि मुदित मन पितु अरु माता
हसिहहिं क्रुर कुटिल कुविचारी, जे परदूषण भूषण धारी
निज कवित्त केहि लाग न नीका, सरस होऊ अथवा अति फीका
जे परभणित सुनत हरषाहीं, ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं
कवि न होऊ नहि चतुर कहावौ, मति अनुरूप राम गुण गावौ
कहँ रघुपति के चरित अपारा, कहँ मति मोरि निरत संसारा

भगवान की असीम कृपा से निज अनुभूति को संतों और शास्त्रों के आधार पर मेरी अल्प मति अनुसार यहाँ पर प्रस्तुत करने का छोटा-सा प्रयास कर रही हूँ।

संतनसन जस कछु सुनेऊ, तुमहि सुनायहु सोई
अति अपार जे सरितवर, जो नृप सेतु कराही
चढि पिपिलिका परम लघु, बिनु श्रम पारहि जाही

भगवान की महती कृपा से हिन्दी भाषी साधकों के आग्रह से आज यह द्वितीय संस्करण हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करते हुए हर्ष होता है कि आज के इस अशान्तिमय वातावरण में कितने "साधक" जीवन को यह ग्रंथ पथ-प्रदर्शक बनेगा। जैसे प्रथम संस्करण गुजराती में पढ़कर "साधकगण" अपना संतोष व्यक्त करते हैं और कुछ साधकों का अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिए भी आग्रह है, जो भविष्य में प्रभु कृपा से हो सकेगा। भगवद् प्राप्ति की यात्रा में जीवन विकास के लिये साधक और बाधक दोनों तत्त्वों की ठोस अनुभूति होगी ही। जैसे मानसजी में स्वयं भगवान रामजी को भी श्री हनुमानजी के साथ बालि, सुग्रीव, विभीषणजी के साथ रावण और कुम्भकर्ण आदि राक्षस एवं शबरीजी जैसी भक्त महिला के साथ राह में शूर्पनखा भी तो मिली हैं। इसलिए मानसजी में सबका यथार्थ वर्णन मिलता है। परन्तु शरणागत जीवात्मा की हर क्षण उनके रक्षक बराबर रक्षा करते ही हैं, यह दृढ़ विश्वास होना चाहिये। कुछ विघ्न संतोषी जीवों ने जो कि शुरू से विरोधी भाव से नीचे गिराने के प्रयत्न करते रहे हैं या ईर्ष्या और द्वेष के कारण उन्नति सह नहीं सकते वे इस ग्रंथ को पढ़ने के योग्य है ही नहीं उन्होंने जरूर अपनी हीन दृष्टि से कारणवशात् विरोध किया है और अन्य लोगों को भी उकसाया जिससे एक भाई आवेश से मेरा खून करने को

भी तैयार हो गये थे। क्योंकि ग्रंथ पढ़ा ही न था। लेकिन एक बार शान्ति से पढ़ने के बाद सत्य समझ आने पर माफी मांगने आये। आज अब तो सब को प्रभु कृपा से सत्य समझ आ गया है लेकिन अहंकारवश स्वीकार नहीं कर पाते। खैर ! मेरे लिए यह सब विरोध तो जीवन उन्नति का सोपान बन गया है इससे तो प्रभु कृपा से आत्म-बल बढ़ता रहता है। ऐसे जीवात्मा जो –

कृपारहित हिंसक सब पापी, बरणी न जाय विश्व परितापी

और तो कर भी क्या सकते हैं ? लेकिन,

जितने तारे गगन में, उतने दुश्मन होई
पर कृपा हो रघुनाथ की, तो बाल न बांको होई

इस ग्रंथ को समझने के लिए निम्न बातें जरूरी हैं:–

प्रथम : अपने जीवन पर विचार करें कि हमें आध्यात्मिक जीवन के पथ पर चलना है ? क्या हमारा साधक जीवन है ? और साधक जीवन में भी रुचि किस में है ? ज्ञान, भक्ति, कर्म या शरणागति में ? कारण साधक की भूमिकानुकूल दृश्य, दृष्टा की दृष्टि पर निर्धारित रहता है। इसमें प्रेम, भाव और भक्ति की पूर्ण प्रधानता है। उदाहरण के लिये श्रीरामचरितमानस में करुणानिधान भगवान के चरणाश्रित सुग्रीवजी, अंगदजी, विभीषणजी और हनुमानजी हर एक का मत चन्द्रमा में काले धब्बे के विषय में अलग-अलग रहा है। जैसे सुग्रीवजी उस समय राज्य विस्तार की लोलुपता में डूबे हुए होने के कारण उन्हें चारों ओर भूमि ही भूमि दिखाई देती थी जभी तो चाँद में भी भूमि की परछाई दिखाई दी। अंगदजी युवराज होने के नाते स्त्रियासक्त के कारण रति की सुन्दरता के लिये सारभाग चन्द्रमा से ले लिया, यह भाव उसके हृदय में उदित हुआ। विभीषणजी अपने भाई रावण की लात सीने पर सह कर आये थे उसी विचार से उन्हें राहु ने चन्द्रमा के सीने पर लात मारी ऐसा दृश्य दिखाई दिया और श्री हनुमानजी महाराज नित्य निरंतर भगवान के दास भाव में सराबोर रहते हैं जिसे उन्हें भगवान के प्रति चन्द्रमा की भी दास्य भक्ति दिखाई दी, तभी तो कहा –

कह हनुमंत सुनहु प्रभु, शशि तुम्हार प्रिय दास
तव मूरति तेहि उर बसत, सोई श्यामता भास

द्वितीय : यह ग्रंथ कोई साधारण नवलकथा नहीं अपितु जीवन को दिव्य, अलौकिक मार्ग पर उन्नत बनाने के लिये राहबर है, एवं भक्ति प्रधान है। भक्ति मार्ग में श्रद्धा, विश्वास और भाव का प्राधान्य होता है कारण :–

श्रद्धा बिना भगति नहि होई..............

बिनु विश्वास भगति नहि, तेहि बिनु द्रवहि न राम

और,

भावसहित खोजे जो प्रानी, पाव भक्तिमणि सब सुखखानी

और भक्ति मार्ग के आचार्यों से सुना है कि भक्ति मार्ग में प्रथम इष्ट धारण करो फिर इष्ट से नाता जोड़ो, जहां सभी नाते सुलभ हैं और प्रेम भाव बढ़ाते चलो। उसमें भी प्रेम भक्ति में चाहे शरीर पुरुष का ही क्यों न हो परन्तु बिना स्त्रैण भाव के या गोपी भाव के भगवान के अलौकिक परमानंद को पाना दुष्कर है। जभी तो कबीरजी, भक्त श्री नरसिंह मेहता, श्री रामकृष्णदेव परमहंसजी आदि संत-भक्तों ने भी किसी भी ढंग से गोपी भाव में गोते लगाये हैं।

भक्ति मार्ग में जिज्ञासा से जानकारी प्राप्त करना उत्तम है परंतु केवक तर्कमयी बुद्धि का वितंडावाद नहीं चलता। अस्तु जो कोई केवल बुद्धि से ही नापने का व्यर्थ प्रयास करना चाहते हैं –

वो इस मंझिल से दूर ही अच्छे

जिसे यह मंझिल रास न आये

तृतीय : सद्‌गुरु मनुष्य रूप में होते हुए भी साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही है, ऐसा भाव साधक के जीवन में दृढ़ होना ही चाहिये। शास्त्रों में कुछ महान अपराध माने गये हैं जिसमें से गुरुदेव के प्रति मनुष्य भाव रखना अपराध माना गया है और फिर भी जो व्यक्ति सद्‌गुरु को साधारण मनुष्य ही मानते हैं वे आध्यात्मिकता में आगे सफलता पा सकेंगे या नहीं, यह कहना मुश्किल है। यदि दिन में उल्लू यह कहे कि सूर्य है ही नहीं तो उसका क्या दोष ? उसके कहने से सूर्य का अस्तित्व थोड़े ही मिट सकता है ? केवल वाणी और लेखन के शब्दों से तो बात बनती ही नहीं, करनी और कथनी एक हो, जैसे "**गुरु साक्षात् परब्रह्म**" बोलते तो हैं ही फिर भी कोई वितंडावादी अपनी बुद्धि का प्रदर्शन करने के लिये यह कहते हैं कि लिखने या बोलने में उपमा, अलंकार देना अलग बात है, हम इस बात को मानने को राजी नही हैं, तो ऐसे व्यक्तियों के लिये तो कुछ कहना ही....जो पूर्ण विश्वास से परब्रह्म मानने को राजी नहीं तो फिर उन्हें दिव्य अनुभूति कैसे प्राप्त हो सकती है ? अब

जो परब्रह्म परमात्मा है ही, वहाँ लिंग भेद कहाँ ? और शारीरिक भाव भी कहाँ ? वह परम शक्तिमान, परम स्वतंत्र परमात्मा शुद्ध आत्मा से ही संबंध रखता है, इसलिये इस ग्रंथ में शारीरिक सम्बन्ध का लेश-मात्र भी विचार न करें। पूर्णरूप से जीव-शिव का मिलन और एक साधक की आत्मा को सद्गुरु द्वारा येन-केन-प्रकारेण पूर्णरूप से शुद्ध सात्विक और दिव्य बनाकर नश्वर जगत से ऊपर उठाकर, परम तत्त्व की अनुभूति कराकर परमात्मा से मिलाना है। प्रेम भक्ति-भाव में विषय की गंध भी नहीं होती, इसलिये कोई भी जिज्ञासु को किसी प्रकार की शंका उठे तो शास्त्र या संतों का समागम करके निराकरण प्राप्त करें, बाकी तो बुद्धिवादी बाल की खाल निकालते हैं।

कोई भी ग्रंथ की रचना में सिर्फ शब्दार्थ नहीं देखे जाते, उसको यथार्थ समझने के लिये पूर्वापर सम्बन्ध के साथ भावार्थ, गूढार्थ आदि देखना पड़ता है और इसलिये कोई भी क्षेत्र की सही जानकारी के लिये उसके मर्मज्ञ से समझना पड़ता है। जैसे सब जानते हैं कि फूलों से ही शहद बनता है पर वह ग्रहण शक्ति सब में नहीं पाई जाती, वह तो मधुमक्खी ही फूलों से रस चूसकर शहद के रूप में अपने को प्राप्त कराती है। इतना जानते हुए भी जो अपनी शंका का समाधान हठ छोड़कर नहीं करना चाहते, उनके लिये तो फिर "संशयात्मा विनश्यति" या,

यह न कहिय शठही हठशीलहिं, जो मन लाय न सुनु हरिलीलहिं
कहिय न लोभिहिं क्रोधिहिं कामिहिं, जो न भजे सचराचरस्वामिहिं

यदि लेखिका से प्रत्यक्ष मिलना चाहें तो भी आप इस ग्रंथ में लिखे हुए पते पर मिल सकते हैं, वरना संभव है कि आप मोहाधीन होकर गलत राह पर जा सकते हैं, क्योंकि :—

निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण न जाने कोई

चौथी बात धनुषधारी राम और मुरलीधारी कृष्णावतार में भी पूर्णावतारों की गूढ रहस्यमयी लीलायें देखकर महान व्यक्तित्व भी मोहाधीन हुए हैं। जैसे – साक्षात् शिवजी के समझाने पर भी सती भगवान राम की मानव लीला देखकर उन्हें ब्रह्म मानने को राजी न हुई, वैसे ही नारदजी, वसिष्ठजी भी। और श्री कृष्णावतार में तो ब्रह्माजी से लेकर कई विभूतियां मोहवश उनकी परम पावनी लीला समझने में भूल कर गये थे। तो फिर आज कलिकाल में परमात्मा के परम अनुग्रह के बिना उन्हें समझना अति दुर्लभ है, कारण,

सो जाने जेहि देहु जनाई....
तुम्हरि कृपा तुमहि रघुनंदन, जानत भक्त भक्त उरचंदन

जभी तो मानसजी में, गरुड़जी परमात्मा के परम निकट रहने पर भी मोहाधीन हुए तब भूतभावन महादेवजी को यह कहना पड़ा कि:–

जब बहु काल करिय सतसंगा, तब होईहहिं सब संशय भंगा

शांति से पूर्वग्रह छोड़कर प्रेम-भाव से एक बार यह ग्रंथ पढ़ने के बाद सारे संशय क्षीण हो जाते हैं, अस्तु रहते ही नहीं, कारण :—

रामकथा सुन्दर करतारी, संशय विहंग उडावनिहारी

बाकी तो जो साधारण, मोहांध, विषयी जीव हैं जिन्हें इस मार्ग में रुचि ही नहीं उनके लिये तो,

काबू में अपना मन नहीं, तो ध्यान क्या करे
तेरी आँखें न करे दिदार, तो उसमें भगवान क्या करे ?

फिर भी साधक पाठकगण से मेरी यह विनती है कि अगर कोई प्रसंग समझ में न आवे तो समझने की पात्रता निर्माण की जाय । इस प्रेम-भक्ति के ग्रंथ में कई नियमों का खंडन होता है क्योंकि,

प्रेम में नेम नहीं....
प्रबल प्रेम के पाले पड़कर, प्रभु को नियम बदलते देखा....
प्रभु तेरे प्रेम की बातें, सकल पोथी से न्यारी हैं ।
कबीरा बाजी प्रेम की, झटपट समझी न जाय;
जो मन की खटपट मिटे, तो चटपट यह समझाय ।

अर्थात् :—

तुम कहते हो कागज लेखी;
मैं कहती निज नयन की देखी ।

रमा के सादर सप्रेम,
जय भगवान

अहैतुक कृपा

विषय-सूची

क्रमांक		पृष्ठ नं.
१.	कारण बिनु रघुनाथ कृपाला	१
२.	कृपासिंधु मानुष तनुधारी	८
३.	तुम्हरी कृपा सुलभ सोऊ मोरे	१२
४.	बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता	१५
५.	कृपा करिय पुर धारिय पाऊँ	१६
६.	तुम्हरी कृपा पाव कोई-कोई	२१
७.	बिहँसि कृपानिधि बोले बचना	२५
८.	करहु कृपा सुत सेवक जानि	२६
९.	कृपा तुम्हारी सकल भगवाना	२८
१०.	जासु कृपा निर्मल मति पावौं	३०
११.	अब करि कृपा देहु वर येहु	३३
१२.	भजतहिं कृपा करहिं रघुराई	३७
१३.	जानि कृपा करि किंकर मोहू	४०
१४.	मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोई	४३
१५.	अति हरि कृपा जाहि पर होई	४६
१६.	जासुकृपा नहि कृपा अघाती	४९
१७.	करहु कृपा विनवौं कर जोरे	५१
१८.	कृपा करहु प्रणतारति मोचन	५४
१९.	भुर्जतरु सम संत कृपाला	५७
२०.	करहु कृपा जन जानि मुनीशा	६१
२१.	कृपा अंबुनिधि अंतरयामी	६४
२२.	रामकृपा अवरेव सुधारी	६६
२३.	रामकृपा करि चितवहीं जेही	६९
२४.	करिहौं यहि पर कृपा विशेखी	७२
२५.	रामकृपा भाजन तुम ताता	७४
२६.	रामकृपा बिनु सुलभ न सोई	७७
२७.	कृपासिंधु सेवक मन रंजन	८०

क्रमांक		पृष्ठ नं.
२८.	मोपर कृपा सनेह विशेखी	८५
२९.	कीन्ही कृपा जानि जन दीना	८८
३०.	जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई	९२
३१.	कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं	९७
३२.	प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही	१००
३३.	तात बात फुर राम कृपाहीं	१०४
३४.	रामकृपा भा काज विशेखी	१०७
३५.	परम कृपाल प्रणत अनुरागी	१०९
३६.	कृपानिधान राम सब जाना	११२
३७.	रामकृपा बिनु आई न जाई	११५
३८.	करिय कृपा शिशु सेवक जानी	११९
३९.	कृपा सनेह सदन रघुराऊ	१२३
४०.	करिहहिं सत्य कृपानिधि ईशा	१२८
४१.	करौं कृपानिधि एक ढिठाई	१३१
४२.	मोपर कृपा परम मृदुलाऊ	१३५
४३.	करहिं कृपानिधि सोई संयोगा	१३८
४४.	रामकृपा तब दर्शन भयऊ	१४३
४५.	परम कौतुकी कृपा निकेता	१४८
४६.	को कृपाल अस अहे भवानी	१५३
४७.	नाथ कृपा तव जापर होई	१५६
४८.	सोई करहु अब कृपानिधाना	१६५
४९.	जय कृपाल जय जयति मुकुन्दा	१६९
५०.	जासु कृपा अज शिव सनकादी	१७२
५१.	रामकृपा नाशहिं सब रोगा	१७७
५२.	मोपर कृपा करिय अब स्वामी	१८२
५३.	नाथ कृपा अब गयऊ विषादू	१८५
५४.	कृपा राम की जापर होई	१८८
५५.	रामकृपा आपनी जड़ताई	१९४
५६.	रघुपति कृपा मर्म सब पावा	१९६
५७.	रामकृपा बिनु सुनु खगराई	२०१
५८.	जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी	२०३
५९.	करहु कृपा प्रभु होहु सहाई	२०६

क्रमांक		पृष्ठ नं.
६०.	कृपासिंधु बहुविधि समुझावहिं	२०६
६१.	कृपा दृष्टि रघुवीर बिलोकी	२१४
६२.	हरषि गहे पद कृपा धाम के	२१७
६३.	कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना	२२०
६४.	संतत मोपर कृपा करेहु	२२५
६५.	अब कृपाल जस आयसु होई	२२७
६६.	कोमलचित कृपाल रघुराई	२३०
६७.	अति कृपाल रघुनायक	२३४
६८.	हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा	२३९
६९.	तुम्हरि कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन	२४४
७०.	तुम कृपाल सब संशय हरेऊ	२४९
७१.	भक्तवत्सल प्रभु कृपानिधाना	२५२
७२.	कौतुकनिधि कृपाल भगवाना	२५६
७३.	को कृपाल रघुवीर सम	२६३
७४.	कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा	२७१
७५.	प्रणवौं सोई कृपाल रघुनाथा	२७६
७६.	जयति जयति जय कृपानिधाना	२८३
७७.	कृपासिंधु प्रणतारति हरणा	२८७
७८.	मोपर कृपा कीन्ह बहु भाँति	२९३
७९.	कृपादृष्टि करी वृष्टि प्रभु	२९६
८०.	जानति कृपासिंधु प्रभुताई	३०१
८१.	भक्तवत्सल कृपाल रघुराई	३०६
८२.	प्रगटेऊ प्रभु कौतुकी कृपाला	३०९
८३.	कृपा वारिधर राम खरारी	३१४
८४.	जासु कृपा छूटे मदमोहा	३२०
८५.	कृपासिंधु परिहरिय की सोई	३२४
८६.	नाथ कृपा मम गत संदेहा	३३०
८७.	कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी	३३६
८८.	सुनु सर्वज्ञ कृपासुखसिंधो	३३९
८९.	बिनु हरिकृपा सो होई नहीं	३४४
९०.	तुम कृपाल जापर अनुकूला	३५०
९१.	कृपासिंधु लखि लोग दुखारे	३५४

क्रमांक		पृष्ठ नं.
९२.	कृपासिंधु के मन अतिभाये	३५८
९३.	कृपानिधान प्राण ते प्यारे	३६१
९४.	नरगति भगत कृपाल दिखाई	३६५
९५.	अब प्रभु कृपा करौं यहि भाँति	३७०
९६.	कीन्ही कृपा सुमिरि गुण	३७३
९७.	केवल कृपा तुम्हारी प्रभु	३७७
९८.	तुम सर्वज्ञ कृपा अधिकाई	३८१
९९.	ताते करहि कृपानिधि दूरी	३९६
१००.	तुम्हरी कृपा लहेऊ विश्रामा	४०८
१०१.	जाकी कृपा लवलेश ते....	४१४

—: प्राप्ति स्थान :—

(१) प्रमोद कुमार हरियाणी
C-60, A "चित्रकूट"
सी-स्कीम, सरोजिनी माग
जयपुर-३०२००१
(राजस्थान)
फोन नं० : ७३७५५

(२) श्री मनहरभाई महेता
४९/६ सूर्यसदन
सायन (वेस्ट)
बम्बई-४०००२२
फोन नं० : ४७१९३०

(३) डो. सूचक होस्पीटल
राणी सती मार्ग
मलाड (ईस्ट)
बम्बई-४०००६४
फोन नं० : ६९२१४१

(४) जयंतभाई पी बसंत
३८, श्रीमाली सोसायटी
नवरंगपुरा
अहमदाबाद-३८०००९
फोन नं० : ४४११५९

प्रकाशक :— कु. रमाबहन हरियाणी
C/o श्री प्रमोद कुमार हरियाणी
C-६०, A "चित्रकूट"
सी-स्कीम, सरोजिनी मार्ग
जयपुर-३०२००१ फोन नं० : ७३७५५
(राजस्थान)

हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना
देशकाल दिशि विदिशहु माहीं, कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं

प्रार्थना

हर देश में तुं, हर वेष में तुं, तेरे रूप अनेक, तुं एक ही है।
तेरी रंगभूमि ये विश्व भरा, हर खेल में तुं, हर मेल में तुं ।।

सागर से उठा बादल बनकर, बादल से फटा बरखा बनकर।
फिर नहर बनी नदियाँ गहरी, तेरे भिन्न प्रकार तुं एक ही है ।।

चींटी से अनु परमाणु बना, फिर जीव जगत का रूप बना।
फिर पर्वत, वृक्ष विशाल बने, तेरे नाम अनेक तुं एक ही है ।।

हर देश में तुं, हर वेश में तुं, तेरे रूप अनेक तुं एक ही है ।।

[१]

कारण बिनु रघुनाथ कृपाला

रमा तुम विश्वास करो तुम से एक क्षण अलग नहीं हूँ
और न तुमको कभी भूलता हूँ तुमारी सहन शक्ति सराहनीय है
मेरी धारणा पक्की है कि तुम मेरी हो रहोगी और थी
मैं तुमारा हूँ रहूँगा और स्यायत् था भी

[रमा तुम विश्वास करो तुम से एक क्षरण अलग नहीं हूँ और न तुमको कभी भूलता हूँ तुमारी सहन-शक्ति सराहनीय है मेरी धारणा पक्की है कि तुम मेरी हो रहोगी और थी मैं तुमारा हूँ रहूँगा और स्यायत् था भी]

अहैतुक कृपा

परमात्मा जो जीवात्मा को अपनाते हैं उस पर अहैतुक कृपा करके सब प्रकार से उसके परम हित के लिये अनेक प्रक्रियाओं में से पार करते हैं। कोई भी जड़ पदार्थ को सुदृढ़ आकार देने के लिये कुशल कारीगर उस पर योग्य क्रियायें करते ही हैं उसी प्रकार परम कृपालु परमात्मा भी आप्तजन के जीवन को सुदृढ़ बनाने के लिये अनेक राह से गुजारते हैं। दुःख भी जीवन बनाने के लिये अति आवश्यक है जिससे प्रभु कठोर कृपा भी करते हैं।

कोई समझे भगत सुजान, रामनित किरपा करते हैं,
कभी कोमल हाथ प्रभुका, कभी बोझल हाथ प्रभुका,
सब भाँति करे कल्याण, पग पग रक्षा करते हैं ....रामनित

कभी धन सत्ता दरसाते, कभी दीनता दे तरसाते,
कभी सुख दे स्वर्ग समान, कभी दुःख दुविधा देते हैं, ...रामनित

कभी ज्ञान प्रभुजी देते, कभी बुद्धि ही हर लेते,
कभी रखकर मूढ अजान, उलपथ सीधा करते हैं ....रामनित
है रूप अनेक कृपाके, कभी जय कभी हार कराते
प्रभु सागर दोष विधान, देखो कब क्या-क्या करते हैं ? ....रामनित

बाल्यकाल से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सदैव साथ में रहकर रोजिंदे जीवन व्यवहार में मार्गदर्शन, आपत्ति काल में रक्षा एवम् राह भूलने पर पथ-प्रदर्शक बनकर प्रेम जल से सींचन कर निरंतर मेरे भगवान मेरा पालन करते रहे हैं ।

ऐसो को उदार जगमाँहि,
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोऊ नाहीं

सचमुच साक्षात् परमात्मा और उन्हीं के स्वरूप उनके प्यारे संतों के सिवा जीव पर अहैतुक कृपा कौन कर सकता है ?

उमा राम सम हित जग माँहि, गुरु पितु मातु बंधु कोऊ नाहीं
सुरनर मुनि सबकी यह रीति, स्वारथ लागि करहीं सब प्रीति

जीवन की प्रत्येक घटनाओं के पीछे मेरे भगवान की असीम कृपा का ही दर्शन और अनुभव मिलता रहा है इसलिये इस ग्रंथ में पूर्ण रूप से यही दर्शन बार-बार मिलेगा ।

गुरु कृपा ही केवलम्

यद्यपि कवित रस एकौ नाहीं, राम प्रताप प्रगट यहि माहीं

जीवनकाल दौरान जो-जो घटना घटी है उसमें कोई न कोई जीवात्मा को प्रभु ने ही निमित्त बनाये हैं क्योंकि, "उर प्रेरक रघुवंश विभूषण" इसलिये किसी भी जीवात्मा का, किसी भी प्रकार से कोई दोष नहीं है इसलिये नाहीं कोई प्रसंग में किसी व्यक्ति का नाम दिया गया है । यह तो कृपा पक्ष के दर्शन हेतु सब सत्य विरोधी घटनायें लिखनी पड़ी हैं जिससे साधक जीवन को बल मिले । अन्त में सत्य की ही जय होती है, आत्मा सत्य ही चाहती है क्योंकि आत्मा सत्य स्वरूप परमात्मा का ही तो अंश है । सत्य को ना कोई मार सकता है ना ही जला सकता है अस्तु सत्य की हिंसा कदापि नहीं होती परन्तु सत्य की राह पर चलना अति दुष्कर है, बहुत सहना पड़ता है । सुकरात को विष, मनसुर को सूली, ईसु को वधस्तम्भ पर चढ़ा दिया और गांधीजी को गोली मिली जभी तो कबीरदासजी ने भी कहा है,

साँच कहे तो मारन धावे,
साधो ये दुनिया बौरानी

और

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहीं
शीश उतारी भोंय धरे, ऊपर धरि पाँव
ऐसा जो कोई वीर हो, इस मैदान में आव

गुजराती में भी कहा है,

हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरनुं काम जो ने·······

जब-जब घटना घटी है तब-तब जीव स्वभाव से दुःखी होकर अवश्य डगमगा गई हूँ क्योंकि जीव की शक्ति कितनी ? परन्तु आज परिणाम देखते हुए मेरे परम कल्याणार्थ भगवद् कृपा की अलौकिक झाँकी को समझ पाई हूँ । अब तो नित्य नये अनुभवों से भगवान के चरणों में दृढ़ भरोसा हो गया है ।

नाहिन आवत आन भरोसो····

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, घड घड काढे खोट;
अन्दर हाथ सराह दे, बाहर देवे चोट ।

प्रभु प्रेरित जो-जो जीव निमित्त बने हैं और अभी जो भविष्य में बनेंगे क्योंकि जीवन पूर्ण तो नहीं हो गया है, उन सबका बार-बार आभार व्यक्त करती हूँ कि जो प्रभु कृपा की प्रतीति निरन्तर कराते रहते हैं, कारण :–

जाने बिनु न होई परतीति, बिनु परतीति होय नहीं प्रीति
प्रीति बिना नहीं भगति द्रढाई·······
सियराम मय सब जगजानी, करौं प्रणाम जोरि जुग पानी

संतों और शास्त्रों के द्वारा जो जानकारी मिली है कि साधक जीवन में अहंता और ममता यह दो बड़ी बाधायें हैं । मेरे भगवान के शब्दों में,

शरणागति में अहं-मम कैसे ? प्रसन्न रहो

अहंता दूर करने के लिये भगवान कृपा करके साधक के पास कोई प्रकार का अपना निजी बल रहने नहीं देते तभी तो भगवान को "निर्बल

के बलराम" कहा गया है । जब तक अपने बल का भरोसा रहता है तब तक ईश्वर दौड़कर नहीं आते । यह बातें द्रौपदीजी के चीरहरण प्रसंग और गजेन्द्र मोक्ष के प्रसंग में देखी जाती है । भगवान अपने जन की कड़ी से कड़ी कसौटी करते हैं लेकिन गिरने भी नहीं देते ।

यद्यपि प्रथम दुःख पावहीं, रोवहिं बाल अधिर;
व्याधि नाश हित जननी, गणहिं न सो शिशुपीर ।
तिमि रघुपति निजदास कर, हरहिं मान हित लागि;
तुलसीदास ऐसे प्रभुहि, कस न भजसि भ्रम त्यागि ।

किसी भक्त ने अपनी वेदना जाहिर की है कि, "मेरी ममता भरे नहीं उसका मैं क्या करूँ ?" क्योंकि मानसजी के आधार पर भी ममता अति दुःखदायी और अन्तिम दुर्गुण है ।

ममतादादु कंडुईर्षाई, हर्ष बिषाद गरह बहुताई

जीवात्मा को नश्वर जगत से ममता छोड़ना अच्छा नहीं लगता परन्तु परमात्मा शाश्वत सुख की प्राप्ति कराने के लिये सब प्रकार से ममता तुड़ाकर अपना बनाने के लिये ही कठोर कृपा करते हैं । करुणा-निधान भगवान ने मानसजी में अपना स्वभाव जाहिर किया है :–

जो नर होय चराचर द्रोही, आवै सभय शरण तकि मोही,
तजि मद मोह कपट छल नाना, करौं सध तेहि साधु समाना,
जननी जनक बन्धु सुत दारा, तन धन भवन सुहृद परिवारा,
सबकी ममता ताग बटोरी, मम पद मनहिं बाँध बरिडोरी ।

इसीलिये किसी भक्त ने भगवान को प्रेम कटाक्ष से कहा है, "हे नाथ ! तेरे जैसा ईर्षालु कोई नहीं, कारण मैंने देखा कि जो एक बार तेरा हो जाता है और जिसे तू अपना बना लेता है फिर यदि वह किसी को चाहे या अन्य कोई उसे चाहे वह तू सह नहीं सकता । शायद इसीलिये जगत और भगत की पटती नहीं और जगत की दृष्टि में भगत को पागल कहा जाता है ।

संत पू. श्री मोटा के शब्दों में :– "माने गये स्वजनों का व्यवहार साधक जीवन में उसके प्रति इतना सुन्दर बन जाता है कि ममता अपने आप भाप बनकर उड़ जाती है ।" अनेक संतों, भक्तों और महापुरुषों के जीवन में अनेक प्रसंग उनके कल्याणार्थ परमात्मा ने विविध प्रकार से

खड़े किये हैं और परिणाम सबके लिये शुभ रहा है । जैसे मीरां को जहर और साँप भेजने में राणा को निमित्त बनाया तो ही अमृत और फूलमाला या शालीग्राम में पलटने वाले परमात्मा की अहैतुक कृपा की प्रतीति मीरां को प्राप्त हुई और समग्र मेड़तावासियों द्वारा प्रभु ने ही तो विरोध करवाया जभी तो मीरां ने राजस्थान छोड़ा और वृन्दावन गई क्योंकि राह भूली । परन्तु द्वारिकाधीश अपने पास बुलाना चाहते थे इसलिये वहाँ भी विरोधियों को निमित्त बनाकर द्वारिका अपने पास बुलाकर अमर पद दे दिया ।

इसी प्रकार कौरवों ने पाण्डवों के साथ बेहद अन्याय किया । अन्त में दुशासन द्रौपदजी के चीरहरण न करता तो क्या नौ सौ निन्यानवे साड़ी पहनाने वाले की प्रतीति संभावित थी ? या पांडवों के समग्र जीवन में उनके रक्षक श्री कृष्ण परमात्मा हर क्षण उनके साथ है यह झांकी संभावित थी ?

विभीषणजी के जीवन में बड़ा भाई रावण निमित्त बना, ध्रुव को परम पद की प्राप्ति के लिये माँ और प्रहलाद को पिता निमित्त बने । भक्त नरसिंह महेता के जीवन में उनके बड़े भाई बंशीधर एवम् समग्र नागर जाति निमित्त बनी । परिणाम में सबको भगवान के परम अनुग्रह की प्राप्ति हुई । इस प्रकार से कई महान आत्माओं के जीवन प्रभु कृपा के दर्शन से परिपूर्ण हैं । भगवान जगत और जगदीश के दर्शन साथ-साथ कराते रहते हैं । कहाँ तक वर्णन हो सकता है ? वह भी मेरे जैसी पंगु के लिये सर्वथा अशक्य है । वैसे तो चराचर जीवों पर परमात्मा की अहर्निश कृपा है ही फिर भी परब्रह्म परमात्मा साक्षात् रामचन्द्रजी ने श्री रामचरित मानस में कहा है :—

सुनु मुनि तोहि कहौं सहरोसा, भजहि मोहि तजि सकल भरोसा
करौं सदा तिनको रखवारी, जिमि बालकहि राख महतारी
जिनहीं मोर बल निजबल ताही, दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही
भक्तिवंत अति नीचौं प्रानी, मोहि प्राणप्रिय सुनु मम बानी

जब तक जीवात्मा अपने आपको परमात्मा के नाम, गुण और स्वभाव के साथ जोड़ने को तैयार नहीं होता तब तक कृपा पात्र नहीं बन सकता, इसलिये भगवान ही कृपा करके शरणागत को अपने अनुकूल बना लेते हैं । जैसे भगवान के नाम हैं, निर्बल के बलराम, अनाथों के

नाथ, अधम उद्धारक, दीनदयालु या पतित पावन आदि । जभी तो गोस्वामीजी तुलसीदासजी महाराज ने प्रभु के साथ यही नाते जोड़ दिये :–

तूं दयालु दीन हौं, तूं दानी हौं भिखारी;
हौं प्रसिद्ध पातकी, तूं पापपुंज हारी ।।१।।
नाथ तूं अनाथको, अनाथ कौन मोसो;
मो समान आरत नहि, आरतिहर तोसो ।।२।।
ब्रह्म तूं हौं जीव, तूं ठाकुर हौं चेरो;
तात मात गुरु सखा, तूं सबविधि हितु मेरो ।।३।।
तोहें मोहें नाते अनेक, मानिये जो भावे;
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु, चरन सरन पावै ।।४।।

नहि विद्या नहि बाहुबल, नहि खरचन को दाम;
मोसम अधम पतित को, तुम पत राखो राम ।
पवन पानी सस्तो कियो, सस्तो कियो अनाज;
तब से ऐसा जानियो, मेरो राम गरीब निवाज ।



तेरी महिमा

प्रभु तेरी महिमा किस विध गाऊँ
तेरो अंत कहीं नहीं पाऊँ...... प्रभु

अलख निरंजन रूप तिहारो
किस विध ध्यान लगाऊँ
वेद पार अजहुं नहीं पायो
मैं कैसे बतलाऊँ...... प्रभु

गंगा यमुना नीर बहाये
मज्जन कीमि करवाऊँ
वृक्ष बगीचे रचना तेरी
कैसे पुष्प चढ़ाऊँ...... प्रभु

पंच भूत की देह न तुम्हारी
चंदन कीमि लिपटाऊँ
सकल जगत के पालन कर्ता
कैसे भोग लगाऊँ...... प्रभु

हाथ जोड़कर अरज करूँ मैं
बार-बार शिर नाऊँ
ब्रह्मानंद मिटा दे परदा
घट-घट दरशन पाऊँ...... प्रभु

[२]
कृपासिंधु मानुष तनुधारी

राम सच्चिदानंद दिनेशा, नहि तहँ मोह निशा लवलेशा
व्यापक विश्वरूप भगवाना, तेहि धरि देह चरित कृत नाना
सो केवल भगतन हित लागी, परमकृपाल प्रणत अनुरागी
अगुण अखंड अनंत अनादि, जेहि चिंतहिं परमारथवादी

वंदौ गुरुपद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि ।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर ।।

राम रमे गुरुदेवमे, गुरु राम के मांही ।
दोनों एक स्वरूप है, भिन्न भाव कछु नाहीं ।।

भक्ति, भक्त, भगवंत गुरु, ये चारों वपु एक ।
इनके पद वंदन करौं, नासे विघ्न अनेक ।।

मेरे भगवान

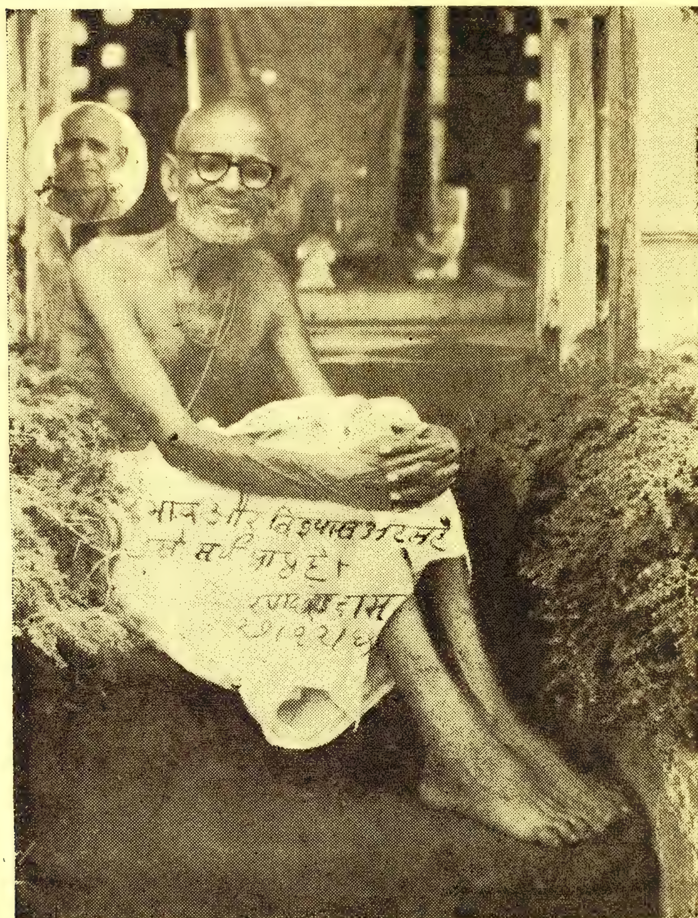
आज कई भाविकजनों को अपने-अपने भावानुकूल बापू, बाबाजी, गुरुदेव, महापुरुष, सिद्ध पुरुष, परम योगी, महायोगी ऐसे अनेक नामों से मेरे भगवान को संबोधित करते सुनती हूँ परन्तु बाल्यकाल से ही प्रभु कृपा से निरन्तर भगवद्भाव ही श्रीचरणों में रहा है । शुरू में भगवान के साथ बातचीत करते समय "भगवान" शब्द से संबोधन करते समय कोई-कोई व्यक्तियों को आश्चर्य होता था लेकिन अब धीरे-धीरे करीब सभी भाविकजन "भगवान" संबोधन कर रहे हैं और परस्पर के मिलन में भी "जय सियाराम" "जय श्री कृष्ण" की ही भाँति "जय भगवान" बोलते हैं ।

जिनके रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी

प्रभु कृपा से शनैः-शनैः यह भाव दृढ़ होने पर अब तो नित्य राम स्वरूप का ही अनुभव करती रही हूँ कारण :–

भाववश्य भगवान, सुख निधान करुणाभवन

कुछ कहने को आई हूँ, कायर बनने के लिये नहीं;
अन्य की तरह अनुकरण, करने के लिये नहीं।



ओ दयाके सिंधु ! तू मुझे तुझ में समा दे;
मैं आई हूँ यहाँ डूबने, तैरने ना दे।

[भरौसो दृढ़ इन चरणन केरो..............
श्री बल्लभपद चन्द्रछटा बिन सब जगमाहीं अंधेरो.....भरोसो.....]

और भगवान के शब्दों में, "भगवान कल्पनातीत, त्रिगुणातीत अवश्य है परन्तु भावातीत तो कदापि नहीं है ।"

मोम और पाषाणमे, धातु काष्ट विकार;
बना भावके भावसे, करते राम विहार ।

भावो ही विद्यते भावो, तस्मात् भावो ही कारणम्

बाकी तो मानसजी के आधार पर तीन प्रकार के जीव जगत में बसते हैं ।

विषयी साधक सिद्ध सयाने, त्रिविध जीव जग वेद बखाने ।
मुकुर मलिन अरु नयन विहीना, रामरूप देखहीं किमी दीना ।।

हरेक जीव चाहे तो प्रभु कृपा से अपने जीवन में राम का प्रागट्य करा सकते हैं और एक रामायण की रचना कर सकते हैं, जभी तो –

नाना भाँति राम अवतारा, रामायण शत कोटि अपारा ।

परमात्मा के अनुग्रह से उनकी अलौकिक लीला के दर्शन अनेक प्रकार से प्राप्त हुए हैं । प्रथम तो पूर्ण रूप से मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामजी की अलौकिक आदर्श लीला के दर्शन और निष्ठा परिपक्व होने पर श्री कृष्ण परमात्मा की अलौकिक लीला के दर्शन भी पा सकी हूँ । इसलिये मेरे लिये तो मेरे भगवान ही नरदेहधारी इसी स्वरूप में राम और कृष्ण हैं । भगवान ने स्वयं ही कहा है, "देखो इष्टदेव के गुणों का अपने में आविर्भाव करने से साधक में गुरुत्व आता है तब साधक में से गुरुदेव प्रगट होते हैं जो साक्षात् श्रीहरि के समान है । गोस्वामीजी ने भी कहा है –

बंदौं गुरुपद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि ।

श्री गुरुदेव को साक्षात् श्रीहरि के समान कहा है, "जो वास्तव में सर्वथा यथार्थ ही है । मनुष्यों को अपनी पहचान कराने के लिये श्रीहरि का मनुष्य रूप में ही मनुष्यों के आगे आना होता है और यही है श्री गुरुदेव का मनुष्य शरीर, जिसके माध्यम से साक्षात् श्रीहरि शिष्यों के सम्मुख प्रगट होते हैं । **इसलिये गुरुदेव में मनुष्य बुद्धि करना महान पातक है ।**" भाव परिपूर्ण होने पर पत्थर से भी भगवान प्रगट होते हैं तो फिर..........

मेरे भगवान का ही स्वलिखित यह पत्र मेरे मनोभाव का प्रमाण है –

प्रिय रमु सादर आसीस
स्वास्थ ठीक नहीं मेरा कुछ मगज
चलता नहीं पर करना क्या
रमु चिन्ता न करना मैं सोच रहा हूँ
भगवान सब पर दया करे सबको आसीस

रामजी (राम)
रणछोड़ (कृष्ण)

सोई मम इष्टदेव रघुवीरा, सेवत जाहि सदा मुनिधीरा ।

मेरे भगवान के शब्दों में – "भगवान अव्यक्त होते हुए भी जन-समूह में व्यक्त है, हमारे श्री राम ही श्री कृष्ण हैं, दोनों एक ही हैं । एक की मर्यादा और दूसरे की लीला है ।"

राम स्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

श्रद्धा देवी देत है, सब साधन परिणाम ।
यांकी कृपा कटाक्ष बिन, बना न मिलते राम ।।

सब देवनको देव है, श्रद्धा देवी नेम ।
बना प्रेम में नेम नहीं, नहीं प्रेम में क्षेम ।।

अहो ! देव महादेव हे ! विश्वस्वामी,
करूँ मैं स्तुति आपकी शिश नामी;
दयालु प्रभु ! आपदासे उबारो,
दीनानाथ ! तू एक आधार मेरो ।

प्रभु आप ही सर्व पालनहारे,
आप हो संकट टालनहारे;
किये है तुम्हीं ने करोड़ों उपकारो,
दीनानाथ ! तू एक आधार मेरो ।

मैं हूँ रंक अति रंक अज्ञान प्राणी,
न है बात मेरी तू से छिपानी;
करो हे दयालु ! क्षमा दोष मेरो,
दीनानाथ ! तू एक आधार मेरो ।

हम बालक बोलते हाथ जोड़ी,
हमारी मति हे प्रभु ! है भी थोड़ी;
दया कर प्रभु ! प्रार्थना दिल धारो,
दीनानाथ ! तू एक आधार मेरो ।

हम और कुटुंबीजन जो हमारे,
रहे हम सदा सर्वदा सुखी सारे;
सदा आप देना अच्छे विचारो,
दीनानाथ ! तू एक आधार मेरो ।

न मैं करी आपकी कोई भक्ति,
नहीं आपके गुण गाने की शक्ति;
दयालु प्रभु ! दास दुःखको निवारो,
दीनानाथ ! तू एक आधार मेरो ।

[३]

तुम्हरी कृपा सुलभ सोऊ मोरे

बहुत अनुग्रह कीन्हों, हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों
साधन धाम बिबुध दुर्लभ तन, मोंहि कृपा करि दीन्हों······· हरि तुम
बड़े भाग मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन गावा·······

१८ फरवरी, १९४२ की साल में सौराष्ट्र के अमरेली जिले में बरसडा गाँव में लोहाणा (वैष्णव) जाति में पू० माता अ० सौ० कमला बहन और पू० पिताश्री पुरुषोत्तमभाई हरियानी के यहाँ मेरा जन्म हुआ । पू० दादी माँ के धार्मिक संस्कारों से परिपोषित पिताजी के जीवन और विचारधारा ने प्रभु प्राप्ति की उत्कंठा जिज्ञासा से धनोपार्जन को ही प्राधान्य न देकर आध्यात्मिकता के क्षेत्र में निष्काम सेवाभाव से देश सेवा में सहभागी होने का स्वीकार किया । मेरी पाँच-सात साल की उम्र से बाल-सहज स्वभाव से कहानियाँ सुनने का शौक था । नित्य नई कहानियाँ पिताजी से सुनने के लिये लालायित रहती थी । पिताजी रोज ध्रुव, प्रहलाद, मीरां या नरसिंह मेहता जैसे महान भक्तों के चरित्र कहानियों के रूप में कहते रहते थे, साथ-साथ अपने जीवन की करुण सत्य घटनायें भी कहते थे । वह सुनकर रो पड़ती थी । बाल स्वभाव से छोटे-छोटे प्रश्न उठते थे जिसका समाधान मिल सके वैसे प्रसंग भी कहते थे ।

कुछ प्रसंगों में भगवान विकट परिस्थितियों में से कैसे रक्षा करते थे वह सुनने पर प्रश्न उठता था कि, "पिताजी, भगवान किस तरह से अपनी रक्षा करते हैं ?" उत्तर मिलता था, "बेटा, भगवान को यदि

हम याद करें तो वह भी अवश्य अपना ख्याल रखते हैं इसलिये रोज राम-राम की पाँच माला फेरनी चाहिये ।"

हरि ना बिसारे, उसे हरि ना बिसारे..........

पिताजी कहते थे, "मैं पाँच साल का था तब मेरे पिताजी गुजर गये उस समय मेरी माँ मुझे कहती थी बेटा, तेरे दुन्यवी पिता तो तुझे छोड़कर चले गये पर तू परम पिता को भूलना नहीं और तबसे मुझे भी रोज पाँच माला फेरने को कहती थी। माला जपने के बाद ही सुबह का नास्ता देती थी । इसी संस्कारों के परिणाम से प्रभु प्रेम जागृत हुआ ।" पिता के स्वर्गवास के बाद पिताजी को अपनी माँ के साथ अपने चाचा-चाची के संग रहकर जीवन व्यतीत करने का था । उनकी आर्थिक स्थिति साधारण थी, गाँव में खेती-बाड़ी थी ।

पिताजी वंश परम्परा की बातें बताते रहे कि, "मुझे मेरे दादाजी ने एक बार कहा था कि अपने इस घर में पू० जलाराम बापा भोजन के लिये पधारे थे कारण उनकी भतीजी "अंबा माँ" अपने गाँव में रहती थी । उनके यहाँ पर कोई जरूरी प्रसंग पर कभी आते थे तब बेटी के घर का पानी न पीने से अपने यहाँ पर बुलाते थे। (पू० जलाराम बापा हमारी जाति में एक महान रामभक्त हो गये हैं, जिनका नाम और महिमा आज भी सौराष्ट्र में खूब है जो कि सौराष्ट्र में वीरपुर गाँव में रहते थे । आज भी वहाँ उनकी याद ताजी कराता हुआ मंदिर है जहाँ भोजन, भजन समयानुकूल निरंतर चल रहा है ।) पिताजी ने बताया कि मैं चौदह साल का हुआ तब तक मेरे दादाजी थे और अपने कभी भी अमीर नहीं थे परन्तु दाल-रोटी से दुःखी भी नहीं थे और पहले के समय में छोटे गाँव में कोई भी यात्री निकलते थे तो गाँव के चौराहे पर ही रात्रि मुकाम करते थे, और पूछते थे, गाँव में रोटी किसके घर मिलेगी ? और उस समय अपने दादा-परदादा से अपने यहाँ की राम-रोटी प्रसिद्ध थी। चौराहे के पास में ही घर है और परम्परा के इस संस्कार के कारण मुझे भी रोज भोजन से पहले किसी यात्री की तलाश करने की आदत हो गई थी । कोई भी साधुसंत या यात्री हो तो उन्हें प्रथम भोजन कराया जाता था क्योंकि पैदल यात्रा की जाती थी और छोटे गाँव में आज की तरह धर्मशाला या कोई ढाबा की व्यवस्था तो थी नहीं ।

छोटे गाँव में सातवीं कक्षा तक पाठशाला का अभ्यास पूरा हुआ। पढ़ाई में तेज होने से राजकोट बोर्डिंग में आगे के अभ्यास के लिये गया। वहाँ पर पू० श्री ओधवजी भाई कोटेचा की ओर से पितृ-प्रेम की झलक मिली। उन्होंने प्यार से आध्यात्मिक प्रोत्साहन भी दिया जिससे श्रीमद् भगवद् गीता कंठस्थ कर पाया। संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। मेट्रिक पास करने के बाद मित्र और स्वजनों के सहकार से बम्बई अभ्यास के लिये गया। बी०कॉम० अभ्यास के समय धार्मिक पुस्तकों के पठन-पाठन से विचार परिवर्तित हुए। "जीवन सफल कब ? ईश्वर मिले तब", यह विचार सतत बने रहते थे।

राम चरण पंकज जब देखौं, तब निज जनम सुफल करि लेखौं।

मानो कि इस जिज्ञासा की तृप्ति के लिये अब समय आ गया हो वैसे एक पुस्तक में पढ़ा, "निष्काम सेवा से चित्तशुद्धि होती है और चित्तशुद्धि से ईश्वर प्राप्ति होती है।" यह मनपसंद बात पढ़ने पर प्रश्न उठा कि, "निष्काम सेवा कौनसी ? और कैसे करूँ ?" मनोमंथन होने पर जवाब मिला, "कुटुंब सेवा या निजसेवा तो स्वार्थमयी है, अभी निष्काम सेवा के लिये तो देश-सेवा में ही लग जाना चाहिये। यही विचारों से सन् १९३० में बी०कॉम० की परीक्षा न देकर बम्बई से सौराष्ट्र में अपने गाँव वापिस लौटा। बुजुर्गों से सम्मति माँगने पर ममतावश सम्मति मिलना मुश्किल था। यह भी स्वाभाविक है। फिर भी देश-सेवा के लिये प्रबल भावना होने से उन्हें नाराज करके भी राजकोट जाकर पू० गांधीजी से मिला।



[४]
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता

गांधीजी की आज्ञानुसार यथाशक्ति समय मुताबिक सौंपा गया कार्य सम्हालता रहा । कुछ समय सत्याग्रहियों के साथ अंग्रेजों का दुर्व्यवहार सहन किया, उसके पीछे भी प्रभु कृपा का ही दर्शन था । उस समय पैदल यात्रा में हरिजनों के संपर्क में रहने के प्रसंग भी बनते थे । निर्बल और सत्य के पक्ष में खड़े रहने से धर्म पथ पर चलना अतिशय दुष्कर हो जाता था और ऐसे समय पर भगवान की अहर्निश रक्षा की अनुभूति मिलती थी । देश-सेवा के कार्य दौरान हरिजनों के संपर्क में रहने से जाति भेद और वैष्णव धर्म के कड़क नियमों के कारण गाँव और सब जाति बंधुओं के विरोध से चाचाजी ने भी विरोध किया । समाज की ओर से चाचाजी को आर्थिक विषय में मेरे विरुद्ध बहकाये गये । परिणाम में चाचाजी को भी मेरे पर शंका हुई कि यह मेरा निजी बेटा तो है नहीं और मैं अनपढ़ हूँ । मेरी मेहनत मजदूरी की पूरी कमाई यह लड़का ले जाएगा । इस विचार से मुझे एक दिन बुलाकर कहा, "देखो, अब तुम बड़े हो गये हो और तुम्हारे पत्नी-बच्चे भी हैं, अपने समय पर बंटवारा करके अलग हो जाय वो ही अच्छा होगा । कुछ जाति बंधु, पंच और कुछ कुटुंबीजनों को बुलायेंगे जिससे सरलता रहेगी ।"

यह सुनकर मैंने कहा, "चाचाजी, भले आपकी इच्छा है तो बंटवारा कर लेते हैं परन्तु एक शर्त, किसी को भी बुलाना नहीं है और पहली माँग मेरी । भले मैं आपके बड़े भाई का बेटा हूँ परन्तु आपसे तो छोटा ही हूँ जिससे पहला अधिकार मेरा है । वे घबराये, उनको लगा मैं अनपढ़ हूँ और यह लड़का अलग होने को भी राजी हो गया है जरूर मुझे ठग लेगा । इस कारण सब को बुलाने को बहुत आग्रह किया पर मैं सहमत नहीं हुआ । अंत में वे कबूल हुए और कहा, "भले तुझे जो माँगना हो माँग ले लेकिन मुझे योग्य लगेगा तो ही दूंगा । मैंने स्वीकार किया । चाचाजी तो परिणाम क्या होगा उस विचारों में डूबे हुए थे । मुझे तो बचपन से मेरी माँ ने जो संस्कार दिये थे और संतों

की कृपा भी मिली थी उससे आत्मा भी साक्षी दे रही थी जिससे मैंने कहा, "ठीक है चाचाजी, मेरे जन्म से आज तक का मेरे लिये किये गये खर्च का हिसाब लिखिये । वे समझे नहीं । मेरे पिताजी मुझे मैं पाँच साल का था जब से आपके हाथों में सौंप गये हैं तबसे आज तक का मेरा निर्वाह खर्च, पढ़ाई और शादी का खर्च, मेरी माँ को भी आपने ही सम्हाला उनका खर्च और उसके बाद मेरे परिवार को निभाने का खर्च लिखिये। उसके अलावा मुझे मेरी माँ छप्पन के साल की दुष्काल की बातें बताती थी कि हम लोग कैसी भी सड़ी हुई जवारी की रोटी से भी पेट भर लेते थे लेकिन तुम्हारे लिये उस समय चाचाजी कितनी भी कीमत चुका कर बाजरी ले आते थे । चाचाजी, इसका मूल्य तो मैं किस तरह चुका सकता हूँ ? और आज तक अभी भी कमाता तो हूँ नहीं, अब बंटवारे में मेरे हिस्से के जो कुछ खेती, मकान बचते हैं वह मैं आप ही को सौंप देता हूँ फिर भी आपका ऋण पूरा नहीं हो सकता । इसलिये मैं आपका ऋणी हूँ और अभी तो मेरे पास और कुछ भी है ही नहीं । मैं अपने परिवार के साथ खाली हाथ घर में से निकल जाता हूँ, भविष्य में आपका हिसाब चुकाने का प्रयत्न करूँगा । यह सुनकर चाचाजी फूट-फूटकर रो पड़े और मुझे हृदय से लगाकर बोले, "बेटा, यह सब कुछ तेरा ही है, मैं किसी के बहकावे में आ गया और तुझे समझ नहीं पाया । यह थी उस समय की पारस्परिक प्रेम भावना ।

इस सेवा-कार्य के साथ में अधिक लाभ तो यह था कि पदयात्रा के समय अलग-अलग गाँव में राम मंदिर में रात्रि निवास दौरान अनेक संतों के दर्शन का लाभ मिलता था। पू० श्री नित्यानंदजी महाराजजी, पू० प्रकाशानंदजी महाराजजी, पू० सेवाराम बापू और पू० नारायण स्वामीजी जैसी महान विभूतियों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । उस समय जीवन में कर्म और ज्ञान का प्राधान्य था, भक्ति गौण थी । निर्गुण उपासना में अधिक रुचि थी, पू० सेवाराम बापू संन्यासी साधु थे । वे कई बार गाँव में आते रहते थे, यथाशक्ति उनकी सेवा करता था । "विचार सागर" का अभ्यास करने के लिये उनका आदेश था इसलिये समय मिलने पर उस विषय में चर्चा चलती थी ।

एक समय मेरी यात्रा दौरान पू० श्री नारायणस्वामीजी का नाम सुनकर दर्शन को गया । उनका मौन था और मुझे भी कुछ पूछने की

इच्छा तो थी नहीं फिर भी उन्होंने कृपा करके इशारे से पूछा, "क्या करते हो ? ' उस वक्त "ॐ" की चालीस माला जपता था । यह जानकर उन्होंने दो अंगुलियों से संकेत किया पर समझ नहीं पाया । तब स्लेट में लिखकर दिया, "दो सो जरूर करना" थोड़ी देर के बाद अपनी कुटिया में जाते-जाते फिर से दो सो माला करने के लिये संकेत किया और "एक संत का अनुभव" नाम का पुस्तक पढ़ने को दिया । निवास-स्थान पर पहुँचने पर विचार आया, चालीस माला मुश्किल से करता हूँ, दो सौ माला के लिये समय कहाँ ? वे तो साधु ठहरे उन्हें क्या काम ? मुझे तो देशसेवा करनी है । दूसरे दिन सुबह नित्यक्रिया के बाद चालीस माला पूरी करके उठने लगा तो पैर उठा ही नहीं । ऐसी तो कल्पना भी नहीं थी कि आज कोई दिव्य शक्ति काम कर रही है । थोड़ी देर न उठ पाने से पाँच माला अधिक की फिर भी दो सौ माला पूरी न हुई तब तक उठ नहीं पाया । उसी समय विचार आया कि कल जो संतदर्शन हुए जरूर उन्हीं की कृपा का यह परिणाम है । उनकी दी हुई पुस्तिका पढ़ने को उत्सुकता हुई । उसमें उन्होंने निजी अनुभव लिखा था ।

रोज दो सौ माला अवश्य करनी चाहिये क्योंकि मनुष्य चौबीस घंटे में इक्कीस हजार छः सौ श्वास लेते हैं तो हर श्वास पर प्रभु नाम लेना चाहिये और इस तरह से नौ करोड़ जाप होने पर कुछ न कुछ झांकी अवश्य होती है और तेरह करोड़ जाप होने पर प्रभु प्राप्ति होती है । यह पढ़ते ही विचारधारा में एकदम परिवर्तन आया कि निष्काम सेवा से यह मार्ग चित्तशुद्धि के लिये सरल दिखता है । उसमें यह भी लिखा था कि, "दिन में एक बार एक जगह बैठकर दो सौ माला गिनकर कर लो शेष दिन भर खाते, पीते, चलते-फिरते कैसे भी करो तुम गिनो या नहीं परन्तु भगवान के दरबार में वह भी हिसाब बराबर रहेगा । उन्होंने अपना स्वानुभव लिखा था, नर्मदाजी के किनारे रात-दिन सतत नारायण-नारायण का जाप करते हुए साढ़े तीन साल के बाद साक्षात्कार प्राप्त हुआ था । उसके बाद हमेशा वे मौन रहते थे और सिर्फ टाट की कौपीन धारण करते थे । संत कृपा से और उनकी पुस्तक पढ़ने से नित्य दो सौ माला से संतोष न मिलने पर जाप बढ़ाये । प्रभु प्राप्ति की जिज्ञासा बढ़ती रही । तेरह करोड़ जाप तीव्रता से पूरे करने की लगन से रोज रात्रि को लोभी की भाँति जाप का हिसाब करता था, इसी तीव्रता में "विचार सागर" का अभ्यास छूट गया ।

थोड़े समय के बाद पू. सेवाराम बापु गाँव में पधारे और प्रश्न किया, "विचार सागर कहाँ तक देखा ?" मैंने कहा, "अब वह सब छोड़ दिया है ।" कठोर वाणी से कहा, "चले जाव यहाँ से, मेरे पास नहीं आना ।" बापु कुटिया में और मैं बरामदे में । नियमानुसार सेवा करता रहा । सुबह स्नान के बाद जब वस्त्र धोने के लिये लेने गया तब नाराजगी बताकर नहीं दिये । तीन रोज ऐसे चला, चौथे दिन सुबह पू० बापु बिदा होने वाले थे तब स्नान के बाद वस्त्र लेने के लिये झुका उस वक्त पैर हटाकर वस्त्र लेने दिया और पीठ पर तीन बार मारते हुए गद्गद् स्वर से बोले, "अब तुम्हें इसी जन्म में साक्षात्कार हो जाएगा ।" "मार में भी प्यार है" यह वाक्य सेवाराम बापु ने चरितार्थ किया । फिर उनके दर्शन दुर्लभ हो गये । अब सतत राम नाम और देश-सेवा चालू थी । बीच में कभी-कभी राजकोट में गांधीजी के साथ रहते समय आप्तजन के भाव से प्यार रखने वाले पू० ओधवजीभाई के सम्पर्क में रहता था । एक बार प्रसंगोपात उन्होंने कहा, "यहाँ पर भी एक संत पधारते हैं जिनका नाम "पू. श्री रणछोड़दासजी बापु" है । यदि आपको दर्शन की इच्छा हो तो अब पधारेंगे तब अवश्य खबर दूँगा ।



[५]

कृपा करिय पुर धारिय पाऊँ

सन् १९४३ के जनवरी में राजकोट से पू. श्री ओधवजी भाई का पत्र आया, "पू. बापु यहाँ पधारे हैं, मैंने आपका परिचय देते हुए कहा कि, 'बापु, लाठी के पास बरसडा गाँव में एक भाई रहते हैं जो देश-सेवा करते हैं और रोज राम नाम की दो सौ माला जपते हैं । उन्हें आपके दर्शन की इच्छा है, पत्र लिखूँ ?' पू. बापु ने उत्तर दिया, 'अच्छा देश-सेवा करते हैं और राम नाम की दो सौ माला भी ? तो उन्हें यहाँ नहीं बुलाना उनके वहाँ मैं जाऊँगा ।'

संत तो दयालु होते हैं, परन्तु तुम्हारी इच्छा हो तो अवश्य आ जावें । मैं उसी दिन राजकोट गया । राजकोट में कुवाडवा रोड पर आज का "सद्‌गुरु सदन आश्रम" जो है वह नहीं था । छोटी झौंपड़ी थी जो "वाघजी आश्रम" के नाम से प्रसिद्ध थी । उस समय पू. बापु के संयम नियम कड़क थे । शाम को छः बजे से रात्रि के ग्यारह बजे तक नियम में बैठते थे । सुबह भी आठ बजे के बाद दर्शन मिलते थे । माताएँ पू. बापु की कुटिया में नहीं जा सकती थीं, भक्त और सेवकगण भी कम थे । रात को ग्यारह बजे नियम में से बाहर पधारे । माघ महीना था, सर्दी में बाहर पेड़ के नीचे विराजमान हुए । मंत्रराज पर प्रवचन देते हुए प्रसंगोपात बोले, "देखो भाई, साधु का कोई प्रोग्राम नहीं होता, साधु तो सूखे पत्ते की तरह होता है, प्रारब्ध का पवन जहाँ उड़ा के ले जाता है वहीं जाता है", यह वाक्य तीन बार दोहराया जिससे विचार आया, पू. बापु का इशारा कल बरसडा आने का लगता है क्योंकि उस वक्त गोंडल, बंदिया और भाडवा गाँव से भक्तजन पू. बापु को लेने के लिये आये थे ।

पू. बापु की चरण सेवा की भावना से थोड़े भाइयों के साथ मैं कुटिया में गया । पू. ओधवजीभाई ने मेरा परिचय कराया तब कहा, "मैं जानता हूँ ।" मैंने कहा, "बापू अभी के प्रवचन में जो वाक्य आप तीन बार बोले हो उसका मैं यह अर्थ कर सकता हूँ कि आप कल बरसडा पधारेंगे" । "अरे हाँ बाबा, इसीलिये तो बोला हूँ, बरसडा जाने का

रास्ता कहाँ से है ?" प्रोग्राम पक्का रहा । मेरे मित्र श्री वजुभाई जोबनपुत्रा और पू. श्री ओधवजीभाई परिवार समेत साथ चलने को तैयार हुए । राजकोट से जेतलसर ट्रेन बदलकर आगे जाते वक्त पू. बापु के भोजन का समय हो जाने से स्टेशन पर ही श्री वजुभाई ने पू. बापु के लिये खिचड़ी बनाई । उस समय भोजन में सुबह-शाम सिर्फ एक सेर खिचड़ी का पानी, काली मिर्च और सेंधा नमक डालकर पीते थे । आगे जाते पूछा, "पुरुषोत्तमभाई, बरसडा कैसे जाने का है ? वैसे तो अमरेली से बरसडा जाया जाता है परन्तु पू. बापु कोई भी प्राणी जोड़े हुए सवारी में नहीं बैठते थे जिससे बैलगाड़ी या तांगा नहीं चलता था और मोटर गाड़ी की सुविधा मेरे पास थी नहीं । प्रयत्न करने पर मोटर की व्यवस्था हो सकती थी लेकिन कर्मवाद के सिद्धान्त से सोचता था, यदि गांधीजी पदयात्रा करते हैं तो एक साधु के लिये मोटर क्यों ? और पैदल जाने के लिये अमरेली के बदले माचीयाला स्टेशन नजदीक था जिससे पू. बापु को वहाँ उतरने के लिये सूचित किया और मेरे साथ परिवार समेत भाई लोग होने से सवारी के लिये अमरेली उतर गये ।

हमारे पहुँचने से पहले पू. बापु मेरे बताये हुए लायब्रेरी के मकान पर पहुँच गये थे । गाँव में किसी को खबर न होने से और लायब्रेरी बंद होने से बरामदे में अपने मस्तक से चरण तक शाल ओढ़कर नियम में बैठ गये थे । इस तरह से कुछ बिछाये बिना बैठे देखकर दुःख तो हुआ परन्तु विक्षेप कैसे किया जाय ? लायब्रेरी के कमरे में रात को आराम के लिये गद्दे आदि बिछाकर तैयार किया । रात को ११ बजे नियम में से उठकर कमरे में बिछाना देखकर बोले, "हटावो यह सब साधु को गद्दा क्या ?" सोचा अब बिछाने के लिये क्या देंगे ? साथ में आये हुए भाई ने बताया । पू. बापु टाट में नारियल के छिलके भरे हुए गद्दे का उपयोग करते हैं । छोटे गाँव में यह तो मिलना मुश्किल था, अन्त में पू. बापु ने कम्बल को स्वीकार किया । रात को परिवार समेत सबने पू. बापु के दर्शन किये । दूसरे दिन जल्दी सुबह अपने जरूरी काम से कोटडानायाणी के लिये रवाना हुए । गाँव में सबको रात्रि के समय दर्शन का लाभ न मिलने से और कुछ समय रुकने के लिये विनती की परन्तु पू. बापु ने कहा, "मुझे अभी जाने दो, अगले साल इसी दिनों में यहाँ दस दिन रुकूंगा ।" मैं बापु के साथ उनका कमंडल लेकर थोड़े दूर पहुँचाने के लिये साथ गया । थोड़े ही आगे जाने पर उन्होंने कहा, "लावो मेरा कमंडल, अब

तुम जावो ।" मैंने और थोड़े दूर साथ चलने की इच्छा बताई तब कहा, "चलना है साथ में ? तो फिर वापिस जाने नहीं मिलेगा ।" तब तो मन इतना तैयार था नहीं जिससे कमंडल सौंपकर, प्रणाम करके वापिस लौटा ।

अवध तहाँ जहाँ राम निवासू........

[६]

तुम्हरी कृपा पाव कोई-कोई

पू. बापु का सन् १९४४ के फरवरी में बैंगलोर से तार आया, "मैं आ रहा हूँ ।" छोटे गांव में यथाशक्ति तैयारी की गई, पू. बापु पधारे । साथ में भाडवा दरबार, प्रभुदासभाई पुजारा आदि दो-चार भक्त भी थे । शहर की दृष्टि से भक्तों की निगाह में पू. बापु के लिये व्यवस्था में बहुत त्रुटि लगी इसलिये साथ में आये हुए भक्तों ने अपने भावानुकूल पू. बापु को तकलीफ हो रही है कहकर पाँच दिन के बाद विदा ली ।

इस पाँच दिन के पू. बापु के सान्निध्य दौरान उन्होंने अलौकिक दिव्य कृपा का दर्शन कराया । मेरे मन में ऐसी ग्रंथी थी कि किसी को गुरु बनाऊँगा तो मैं बंध जाऊँगा । अचानक एक भाई ने आकर कहा, "आपको पू. बापु बुला रहे हैं ।" पू. बापु के पास जाते ही कृपा करके गले में कंठी डालकर मंत्र दिया । गाँव में करीब बीसेक भाइयों की ऐसी इच्छा थी की पू. बापु प्रथम मुझे कंठी, मन्त्र दें बाद में ही वे लोग मंत्र लेने को आतुर थे । इस तरह से उन्हें भी मंत्र दीक्षा मिल गई और गाँव में नित्य रामधुन तथा मानसजी का पाठ करने के लिये उस समय पू. बापु ने आदेश दिया । तबसे आज तक प्रभु कृपा से गाँव में भाविकजन इस नियम को यथाशक्ति सम्हाल रहे हैं । परिणाम में उनको प्रसंगोपात भगवद् कृपा की अनुभूति होती रहती है ।

एक दिन रात को श्रोतागणों के बीच एक छछुंदरी विक्षेप कर रही थी । वह घूमती-घूमती पू. बापु के चरण रखे हुए पाटे के नीचे गई ।

उस वक्त पू. बापु बोले, "अब एक घंटे तक यहीं बैठी रहना, बाद में जहाँ जाना हो वहाँ जाना ।" सही में सब की नजरों के सामने एक घंटे बाद प्रवचन पूरा होते ही वह बाहर निकली ।

गाँव के बाहर पशुओं को पानी पीने के लिये कोई साधन नहीं था । वह बनाने के लिये गाँव के लोगों में धनराशि इकट्ठी करने के लिये संघर्ष चल रहा था, यह बात पू. बापु को किसी ने भी बताई नहीं थी । एक दिन प्रवचन में पू. बापु ने लोगों को सम्बोधित करके कहा, "देखो भाई, गाँव का कोई भी कार्य हो उसके प्रति सबका कर्त्तव्य है, सबको, यथाशक्ति सहयोग देना चाहिये । जैसे गाँव में पाठशाला, अस्पताल या पशुओं को पानी पीने के लिये जो साधन की आवश्यकता हो, सबको मिलकर करना चाहिये ।" इन शब्दों में क्या शक्ति थी कि तुरन्त ही इस बात का आदर हुआ और चाहिये जितनी धनराशि एकत्रित हो गई । आज भी पशुओं के लिये वह पानी का हवाड़ा सबके लिये प्रतीक रूप है ।

छोटे गाँव में कोई भी भगवद् कार्य के समय प्रसाद में गुड़ बाँटा जाता था । पू. बापु के दर्शन हेतु आस-पास के गाँव के लोग गुड़ लेकर आते थे, वह सबको प्रसाद में दिया जाता था । इस कार्य के व्यवस्थापक भाई ने एक दिन आकर कहा, "दासभाई, प्रसादी का गुड़ खत्म हो गया है ।" (गाँव में पिताजी को दासभाई कहते थे) इससे पहले एक भाविक भक्त ने प्रसाद के लिए गुड़ देने की इच्छा बताई थी, तब मैंने कहा था, "अभी बहुत है जरूरत पड़ने पर मँगवा लूँगा" । इस समय मैं उनके वहाँ गुड़ लेने के लिए जा ही रहा था इतने में पू. बापु ने आवाज दी, "ओ, दासभाई, इधर आव, कहाँ जाते हो ?" उत्तर सुनकर पू. बापु ने कहा, "नहीं, कभी माँगने नहीं जाना" "बापु, मैं सामने से माँगने नहीं जा रहा हूँ, उन्होंने कहा था ।" "फिर भी नहीं माँगना, जिसने कहा है वह अपने आप आ जाएगा ।" बात पूरी हुई इतने में तो वह भाई गुड़ लेकर बोलते हुए आ गये, "दासभाई, पू. बापु ऐसे ही चले जायेंगे और मेरा गुड़ रह जाएगा ।" तुरन्त ही पू. बापु बोले, "देखो, आ गये ना? तुम्हारे गुड़वाले भाई !" इसके अलावा भगवान ने कृपा करके आदेश दिया, "देखो दासभाई, अब थोड़े समय में देश स्वतंत्र हो जायगा, फिर तुम राजनीति की खटपट में पड़ना नहीं, अब यह सब छोड़ो और छोटे बालकों की देख-

भाल के लिये बम्बई जाकर नौकरी करो । तुमने जो सच्चे मन से सेवा की है उसका फल अवश्य मिलेगा । आगे चलकर कांग्रेस का सिर्फ नाम रह जायगा, सिद्धांत नहीं ।

एक बार मेरी मनोव्यथा मैंने पू. बापु के आगे व्यक्त की कि "मुझे एक बात का असंतोष है, मैं अपने चाचाजी को किस प्रकार से संतुष्ट कर सकूँ ? आर्थिक ऋण भी नहीं चुका सकता ।" पू. बापु ने कहा, "तुम उनको एक बार मेरे पास ले आव ।" मैंने कहा, "वे नहीं आयेंगे, उल्टे आपके लिये दो शब्द इधर-उधर बोल देंगे तो मुझे दुःख होगा ।" तब कहा, कोई बात नहीं तुम एक बार कह तो दो ।" उस दिन घर जाकर डरते-डरते चाचाजी से बात की, प्रत्युत्तर तो जानता ही था, "मैं कोई फालतू हूँ ? तुझे कोई काम-धंधा नहीं है, जा बैठ साधुओं के बीच में ।" परन्तु आश्चर्य ! उसी दिन रात को प्रवचन में आकर चाचाजी सबसे पीछे बैठ गये । अभी पू. बापु से चाचाजो का परिचय किसी ने करवाया नहीं था, फिर भी पू. बापु ने कहा, "चाचाजी इधर आव, यहाँ बैठो ।" प्रवचन पूरा होने के बाद चाचाजी ने प्रणाम किया तब पू. बापु ने कहा, "चाचाजी, अब राम-राम करना" इस शब्दों के प्रभाव से जीवन के अंतिम साँस तक उनके मुँह में रामनाम चालू रहा । इस तरह से पू. बापु ने मेरो मनोव्यथा दूर करके, पूर्ण संतोष देकर चाचाजी का कल्याण किया ।

रामनाम के सहारे, आदेशानुसार दो साल वीरनगर में नौकरी की । इसके बाद १९४७ में बम्बई आये । बम्बई में कार्य की व्यस्तता और समय का अभाव होने पर भी प्रभु कृपा से श्री रामचरित मानस का मास-पारायण पाठ, राम-नाम की दो सौ माला और मंत्र जाप की माला करने का प्रयत्न करता रहा । बम्बई में जब पू. गुरुदेव चांदीवली पधारते थे तब दर्शन के लिये जाता था ।

इस तरह से पिताजी को भगवान के दर्शन, सेवा, सान्निध्य का लाभ मिलता रहता था । यह सब बातें पिताजी से कहानी के रूप में सुनती थीं और नित्य नया उत्साह मेरे मन में बढ़ता रहा । पिताजी कई करुण प्राणघातक घटनाओं में से प्रभु कृपा से पार हुए वह सुनकर काँप उठती थी और सोचती थी ऐसे प्रसंग मेरे जीवन में भी बनेंगे तो मेरी रक्षा भी भगवान करेंगे ? इस विचार से पिताजी के कहने से धीरे-धीरे दो सौ माला करने का यथाशक्ति प्रयत्न करती रही । कभी-कभी पिताजी बाहर

गाँव जाते थे तब वहाँ से पत्र में प्रथम वाक्य लिखते थे, "श्री राम-राम जपना जो चाहो हित अपना।" उस समय राम-नाम की महिमा से तो अनजान थी फिर भी राम-नाम लिखती रहती थी। १९५४ से ५६ तक दो साल के लिये भगवान काष्टमौन में जामनगर में विराजमान थे। ५६ की साल में काष्टमौन पूरा होने पर उस महोत्सव में पिताजी गये थे और धीरुभाई राजकोट से पदयात्रा में गये थे। संजोगवशात उस समय नासमझ होने से यह लाभ नहीं पा सकी। यह दो साल दौरान उस स्थान में पानी खत्म हो जाने से भगवान ने ध्यान मंदिर के कमरे में गंगाजी प्रगट किये हैं जो आज करीब ३२ साल से उतना ही निर्मल जल भरा हुआ है।

१९५६ में १४ साल की उम्र में दो सौ माला तो करने लगी परन्तु भाव नहीं था। एक बार प्रसंगोपात् बरसड़ा जाना हुआ। वहाँ पर भगवान पधारे। नियत समय से कारणवशात् आने में रात्रि हो गई, फिर जल्दी सुबह चले जाने वाले थे। सुबह दर्शन के लिए जाने में मुझे देर हुई। पिताजी की विनती से भगवान गाड़ी में बैठकर राह देख रहे थे। उस समय श्रीचरणों में प्रणाम करते वक्त जो मधुर स्मित था जिससे हृदय में जो दिव्य-भाव फूट पड़े उसका वर्णन अकथनीय है।

गिरा अनयन नयन बिनु बानी

पाँच साल की उम्र में संक्रांत के दिन छोटी बालिकाओं के साथ "राम" बोलकर कोई भी चीज खाने-पीने का नियम लिया था तब खबर नहीं थी कि जीवनपर्यंत रोम-रोम में यही राम को प्रगटाना है। १९५६ में बरसड़ा से बम्बई आये तब थोड़े समय के बाद जयपुर स्थानान्तरण हो गया। उस समय माँ के लिये "श्रीराम" लिखी हुई अंगूठी बनवाई थी। रामनाम के आकर्षण से और गहनों के शोक से वह अंगूठी मैं पहनती थी तब भविष्य की क्या खबर थी कि, "हरिनाम की चूड़ी पहनी, राघव की अंगूठी रे.........."

"आत्मानुसंधान में चित्तशुद्धि की परम आवश्यकता है, चित्तशुद्धि शुभ कर्मों द्वारा होती है, शुभ कर्म ईश्वर कृपा से होते हैं, ईश्वर कृपा हरिस्मरण से होती है, हरिस्मरण गुरुकृपा से होता है।

भगवान के यह शब्द पिताजी के जीवन में यथार्थ उत्तर चुके थे फिर भी सत्य है कि जीवन में पुरुषार्थ की एक सीमा होती है अंत में तो

संत या भगवंत कृपा करके जब अपनाते हैं तभी जीवात्मा भगवद्‌शरण पा सकती है । भगवान के शब्दों में :–

कृपा साध्य रघुनाथ है, साधन एक निमित्त

[७]

बिहँसि कृपानिधि बोले बचना

भगवान एक बार चांदीवली आश्रम में विराजमान थे । कोई एक भाविक भक्त हरकिसनदास अस्पताल में बीमार थे । उन्हें देखने के लिये भक्तों के आग्रहवश होकर भगवान वहाँ जाकर आये । उस समय शहर में जाना पसन्द नहीं करते थे । अधिकतर कोई गाँव या शहर से दूर कुआ और दीया हो ऐसा निर्जन, एकान्त स्थल पसन्द करते थे । उस दिन दुःख व्यक्त करते हुए बोले, "आज तो मैं नर्कागार में होकर आया, बम्बई तो नरक है ।" यह सुनकर पिताजी ने कहा, "भगवान, तो फिर मुझे बरसडा से इस नर्क में क्यों भेजा ? उत्तर दिया, "धीरज रखो, थोड़े समय में यहाँ से निकल जाओगे ।" थोड़े समय में जयपुर तबादला होने पर, खुश होते हुए बोले, "अच्छा, बहुत पवित्र स्थान में जा रहे हो, देखो, वहाँ पर गलताजी स्थान है वहाँ अवश्य जाना । मेरे भगवान श्री पतितपावनजी की गुफा वहाँ है । जयपुर में लोग पयाहारी बाबाजी के नाम से पहचानते हैं क्योंकि श्री पतितपावनजी भगवान सिर्फ दूध ही पाते थे ।"

जो श्री मुख से "बम्बई तो नरक है" वहाँ भी अपने भक्तों के लिये जाते थे और जयपुर के लिये "बहुत पवित्र भूमि में जा रहे हो" वहाँ भी वोही प्रभु का निवास है—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना····

भगवान स्वयं भी जयपुर गलताजी बार-बार पधारते थे और यह भी कहते थे, "रोज सुबह तीन बजे मैं कहीं भी होऊँ पर गलताजी अवश्य जाता हूँ और साल में एक बार कश्मीर जाता हूँ कारण जयपुर से फिर श्री पतितपावनजी भगवान कश्मीर कुलु की गुफा में विराजमान हुए हैं ।"

सरग नरक अपवरग समाना, जहँ तहँ दीख धरे धनु बाना



[८]

करहु कृपा सुत सेवक जानि

भगवान १९५७ के जनवरी में जयपुर पधारे, तब राम-नाम से प्यार था पर "राम" से नहीं । भगवान हिन्दी भाषा में बोलते थे । उस समय बम्बई में गुजराती में अभ्यास करने से हिंदी समझती नहीं थी इसलिये जब बम्बई में पिताजी कभी-कभी चांदीवली दर्शन के लिये ले जाते थे तब प्रवचन में मन नहीं लगता था, जिससे पास में बैठती भी नहीं थी । अबकी बार भगवान जयपुर में तीन-चार दिन विराजमान हुये । हमारे घर से निवास-स्थान बहुत दूर था । साथ में एक बहन और तीन-चार भाई आये थे । उस समय भगवान का नियम था कि एक ही मकान में कोई बहन उनके साथ नहीं रहती थी इसलिये साथ में आई हुई बहन बगीचे के मालीजी की कुटिया में रहती थी । भगवद् आज्ञा से रोज रात को उस बहन के पास सोने के लिये मैं जाती थी । उस कुटिया में बिजली नहीं थी इसलिये अधिक डरती थी । वह बहन भगवान की सेवा में से रात को देर से आती थी और जल्दी सुबह नित्य कार्य करके चली जाती थी ।

इस समय छोटा भाई महेश साढ़े तीन साल का था । एक दिन खूब सर्दी होने से सेवा करने वाली बहन भगवान को तापने के लिये सिगड़ी जलाकर कमरे में लाई तब कोयले के ऊपर से अग्नि दिखाई नहीं देती थी । भगवान स्वयं पंखे से सिगड़ी चेता रहे थे, महेश भगवान की गोदी में बैठा था । सिगड़ी जलते देखकर महेश ने भगवान का मुखारविंद अपनी ओर करके कहा, "भगवान तुम्हारे में अक्कल नहीं है ।" पिताजी ने डांटते हुए कहा, "ऐसा नहीं बोलते", वह भी घबरा गया । पिताजी उसको भगवान की गोदी में से उठाने लगे तब कहा, "रहने दो, बैठने दो बालक इतना निर्दोष होता है, बालक जैसी निर्दोषता आनी चाहिये । उसे कुछ भी मालूम नहीं कि मैं क्या कह रहा हूँ, किससे कह रहा हूँ, उसके मन में जो विचार आया सहज कह दिया ।" फिर महेश से प्यार से पूछने लगे, "महेशजी बताओ तो हम में क्यों अक्कल नहीं है ?" निर्भीकता से उसने कह दिया, "भगवान मैं बताऊँ ?" तो कहा,

"हाँ जी बताओ ना ?" "भगवान हम तो दियासलाई लेकर सिगड़ी जलाते हैं आपने तो बिना दियासलाई के पंखा करके ही सिगड़ी जला दी ।" भगवान और आये हुए दर्शनार्थी सब हँस पड़े, तब कहा, "देखो इसका नाम है बालक ।"

दो दिन रहकर भगवान जयपुर से पुष्कर पधारने वाले थे । नियमानुसार अपनी गाड़ी में बहनों को नहीं बिठाते थे इसलिये साथ की दूसरी गाड़ी में साथ आये हुए भाइयों के साथ वह बहन अकेली होने से मुझे साथ में आने को कहा । उस वक्त भगवद् आज्ञा शिरोमान्य की समझ नहीं थी । मैंने कहा, "पिताजी से पूछ लेती हूँ ।" भगवान हँसने लगे और कहा, "हाँ हाँ पूछ लो, तुम भी तो अभी छोटी बालक ही हो ना ?" मेरे पास कपड़े नहीं थे, स्नान के बिना भोजन नहीं लेती थी । विचार आया कपड़े के बिना क्या करूँगी ? भगवान को बताया कि कपड़े के बिना नाहूँगी कैसे और नहाये बिना खाऊँगी कैसे ? तो हँसकर बोले, "नहाये बिना चलेगा, चलो ।" निकलते वक्त महेश ने प्रणाम किया तो हँसकर बोले, "महेशजी मैं जाता हूँ, मुझमें अक्कल कब आयेगी ?" बाल स्वभाव से बोला, "सोमवार को ।" यह सुनकर मेरी और महेश की तरफ इशारा करके बोले, "देखो तो यह दोनों ही बालक हैं, रमा नहाये बिना भोजन कैसे करेगी ? और महेश कहता है कि अक्कल सोमवार को आयेगी ।" भगवान के साथ पुष्कर जाकर मैं और पिताजी शाम को जयपुर वापिस लौटे ।



[६]
कृपा तुम्हारी सकल भगवाना

भगवद् कृपा से बाल्यकाल में रामनाम के प्रति नासमझ से भी लगाव था । पिताजी की आर्थिक स्थिति और नौकरी के कारण समय अभाव से भी सिनेमा और अन्य मौज-शौक के प्रसाधनों की संभावना तो थी ही नहीं । कभी देशभक्ति के या धार्मिक सिनेमा देखने पिताजी ले जाते थे । मुझे पहले से ही सिनेमा में डर लगता था । कभी कोई करुण सामाजिक सिनेमा देखने जाते थे तब रोकर सोचती थी अब कभी नहीं देखूँगी । १९५७ में भगवान जयपुर पधारे तब एक दिन समूह के प्रवचन में कहा, "एक साल के लिये सिनेमा न देखने की प्रतिज्ञा कौन करता है ?" तब खुशी के साथ प्रतिज्ञा ले ली । १९५८ में प्रतिज्ञा पूरी होने पर स्कूल में से और परिवार के साथ तीन-चार सिनेमा देखे परन्तु मन नहीं लगता था । १९६१ के अक्टूबर में पिताजी सबको "सम्पूर्ण रामायण" देखने ले गये । उनका हेतु था कि भगवद् आज्ञा से मैंने जो रामचरितमानस के पाठ चालू किये थे वह समझने में सरलता रहे लेकिन १९६२ के जनवरी में भगवान ने आज्ञा दी कि, "तुम कभी भी सिनेमा देखना नहीं", पिताजी ने जबाब दिया, "भगवान, यह देखती भी नहीं है" परन्तु

प्रभु जानत सब बिनही जनाये....

सर्वव्यापक प्रभु ने कहा, "मैं जानता हूँ कि यह नहीं देखती है लेकिन तुम उसे धार्मिक सिनेमा भी नहीं दिखाना" इस तरह से प्रभु कृपा से सिनेमा का संगदोष छूट गया ।

निर्मान मोहा जितसंग दोषा

भगवान के शब्दों में,

जैसा खाओगे अन्न, वैसा बनेगा मन,
जैसा करोगे संग, वैसा चढ़ेगा रंग ।

जब कभी नासमझ से अनजान में भी कोई ऐसी व्यक्ति के संग में रहने का बनता था तब समय-समय पर सावधान करते रहे हैं और कृपा

करके कुसंग से बचाते रहे हैं । जैसे पाठशाला में अभ्यास के समय मेरी कक्षा में मेरे साथ ही बैठने वाली दो छात्राएं जिनके जीवन से मैं अनजान थी उनका संग अद्भुत ढंग से छुड़ाया था । उन लड़कियों के विषय में घर में या भगवान के पास कभी कोई चर्चा नहीं की थी परन्तु सन् १९५८ में भगवान के साथ प्रथम बार बात करते समय मुझे कहा था, "तुम्हारे साथ में पढ़ने वाली दोनों लड़कियों का साथ तुम छोड़ देना ।" उस समय दुविधा में पड़ गई कि साथ कैसे छोड़ूंगी ? लेकिन थोड़े समय बाद वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मैं ग्यारहवीं कक्षा में चली गई और वे दोनों निष्फल रहीं । मेरे लिये भगवान के अंतर्यामी भाव की यह प्रथम अनुभूति थी –

तन बिनु परस, नयन बिनु देखा....

एक बार जाप और स्वाध्याय में रुचि रखनेवाली बहन को अन्य बहनों के साथ अधिक सम्पर्क रखते हुए देखकर कहा, "देखो तुम सावधान रहना, उन लोगों से अधिक सम्पर्क रखकर तुम्हारे भी ऐसे हाल न हों जैसे विधवा मौसी के पास जाकर भानजी ने प्रणाम किया तब मौसी ने कहा, 'मेरे जैसी तू भी हो', समझे ना ? बस तो सावधान रहना ।"

भविष्य में भगवान का सान्निध्य मिलने पर अपने पास के संगदोष से सावधान करते रहे । एक बार पत्र में भी लिखा है कि –

याद रखो कुसंग घोर नर्क है ।



[१०]

जासु कृपा निर्मल मति पावौं

रामनाम लिखने की आदत बचपन से थी । उसमें भी कुछ संख्या में जाप लिख कर श्री चरणों में अर्पण करने का संकल्प किया था जिससे पाठशाला में थोड़ा भी समय मिलने पर एक क्षण भी बिगाड़े बिना रामनाम लिखती रहती थी । हिंदी भाषा का अभ्यास न होने से किसी के साथ अधिक बात करने में घबराती थी । अब गृहकार्य की जिम्मेदारी भी मेरे पर आने से रामनाम लेखन के लिये समय मिलना मुश्किल था क्योंकि बड़ी बहन की शादी हो गई । पाठशाला में रामनाम लिखने से लड़कियाँ चिड़ाती थीं, "रामनाम जपना, पराया माल अपना" ।

कई प्रसंगों से हारकर पिताजी से शिकायत करती थी, मुझे हिंदी नहीं आती और सब चिड़ाते हैं, परेशान करते हैं इसलिये मैं पाठशाला में नहीं जाऊँगी । रोज पाठशाला में जाते समय रास्ते में लड़के परेशान करते थे । पिताजी भी सोचते थे, क्या किया जाय ? रोज लेने, छोड़ने कौन जायगा ? सहज भाव से उन्होंने कहा, "रोज स्कूल जाने से पहले घर में पूजा स्थान पर भगवान को प्रणाम करके जाना और कहना, "भगवान, मेरे साथ चलो ।" ऐसा कहने से भगवान साथ चलेंगे तो कोई परेशानी न होगी । पिताजी के इन शब्दों पर पूर्ण विश्वास रखकर दूसरे दिन से भगवान को प्रणाम, प्रार्थना करते हुए कहा, "हे भगवान, यदि आज कोई परेशानी होगी तो शाम को पिताजी से कह दूंगी कि आप मेरे साथ नहीं चलते हो ।" निर्दोषता से कहे हुए मेरे यह शब्द सुनकर भगवान साथ चलेंगे ऐसी तो कल्पना भी न थी ।

नित्य पिताजी को बाहर जाते समय पूजा स्थान में प्रणाम करते हुए देखती तो थी परंतु समझ नहीं थी । उनकी हरेक बात विश्वास-पूर्वक स्वीकारती थी । दूसरे दिन से घर से निकलते समय भगवान मेरे साथ चलते हुए प्रतीत हुए । स्कूल का दरवाजा आने पर अदृश्य हो जाते थे । शाम को स्कूल से घर आते फिर से साथ दिखाई देते थे और घर पहुँचने पर अदृश्य हो जाते थे और उस दिन से कोई परेशानी भी नहीं होती थी । यह बात खुशी के साथ पिताजी को बताते हुए उन्होंने इतना

ध्यान नहीं दिया । उनको लगा, चलो एक झंझट मिटी । आज भी यह प्रसंग याद आने से नजर समक्ष वही श्वेत बंडी, अचला और पादुका धारण किये हुए पीछे हाथ बाँधकर मेरे साथ चलते हुए भगवान का दिव्य स्वरूप दिखाई देता है ।

बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना

इसी तरह से ग्यारहवीं कक्षा की पढ़ाई तक भगवान नित्य साथ देते रहे । आज बुद्धिजीवियों के लिये यह बात जरूर अतिशयोक्ति लगेगी परंतु जब बुद्धि का अंत होता है तब से आध्यात्मिकता शुरू होती है । इसीलिये स्वामी श्री रामतीर्थजी ने साधना पथ पर आगे बढ़ते हुए कहा है, "बुद्धि ने मुझे परेशान कर दिया, बुद्धि की किताब मैंने गंगाजी में डाल दी ।" गुजराती में कहा है,

श्रद्धानो हो विषय, त्यां पुरावानी शी जरूर
कुरानमा तो कयांय, पयगम्बरनी सही नथी

श्रद्धा में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, कुरान में कहीं पैगम्बर की दस्खत नहीं होती ।

अभ्यास समय एन० सी० सी० के वार्षिक केम्प में तीन साल के कोर्स दौरान तीन बार अलग-अलग जगह जाना हुआ । केम्प का समय दशहरा की छुट्टियों में रहता था । करीब पन्द्रह दिन का केम्प रहता था । वहाँ पर समय अभाव से माला नहीं कर सकती थी । ५८ की साल में माऊन्ट आबू गई तब एक भी दिन माला नहीं की थी । उसका हिसाब बराबर रखती थी । घर आकर पिताजी को बताती थी, मेरा इतने दिनों का कर्जा हो गया है । समय मिलने पर वह पूरा करने का प्रयत्न करती थी । उस साल दीवाली से चार-पाँच दिन पहले घर पहुँचने पर घर के काम की जिम्मेदारी होने से नियम पूरा नहीं कर पाई । दीवाली के बाद तीज के दिन पुष्कर के लिये रवाना हुए । कारण हर साल कार्तिक शुक्ल चतुर्थी भगवान के प्रागट्य दिन का महोत्सव वहीं मनाया जाता था ।

तीज के दिन रात को भगवान के पास पहुँचकर प्रणाम करके थोड़ी दूर बैठी थी । थोड़ी देर में भगवान ने कहा, "क्यों रमा, आजकल माला नहीं करती ?" पिताजी ने उत्तर दिया, "भगवान वह एन.सी.सी. केम्प में गई थी वहाँ समय नहीं मिलता था जिससे माला छूट गई है ।"

मेरे सामने देखकर कहा, "इधर आव, केम्प में भोजन करती थी ?" मैंने हाँ कही तब बोले, "भोजन को समय मिलता था और भजन को नहीं ? देखो तन के लिये भोजन जितना जरूरी है उतना ही मन के लिये भजन ।"

जन्मोत्सव बाद भगवान ने प्रवचन में कहा, "जन्म क्यों ? जन्म का हेतु क्या ? और जन्म सफल कब ? इसके लिये कभी सोचा है ? सब घर जाकर विचार करना और अपनी-अपनी समझ से मुझे जवाब देना ।" घर जाकर अल्पबुद्धि अनुसार इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये पिताजी के पास इच्छा व्यक्त की । उन्होंने कहा, "लिख देना, मैं जवाब लिखूँगा तब साथ में भेज दूँगा ।" वे तो अनुभवी, संस्कृत भाषा में कुशल, गीताजी, रामायणजी के अभ्यासी होने से योग्य उत्तर दे सकते हैं । मैंने लिखा था :

(१) जन्म क्यों ?	भजन करने के लिये ।
(२) जन्म का हेतु क्या ?	भजन करने का
(३) जन्म सफल कब ?	भगवान मिले तब ।

इसका प्रत्युत्तर पिताजी के नाम पर आया :—

"तुम्हारा जवाब यथार्थ है और रमा गौरी का पत्र मिला है उसकी उम्र के हिसाब से जवाब ठीक है ।"

इस तरह से मैंने प्रथम बार भगवान को पत्र लिखा ।



[११]

अब करि कृपा देहु वर येहु

भगवान के दर्शन हेतु स्कूल में छुट्टियाँ होने से पिताजी सबको पुष्कर ले गये थे । उस वक्त पिताजी के गले में कंठी देखकर मुझे भी गहने के रूप में पहनने की इच्छा हुई । कंठी की महिमा से अनजान थी । मैं पिताजी से कहती थी, "आपके कहने से दो सौ माला तो करती हूँ तो मुझे भी आपके जैसी कंठी पहनाओना !" उन्होंने कहा, "पू० गुरुदेव दें तो ही पहनते हैं", "तो आप भगवान से कहो ना ।" पुष्कर पहुँचने पर पिताजी ने मेरी और धीरूभाई की कंठी पहनने की इच्छा भगवान के पास व्यक्त की । भगवान ने कहा, "अच्छा धीरू को तो कंठी दे दूंगा, रमा को क्या जरूरत है ? उसको तो जन्म से दे चुका हूँ ।" पिताजी तो खुश हो गये परन्तु मुझे कंठी न मिलने से असंतोष रहा । पिताजी ने भगवान का नियम बताते हुए मुझे कहा, "भगवान कंवारी लड़कियों को कंठी नहीं देते कारण शादी के बाद सामने पक्ष वाले संप्रदाय भेद करें तो सहन करना पड़े ।" तब ऐसी बातें मेरी समझ में नहीं आती थीं । पिताजी को अधिक छुट्टी न होने से जयपुर जाने वाले थे, तब मैंने थोड़े दिन के लिये भगवान के पास रहने की इच्छा बताई और पिताजी की सम्मति से वहाँ पर अन्य बहनों के साथ रुक गई ।

पिताजी के जाने के बाद वहाँ बहनों के गले में कंठी देखकर विचार आया, इन बहनों की भी शादी कहाँ हुई है फिर भी इनके गले में तो कंठी है तो फिर मुझे कंठी क्यों नहीं देते होंगे ? शायद यह बहनें भजन अधिक करती होंगी, अब मैं भी भजन बढ़ाऊँगी । मैंने आज तक भगवान के साथ सामने से बात नहीं की थी लेकिन इन बहनों को भगवान के साथ अकेले बात करते या चिट्ठी लिखते देखकर मुझे लगा, मैं खुद ही भगवान को कंठी के बारे में लिखकर पूछ लूँगी । परन्तु कैसे लिखूँ ? क्या लिखूँ ? उस असमंजस में उन बहनों से पूछने पर वे लोग हँसने लगते थे । अन्त में अपने आप लिखने का प्रयत्न किया :–

परमात्म स्वरूप श्री सद्गुरुदेव,
सादर प्रणाम !

मुझे पाँच-दस मिनट समय देने की कृपा करेंगे ?

रमा का सादर प्रणाम

उस दिन शाम को समूह में भगवान विराज रहे थे तब एक छोटे बालक के हाथ चिट्ठी भेज दी। सबके बीच चिट्ठी पढ़कर बोले, "अच्छा भई ! पाँच और दस, पन्द्रह मिनिट तुमको भी देंगे।" यह सुनकर विचारों से मन घिर गया कि बुलायेंगे तो कैसे पूछूंगी ? क्योंकि उनके सामने बोलने की हिम्मत नहीं थी इसलिये फिर से दूसरी चिट्ठी लिखी, उसमें छोटे-छोटे चार प्रश्न लिखे :–

(१) भगवान, मैं परीक्षा में पास होऊँगी या नहीं ?

(२) मैं माला तो करती हूँ पर माला में मन क्यों नहीं लगता ?

(३) सबको तो कंठी पहनाते हो फिर मुझे क्यों नहीं देते ?

(४) आपने मेरी पाठशाला देखी है ?

रमा का सादर प्रणाम

यह चिट्ठी साथ में रखकर भगवान कब बुलायेंगे उस आशा में घूमती रही। शाम को छः से रात को ग्यारह तक राह देखी। भगवान का कमरा बंद था फिर निराशा से अपने कमरे में चली गई। सुबह नित्य कार्य से निवृत्त होकर भगवान के द्वार पर जाकर बैठ गई। आशा में दिन पूरा हुआ, शाम होते भगवान के भोजन का समय हुआ। उन दिनों में भोजन लेते समय अकेले रहते थे। सेवा करने वाली बहन भोजन परोस कर बाहर निकल जाती थी। भविष्य में साथ में रहने का अवसर मिलने पर भगवान के शब्द सुने, "भोजन, भजन, खजाना, नारी, यह सब एकान्त के अधिकारी।"

भोजन लेने के बाद सेवा करने वाली बहन को बुलाकर कहा, "देखो तो रमा बाहर है ? उसको बुला दो।" यह करीब शिवरात्रि का समय था। मुझे अंदर बुलाकर दरवाजा बंद करने को कहा, पुष्कर रामकुटी मकान के रसोईघर में भगवान सिगड़ी ताप रहे थे। जीवन में भगवान के सान्निध्य में एकांत में बात करने का यह प्रथम अवसर था। जिससे मन में खूब घबराहट होती थी। प्रणाम करते समय प्रेम से पूछा, "बैठो, बोलो क्या कहती हो ?" साथ में रखी हुई चिट्ठी दे दी।

प्रथम प्रश्न के जवाब में कहा, "पढ़ोगी तो पास हो जाओगी नहीं तो नापास"। उत्तर से संतोष न हुआ, ऐसा तो सभी कहते हैं। भगवान तो अन्तरयामी हैं उन्होंने भी ऐसा जवाब दिया! परन्तु मैं कुछ बोली नहीं।

दूसरे प्रश्न के जवाब में, "अच्छा, यह बताओ तुम्हें सबसे अधिक प्रिय चीज क्या है? नाचना, गाना, खेलना, कूदना, सिनेमा देखना, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनना?

मैं तो चुप थी। आगे कहा, "देखो जो वस्तु तुम्हें अधिक प्रिय होगी उसी के अधिक विचार आयेंगे। यदि तुम्हें सबसे अधिक प्रिय भगवान हैं तो भगवान के विचार आयेंगे और भगवान के विचार आयेंगे तो माला में मन लग जायेगा।"

तीसरे प्रश्न के जवाब में कहा, "यहाँ से मेरे साथ चित्रकूट चलो, वहाँ तुम्हें जरूर कंठी दूंगा।" कंठी की बात सुनकर संतोष के साथ खुश-खुश हो गई।

चौथे प्रश्न के उत्तर में मौन रहे और चिट्ठी फाड़ दी। मुझे भी मनपसंद बात कंठी के लिये जवाब मिल जाने से इसके उत्तर की इंतजारी न रही। प्रणाम करके खड़ी हुई तब बोले, "ऐ! कहाँ जाती हो? अभी पन्द्रह मिनट कहाँ हुई हैं, तुमने तो पाँच और दस, पन्द्रह मिनट माँगी थी ना?" फिर से बैठने को कहा और बोले, "तुम्हें जो पूछना था वह पूछ लिया अब कुछ पूछना है?" सिर हिलाकर ना कहने पर हंसकर बोले, "इतना बड़ा सिर हिलाती हो तो इतनी-सी जबान हिलाव ना।"

"अच्छा, अब मैं तुमसे पूछूं? सच सच बताओगी? झूठ तो नहीं बोलोगी?" यह सुनकर घबरा गई, भगवान तो अंतर्यामी हैं, झूठ बोलूंगी भी तो उनसे थोड़े ही छिपा रहेगा फिर ऐसे कैसे पूछ रहे हैं? भगवान ने पूछा, "तुम्हारी कोई लड़के से मित्रता तो नहीं है?" यह सुनते ही रोने लगी मुझे लगा ऐसे कैसे पूछ रहे हैं? मैं जहाँ पढ़ती थी वह कन्या विद्यालय था। मुझे घबराई हुई देखकर बोले, "देखो मैं जानता हूँ ऐसा कुछ नहीं है लेकिन मेरे पास जो लड़कियाँ आती हैं उनका कुछ न कुछ गपाड़ा होता है इसलिये मैंने तुमसे भी पूछ लिया। अच्छा मैं तुमसे जो माँगू वह दोगी?" मैंने कहा, "भगवान, मेरे पास

तो कुछ भी नहीं है ।" तो कहा, "तुम्हारे पास है ।" "तो जरूर दूंगी ।" "अच्छा मुझे वचन दो, कभी कोई लड़के से मित्रता नहीं करोगी ।" खुशी के साथ भगवान को यह वचन दिया ।

आगे कहा, "देखो, अब एक काम करना, शाला में तुम्हारे साथ जो दो लड़कियाँ बैठती हैं उसका साथ तुम छोड़ देना ।" मैं इनके विषय में अनजान थी । आगे चलकर मालूम हुआ कि वह दोनों किसी लड़कों से मित्रता रखती थीं । भगवान के इन शब्दों में मेरे चौथे प्रश्न का जवाब था कि, "तुम्हारी स्कूल तो क्या पर तुम्हारे साथ बैठनेवाली लड़कियों को भी जानता हूँ । मैंने कहा, "भगवान, उन लोगों से न बोलने पर उन्हें बुरा नहीं लगेगा ? तो बोले, "ऐसा थोड़ी है कि तुम जाकर उससे झगड़ा कर लो, धीरे-धीरे उनसे सम्पर्क कम कर देना ।"

इतनी बात करके कमरे में जाकर वो ही दर्शन, सान्निध्य और शब्दों का चिंतन-मनन के साथ कब जल्दी चित्रकूट जाने को मिले इस शुभ दिन की प्रतीक्षा करती रही । यह आनन्द के दिन भी कब पूरे हो गये मालूम न रहा.......

जात न जाने दिन अरु राती ....

भगवान पुष्कर से जयपुर पधारे । सबके साथ गलताजी श्री पतितपावनजी भगवान के चरणों में प्रणाम करके चित्रकूट के लिए रवाना हुए ।



[१२]

भजतहिं कृपा करहिं रघुराई

अब चित्त चेत चित्रकूटहि चल..........

भगवान के साथ जयपुर से चित्रकूट जाने के लिये आगरा, झांसी होकर रात को ढाई बजे कर्वी स्टेशन पहुँचे । जल्दी सुबह बस द्वारा वहाँ से सीतापुर पहुँचे । चित्रकूट की यह परम पावनी भूमि मेरे लिये एकदम नई थी । भगवान के साथ पैदल सीतापुर से जानकी कुंड पहुँचे । चित्रकूट के लिये भगवान कहते थे,

✓कंकर, काँटा, बंदर, खाई, चित्रकूट की चार अधिकाई

उस दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा थी । श्री मंदाकिनीजी में स्नान करके भगवान की आज्ञा से श्री रामचरितमानस नवाह्न पाठ का प्रारम्भ करने के लिये भगवान की गुफा के बाहर सब इकट्ठे हुए । साधु समाज नौ दिन के लिये, "श्री राम जय राम जय जय राम" का अखंड संकीर्तन चालू करने की तैयारी में व्यस्त था । मेरे लिये यह सब घटना नई थी । पिताजी नित्य मानसजी का पाठ करते थे परन्तु मैं रामायणजी या नवाह्न पाठ के विषय में अनजान होने से मुझे रुचि नहीं थी । मैंने सोचा था जितना हो सके अधिक समय संकीर्तन में बैठूंगी । श्री रघुवीर मन्दिर में कीर्तन चालू होने पर जाकर बैठ गई । पू. श्री ओधवजी दादाजी वहाँ आकर कहने लगे, "बेटा, तुम पाठ में नहीं बैठी ?" "जी ना दादाजी, मुझे कुछ समझ में तो आता नहीं और भगवान ने भी मुझे नहीं कहा है ।" उन्होंने कहा, "मैं अभी जाकर भगवान से बात करता हूँ ।" थोड़ी देर में दादाजी वापिस आये और कहा, "चलो, तुम्हें गुरुदेव बुलाते हैं ।" जाते से ही हाथ में श्री रामचरितमानसजी देते हुए कहा, "चलो पाठ में बैठो, तुमको यहाँ लाया किसलिये हूँ ? इसीलिये तो लाया हूँ ।"

अति हरिकृपा जाहि पर होई, पाँव देहि यह मारग सोई

मानसजी के अभ्यासी भाई-बहन जल्दी-जल्दी चौपाइयाँ बोलते जाते थे और मुझे आदत न होने से भगवद् आज्ञा से जबरदस्ती पाठ में बैठती थी । अन्त में श्री रामनौमी के शुभ दिन को पाठ की पूर्णाहूति होने पर खुश हो गई ।

इस तरह से श्री मानस बालमंदिर का अभ्यास शुरू हुआ । श्री राम नौमी के शुभ मंगल दिन के प्रातः सुबह छः बजे मुझे और माँ को बुलाया । तुलसीजी की कंठी हाथ में लेकर एक-एक मणि पर दिव्य दृष्टि करके दोनों हथेली के बीच थोड़ी देर रखी । फिर हथेली में कुमकुम घोलकर हथेली पर हथेली थोड़ी देर रखी और जो क्रिया करनी हो वह करके एक पत्ते में कुमकुम देते हुए कहा, "टीका लगा लो ।" उसके बाद अपने और मेरे मस्तक पर एक सफेद वस्त्र ढक कर कान में तीन बार षडाक्षर मंत्रराज बोले और कहा, "बताओ, अब मुझे गुरुदक्षिणा में कितनी माला दोगी ? मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं पड़ता था जिससे मैंने कहा, "पिताजी से पूछकर कहूँगी ।" भगवान हँसने लगे । "पिताजी जितनी माला करते होंगे उतनी माला मैं करूँगी ।" यह कहने पर खूब प्रसन्नता व्यक्त की । इस आनंद का वर्णन कैसे करूँ ?

गुरु बिनु भवनिधि तरहिं न कोई.......

बंदौ गुरु पद पद्म परागा, सुरुचि सुवास सरस अनुरागा

नवाह्न पारायण की पूर्णाहूति का आनंद मिट गया । कारण भगवान ने कहा, "देखो रमा, आज नवाह्न पारायण का अन्तिम दिन है लेकिन तुम्हारे लिये नहीं, कल से वापिस पाठ चालू कर देना, नौ दिन में पूरा होने पर फिर चालू करना । इस तरह से १०८ बार पूरी रामायण पढ़ जाना ।" यह सुनकर समय का विचार आया, १०८ पाठ करते तीन साल लगेंगे । शुरू में नवाह्न पाठ करने में तीन घन्टे लगते थे और कुछ समझ भी नहीं पाती थी ।

वार्षिक परीक्षा नजदीक आ रही थी । साथ में पाठ्यपुस्तक लाई थी उसका अभ्यास करने के लिये कुछ बहनें आग्रह करती थीं पर अभ्यास में मन नहीं था । एक ओर अखंड संकीर्तन, दूसरी ओर मानस पाठ और भगवान के प्रति उत्कट आकर्षण । समय कहाँ बीतता था मालूम नहीं होता था । कुछ भी बहाने से अभ्यास नहीं करती थी । एक दिन सबके आग्रह से भगवान के ही समक्ष जाकर पढ़ने बैठी । तुरन्त उन्होंने पूछा, "लाव, क्या पढ़ रही हो ?" पुस्तक का नाम पढ़कर बोले, "ओ हो, भौतिकशास्त्र ! पुस्तक बन्द करके वापिस देते हुए कहा, "छोड़ो क्या रखा है इसमें ? किसी के समझाये बिना यह कैसे समझ में आएगा ?" मैं तो यही चाहती थी । अब श्री हनुमान जयन्ती नजदीक आ रही थी ।

उस दिन जल्दी सुबह तीन बजे भगवान सब भाई-बहनों के साथ श्री कामद्-गिरी परिक्रमा में प्रतिष्ठित श्री हनुमंतलालजी जो "खोही हनुमान" के नाम से प्रसिद्ध है और स्वयं भगवान ने प्रकट किये हैं, वहाँ पूजन के लिये पधारे । नियमानुसार सूर्योदय से पहले पूजन, आरती करके श्री हनुमान बाहुक के ४४ सवैया का पाठ करते समय एक-एक सवैया पर एक-एक नारियल चढ़ाया । भगवान खूब प्रसन्नता से बूंदी और बेसन के लड्डू के साथ नारियल की प्रसादी भक्त समूह में दूर बैठे हुए भाई-बहनों को अपने स्थान से गेंद की भाँति फेंककर पहुँचाते थे । इस तरह से प्रसंगोपात अनेक दिव्य लीलायें देखने को मिलीं। इस अपार आनंद का अनुभव करके नई जीवन दृष्टि लेकर खूब हर्षोल्लास के साथ जयपुर वापिस लौटी ।

घर आकर स्कूल में जाने पर मालूम हुआ कि आठ दिन के बाद परीक्षा चालू होने वाली है । गले में तुलसीजी की माला देखकर लड़कियाँ चिढ़ाने लगी । साथ में बैठने वाली दोनों लड़कियों को देखकर भगवान के शब्द कान में गूंजने लगे, "तुम्हारे साथ में जो दो लड़कियाँ बैठती हैं उसका साथ छोड़ दो ।" परीक्षा के दिन नजदीक होने से समय अभाव से खास बात करने की नहीं रहती थी और परीक्षा में तो अलग-अलग बैठने का था । उसके बाद वेकेशन चालू होने से अपने आप सम्पर्क छूट गया । परिणाम आने पर मैं पास हुई और वे दोनों निष्फल रहीं, इस तरह से उन लोगों का संग छूट गया । इतने दिनों तक बाहर रहने पर भी अच्छे नम्बर से पास हो गई यह राम-नाम और भगवद् कृपा का ही फल था ।

जलचर थलचर नभचर नाना, जे जड़ चेतन जीव जहाना
मति कीरती गति भूति भलाई, जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई
सो जानब सतसंग प्रभाऊ, लोकहुँ वेद न आन उपाऊ
बिनु सतसंग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई



[१३]

जानि कृपा करि किंकर मोहू

भगवान से पूछकर विज्ञान विषय लिया था। ग्यारहवीं कक्षा में प्रवेश करने पर मुख्य विषय विज्ञान होने से प्रयोगशाला में प्रयोग चालू हो गये। पिताजी की इच्छा मुझे डॉक्टर बनाने की थी। प्रथम बार प्रयोगशाला में मेंढ़क काटने का प्रसंग आते ही घबरा गई कि मुझसे कैसे होगा ? घर जाकर पिताजी के पास रो पड़ी, मुझे आगे नहीं पढ़ना है परन्तु कारण नहीं बताया। दूसरा कारण यह भी था कि गृहकार्य का पूरा बोझ मेरे पर था। उसमें भी काफी समय निकल जाता था और उसके अलावा भगवान की आज्ञानुसार नवाह्न पारायण, कुछ मंत्रजाप और दो सौ माला, उसमें भी समय लग जाता था जिससे पढ़ाई पूरी नहीं कर पाती थी और अब आगे की पढ़ाई में अधिक समय देना भी जरूरी था। दूसरी या तीसरी बार मेंढ़क काटते समय अंतःकरण से एक प्रकार की आवाज उठती थी, "मुख में राम बगल में छुरी" यही मैं कर रही हूँ। मेंढ़क को पहले पिन से फिट करना पड़ता था बाद में राम-राम करते शस्त्रक्रिया चालू करते समय मानो कोई अलौकिक शक्ति यह कार्य छोड़ने की प्रेरणा कर रही थी। थोड़े समय बाद यह प्रयोग करते समय अचानक मेरी निगाह समक्ष जीसस क्राइस्ट का चित्र खड़ा हो गया। यहुदी जाति के लोगों ने उनके हाथ-पैरों में किल ठोककर उन्हें स्तंभ पर चढ़ा दिये थे जिन्हें अपने लोग दुष्ट कहते हैं, तो फिर उन्हीं में से मैं एक व्यक्ति नहीं कि इस जीव को इस तरह से मोम-प्लेट में कील ठोक-कर मार रही हूँ हालांकि अहिंसा याने कोई भी जीव को न मारना तो ठीक है लेकिन साथ-साथ भगवान के शब्दों में अहिंसा का अर्थ, "जीव मात्र के प्रति सद्भाव रखकर किसी को भी, किसी भी प्रकार से पीड़ा न पहुँचाना।" पढ़ाई न छोड़ने के लिये पिताजी दृढ़ थे।

थोड़े समय के बाद दीवाली वेकेशन चालू हुआ जब दो महीने के लिये भगवान इन्दौर गुरुमन्दिर में मौन में बिराजते थे। ठीक दीवाली

के दिन दर्शन देने वाले थे, इसलिये मैं, माँ और छोटा भाई महेश इन्दौर गये ।

१९६० की हनुमान जयंती से थोड़े समय के बाद भगवान ने दो साल के लिये सादा मौन चालू कर दिया था। इसलिये लिखकर ही बातचीत करते थे । दीवाली के मंगल प्रभात को समूह में दो महीने बाद भगवान गुरु मन्दिर से बाहर पधारे । तब दूर से दर्शन का लाभ मिला । गुरु मन्दिर में ध्यान में बैठने के हेतु जो कमरा बनाया गया था उसमें भगवानने अपनी अलौकिक शक्ति से श्री गंगाजी प्रकट किये थे। जो गंगाजल आज भी वैसे ही है । उसी प्रकार ५४ से ५६ दो साल के काष्ट मौन समय जामनगर में भी श्री गंगाजी प्रगट किये थे वहाँ भी आज वैसे ही गंगाजी है । मन में एक ही भावना थी कि जितना हो सके राम-नाम का जप बढ़ाना, दूसरे अर्थ में नाम से प्रेम था इतना नामि से नहीं और कुछ संख्या में नाम जप लिखकर अर्पण करने की इच्छा भी थी परन्तु अभी काफी बाकी थे। शांति और एकांतप्रिय स्वभाव होने से गृहस्थ बहनों की फालतू पंचायती से दूर भागती थी । अधिकतर भगवान के पास हमारी जाति का परिवार ज्यादा रहा । भगवान भी कभी विनोद में कहते थे, "मैं लोहाग्ग का गोर (पंडा) हूँ ।"

मेरा नियम पूरा करने के लिये एकांत ढूंढती रहती थी । दीवाली के दूसरे दिन सुबह छत पर जा रही थी तब खबर न थी कि भगवान ऊपर विराज रहे हैं । ऊपर पहुँचते ही सामने का दरवाजा खुला और भगवान के साथ जमनादासभाई पटेल को देखकर डर गई कि वे नाराज होंगे तो ? लेकिन दूसरी ही क्षण भगवानने उन्हें इशारे से नीचे जाने को कहा और मंद हास्य के साथ मुझे कमरे में बुलाकर बैठने के लिए कहा । लिखकर पूछा, "पढ़ाई कैसी चलती है ?" मैंने कहा, "ठीक चलती है ।" "मेंढ़क काटती हो ?" "हाँ", "कितने काटे ?" "पाँच-छः", "मन लगता है ?" "जी नहीं", सुनकर लिख दिया, "तो छोड़ दो" और नीचे चले गये । मैंने नीचे जाकर खुश होते हुए माँ से यह बात कही, उन्होंने थोड़ी नाराजगी बताते हुए कहा, "तुम्हारे पिताजी से पूछा ?" मैंने कहा, "पिताजी तो हमेशा कहते हैं भगवान कहे वैसे करना ।" उस समय यह अमूल्य हस्ताक्षर सम्हालकर रखने की समझ नहीं थी । शुरू में इस तरह

से कई हस्ताक्षर फाड़ दिये हैं । श्री मुख से बोले गये शब्द लिखने का पूर्ण प्रयत्न किया है ।

भैया दौज के दिन इन्दौर से भगवान के साथ अजमेर के लिये रवाना हुये । मैं भगवान के साथ अजमेर उतर गई, माँ और छोटा भाई जयपुर गये, कारण दूसरे दिन चतुर्थी, भगवान का प्रागट्य दिन होने से जयपुर से वापिस सब आने ही वाले थे । सुबह अजमेर से पुष्कर पहुँचे, उसी दिन शाम को पिताजी सबके साथ आ गये । खुशी के साथ पढ़ाई छोड़ने की बात कहने पर पिताजी नाराजगी बताते हुए थोड़े उग्र स्वर से बोले, "अभी मुझे तो भगवान से बात करने दो ।" चतुर्थी के दिन को उत्सव के कारण भीड़ होने से समय मिलना मुश्किल था । पंचमी के दिन पिताजी ने जयपुर जाने के लिये इजाजत माँगते समय भगवान ने लिखकर पूछा, "रमा का क्या प्रोग्राम है ?" प्रभु प्रेरणा से पिताजी ने कहा, "जैसे आप कहो ।" "भले उसको यहाँ मेरे पास रहना हो तो 'ईशावास्य उपनिषद' सीखना पडेगा ।" पिताजी ने संमति दे दी । पढ़ाई के बारे में अधिक कोई चर्चा हुई ही नहीं । इस तरह से पढ़ाई के साथ-साथ अन्य मौज-शौक अपने आप छूट गये ।

"जब सब विषय विलास विरागा, तब रघुनाथ चरण अनुरागा
"तव प्रसाद मम मोह नशाना, राम रहस्य अनुपम जाना

इस दो साल के मौन समय के दौरान भगवान हर जगह करीब दो महीना ठहरते थे । हाल दो महीने पुष्कर में रहने वाले थे जिससे मैं भी दो महीना वहीं रही । श्री ओधवजी दादाजी के पास थोड़ी बहनों के साथ "ईशावास्य उपनिषद" कंठस्थ किया । वैसे तो अधिक समय राम-नाम लेखन में ही बीतता था । अन्य बहनों को स्वाध्याय करते देखकर मैंने भी स्वाध्याय चालू किया जिसमें प्रातः स्मरण, रामाष्टक, श्री रामस्तवराज, श्री रामरक्षा स्तोत्र, गीताजी का बारहवाँ-पन्द्रहवाँ अध्याय, ईशावास्य उपनिषद, पुरुषसुक्त और मानसजी की पाँच स्तुतियाँ रोज नियमित करती थी । श्री हनुमान बाहूक का पाठ, श्री हनुमान चालीसा और श्री हनुमान अष्टक शनिवार और मंगलवार को करती थी ।

इन दिनों में एक बार पिताजी के बुलाने से माँ की तबीयत नरम होने के कारण थोड़े दिन के लिए जयपुर गई थी । भगवद् दर्शन तो रोज

सुबह थोड़े समय के लिए दूर से मिलते थे । कभी कोई कारण से भगवान जिन्हें बुलाते थे वे जा सकते थे । इस तरह से आनन्द में दिन बीतते जाते थे ।

कछुक दिवस बीते यहि भाँति न जात न जाने दिन अरु राति

[१४]

मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोई

भगवान ने ३ दिसम्बर, १६६० के शुभ दिन पर मुझे बुलाकर मौन होने से लिखकर पूछा, "आज तुम्हें आंतरिक दीक्षा दे दूं ?" मैंने पूछा, "आंतरिक दीक्षा याने क्या ? उसमें क्या करने का होता है ?" तो कहा, "कुछ नहीं भजन बढ़ाना ।" उस समय नित्य नियम में करीब आठ घण्टे लगते थे जिससे मैंने ना कही, तो कहा, "अच्छा बैठो ।"

भगवान पुष्कर रामकुटी के रसोईघर में विराज रहे थे । मैं सामने नीचे बैठ गई । क्या कर रहे हैं समझ नहीं पाई लेकिन १५-२० मिनिट मेरे सामने दायें हाथ से आशीर्वाद की मुद्रा करके एक दृष्टि से देख रहे थे । उस समय दृष्टि द्वारा शक्तिपात आदि क्रियाओं से मैं अनजान थी । यह विधि पूरी करके खड़े हुए और दायें हाथ में जल लेकर मंदमंद मुसकाये । उनके कहे बिना ही खबर नहीं क्यों मैंने अपना दायां हाथ जल लेने के लिए आगे बढ़ाया । भगवान ने मेरे सामने देखते हुए मेरी हथेली में वह जल ऊपर से दिया और धीरे-धीरे अपनी मध्य अंगुली के अग्र भाग से हथेली को स्पर्श किया, उस दिव्य स्पर्श से पूरे शरीर में मानो अलौकिक शक्ति फैल गई । इस आनन्द का वर्णन शब्दों में तो संभव ही नहीं जैसे कि

गूंगा केरी शर्करा खाई और मुसकाई..........
को कृपाल रघुवीर सम..........

बाद में प्रणाम करने पर लिखकर दिया, "आज तुम्हारी आन्तरिक दीक्षा हो गई", यह सब लिखित शब्द मेरे पास नहीं हैं, कारण भगवान अपने पास के कागज में लिखकर मुझे पढ़ाते थे ।

इस प्रसंग के बाद मानो भजन में बढ़ौती हुई। नियमित यथा-शक्ति नित्यकार्य चलता रहा। फिर करीब पन्द्रह दिन के बाद वापिस बुलाई ग्रौर लिखकर पूछा, "रमा, योग याने क्या ?" मैं तो यह सब शब्दों से ही ग्रनजान थी, सीधे सादे राम नाम के ग्रतिरिक्त कुछ जानती ही नहीं थी। मैंने कहा, "मुझे मालूम नहीं", तो लिख दिया, "योग याने जोड़, जीव ग्रौर ईश्वर का मिलन वोही योग। रमा, तुम्हें मालूम है ? पहली बार मैं तुम्हारे पास ग्राया तब तुम कितनी बड़ी थी ?" मैंने कहा, "जी ना, मुझे क्या मालूम ? पिताजी कहते हैं कि तुम ग्यारह महीने की थी।" भगवान ने ग्रपने हाथ से छोटे बालक का इशारा करके बताया इतनी-सी थी, माँ तुम्हें कपड़े में लपेट कर लाती थी ग्रौर मेरे पास रख देती थी, तब तुम्हें देखने के लिये ही तो मैं बरसडा ग्राया था।

ग्रागे लिखा, "तुम मेरी ग्राज्ञा पालन करोगी ?" धीरे से हाँ कहने पर लिख दिया, "ग्रच्छा ठीक है चलो, सब कपड़े निकालो ग्रौर पहले पुरुषोत्तमभाई को बुलाव। गाँव में से एक गधा मंगवाव", यह सब पढ़कर मैं तो स्तब्ध हो गई। फिर लिखा, "गधे पर बैठकर पूरे पुष्कर में चक्कर लगाकर ग्राव।" यह पढ़कर ग्राँखों में ग्राँसू ग्रा गये। यह देखकर लिखा, "क्यों घबरा गई ? तुमने कहा ना तुम ग्राज्ञा पालन करोगी।" काँपती ग्रावाज से मैंने कहा, "मुझे क्या मालूम ग्राप ऐसी ग्राज्ञा दोगे।" एकदम हँसकर लिखा, "रमा, तुमको इतना विश्वास होना चाहिये कि क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ ? मान लो कि मेरी ग्राज्ञा से तुम कपड़े उतारने लगती तो क्या मैं उतारने देता, गधा मँगवाता ? यदि इतना कठोर बनकर यह सब करने भी देता ग्रौर तुम तैयार हो जाती तो पुष्कर में तुम्हें उस हालत में गधे पर बैठी हुई कोई देख सकता था ? सबको तुम सजी हुई हाथी की ग्रंबाड़ी पर बैठी हुई दिखती। ग्रपने रक्षक पर इतना दृढ़ विश्वास होना चाहिये।" यह पढ़कर ग्राज्ञा-पालन न करने बदल पश्चाताप हुग्रा लेकिन,

समय चूके पुनि का पछिताने..........

सद्गुरु द्वारा साधक की या परमात्मा द्वारा निजजन की ऐसी कसौटी सहज है। भूतकाल में ग्राचार्य वर्य जगद्गुरु श्री रामानन्दजी महाराजजी के सामने परम भक्त श्री पीपाजी महाराजजी ने भी ग्रपनी

राघवेन्द्र युगल सरकार श्री सीतारामजी
(चित्रकूट) जानकी कुंड



गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदौं सीता राम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ।।

मनोजवं मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं, श्री रामदूतं शरणं प्रपद्ये ।।



प्रणवौं पवनकुमार, खल वन पावक ज्ञान घन ।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम शर चाप धर ।।

रानी की ऐसी ही परीक्षा की थी । शास्त्रों में और भी कई भक्तों के जीवन चरित्र में भी ऐसे प्रसंग मिलते हैं क्योंकि आध्यात्मिकता में देह बुद्धि नहीं होती है ।

जभी तो मेरे भगवान ने भी आगे एक पत्र में मुझे लिखा है,

"तुम यह न भूलना कि सम्बन्ध आत्म-सम्बन्ध है न कि स्थूल प्रेम वासना नहीं पर एक अद्भुत दिव्य तत्त्व है ।"

अष्टावक्रजी, जनकजी के दरबार में गये तब वहाँ बैठे हुए लोग उनका शरीर देखकर अट्टहास करने लगे । सब के शांत होने पर अष्टावक्रजी ने कहा कि, "जनकजी, मैं तो समझता था कि आपकी सभा में सब ज्ञानी हैं लेकिन यह तो सब चमार हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि सिर्फ हाड़, माँस से भरे चमड़े पर ही है । इस मार्ग में देह बुद्धि रखनेवाले अज्ञान हैं ।"

बाद में खूब प्रसन्नता से एल्युमिनियम का डिब्बा हाथ में लिये खड़े होकर एकदम सुन्दर ताल से मानो नटराज तांडव नृत्य करते हों ऐसी मुद्रा से डिब्बा बजा रहे थे । उस स्वरूप में एक पैर के घुटन पर दूसरे पैर का घुटन रखकर करीब दो-तीन मिनट के लिये यह दर्शन देने की कृपा की । बाद में आज्ञा पाकर प्रणाम करके अपने कमरे में चली गई । अन्त:करण में उस आनन्द सागर में गोते लगाती हुई नित्य मस्त रहती थी । इस तरह से दो महीने कब पूरे हुए पता ही न चला ।



[१५]

अति हरि कृपा जाहि पर होई

भगवान के पास इन्दौर से लेकर पुष्कर के दो महीने के बीच गुरु भाई-बहनों में से तीन प्रसंग शादी, संबंध के बारे में मेरे लिये उपस्थित हुए। कोई प्रसंग की तो मुझे या परिवार में से किसी को भी जानकारी किये बिना भगवान स्वयं ही योग्य उत्तर दे देते थे। मेरी कसौटी के लिये अलग-अलग ढंग से मेरे पास ऐसी बातें करते थे, तब स्पष्ट लगता था कि यदि गृहस्थ जीवन के ही संस्कार होते तो भगवान इस तरह से तैयार करते थे क्या ? फिर भी द्विअर्थी भाषा में कई बार बोलते थे। अकेले में मुझे कहते थे, "रमा, क्या रखा है आज की पढ़ाई में ? सब छोड़ो, अमूल्य मानव जीवन मिला है उसे सफल बना लो। दूसरी ओर से यह भी कहते थे, "देखो, रमा यह परिवार करोड़पति है, तुम बहुत सुखी होओगी, यह जीवन बहुत कठिन है, तुम समझती हो इतना सरल नहीं है।

इस प्रसंग के थोड़े हस्ताक्षर मेरे पास हैं –

"देखो एकांकी जीवन व्यतीत करना बहुत मुश्किल होता है और समय बड़ा खराब आता है। तुमको विचार करना चाहिये, भाइयों को न जाने कैसी बहु मिले, स्वभाव कैसा हो, घर में अपमान करे।"

"यदि नौकरी करो तो समय बहुत खराब है मेरा कटु अनुभव है कि कुमारी अपना शील उन लोगों से नहीं बचा सकती और बचावे तो नौकरी छोड़ना पड़े। ऐसी-ऐसी बातों पर खूब विचार करना।"

"और कलियुग है, भगवान की इच्छा का विधान मालूम नहीं, पड़ता, जीवन बिगड़ जावे।"

"खूब समझो, साधन इतना सहज नहीं है, जितना तुम सुनती हो। भगवान इतने भोले नहीं कि जल्दी द्रवे, बड़ी घोर तपस्या त्याग का स्थान है।"

"तुम अभी बहुत भोली हो, मैं ने खूब समझा है इस भोलेपन को दु:ख का साधन न बनाव, मैं कहूँ वह करो, तुम बहुत ही भोली हो।"

इन शब्दों के प्रत्युत्तर में मैं बोल देती थी, "भगवान, ग्राप कहते हो लेकिन मैं कोई भोली नहीं हूँ ग्रौर यदि हूँ तो भोले के भगवान है ना ?" यह सुनकर हँसते हुए कहते थे कि, "हाँ, मैं तो तुम्हारा हूँ ही ।"

"एकांकी जीवन व्यतीत करना कठिन है", उसके उत्तर में सहज ही मैंने कहा, "भगवान ग्राप सदैव साथ हैं तो एकांकी जीवन कैसा ? भगवान के शब्द कलियुग है" उसके उत्तर में हृदय से उठते भाव भरे शब्दों से मैंने कहा, "भगवान कलियुग तो सब युगों से ग्रच्छा है, प्रभु केवल नाम जप से ही प्रसन्न हो जाते हैं ।" ग्राज मानसजी के यह शब्द समझ में ग्राते हैं कि,

कलियुग केवल नाम ग्रधारा..................

नहिं कलि कर्म न भगति विवेकू, रामनाम ग्रवलंबन एकू

कलियुग सम युग ग्रान नहिं, जो नर कर विश्वास

इस उत्तर से खूब प्रसन्न होकर बहनों को स्पर्श न करने का नियम छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक सिर पर प्यार, दुलार भरा हाथ फेरते थे । उसके बाद भगवान जयपुर पधारने वाले थे । मुझे एक दिन जल्दी भेजा । सामीप्य छोड़कर जाने की इच्छा न होने से रोने लगी तब लिखकर दिया, "क्यों रोती हो ? मैं ग्राता हूँ तू खूब ग्रानन्द से रहना मैं ग्रब तेरा ही हूँ । मुझे ग्राठ दिन रहना है जयपुर, तुम गलता में रहो तो पास रहना, भजन करना, मेरे साथ यहाँ से २०-२२ ग्रादमी ग्राने वाले हैं ।

१९६० दिसम्बर के ग्रन्त में भगवान जयपुर पधारे । श्री गलताजी में परम पूज्य श्री पतितपावनजी भगवान की गुफा में ऊपर ही रहने की व्यवस्था की गई थी । साथ में ग्राये हुए भक्तजनों के लिये नीचे गोपालजी के मन्दिर में रहने की ग्रौर भोजन की व्यवस्था की थी । भगवान की सेवा में पू० चन्दुबहन थी । मैं सेवा के विषय में ग्रनजान थी इसलिये बाहर का सारा कार्य सम्हालती थी, भगवान के लिये गगाजी की धारा से जल लाना, जरूरी चीज वस्तुयें मँगवाकर ऊपर पहुँचाना, वस्त्र धोना, बर्तन साफ करना इत्यादि । चार दिन तक खूब ग्रानन्द से भगवान ने साधुग्रों के लिये भंडारा करवाया । पाँचवें दिन बिदायी माँगने पर ग्रच्छा न लगे यह स्वाभाविक था । कारण :

बिछुरत एक प्राण हरि लेही..........

जिस दिन जयपुर पधारे उसी दिन श्री पतितपावनजी भगवान की गुफा में प्रणाम करके समूह में विराजे थे तब लिखकर दिया था,

"सन् १५३६ में मुझे यहाँ पर दिव्य दर्शन हुआ था ।"

यह हस्तलिखित चिट्ठी किसी भाविकजन ने ले ली थी । किसके पास है यह पूरा ख्याल नहीं है कारण तब सबको पहचानती नहीं थी । एक दिन गलताजी में फूलमालाओं से सजा हुआ देखकर भगवान ने लिख कर दिया, "देखो तो, रमा की शादी हो रही है" यह शब्द किस हेतु से लिखे गये वह तो भगवान ही जाने परन्तु इस शब्दों के अनुसंधान में पुष्कर से जयपुर आते वक्त निम्नलिखित शब्द दिये थे ।

"अच्छा मेरे आने पर विचार करेंगे और तुझे भगा देंगे जयपुर से क्यों ? मेरी आज्ञा मानना कर्त्तव्य है तुम्हारा, जिसमें तुम सुखी होगी वही करना है मुझे ।"



[१६]

जासुकृपा नहि कृपा अघाती

भगवान ने जाने के पहले दिन रात को मुझसे कहा, "रमा मैं कल जाऊँ ? विदाय देना किसको अच्छा लगता है ?" मैंने कहा, भगवान, पहले पुष्कर में तो आपने कहा था दो महीना रहूँगा, बाद में एक महीने के लिये कहा, फिर पन्द्रह दिन और आखिर में आठ दिन ठहरने का तो आपने मुझे लिखकर दिया है और अब चार ही दिन में आप कल जाने की बात कर रहे हैं । तो कैसे अच्छा लगे ?

केहि विधि कहौं जाहु अब स्वामी, दीनबंधु उर अंतर्यामी

इतना बोलते आँखें भर आईं जिससे बाहर चली गई । थोड़ी देर बाद वापिस आई तब लिखकर दिया, "रोकर मन हल्का हुआ ? तुमने कहा था सेवा करूंगी, तुम तो ना जाने कहाँ रहती हो ? चंदु करती है सब ।" "भगवान, मैं सेवा तो जानती नहीं इसलिये बाहर के काम में लगी रहती हूँ, बार-बार ऊपर-नीचे आने-जाने के कारण आपके पास नहीं दिखती थी । सोचा था आपको क्या अनुकूल है वह सीख लूँगी बाद में सेवा करूँगी क्योंकि आप तो अभी रुकनेवाले थे परन्तु आज तो आप इतनी जल्दी विदा माँग रहे हो ।"

"तु दुःख न लगा तुझे मालूम नहीं अभी मेरे साथ इतने जने हैं, बहुत खर्च होता है रसोई में, फिर अकेला आऊँगा कभी गुपचुप ।" इतना लिखकर जाने की बात पक्की हुई । इससे पहले एक दिन पूछा था, "रमा, तुम रोज कितना भजन करती हो ?" मैंने सोचा, भगवान से ऐसे थोड़े कहा जाता है कि मैं इतना भजन करती हूँ इसलिये कहा, "भगवान, मैं तो कुछ नहीं करती हूँ ।" उसके अनुसंधान में लिखकर दिया, "५००० मंत्र जाप", मैंने कहा, "करती हूँ", आगे लिखा, "बराबर", "स्ववराजका पाठ", "जी हाँ" "और उपनिषद", "जी हाँ", "रामायण", "जी हाँ" तो लिखा, "कल कहा भजन नहीं करती ।" फिर पूछा, "ध्यान ?" मैंने कहा, उसमें क्या करना होता है मालूम नहीं । तो लिखा, "कल बतावें ?" भगवान कृपा साध्य है साधन साध्य नहीं पर अहैतुक

कृपा अवश्य होती है यदि हम पात्र हैं तो, यह सब साधन पात्रता प्राप्त करने के लिये ही है, या यों समझो कि हमारे साधन से प्रसन्न होकर कृपावृष्टि होती है । गुरुदेव समान कोई नहीं, कितने भी अपात्र को पात्र बनाते हैं, गुरु ऐसे पारस है जिस पारस के स्पर्श से पारस ही बनते हैं ।"

इतनी बात होने के बाद सब लोग आ जाने से मैं अपने काम से चली गई । रात को भगवान के कमरे के बाहर मैं और चंदुबहन सोते थे । रात को साढ़े ग्यारह बजे खाँसी की आवाज सुनकर कुछ काम होगा तो ? उस विचार से कमरे में झांका । मौन होने से इशारे से बुलाई, खूब सर्दी होने पर भी शाल, कम्बल हटाकर भगवान बिछाने में पद्मासन लगाकर बैठ गये, मैं कुछ समझी नहीं । मुझे भी इस तरह से बैठने का इशारा किया । उस दिन बुखार होने से मैंने कहा, "भगवान, आप कष्ट न करें, आपकी तबीयत ठीक नहीं है", यह सुनकर नाराजगी बताकर सो गये ।

दूसरे दिन सुबह चार बजे ध्यान सिखाने के लिये बुलाई तब दो-तीन बहनें ऊपर आ गई थीं । भगवान के कहने पर भी वे लोग बाहर नहीं गये और वह समय भी निकल गया । सुबह दस बजे बिदा हुए । थोड़े समय के बाद मुरेना में नेत्रयज्ञ होने वाला था तब वहाँ आने के लिये पूछने पर लिख दिया, "नेत्रयज्ञ का वातावरण अशांतिमय होता है वहाँ तुम्हारा काम नहीं ।" नेत्रयज्ञ कभी देखा नहीं था इसलिये देखने की बहुत इच्छा थी । उस बहाने भगवद् सान्निध्य का भी लाभ मिलता परन्तु आज्ञा न मिलने से नहीं जा सकी । अब तो वो ही विरह के दिन,

पुनि मो कहँ सोई दिन सोई राति.......

बिदा होते समय चिट्ठी लिखकर दी, "पत्र लिखोगी ? पत्र पढ़ोगी ? मेरी ही रहोगी ? धीरज रखोगी ? भजन करोगी ?

पुनः भगवद् दर्शन की प्यास कैसी होती है वह तो अनुभवी ही समझ सकता है, गुजराती में ठीक ही कहा है,

रामबाण वाग्या होय ते जाणे.......
ओल्या मूरख मनमा शुं जाणे....... **रामबाण वाग्या**.......

रामबाण से घायल ही इस दर्द को समझ सकता है बाकी मूर्ख लोग क्या समझ सकते हैं ?

मेरो दरद न जाने कोई.......

[१७]
करहु कृपा विनवौं कर जोरे

भगवान आगे के लिये प्रस्थान कर चुके। बाद में जरा भी मन नहीं लगता था। हर क्षण बिदाई समय का प्रसन्न वदन नजरों के सामने रमता रहता था। जबरदस्ती गृहकार्य की जिम्मेदारी निभानी पड़ती थी। आज्ञानुसार बताया हुआ नियम करते समय प्रभु स्मरण तीव्र होने से हृदय और आँखें छलक जाती थीं परन्तु धैर्य के साथ प्रतीक्षा के सिवा कोई उपाय नहीं था। वैसे भी भक्तिमार्ग में पुरुषार्थ, प्रार्थना और अंत में प्रतीक्षा ही करनी रहती है।

मुरेना से एक दिन अचानक तीन-चार भाई आये। उन्हें देखकर अति आनन्द हुआ, कारण वे लोग भगवान के पास से आ रहे थे, जिससे भगवान का संदेशा मिलने वाला था।

जे जन कहहिं कुशल हम देखे, ते प्रिय मोहि प्रभु सम लेखे।

वे सब भाई भगवान की आज्ञा से मूर्ति लेने आये थे। आज्ञानुसार तीन से साड़े तीन फीट की श्री सीतारामजी की मूर्ति के लिये ऑर्डर दिया। ऑर्डर देने के बाद जानने को मिला कि एक कारीगर के पास युगल सरकार की पाँच फीट ऊँची मूर्तियाँ तैयार हैं, वह देखते ही पसंद आ गई। परन्तु आज्ञा के बिना कुछ हो नहीं सकता था। वे लोग मुरेना गये और भगवान के साथ इस बारे में बातचीत करके वापिस आये। तैयार मूर्तियाँ चित्रकूट के लिये ले जाने का पक्का हुआ। ऑर्डर से बनी हुई मूर्तियाँ थोड़े समय जयपुर में ही रहीं बाद में अनंतपुर मंदिर बनने पर वहाँ पर प्रतिष्ठित करने का सूचन हुआ। समय बीतने पर बड़ी मूर्तियाँ पूर्णरूप से तैयार हो गईं, वह ले जाने के लिये भाई लोग वापिस जयपुर आये। "राम ते अधिक राम कर दासा" भक्तजनों के दर्शन से भी आनंद मिलता था और उनके द्वारा भगवान के खबर मिलने से प्रतीक्षा के लिये भी आधार मिल जाता था।

उन लोगों से ज्ञात हुआ कि प्रतिष्ठा उत्सव पर भगवान की आज्ञा है कि हरेक भाई-बहनों को चित्रकूट जरूर आने का है। जिनके पास

सुविधा न हो वे कर्जा करके भी जरूर आवें, कारण श्री रघुनाथजी साक्षात् विराजमान होंगे । प्राण प्रतिष्ठा महोत्सव के निमंत्रण हेतु छपी हुई पत्रिकाओं में भी यह सूचित किया था । अब तो श्री रामनवमी के शुभ दिन नजदीक आ रहे थे, मन तो कब से ही चित्रकूट जाने के लिये आतुर था । पू. चंदुबहन का पत्र भी जल्दी आने के लिये आ चुका था । परिवार से कुछ दिन पहले मैं छोटे भाई जयंत के साथ चित्रकूट के लिये रवाना हुई, इस तरह से प्रथम बार ही अकेले चित्रकूट जाने का प्रसंग था । रात्रि बारह बजे जयपुर से महिलाओं के डिब्बे में पिताजी बिठा गये । सुबह सात बजे ईदगाह स्टेशन उतरना था, वहाँ से आगरा केन्ट होकर दोपहर में झांसी पहुँचे । शाम को पाँच बजे मानिकपुर जाने वाली पेसेंजर गाड़ी से कर्वी के लिए रवाना हुए । पेसेंजर गाड़ी छोटे-छोटे स्टेशन पर भी रुकती थी । हमारे डिब्बे में दो जवान लड़कों के सिवा और कोई नहीं था जो कि सामने की सीट में बैठे थे । गाड़ी चलने पर धीरे-धीरे उन्होंने कैसे भी गाने गाते हुए शैतानियाँ चालू कीं । मेरा राम नाम लेखन चालू था । महु स्टेशन आने पर एक मिलिट्री का आदमी हमारे डिब्बे में आया । उन्होंने उन लोगों का व्यवहार देखकर दोनों युवाओं को डाँटकर दूसरे स्टेशन पर उतार दिया । शाम को करीब सात-आठ बजे जयंत सो गया और उस आदमी को अकेले देखकर क्षणभर विचार आया कि ना जाने यह भी कैसा होगा ? फिर सोचा भगवान साथ में है, डर किस बात का ? यदि ऐसा होगा तो "सेर पर सवासेर" भगवान और किसी को भेज देंगे । अंधेरा हो जाने पर लेखन-कार्य बंद करके माला कर रही थी, रात को करीब ग्यारह बजे बांदा आने पर वे भाई उतर गये । विचार आया, डिब्बे में कोई नहीं है नींद आ जायेगी तो कर्वी स्टेशन आने पर ख्याल नहीं रहेगा । थोड़ी देर में करीब पच्चीस साल के एक सज्जन भाई के साथ एक बहन और तीन-चार बालक आये । गाड़ी चलने पर उन्होंने कहा, "बहनजी, अब आप सो जावें, मैं आपके सामान की देखभाल करूँगा, यह मेरी भाभीजी हैं और ये उनके बच्चे हैं । आपको कहाँ जाना है ?" मैंने कहा, "कर्वी", उन्होंने कहा, "अच्छा हमें भी कर्वी जाना है आप चिन्ता किये बिना सो जाइये ।" रात को ढाई बजे कर्वी उतरना था । छोटा स्टेशन होने से कुली मिलता नहीं था । उन्होंने सामान उठाने में भी मदद की और

अपने परिवार के साथ हमें भी प्रतीक्षालय खुलवाकर रहने की सुविधा करवा दी । मैं नहाकर अपने नियम में बैठ गई । सुबह छः बजने पर बस के लिये गये इतने में भगवान की गाड़ी वहाँ से निकली । कर्वी का काम निपटाकर करीब नौ बजे उसी गाड़ी से जानकीकुण्ड पहुँच गये । वहाँ पहुँचते ही कुछ गंभीर संयोग होने के कारण तुरंत ही भगवान के दर्शन मिलना मुश्किल था ।

करीब बारह-एक बजे दर्शन मिले । मुझे तो यही ख्याल था कि भगवान का मौन है लेकिन प्रसंगोपात् दो साल पूर्ण होने से पहले ही मौन छोड़ दिया था । प्रणाम करने पर बोले, "अरे, तुम आ गई ?" कब आई ? "सुबह ।" "अच्छा रास्ते में घबरा गई थी क्यों ? पर देखो उनको भी हटाने-वाले "सेर के सवासेर" मिल गये ना ? (यही शब्द मुझे याद आये थे) "देखो रमा, विश्वास करना, मेरे साथ रहते हुये कभी भी किसी की ताकत नहीं की तुम्हारा बाल भी बांका कर सके ।" मैं यह सब सुनकर क्षण भर आश्चर्य में डूब गई लेकिन स्कूल में छोड़ने और लेने आते थे वह अनुभव याद आया । भगवान सदा साथ है ही :–

व्यापक ब्रह्म अलख अविनाशी



[१८]

कृपा करहु प्रणतारति मोचन

भगवान १९६१ फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष चतुर्दशी की सुबह करीब छः बजे कमरे में पधारे । मैं स्नान करके कमरे में आकर बाल बना रही थी । साथ में जो चार-पाँच बहने थीं वे मंदिर में गई थीं जिससे कमरे में मैं अकेली थी । प्रणाम करने पर भगवान ने अंदर से दरवाजा बंद करके कहा, "चलो, ध्यान बताता हूँ ।" दुबली-पतली काया धारण करनेवाले सर्वशक्तिमान प्रभु के लिये क्या अशक्य हो सकता है ? तुरंत ही सुदृढ़ता से पद्मासन में बैठ गये । सामने मुझे बिठाकर पद्मासन लगाने के लिये कहा परंतु शरीर की स्थूलता और अभ्यास न होने से पद्मासन लगना मुश्किल था जिससे कृपा करके पद्मासन जमा दिया । उसके बाद हाथ की मुद्रायें बताकर मेरुदंड एकदम सीधा रखकर दोनों घुटने जमीन से बराबर सटाकर बैठना सिखाया । तत्पश्चात् दृष्टि नासिकाग्र पर रखकर त्रिपुटी में ध्यान करने को कहा । साथ-साथ मंत्रराज का बीज मंत्र नाभि से उठाकर हृदय में स्थिर करके त्रिपुटी में छोड़ने को कहा । धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते रहना कहकर चले गये ।

जो भी प्रसंग जिस संदर्भ में लिखे गये हों उन्हें यथार्थ समझने का प्रयत्न किया जाय तो ही लाभ होता है वरना ऐसा न हो जैसे पू० मुरारीबापु उदाहरण देते हैं कि :– एक सेठजी ने घी के दाम बढ़ने की आशा में अधिक मात्रा में घी संग्रह कर लिया था कि दाम बढ़ने पर बेचूंगा । तलाश होने के डर से अपने आदमियों से कहा, "अपनी बाड़ी में यह घी सम्हालकर रख दो" उन लोगों ने वाड़ी में एक जगह खड्डा गाढ़कर सारा घी उंडेल दिया और थोड़ी देर में आकर पूछा, "सेठजी खाली डिब्बे कहाँ रखूँ ?" कहीं ऐसा न हो, क्योंकि :–

"मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहि विरंचि शत"

अब तो जयपुर से माँ-पिताजी सब आ गये थे । भगवान ने पूछा, "पुरुषोत्तमभाई कितनी छुट्टी मिली है ?" "भगवान, अब तो कायम की छुट्टी है", उसी वक्त पिताजी ने नौकरी छोड़ दी थी ।

जयपुर से स्टेशन वेगन गाड़ी में मूर्तियाँ चित्रकूट आ रही थीं तब रास्ते में शेर के मिलने पर महाराजभाई जो कि गाड़ी चला रहे थे उनके हाथ से स्टीयरिंग छूट गया था और प्रभु कृपा से गाड़ी अपने आप आगे निकल गई थी । शेर ने गाड़ी पर पंजा भी मारा था पर कुछ हुआ नहीं । चित्रकूट पहुँचकर युगल सरकार की मूर्तियाँ इतनी भारी थीं कि छः, आठ मजबूत भाइयों द्वारा गाड़ी में से उतारी गई थी । प्रतिष्ठा के मंगल दिन पर जब श्री विग्रह को धान्यवास में से मंदिर के गर्भद्वार में प्रतिष्ठित करने का था तब भगवान ने कहा, "चलो धीरु-मनहर उठाव" । भगवान का आदेश मिलने पर दोनों जने इस कार्य के लिये अपनी असमर्थता का विचार करते हुये एक दूसरे की ओर देखने लगे । भगवान ने कहा, "अरे देखते क्या हो ? चलो उठाव", अब तो बचाव ही न था । प्रभु कृपा से दोनों ने मिलकर बिना परिश्रम के मूर्तियाँ उठा ली कारण भगवान ने भी मूर्ति को स्पर्श किया था, उसी से कार्य सुलभ बना ।

राम कृपा करि युगल निहारे, भये विगत श्रम परम सुखारे

कोई भी ऐसे कार्य में भगवान यह दोनों मित्रों को साथ में ही बुलाते थे इसलिए जब दोनों भगवान की चरण सेवा करते थे तब मानसजी की चौपाई अपने भावानुकूल गुनगुनाते थे,

बड़भागी अंगद हनुमाना, चरण कमल चाँपत बिधि नाना

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से श्री रामनवमी तक नवाह्न पारायण, अखंड नाम संकीर्तन आदि कार्य चालू हो गया था । इस बार श्री रामनवमी के शुभ मंगल दिन को प्राण प्रतिष्ठा महोत्सव होने से और भगवान के भाव भरे निमंत्रण से खूब भीड़ थी । विधिवत् युगल सरकार के श्री विग्रह की प्रतिष्ठा के लिये धूमधाम से तैयारियाँ चल रही थीं और रामनवमी के मंगल दिन को दोपहर बारह बजे भगवान के प्रागट्य समय पर खूब सुंदरता से एक सौ आठ दीपक की आरती हुई, अबील गुलाल की बौछारें हो रही थीं ।

अगर धूप जनु बहु अँधियारी, ऊडै अबीर मनहुँ अरुणारी

प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपार आनंद उठ रहा था, हर किसी को साक्षात् रघुनाथजी के दर्शन के लिये अधीरता हो रही थी,

शीतल मंद सुरभि बहबाऊ, हरषित सुर संतन मन चाऊ
है नीको मेरो देवता कौशलपति राम, —

सुभग सरोरुह लोचन, सुठि सुन्दर श्याम........है नीको........

उस भीड़ में हम गर्भद्वार में भगवान के साथ युगल सरकार के चरण-स्पर्श का अमूल्य लाभ पा रहे थे। भगवान के शब्दों में जो बात जाहिर हुई थी कि इस अवसर पर साक्षात् रघुनाथजी पधारेंगे, वह लाभ लेने के लिये हर कोई खूब आतुर थे और अलग-अलग मनोभाव के साथ तरह-तरह की कल्पनाओं में डूबे थे। भगवान किस तरह से पधारेंगे, और प्रभु के दिव्य दर्शन का लाभ हमें प्राप्त होगा या नहीं ?

देखन हेतु राम वैदेही, कहहु लालसा होहि न केही

बारह बजे आरती पूर्ण होने पर क्रम से सबको दर्शन का लाभ मिला और श्रीविग्रह में अनेक लोगों को ललाट पर प्रस्वेदन की झाँकी मिली। इस उत्सव का परम लाभ लेकर श्री हनुमान जयती तक चित्रकूट की पावन भूमि में रहने का अमूल्य अवसर मिला। इतना विशाल मानव-समूह, धूमधाम से साधु संतों के लिये भंडारा और सबके लिये शरबत की व्यवस्था विपुल प्रमाण में चालू ही थी। कई बार स्वयं भगवान स्वहस्त से शरबत पिलाते थे और परोसने के लिये भी निकलते थे। हालाँकि हर साल श्री राम जन्मोत्सव के पावन दिनों में यह कार्य चालू रहता था। इन दिनों में सामूहिक यज्ञोपवित के प्रसंग में छोटे भाई महेश का भी भगवान ने यज्ञोपवित संस्कार किया। चित्रकूट के निवास समय दौरान करीब रोज श्री कामद्गिरि की परिक्रमा में जाती रही। वहाँ के क्षेत्रीय कई भाविकजन तो दंडवत् परिक्रमा भी करते हैं। भगवान के साथ स्फटिक शिला और श्री अनसूयाजी जाने का भी लाभ मिला। सालों पहले भगवान वहाँ पर बिराजते थे। अनसूयाजी जाते हुए बीच में जूरी नदी के किनारे भगवान की झोंपड़ी और स्वहस्त से बोया हुआ आम का पेड़ आज भी है। प्रसंग पूरा होने पर सबने बिदा ली।

कामद् भे गिरि राम प्रसादा, अवलोकत अपहरत विषादा

卐

[१६]

भुर्जतरु सम संत कृपाला

भगवान बद्री-केदार पधारने वाले थे, यह खबर जयपुर जाकर थोड़े समय के बाद करीब जून महीने में मिली । राजकोट से पिताजी के नाम स्मरण सहयोगी श्री भगवानजी भाई कोटक आये, वे बद्री-केदार जाने वाले थे । उनके साथ पिताजी की संमति से मैं और माँ भी जाने को तैयार हुए । हरिद्वार पहुँचने पर हमें स्टेशन पर बिठाकर वे भाई भगवान की तलाश के लिये गये । मोदी भवन में पूछकर आये और कहा, "चलो, गुरुदेव आ गये हैं ।" भगवद् दर्शन की उत्सुकता तो थी ही । वहाँ पहुँचकर पूछा, "गुरुदेव कहाँ हैं" । शाम का समय था, किसी ने कहा, "गंगा किनारे गये हैं ।" धैर्य न रहने से धर्मशाला से बाहर राह देखकर मैं खड़ी थी । एक भाई ने आकर कहा, "अंदर बैठो, गुरुदेव आने पर दूर से ही मालूम हो जायेगा क्योंकि उनका कीर्तन यहाँ तक सुनाई देता है ।" मैंने आश्चर्य से पूछा, "कीर्तन ! गुरुदेव कीर्तन करते हुये तो नहीं आते हैं ।" उन्होंने कहा, "आप पहली बार आये दिखते हो । उनके पास हमेशा 'नारायण-नारायण' का कीर्तन चालू ही रहता है ।" मन में सोचा ये अपने भगवान नहीं हो सकते । नाम पूछने पर मालूम हुआ कि वे पू० नारायण स्वामीजी हैं । बचपन में पिताजी से उनके विषय में जो बातें सुनी थीं उससे पू० नारायण स्वामीजी याद आये, जिससे मैंने पूछा, "वे मौन रखते हैं क्या ? और केवल टाट की कौपीन ही धारण करते हैं ?" प्रत्युत्तर में हाँ मिलने से वे महान संत के दर्शन के लिये आतुरता बढ़ गई कारण पिताजी को प्रथम दर्शन के बाद सूरत आदि दो-तीन जगह प्रयत्न करने पर भी दूसरी बार आज तक उनके दर्शन नहीं मिले थे ।

थोड़ी देर बाद भक्त समूह के बीच "नारायण-नारायण" कीर्तन करते हुये स्वामीजी पधारे । एकदम वृद्ध शरीर, श्वेत लंबे बाल और दाढ़ी, दुबली-पतली काया, श्री अंग पर केवल टाट की कौपीन, मौन और शांत प्रतिभाशाली प्रसन्न मुद्रा में ये परम संत के दर्शन का अमूल्य अवसर मिला ।

पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न संता..........

अब तो फिर से भगवान की तलाश में गुजरात भवन में गये । वहाँ से खबर मिली कि भगवान कल पधारेंगे । पिताजी को खबर दिये कि पू. नारायण स्वामीजी के दर्शन की इच्छा हो तो जल्दी से यहाँ आ जाइये कारण थोड़े दिन में वे भी बद्रीनाथ पधारने वाले थे ।

दूसरे दिन भगवान पधारे और दो-दिन में हम सब उनके साथ यात्रा के लिये रवाना हुए । हम करीब सत्तर जने साथ में थे । भगवान भी हमारे साथ बस में ही चले । उस समय जोशी मठ तक ही बस जाती थी, वहाँ से उन्नीस मील की पैदल यात्रा थी । ऐसा सुना था पहले केदारनाथ जाना चाहिये बाद में बद्रीनाथ परन्तु हमारे लिये तो भगवान जैसा कहें वो ही नियम शिरोमान्य था । जोशी मठ से सुबह यात्रा प्रारम्भ की, शाम को पांडुकेश्वर पहुँचे, वहीं पर रात्रि मुकाम किया । साथ में रसोइया और सामान उठाने वाले मजदूर भी थे । सबका भोजन एक साथ रसोई-घर में ही बनता था । भगवान के लिये डंडी भी की थी, उनके पीछे दौड़ती रहूँ तो ही चल पाती थी वरना आगे की चढ़ाई देखकर हिम्मत हार जाती थी । भगवानजी भाई, मनहरभाई और उनकी पत्नी अ. सौ. जयाबहन माँ के साथ थे ही । वे लोग धीरे-धीरे पीछे चलते थे ।

पांडुकेश्वर में भगवान की रसोई बनाना, वस्त्र धोना और बिछाने आदि की व्यवस्था सम्हालने वाली बहनें थीं फिर भी कुछ सेवा का लाभ मुझे भी मिले उस भावना से भगवान के निकट रहने के लिये लालायित रहती थी । पानी थोड़ा दूर से लाने का रहता था तो वह सेवा और कभी सामान की हेरफेर करने की सेवा मिलने पर भी सन्तोष और आनन्द मिलता था । लेकिन इस कारण से माँ के प्रति लक्ष नहीं दे पाती थी जिससे वह नाराज हो जाती थी ।

दूसरे दिन जल्दी सुबह वहाँ से आगे की यात्रा शुरू की । माँ के लिये वहाँ से कंडी की । दोपहर का भोजन हनुमान चट्टी पर लेकर उसी दिन शाम को बद्रीनाथ पहुँच गये । पू. श्री जलाराम बापा की धर्मशाला में सबके लिये रहने की व्यवस्था थी । सुबह सबने "तप्त कुण्ड" में स्नान किया और बद्रीनाथजी के दर्शन हेतु भगवान के साथ हम सब गये । वापिस लौटते समय थोड़ी चढ़ाई थी तब भगवान चलते-चलते रुक गये जिससे मैं पीछे चल रही थी तो साथ में हो जाने पर उन्होंने अचानक

मेरे कन्धे पर हाथ रखकर चलना प्रारंभ किया, तब बहनों को स्पर्श नहीं करते थे इसलिये मुझे आश्चर्य हुआ परन्तु हरिद्वार में जो शब्द बोले थे कि, "रमा, जब थक जाऊँगा तब तुम्हारा कन्धा पकड़कर चलूँगा ।" मानो आज वह शब्दों की पूर्ति कर रहे थे ।

इन दिनों में चीन-भारत के मतभेद चालू थे इसलिये दोपहर के समय तीन-चार घन्टे के लिये भगवान पहाड़ों में अकेले चले गये । भाविक-जनों के आग्रह से गोरधनभाई को साथ ले गये लेकिन आगे चलकर उनको भी बीच में रोक दिया । वापिस लौटे तब खूब प्रसन्नता से बोले, "अब चिन्ता नहीं दो हवाई जहाज गिरा दिये ।" यह खबर दो-तीन दिन के बाद अखबार द्वारा मिली । देश के लिये हमेशा चिंतित रहते थे और कहते थे, "जब तक भारत में एक भी सच्चा योगी है तब तक भारत की रक्षा बराबर होती रहेगी, भारत में यह अद्भुत शक्ति है ।

दो दिन वहाँ की पहाड़ी जनता के लिये भंडारा करवाया । उसमें से एक दिन भोजन के समय भगवान ने दो-चार श्रीमंत भाई-बहनों से कहा, "देखो ध्यान रखना कोई भी भोजन छुपावे नहीं ।" भोजन में बूंदी के लड्डू परोसे गये । आदेशानुसार सावधानी से सबका ध्यान रख रहे थे, कड़ी ठंड थी । गरीब जनता, फटे-टूटे कपड़े पहने हुए, पहाड़ों में उन्हें ऐसा भोजन कहाँ से मिले ? लड्डू परोसते ही अधिकतर सभी कोट की जेब में, कोई टोपी में तो कोई शाल में लड्डू छिपाने लगे । निगरानी करने वाले भाई-बहन उन्हें डाँटने लगे । भगवान यह सब जानते हुए भी अनजान बनकर लड्डू की टोकरी हाथ में लेकर जल्दी-जल्दी परोस रहे थे । अधिक मात्रा में लड्डू छिपाने पर भगवान से कहा, "इन लोगों को अब मत दीजिये, इन लोगों ने खूब छिपाया है ।" तब कहा, "अरे भाई, यह तो सब देखने का होता है, बोलने का नहीं । यह लोग छिपा-छिपाकर कितना छिपायेंगे ? और ये लड्डू अभी खायेंगे, शाम को खायेंगे, कल खायेंगे, यह तो सोचो कि यहाँ पर इन लोगों को ऐसा भोजन मिले कहाँ से ? और तुम लोग कितना छिपाकर रखते हो ? इसका विचार किया ? अपने लिये, अपने बच्चों के लिए, इतना ही नहीं उसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी के लिये ।"

यह सुनकर श्रीमंतों का चुप हो जाना सहज था । कितनी प्रत्यक्ष और प्रयोगात्मक शिक्षा थी ! अर्थात् "समर्थ के लिये न्याय और असमर्थ के प्रति करुणा थी ।" वापिस लौटते समय उतरने में कम समय लगता है

श्रौर तब भी पांडुकेश्वर में ही रात रुके । उस समय मेरे पास बिल्कुल ही पैसे नहीं थे श्रौर माँ नाराजगी से ना कह देती थी इसलिये उनसे भी नहीं मांगती थी । यात्रा में कई लोग नास्ता कर लेते थे पर मेरे पास पैसे या नास्ता कुछ नहीं रहने से भगवान इस बात का पूरा ख्याल रखते थे । कई बार जल्दी सुबह पाँच-छः बजे में भगवान के लिये जब भोजन बनता था तब मुझे बुलाकर दो-तीन रोटी के साथ में गुड़ श्रौर श्रदरख देते हुए कहते थे, "पहले इतना खा लो" इस तरह से खूब वात्सल्य भाव रखते थे । श्रदरख जो बिल्कुल नहीं भाता था वह खाना सीख गई ।

जोशी मठ पहुँचने पर कहा, "रमा, यहाँ से तुम माँ के साथ हरिद्वार चली जाव" कारण माँ से सर्दी सहन नहीं होती थी श्रौर थक भी गई थी, जिससे मुझे भी केदारनाथ जाने देने की उनकी इच्छा नहीं थी । हरिद्वार जाने के लिये माँ के लिये श्रौर भाई-बहन का साथ था इसलिये मैंने पूछा, "माँ को उनके साथ भेजकर मैं श्रापके साथ चलूँ ? बाद में मुझे कौन श्रौर कब ले जायेगा ? तो कहा, "भले तुम्हारे दो जोड़ी कपड़े मेरे थैले में रख दो श्रौर तुम्हारे दो कम्बल मेरे बिस्तर में रख दो ।" मैंने यह बात खुशी के साथ माँ को बताई तो उन्होंने नाराज होकर कहा, "जाना है तो जाव मेरे पास पैसे नहीं हैं ।" मैंने कहा, "पैसे की जरूरत नहीं है पैदल ही तो जाना है श्रौर रसोईघर में भोजन करने का है ।" यह सुनकर गुस्से से बोले, "सामान उठाने के लिये कुली खर्च तो देना पड़ेगा ना ?" मैंने कहा, "भगवान ने मेरे कपड़े, बिस्तर मँगवाये हैं श्रौर उनके सामान के साथ रख देने को कहा है" यह सुनकर फिर वे भी श्राने के लिये तैयार हो गये ।



श्री बद्रीनाथ मंदिर - १९६१



[२०]

करहु कृपा जन जानि मुनीशा

भगवान के साथ अब केदारनाथ की यात्रा शुरू हुई जो कि २६ मील की पैदल यात्रा थी, वहाँ के सब स्थान बहुत याद नहीं है । एक रात्रि त्रिजुगी नारायण में मुकाम किया था । केदारनाथ दो दिन रुके, वहाँ भी गरीबों को भोजन करवाया । यात्रा के समय में कई बार भगवान के आगे-पीछे चलती थी, कारण साथ वाले बहनों के बीच कुछ खटपट होने से भगवान उन पर नाराज होते थे, वह देखकर डर जाती थी । माँ के लिये घोड़ा किया था । यात्रा पूरी करके हरिद्वार वापिस लौटे तब जयपुर से पिताजी और भाई-बहन आये थे । उन्हें पू. नारायण स्वामीजी के दर्शन का लाभ मिल गया था । वह भी अन्तिम दर्शन ! कैसा सद्भाग्य ! कारण बाद में मालूम हुआ कि पू. स्वामीजी ने बद्रीनाथ में देहत्याग किया ।

हरिद्वार से भगवान गंगोत्री, जमनोत्री पधारने वाले थे । उस समय कहा, "रमा, अब तुम जयपुर जाव, गंगोत्री, जमनोत्री मेरे साथ धीरू जायेगा । हम जब हरिद्वार पहुँचे तब एक और सुन्दर घटना घटी । मद्रास के रहने वाले श्री बेचरभाई भट्ट अपने स्नेहीजनों के साथ हिमालय में महाअवतार बाबाजी की खोज के हेतु बद्री-केदार की यात्रा को आने के लिये प्रेरित हुए थे । उन्होंने थोड़े समय पूर्व "एक योगी की आत्मकथा" नामक पुस्तक में श्री योगानन्दजी के शब्द पढ़े थे, "श्री महाअवतार बाबाजी आज भी हिमालय में विराज रहे हैं ।" इसलिये यात्रा में आये थे जिससे उन्हें यात्रा के भाव से बिल्कुल भी रस नहीं था । अपने समूह से बिलग होकर अकेले बाबाजी के दर्शन की तीव्र उत्सुकता में डूबे थे, "बाबाजी दर्शन दो, बाबाजी दर्शन दो" ऐसे पुकारते हुए रोते जाते थे ।

नियमानुसार वे लोग प्रथम केदारनाथ गये । वहाँ से वापिस लौटते वक्त एक दिन एक चट्टी पर हम लोग भगवान के साथ और वे अपने समूह के साथ आमने-सामने की धर्मशाला में होने पर भी एक दूसरों से अनजान थे । सुबह स्नान के समय वे भगवानजी भाई कोटक से मिले

थे । उनसे सहज वार्तालाप भी हुआ और उन्होंने पूछा, "पहले तो केदारनाथ जाना चाहिये, आप लोग पहले बद्रीनाथ क्यों गये ? इन्होंने कहा, "हमें तो हमारे गुरुदेव की आज्ञानुसार करने का होता है ।" आगे पूछा, "आप लोग बद्रीनाथ से लौट रहे हो तो उस बीच आप लोगों को कहीं बाबाजी के दर्शन हुए ?" वे इस प्रसंग से बिल्कुल अनजान होने से कहा, "हमारे गुरुदेव समर्थ हैं, आप दर्शन करना चाहो तो चलो" लेकिन बेचर भाई भी अपनी निष्ठा में दृढ़ थे जिससे ध्यान नहीं दिया ।

जाकर मन रम जाहि सन, ताहि ताहि सन काम

वे लोग यात्रा समाप्त करके हमसे पहले हरिद्वार पहुँच गये थे और बटाला हाउस में ठहरे थे । पिताजी वगैरा भी वहीं ठहरे थे जिससे अनायास उनसे मुलाकात हो गई । बेचरभाई के साथ पिताजी शाम को घूमने जाते थे और दोनों सत्संग करते थे । पिताजी उन्हें भगवान की बातें बताते थे लेकिन उनकी श्रद्धा थोड़ी डगमगा गई थी कि यह सब गलत है । कारण उन्होंने जो पढ़ा था कि महाअवतारी बाबाजी आज भी हिमालय में विराजमान हैं और भाव से पुकारने पर दर्शन देते हैं । परन्तु उन्हें दर्शन मिले नहीं इसलिये निराश हो गये थे । धीरूभाई भगवान की राह देखते गुजरात भवन में बैठकर रामनाम लिख रहे थे । उस समय बेचरभाई के भाई किसी से बात कर रहे थे कि यह सब साधु-संतों की बातें गलत होती हैं, मेरे भाई हमारे साथ यात्रा में चलकर रोते रहे, खाते-पीते भी नहीं थे और न ही अन्य बातों में भी रस लेते थे । तो क्या उन्हें महाअवतारी बाबाजी मिल गये ? यह सुनकर धीरूभाई चकित हो उठे, कारण घर में पिताजी द्वारा हम सबको यह प्रसंग मालूम था । धीरूभाई ने उनसे कहा, "आपको महाअवतार बाबाजी के दर्शन करने हैं ? वही हमारे गुरुदेव हैं, आजकल में आने ही वाले हैं ।" धीरूभाई की बात पर विश्वास न जमने से उन्होंने पिताजी से यह बात पूछी, पिताजी ने कहा, "कोई माने या न माने हम तो गुरुदेव को ही महाअवतार बाबाजी मानते हैं ।" बेचरभाई को यह बात ज्ञात होने पर वे गद्‌गद् स्वर से बोले, "आज से मेरे लिये भी यही महाअवतारी बाबाजी होंगे ।" आतुरता से सब भगवान की राह देख ही रहे थे इतने में उसी दिन शाम को हम लोग भगवान के साथ हरिद्वार पहुँच गये । कई दर्शनार्थियों के साथ बेचरभाई भी आये थे । प्रथम दर्शन में ही

दंडवत प्रणाम करके भगवान के चरण पकड़कर रोने लगे और दीक्षा-मंत्र की माँग की । जिज्ञासु की पात्रता देखकर भगवान ने भी मंद हास्य के साथ उनका स्वीकार करके मंत्र-दीक्षा दी । उस समय उन्होंने कहा, "आप मद्रास मेरे घर कब पधारेंगे ?" प्रेम भाव से तीन दिन रुकने के के लिये विनती की । भावाधीन होकर भक्तवत्सल भगवान ने भी स्वीकार किया ।

उन्होंने पूछा, "भगवान, आप ही महाअवतार बाबाजी हो ना ?" हँसते हुए यह बात भी स्वीकार की । योगानन्दजी के कथनानुसार उनके गुरुजी श्री युक्तेश्वरजी, युक्तेश्वरजी के गुरुजी लाहिरी महाशय और लाहिरी महाशय के गुरुजी महाअवतारी बाबाजी थे । भगवान के स्वमुख से सुने हुए शब्द भी इस प्रकार हैं, "लाहिरी मेरा शिष्य था । एक बार उसे सुवर्ण महल देखने की इच्छा हुई थी तब हिमालय में दिखाया था ।"

तुम जो कहहु करहु सब साँचा, जस काछिय तस चाहिय नाचा



[२१]
कृपा अंबुनिधि अंतरयामी

भगवान रामेश्वरम् की यात्रा को पधारने वाले थे। उन्होंने मुझे आने के लिये कहा था लेकिन माँ-पिताजी की जाने की इच्छा होने से घर सम्हालना था। इसके अतिरिक्त भगवान के पास जाने पर वहाँ मैं माँ के प्रति पूर्ण लक्ष्य नहीं दे पाती थी जिससे फिर उन्हें असंतोष होता था। इस कारण घर पर रहना उचित समझा।

जयपुर के बड़े मकान में तीन भाइयों के साथ मैं अकेली थी और पूरी जिम्मेदारी अकेले सम्हालने का यह प्रथम अवसर था। अंधेरा होने पर थोड़ी-सी भी आवाज सुनने से डर जाती थी। पड़ौसियों से बातें सुनी थीं कि इस घर में भूत रहता है इसलिये ज्यादा डर लगता था। एक दिन रात को पीछे का दरवाजा खोलने पर आवाज आई, "इधर आव।" दरवाजा बन्द करके अंदर खड़े-खड़े पूछा, "कौन है ?" दूसरी बार आवाज आई, "इधर आव", फिर से पूछा, "कौन है ?" तीसरी बार आवाज आई, "इधर आव", मैं खूब घबराकर आगे के कमरे में आ गई उस समय गुजराती समाज वाले कांताबहन मेरे पास सोने के लिये रात को आते थे। थोड़े समय के बाद भगवान के मिलने पर उन्हें यह बात बताई तो कहा, "वो तो मैं ही था"। इन दिनों में एकांत में शांति से, अच्छी तरह से भजन होता था।

पिताजी का ता. २५-६-६१ का लिखा हुआ पत्र मद्रास से आया, उसमें मेरी शादी के बारे में और नौकरी के विषय में भगवान के साथ हुई बातचीत की जानकारी थी और इस बारे में भगवान जो आज्ञा देंगे वो ही करना होगा यह लिखा था। उसी अंतरदेशीय में पीछे की ओर भगवान ने मेरे पर पत्र लिखा था। मेरे ही लिये, मेरे नाम पर भगवान का यह सर्वप्रथम पत्र था जिसमें लिखा था –

।। श्री रामचन्द्राय नमः ।।

तुम्हारा नियम भजन सुनकर पूर्ण संतोष और तुम्हारी लगन की अनइच्छा जानकर बहुत निराश हुआ हूँ। जीवन पर विचार करो तो उत्तम।

आज पुरुषोत्तमभाई ने उसके विषय में भी बात की है। यदि तुम्हारी इच्छा का बल मिले तो विचार किया जाये ।

महेश आदि को आसीस

रणछोड़दास का आसीस

इस पत्र के साथ दूसरा पोस्टकार्ड भी था जिसमें लिखा था –

आज अंतरदेशीय पत्र तुम को दिया है वह इसके साथ ही पहुँचेगा; उसमें पत्र का जवाब देने का पता नहीं दिया है अतः यह पोस्टकार्ड लिखा है तुम जवाब C/o पोस्टमास्टर श्री रामेश्वरम् इस पते पर देना जिससे विचार करने का मौका मिले । मैं दक्षिण का भ्रमण तारीख नौ अक्टूबर तक समाप्त कर बम्बई पहुँचूंगा वहाँ मेरा पता C/o पार्वती बेन जरूरत होवे तो करना ।

रणछोड़दास का आसीस

यह दोनों पत्र पढ़ते आनन्द की कोई सीमा न रही, साथ-साथ दुविधा भी बढ़ गई कि क्या उत्तर दूं ? गृहकार्य पूरा करके पूजा स्थान पर बैठकर दो घंटे तक भगवान के पास रोती रही, कारण भगवान के गूढ़ द्विअर्थ को समझने के लिये पूर्ण रूप से असमर्थ थी और मन में पिताजी के कड़क स्वभाव का भी डर था कि उन्होंने भगवान के साथ कौन संदर्भ में बातचीत की होगी ? उस समय "विनय पत्रिका" पुस्तक देखी भी नहीं थी परन्तु अन्तर से एक ही आवाज उठती थी और उसके शब्द कान में गूंजते रहते थे ।

जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे..........

भगवान के पत्र में जो कुछ मैंने लिखा था उसमें से थोड़े शब्द याद हैं जो इस प्रकार हैं, "भगवान, इस बारे में मैं कुछ समझ नहीं सकी हूँ और ना ही मुझे कुछ मालूम पड़ता है आपको जैसा उचित लगे कीजियेगा । परन्तु मेरी एक इच्छा है वह यही कि, "जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे.........." मुझे याद है जहाँ तक छोटे से पत्र में यह पंक्ति बार-बार लिखी थी । पिताजी ने नौकरी छोड़ दी थी और सब भाई छोटे थे उन्हें अभी आगे पढ़ना था उस कारण मेरी संमति लेकर पिताजी ने जयपुर की महावीर महिला विद्यालय में मेरी नौकरी के लिये अरजी दी थी ।

रामेश्वरम् से मेरे पत्र के प्रत्युत्तर में ता० ४-१०-६१ के रोज लिखा गया भगवान का दूसरा पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

रामेश्वर
८-१०-६१

रमु आसीस,

तेरा पत्र मिला। जिसमें तुम सुखी रहो और संतोष से जीवनयापन हो वही हमारा कर्तव्य है बस ज्यादा क्या लिखूं तुम्हारा पत्र खूब गम्भीरतापूर्वक पढ़ा ।

रणछोड़दास का आसीस



[२२]

राम कृपा अवरेव सुधारी

भगवान के साथ माँ-पिताजी रामेश्वरम् की यात्रा पूरी करके आ गये। थोड़े दिन बाद कोई स्नेहीजन मेरे लिये संबंध की बात लेकर पिताजी के पास आये। मेरे ना कहने पर पिताजी ने गुस्से के आवेश में मुझे घर से निकल जाने के लिये कहा, भगवान की आज्ञा पालन नहीं करना है, नहीं पढ़ना है, नहीं शादी करनी है तो करना क्या है ? मैं घर से बाहर निकली तुरन्त वापिस बुला ली। मैंने सोचा, अब भगवान मिलेंगे तब यह सारी बात बता दूंगी। चार दिनों में सारी बात भूलकर नित्यकार्य में व्यस्त हो गई। एक दिन माँ ने कहा, "रमा चल, अपने वरसड़ा जाकर रहेंगे, तू नौकरी करना, मैं घर सम्हालूंगी। वहाँ पर मेट्रिक पास को दो सौ रुपये पगार मिलता है।" परिस्थितिवशात् मैंने संमति दे दी, बस इतनी बात हुई थी ।

थोड़े ही समय में चतुर्थी महोत्सव के लिये भगवान पुष्कर पधारे। दर्शन के लिये जाने पर मुझे अकेली बुलाकर पूछा, "क्यों रमा, माँ काम के लिये कुछ कहती है ? मैं गृहकार्य के लिये समझी जिससे मैंने कहा, "जी ना, मैं सब तो करती हूँ ।" भगवान ने कहा, "क्या करती है ?" मैंने कहा, "खाना बनाती हूँ, कपड़े, बर्तन……" भगवान ने हँसकर कहा, "अरे पागल यह काम नहीं नौकरी के लिये माँ क्या कहती है ?" गाँव में जाकर नौकरी करने की बात तो मैं भूल भी गई थी इसलिये मैंने कहा, "कुछ नहीं ।" फिर से पूछा, "कुछ नहीं ? क्यों गाँव में जाकर नौकरी करने को माँ नहीं कहती है ?" मैंने कहा, "यह तो पहले बात हुई थी अभी नहीं", तो कहा, "तुम्हारी क्या इच्छा है ?" "मिलेगी तो करूँगी ।" कड़क आवाज में कहा, "मैं मर गया हूँ क्या ? पिताजी लग्न के बारे में क्या कहते हैं ?" मैंने घटी हुई सारी घटना बताते हुए कहा, "पिताजी ने एक दिन मुझे घर से निकाल दिया था ।" इतना कहते रो पड़ी और कहा, "भगवान, अब मैं जयपुर नहीं जाऊँगी ।" उन्होंने कोमलता से सिर पर प्यार भरा हाथ फिराते हुए पूर्ण वात्सल्यता से कहा, "तुम रोवो मत, मैं पिताजी से कह दूंगा ।" बाद में मुझे भगवान पर ही गुस्सा आया, "आप ही सब करते हो, पढ़ाई के बारे में मुझसे कहते हो, छोड़ो आजकल की पढ़ाई में क्या रखा है ? और पिताजी के सामने कहते हो, पढ़ना चाहिये, पढ़ाई से विकास होता है। मेरा मन जीतकर समझाते हो कि मानव जीवन मिला है तो कुछ कर लो, उसके लिये रोज आठ-दस घंटे का नियम बताया है और पिताजी से मेरी शादी के बारे में चर्चा करते हो, इसमें सत्य क्या ?"

"देखो रमा, पिताजी की बहुत इच्छा थी तुम्हें डॉक्टर बनाने की और लड़की बड़ी होने पर साधारणत: सभी माता-पिता को उसकी शादी कर देने की इच्छा रहती है। एकदम से यदि उनके सामने इन बातों के लिये ना कहता तो उनको आघात होता, इसलिये हाँ-ना करते-करते अब समय पक गया है ।"

तेरी लीला अपार कोई पावे ना पार……

इस बार सबके साथ पुष्कर आई तब दर्शन के लिये सबसे आखिर में जाने की इच्छा थी इसलिये बरामदे में एक ओर खड़ी थी, हेतु यह था

कि देखती हूँ मैं तो भगवान को खूब याद करती हूँ पर वे मुझे याद करते हैं क्या ? परन्तु अंतर्यामी भगवान से क्या छिपा रह सकता है ? प्रथम पिताजी के प्रणाम करने पर पूछा, "रमा कहाँ है ?" जवाब मिलने से पहले ही बोले, "अच्छा, वह बाहर खड़ी रहकर देखना चाहती है कि मैं उसे याद करता हूँ या नहीं ?" यह सुनकर मेरी तो क्या दशा हुई, कैसे कहूँ ? सन्मुख जाने के लिये कदम नहीं उठ रहे थे ।

मोर कपट जानेऊ सुरस्वामी, समदरशी सब अंतरयामी

बम्बई से मनहर भाई ने रसगुल्ले के दो डिब्बे भेजे थे। एक धीरु भाई के लिये और दूसरा भगवान के लिये । वह सामने खिड़की में रखवाये थे, उसे देखकर बार-बार बोलते थे, "अरे भाई, अभी तो मुझे बहुत काम है, यह रसगुल्ला का निपटारा करना है ।" दो दिन बाद रात को नौ बजे मुझे अकेली बुलाकर डिब्बा खोलकर करीब पंद्रह रसगुल्ले अपने हाथ से खिलाये । कितना अद्भूत प्रेम !! परंतु प्रभु प्रसाद होने से ही इतना खा सकी । भगवान के शब्द याद आये, "प्रसन्नता का दूसरा नाम प्रसाद ।" पुष्कर से भगवान के साथ ही जयपुर आई, इस वक्त प्रथम बार घर पर पधारे ।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू, भयऊ पुनीत आज यह गेहू

भगवान जयपुर से बनारस पधारे । उन दिनों में नव ग्रह युति के निमित्त, आदेशानुसार मंगल कलश की स्थापना की थी जिसमें रोज,

मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवहु सो दशरथ अजिर विहारी
दीन दयाल बिरद संभारी, हरहु नाथ मम संकट भारी

यह दोनों चौपाइयाँ तीन बार बोलकर अर्घ्य देने का रहता था और वह जल, दूब द्वारा पूरे घर में छिड़कने का रहता था । इन दिनों में भगवान ने हरेक को सुबह-शाम यह दोनों चौपाइयों के साथ यह प्रार्थना करने को भी कहा था—

सर्वे सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ।।



[२३]

राम कृपा करि चितवहीं जेही

भगवान के सान्निध्य में रहनेवाली बहन एक दिन अचानक घर पर आयी। भगवान के समीप रहने से उनसे अपेक्षा थी कि प्रत्यक्ष कुशल समाचार मिलेंगे, कारण भगवान जयपुर से बनारस गये तब वे साथ ही गये थे और थोड़े दिनों में एक बहन के लग्न प्रसंग में भगवान वापिस पुष्कर पधारने वाले थे। उन्हें भगवान के बारे में पूछने पर अंटसंट जवाब दिया, "मैं बनारस नहीं थी, मुझे कुछ खबर नहीं है, घूमती-घूमती अपने काम से यहाँ आई हूँ और दोपहर तक अपना काम करके पुष्कर चली जाऊँगी।"

सुबह आठ-नौ बजे का समय था। पिताजी ने सहज ही पूछा, "अभी कौन-सी ट्रेन से आये ?" कारण उस समय कोई गाड़ी नहीं आती थी। उन्होंने कहा, "मैं तो जल्दी सुबह जयपुर आ गई हूँ।" उनके गीले कपड़े सुखाने पर पूछा, "स्नानादि कहाँ किया ?" तो बोले, "जल्दी सुबह कोई स्टेशन पर गाड़ी रुकी तब प्रतिक्षालय में स्नान किया था, स्टेशन का नाम मालूम नहीं।" भोजन करके पिताजी को अपने काम के लिये साथ में ले गये।

उस दिन गुरुवार होने से पिताजी को अपने नियमानुसार दोपहर एक बजे गलताजी जाना था। १९६० में भगवान गलताजी पधारे तब आज्ञा दी थी कि हर गुरुवार को तुम और पिताजी गलताजी जाना। पिताजी रोज दोपहर में तीन से साढ़े चार बजे तक नियम में बैठते हैं। वह नित्य नियम गुरुवार को गलताजी में करते हैं। पहाड़ चढ़कर जाने की वजह से दो घंटे लगते थे इसलिये हम हमेशा घर से एक बजे निकलते थे। शाम को पाँच बजे वहाँ से निकलकर सात बजे घर लौटते थे। आज पिताजी को गलताजी जाने में विलम्ब हुआ। संजोगवशात् मैं भी साथ नहीं गई। वहाँ तो सब परिचित होने से पिताजी के पहुँचते ही कहने लगे, "पुरुषोत्तमजी सुबह महाराजजी आये थे।" पिताजी ने पूछा, "अच्छा ! साथ में कौन-कौन था ?" "तीन-चार बहनें थीं," हरेक का

वर्णन किया और कहा, "सबने यहाँ पर स्नान भी किया था" पिताजी समझ गये उस बहन की चालाकी को । पर खेर ! ! ....

जिसकी दुकान में जो माल होता है वही बेचते हैं

थोड़ी देर तो पिताजी को बहुत खेद हुआ कि भगवान हमारा ऐसा कौन-सा अपराध है कि आप जयपुर आकर दर्शन दिये बिना चले गये ? कारण भगवान उसी दिन अन्य बहनों के साथ पुष्कर चले गये थे और यह बहन अपने निजी काम से रुक गयी थी ।

श्री पतितपावनजी भगवान की गुफा में पिताजी नियम के लिये तो बैठे परन्तु दर्शन न मिलने से खेद से मन ही मन भगवान के साथ वार्तालाप करते हुए रो पड़े । एक ही दुःख था कि, क्या हमारी दर्शन की पात्रता भी नहीं रही ? थोड़ी देर में जवाब मिला, "दुःख न लगाव, रविवार दोपहर को तीन बजे आ रहा हूँ, शाम का भोजन गलताजी में तैयार रखना ।" खूब आनन्द के साथ पिताजी ने घर आकर मुझे यह बात बताई । हर्ष-शोक से आँखें भर आईं, क्योंकि भगवान आने वाले थे यह हर्ष की बात थी और मिले बिना चले गये यह शोक की बात, जिससे दुःख लगना सहज था । पिताजी आनन्द-विभोर होकर कायम की तरह भगवान के पधारने के समाचार से मस्ती में गाने लगे, (गुजराती में)

सखी आजनी घड़ी रळियामणी, मारो वालो'जी पधार्यानी वधामणी हो जी रे............

सखी आज की यह सुहानी घड़ी है कारण मेरे प्रभुजी के पधारने की बधाई है ।

रविवार सुबह जल्दी गृहकार्य निपटाकर करीब बारह बजे निकलकर छोटे तीन भाइयों के साथ मैं और पिताजी रसोई का सामान लेकर दो बजे गलताजी पहुँचे । देर हो जाने से ऊपर श्री पतितपावनजी भगवान की गुफा में पहले दर्शनार्थ न जाकर श्री गोपालजी के मंदिर में जिस कमरे में भगवान विराजते थे वहाँ की सफाई में लग गये । कुएँ में से पानी खींचकर कमरा धोया । बाद में नहाकर रसोई तैयार की । करीब पाँच बजनेवाले थे, भगवान पधारे नहीं । सर्दी बहुत थी, अंधेरा होने चला था इसलिये साढ़े पाँच बजे तीनों भाइयों को पिताजी ने घर भेजते हुए कहा, "भगवान पधारेंगे तो ठीक है, नहीं तो हम सुबह घर आयेंगे" इतना कहकर पिताजी प्रार्थना में बैठ गये । प्रेरणा हुई, "पहले ऊपर

प्रणाम तो करके आव" । पिताजी ने यह बात मुझे बताई और प्रणाम करने गये, फिर से आकर प्रार्थना में बैठ गये, "हे भगवान, अब तो पधारो" । जवाब मिला, "आ रहा हूँ," लगभग आधे घंटे पिताजी बैठे होंगे, फिर मुझे बताया "रमा, भगवान की गाड़ी अपने घर तक पहुँची है, अभी आनी ही चाहिये ।" मैंने आश्चर्य से पूछा, "आपको कैसे मालूम ?" उन्होंने कहा, "प्रार्थना करते समय दिखा" ।

तीनों भाई घर के नीचे पहुँचे ही थे, सामने से भगवान की गाड़ी आई । भगवान ने पूछा, "रमा और हरियानी कहाँ है ?" "गलताजी में ।" सुनते ही बोले, "चलो जल्दी वह लोग राह देखते होंगे ।" माँ, ऊपर खिड़की में से फूलहारवाली गाड़ी देखकर दर्शन के लिये नीचे आई उससे पहले गाड़ी निकल गई थी । कितना आश्चर्य !! सुबह हम गलताजी जा रहे थे तब माँ ने कहा था, "ऐसे कोई भगवान आते हैं क्या ? यदि आवें तो मुझे खबर देना", तब सोचा, "इतनी दूर खबर देने कौन जायेगा ? मानो इस तरह से भगवान सिर्फ खबर देने के लिये ही गये हो ! उन्हें दर्शन न मिलने से सब वापिस गलताजो आये ।

अचानक कोई बुलाने आया, "पुरुषोत्तमजी जल्दी चलो, महाराजजी आ गये हैं" हम आनंद से दौड़े, इतने में तो भगवान मंदिर तक पहुँच गये थे । प्रणाम करने पर मंदस्मित के साथ बोले, "क्यों मेरा भोजन तैयार है ना ?" एक बहन के सामने देखकर कहा, "देखो, मैंने कहा था ना शाम का भोजन गलताजी में तैयार होगा ।" उन्होंने पूछा, "भगवान, आपने तार दिया था क्या ?" तब कहा, "अरे भाई, हमारा बेतार का तार चलता है ।" पिताजी से पूछा, "आपको कैसे खबर मिली ?" पिताजी ने कहा, "अनुमान से ।"

भगवान सब के साथ ऊपर श्री पतितपावनजी भगवान के दर्शन को गये । वहाँ पर पिताजी प्रणाम करते हुए रो पड़े, "भगवान अब कभी ऐसा नहीं करना कि आप जयपुर में आकर दर्शन भी न दें ।" वह चतुर बहन भी साथ में थी । उनके सामने देखकर पिताजी ने कहा, "इन्होंने तो हमें खूब खेल खेलाया", बहन तो बिचारी क्या बोले ? (यही माया का स्वरूप !) करीब दो घंटे भगवान विराजे, हम लोगों ने पूजन किया, भोजन के बाद थोड़ी देर बातें कीं और फिर वापिस बनारस जाने के लिये रवाना हुए ।



[२४]
करिहौं यहि पर कृपा विशेखी

भगवान किस तरह से निज जन की रक्षा करते हैं यह प्रत्यक्ष अनुभूति इस प्रसंग में है। १६६१ के करीब दिसम्बर में शाम के समय की यह घटना है। घर के पास एक मिठाईवाला रहता था। वह छोटे भाई प्रमोद का हाथ पकड़कर गुस्से में बोलता हुआ घर आया, पिताजी से शिकायत की, प्रमोद पर घड़ी की चोरी का आक्षेप किया, आते समय प्रमोद को दो-तीन थप्पड़ भी मारी थी। इस बारे में प्रमोद अनजान था परन्तु वह मिठाईवाला हठ लेकर बैठा था, "मेरी घड़ी दो या डेढ़ सौ रुपये।" पिताजी ने कहा, "अभी तुम जाव, आपकी घड़ी ली होगी तो जरूर मिल जायगी, बिना कारण मैं पैसे नहीं दूंगा।" उसने जाकर गुस्से में कोतवाली में नाम लिखा दिया। पिताजी नीति और सत्य-परायण होने से शिकायत सह न सके, प्रमोद को समझाते हुए फिर क्रोधावेश में मारना चालू किया। दो घण्टे तक ऐसा चला लेकिन प्रमोद ने घड़ी देखी ही नहीं थी तो क्या किया जाये ? घर का वातावरण उदास बन गया, सब बिना भोजन किये सो गये और पिताजी पूजा में बैठ गये।

मुझे पिताजी के बर्ताव से ग्लानि हुई कि प्रभु भजन करते हुए मारने के लिये हाथ कैसे उठता है ? मैंने प्रमोद को खूब प्रेम से समझाया कि तुम्हारे पास घड़ी हो तो दे दो परन्तु उसका एक ही जवाब था कि मैंने घड़ी देखी भी नहीं है। करीब रात को नौ बजे एक पुलिस ने आकर सुबह आठ बजे कोतवाली में हाजिर होने के लिये कहा। मुझे चिंता के कारण बिल्कुल भी नींद नहीं आई, प्रार्थना करती रही, "हे भगवान ! यदि प्रमोद ने घड़ी ली है तो लौटा देने के लिए उसको सद्बुद्धि दीजिये वरना उसकी रक्षा करना।"

नित्य नियमानुसार सुबह चार बजे नियम में बैठ गई परन्तु मन नहीं लगा। अनेक विचारों के साथ प्रभु प्रार्थना करती रही। अचानक तीन बार, "किशन, किशन, किशन" आवाज सुनाई दी, बाद में चलचित्र की भाँति हमारे घर से सामने वाला रास्ता दिखा। वहाँ से दायीं ओर

पहली गली में पीले रंग का मकान, जिसमें नीचे एक कमरे में काले रंग की बड़ी पेटी खुली देखी, जिसमें केसरी रंग की साड़ी पर सफेद गोटा लगा हुआ था, उस साड़ी के बीच काले पट्टे वाली सुनहरे फ्रेम की घड़ी देखी, दृश्य पूरा हुआ । ऐसा अनुभव पहली बार होने से कुछ समझ नहीं पाई । रोज सुबह मेरा और पिताजी का एक-दूसरे को यही प्रश्न रहता था कि आज के क्या खबर ? पिताजी कभी तो स्वप्न दर्शन और कभी प्रत्यक्षता के अनुभव बताते थे । आज भी रोज की तरह मुझे पूछा तब उनके प्रति मन में ग्लानि होने से मैंने कहा, "कुछ खबर नहीं है" उनकी आँखों में आँसू थे । गद्गदित स्वर से बोले, "मुझे रात को भगवान के दर्शन के साथ शिक्षा मिली ।" पिताजी रोज रात को करीब साढ़े दस बजे आधे घंटे के लिये भगवान की मानसिक सेवा करते हैं, उस समय उन्हें आवाज सुनाई दी, "आज पैर नहीं, पीठ दबा दो ।" पिताजी ने पूछा, "भगवान, आज थक गये हो क्या ?" जवाब मिला, "नहीं बहुत मार पड़ी है ना ?" पिताजी ने आश्चर्य से कहा, "भगवान आपको मार ?" "हाँ तुमने बच्चे को बहुत मारा वह मुझे ही लगा है ।" पिताजी ने कहा, "यह सुनकर मैं रो पड़ा और संकल्प किया कि आज से कभी किसी को मारूँगा नहीं ।" पिताजी की बात सुनकर मैं भी गद्गद् हो गई और मैंने भी अपना अनुभव बताया । पिताजी सब बात समझ गये और कहा, "अब चिंता नहीं है ।" मैं समझ नहीं पाई थी इसलिये कहा, "स्पष्ट बात है कि किशन नाम के किसी लड़के ने घड़ी ले ली है, जिसका घर भगवान ने तुम्हें बताया है, अब प्रमोद के उठने पर उसे पूछेंगे ।"

सुबह सात बजे प्रमोद को जगाया, वह तैयार हुआ । उसे एकदम स्वस्थ देखकर मैंने पूछा, "पिताजी की मार से तुझे कहीं दर्द हो रहा है ?" उसने मना की, दु:खता भी कैसे ? उसे क्या मालूम कि सब मार भगवान ने सही है । पिताजी ने उससे पूछा, "तुम्हारे साथ कौन-कौन था ?" उसने कहा, "तीन-चार दोस्त थे ।" दोस्तों के नाम पूछने पर एक का नाम "किशन" बताया । अब तो पिताजी निश्चितता से कोतवाली गये और पुलिस को सारी बात बताकर उस लड़के का पूरा पता दिया, तुरन्त पुलिस ने छुट्टी दे दी । उसके बाद ना तो कभी पुलिस आई और ना मिठाई वाला, जिससे मानना ही रहा कि घड़ी मिल गई ।

उन दिनों में माँ-पिताजी भगवान के पास बनारस जाने वाले थे, अब जा सकेंगे या नहीं उस विचार से पिताजी ने पत्र लिखा, उसी दिन वहाँ से भगवान ने भी किसी के हाथ पत्र लिखवाया था वह निम्न-लिखित है :–

प्रिय पुरुषोत्तम भाई,

सादर आसीस

मैं तो तुमारे आने की आशा छोड़ ही बैठा था । खैर, तुम नहीं तो धीरु आये । लेकिन चिंता नहीं करना । जिसका राम रक्षक उसका कौन भक्षक

सबको आसीस

"सीम कि चापि सकै कोऊ तासू, बड़ रखवार रमापति जासू"



[२५]

रामकृपा भाजन तुम ताता

भगवान का यह पत्र मिलने पर सब व्यवस्थित हो गया था और माँ-पिताजी बनारस के लिये रवाना हुये । तब फिर से छोटे भाइयों के साथ घर में अकेली थी और रात को समाज वाले कान्ता बहन सोने के लिए आते थे । वह ठीक रात को नौ बजे आते थे । एक दिन देर होने से माला करते-करते प्रार्थना करने लगी, "हे भगवान, कांता बहन को जल्दी भेजो नहीं तो मैं अकेली क्या करूँगी ?" ऐसे विचारों से भय बढ़ता जा रहा था इतने में आवाज सुनाई दी, "देखो वह आ रही है", मुझे लगा यह मेरी कल्पना है । उस समय माला पूरी होने में चार ही मणि बाकी थे, सोचा, यह माला पूरी होने पर वह आ जाने चाहिये। इतने में तो दरवाजा खटखटाया जिससे माला पूरी न करके माला के मेर तक पहुँचने से पहले ही अधूरी माला की दिशा घूमा दी । दरवाजा खोलने पर देखा वह बहन ही थी ।

बनारस से आकर पिताजी ने बताया कि बांदा जिले में बांदा से ग्यारह मिल की दूरी पर पपरेंदा छोटा-सा गाँव है, पूरा गाँव भाविक और भगवान में श्रद्धा रखने वाला है । वहाँ से थोड़े भाई बनारस आये थे । उन्होंने भगवान के पास विष्णु महायज्ञ करने की इच्छा व्यक्त की और उस कार्य के निमित्त दस हजार रुपये इकट्ठे करके आये थे । भगवान ने कहा, "अरे ! इतने में कैसे होगा ? खैर, तुम लोगों कीं इच्छा है तो दस हजार कोई रामभक्त दे देंगे और दस हजार हनुमंतलालजी पूरे कर देंगे और दस हजार मैं वहाँ आऊँगा तब हो जायेंगे और अपना काम पूरा हो जायेगा, जाव मैं अवश्य आ जाऊँगा ।" पिताजी के नाम भगवान का पत्र आया जिसमें लिखा था रमा को कहना नियम वक्त पर करो और उल्टी माला न चलाव । एक दिन चार मनके उल्टे फिराये थे वह भी हर क्षण साथ रहने वाले भगवान से कैसे छिप सकता है ।

इन दिनों में मद्रास से श्री बेचरभाई के लड़के किशोरभाई अपने कार्य से जयपुर आये थे । गुजराती समाज में सामान रखकर रात को आठ बजे थोड़ी देर मिलने की इच्छा से घर पर आये, कारण माँ-पिताजी रामेश्वरम् यात्रा के समय भगवान के साथ उनके घर मद्रास गये थे जिससे परिचय था । रात को बारह बजे की गाड़ी से वे देहली जाने वाले थे । पिताजी ने उनको गलताजी श्री पतितपावनजी भगवान की बात बताते हुये कहा, "इतने दूर आये हो तो रुक जाव मैं आपको सुबह गलताजी ले जाऊँगा, दर्शन करके जाना ।" समाज में से सामान मँगवा लिया और घर पर ही ठहरे । रात को पिताजी के साथ भगवद् चर्चा करते हुए उन्होंने कहा, "चाचाजी, आप ज्योतिष में मानते हो ?" उनके कथनानुसार अभी मेरी अट्ठाईसवीं साल पर मेरे लिये पानी का भय है । पिताजी ने कहा, "ज्योतिष विद्या अद्भुत जरूर है परन्तु आपके लिये यह बात सत्य है या नहीं मैं कैसे कह सकता हूँ ? ऐसी बातें करते हुए सो गये थे । सुबह उठते ही उन्होंने कहा, "चाचाजी मुझे स्वप्न आया कि मैं पानी में डूब गया । पिताजी ने कहा, "अच्छा हुआ स्वप्न द्वारा आपका भय निकल गया । इस बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया, सोचा रात में ऐसी बातें करते हुए सोये थे इसलिये यह स्वप्न दिखा होगा । सुबह आठ बजे पिताजी, किशोरभाई और महेश गलताजी गये । करीब बारह बजे तक वापिस आ जायेंगे कहकर गये थे । समय

बीतने पर आये नहीं, राह देखते हुए आखिर तीन बजे आये । पिताजी ने गलताजी में घटी हुई घटना बताकर कहा, "वहाँ जाकर पानी का कुंड देखकर किशोरीभाई को नहाने की इच्छा हुई ।" गंगाजी की धारा में अनेक यात्रीगण स्नान की इच्छा रखते हैं उसी प्रकार इनकी इच्छा देखकर मैंने स्नान के लिये छुट्टी दी । वे तैरने में कुशल होने से बीस फीट गहरे कुंड में तैरते-तैरते धारा तक पहुँचे । वापिस लौटते क्या हुआ खबर न रही, कुंड के मध्य में उनके हाथ-पैर शिथिल होते चले और वे डूबने लगे । मैं घबरा गया, प्रभु प्रार्थना के सिवा कोई रास्ता न था इतने में अचानक चार व्यक्ति कुंड में कूद पड़े और उन्हें बाहर निकाला । खूब पानी पी गये थे, तीन घंटे के बाद स्वस्थ हुए प्रभु कृपा से ही आज वे अपने अट्ठाईसवें साल के भय से मुक्त हो सके । भगवान श्री पतितपावनजी के चरणों में उनकी परम कृपा दृष्टि से ही आज वे इस कठिन समय में से बच पाये ।

"गंग सकल मुद मंगल मूला, सब सुख करनि हरनि सब शूला"



[२६]

रामकृपा बिनु सुलभ न सोई

भगवान के आदेशानुसार १६६२ के जनवरी में मैं, पिताजी और प्रमोद पपरेंदा गये । ता० ११ जनवरी की शाम को हम पपरेंदा पहुँचे । पिताजी और प्रमोद को भगवान ने मनहरभाई के साथ थोड़ी दूरी पर ठहरने को कहा और मुझे अपने पास और बहनों के साथ में रखा । मैं सोच रही थी कि मुझे क्यों बुलाई होगी ? कारण उन दिनों में मेरे संबंध के विषय में चर्चा चलती थी, मुझे ऐसी बातों में रुचि न थी । एकान्त में रामनाम लेखन पसन्द करती थी ।

सुबह प्रणाम करने के लिये जाने पर, "रमा, सबको करो क्षमा" बोलते हुए एक बहन से कहा, "लड़की सुन्दर है, सुशील है परन्तु क्या करूँ ? लग्न के लिये मना करती है ।" यह बात मेरे अनुसंधान में होने से प्रणाम करके उठकर जाने लगी तो कहा, "ऐ, कहाँ जाती हो ? बैठो ।" इतने में तो भगवान भोजन को पधारे । नित्य सुबह नौ बजे और शाम को करीब चार बजे भोजन पाते थे । दिन भर मैं अपने कमरे में अपने नियम में व्यस्त रहती थी । संध्या समय पर फिर से प्रणाम करने गई तो कमरा बन्द था । बाहर किसी को बात करते सुना, "अन्दर कौन है ?" "जयपुर वाले हरियानीभाई" सुनते ही विचार आया, जरूर मेरे बारे में बात कर रहे होंगे । इतने में तो दरवाजा खुला, बुलाने से मैं अन्दर गई, पिताजी को बाहर भेजकर दरवाजा बन्द किया ।

मुझसे पूछा, "रमा, तुम शादी नहीं करोगी ? ना कहने पर फिर पूछा, "कभी नहीं ?" तीसरी बार पूछा, "बिल्कुल नहीं ।" तब मैंने कहा, "भगवान, उस विषय में आपकी आज्ञा हो तो मुझे कुछ कहना नहीं है परन्तु मेरी इच्छा पूछ रहे हो तो 'ना' ।" आगे बोले, "रमा, तुझे मालूम है, लग्न याने क्या ?" मैं कुछ बोली नहीं तो बताया, "देखो, मैं तुम्हें समझाता हूँ, लग्न याने किसी भी व्यक्ति या वस्तु विशेष से लगन लगाना या लगनी लगाना, उसी का नाम लग्न । यदि जीव ईश्वर

से लगन लगाता है तो जीव का ईश्वर के साथ लग्न होता है और योग ऐसा हो कि फिर कभी वियोग न हो । तुम भगवान को किस भाव से चाहती हो ?" तब भाव याने क्या यह समझ नहीं थी । पिताजी को पूछकर उत्तर दूंगी उस विचार से सहज कह दिया, "सोलह तारीख को बताऊँगी" यह सुनकर खूब हँसने लगे ।

भगवान ने प्रसन्नता से कहा, "अच्छा, तो आज मैं पुरुषोत्तमभाई से तुम्हें माँग लूँ ? यह सुनकर अपार हर्ष के साथ मैंने कहा, "भले" । तो कहा, "पुरुषोत्तमभाई को बुला दो ।" पिताजी को बुलाकर मुझे पानी लेने भेजा, जब मैं पानी लेकर आई तब पिताजी से कह रहे थे, "देखो पुरुषोत्तमभाई, तुम तो समुद्र हो, मालूम है ना ? समुद्र मन्थन के समय उसमें से चौदह रत्न निकले थे जिसमें विष भी था और अमृत भी, कौस्तुभमणि भी था और लक्ष्मीजी भी । तुम्हारे छः लड़के और उनकी छः बहू और दो लड़कियाँ चौदह हुए ना ? उसमें से कोई लड़का अमृत जैसा तो कोई जहर जैसा होवे तो उसका हर्ष-शोक करना नहीं और रमा याने लक्ष्मी वह भगवान की ही होती है तो आज रमा को मुझे सौंप दो ।" पिताजी सजल नयन बोले, "भले भगवान, मेरे ऐसे सद्भाग्य कहाँ से ?"

सुन्दर सुजान कृपानिधान, अनाथ पर कर प्रीति जो;
सो एक राम अकाम हित, निर्वाणप्रद सम आनको ।

भगवान ने मुझे दायें हाथ में जल लेकर वह जल पिताजी के हाथ में देने को कहा, बाद में पिताजी से कहा, "अब तुम संकल्प करो कि आज से रमा को तुम मुझे सौंप रहे हो ।" पिताजी ने आदेशानुसार संकल्प के साथ वह जल भगवान के हाथ में दिया । आगे कहा, "अब कभी भी रमा को मेरे पास आने से रोकना नहीं और धार्मिक सिनेमा भी उसे दिखाना नहीं । भले अब तुम जाव, मैं रमा के संस्कार कर देता हूँ ।" भगवान को जो भी योग्य लगा वैसे संस्कार करते हुए कहा, "आज तुम्हारी आत्म-समर्पण दीक्षा हो गई, भजन खूब करना, कल सुबह बुलाऊँगा और आगे समझाऊँगा ।" इतना कहकर जाने के लिये कहा । १२ जनवरी, १९६२ का यह शुभ दिन मेरे जीवन में चिरस्मरणीय बन गया । अब तो मन का बोझ उतरने से शान्तिपूर्वक भजन में उत्साह बढ़ना स्वाभाविक था ।

अब सौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे चरणों में,
एक आश्रय मन में धार लिया, भगवान आपके चरणों में ।
उत्तम मध्यम या नीच हूँ मैं, लघुता की मुझको फिक्र नहीं,
अब तो मैंने सिर डार दिया, भगवान आपके चरणों में ।
छः शास्त्र अठारह पुराणों में, गीता सुरती में क्यों अटकूं,
सारे ग्रंथों का सार लिया, भगवान आपके चरणों में ।
काशी, प्रयाग या हरिद्वार, मथुरा गोकुल में क्यों जाऊँ,
एक तीरथ अब स्वीकार किया, भगवान आपके चरणों में ।
बन, पर्वत, बद्री-केदारनाथ, मंदिर आश्रम में क्यों भटकूं,
पूजा घर एक विचार लिया, भगवान आपके चरणों में ।
मैं पतित हूँ तुम पतितपावन, मैं सेवक तुम स्वामी हो,
मैंने तो आसन डार दिया, भगवान आपके चरणों में ।
अब सौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे चरणों में ।



[२७]
कृपासिंधु सेवक मन रंजन

भगवान ने दूसरे दिन जल्दी सुबह बुलाई तब नित्य दिनचर्यानुसार माला कर रही थी। उन दिनों में भगवान भी नित्य सुबह नियम में बैठते थे। मेरे मन में भगवान के पास जाने के बजाय नित्य कार्य पूरा करने का अधिक महत्त्व था। करीब साढ़े छः बजे थोड़ी माला पूरी करके दर्शन को गई, दरवाजा बन्द था। बाहर प्रणाम करने पर एक बहन ने कहा, "आप अन्दर जाव आपको भगवान बुला रहे हैं।" घबराते हुए धीरे से दरवाजा खोला तो मंद हास्य के साथ प्रेम से बुलाकर बिठाई और छोटे, अज्ञान, अबुध बालक को समझाने की भाँति मेरे हाथ पर अपना कर-कमल फिराते हुए कहा, "रमा, यह क्या है ?", "चमड़ी", "अच्छा इसको काटो तो क्या निकलेगा ?" मैंने कहा, "खून", "और ?" "मांस और हड्डियाँ" फिर से पूछा, "और ?", "कुछ नहीं", जवाब देने पर बोले, "बस यही ना ? देखो, इस नश्वर शरीर से मोह नहीं करना, सबके शरीर में यही भरा हुआ है, बस ऊपर से चमड़ी रूपी कपड़ा-सी दिया गया है। खूब भजन करना और जीवन सफल बनाना" इतना कहकर छुट्टी देने पर मैं वापिस अपने कमरे में आकर नियम में बैठ गई।

सुबह दस बजे भगवान के पास जाने पर देखा तो मनहरभाई रो रहे थे। भगवान बोले, "कहाँ गये हरियानी ? सबके सामने अभी उसकी आबरू ले लेता हूँ, मेरे मनहर को इतना दुःखी कर दिया ?" मुझे मालूम न था कि यह प्यार का झगड़ा है। मनहरभाई, धीरुभाई के प्रति खूब प्रेम-भाव रखते थे। उन्होंने धीरुभाई को गंगोत्री-यमनोत्री यात्रा के खर्च निमित्त तीन सौ रुपये भेजे थे वह घर में किसी को भी बताने के लिये मना किया था। पिताजी के संस्कारों से हरेक भाई-बहनों में किसी से कुछ लेने की भावना नहीं है, कैसी भी परिस्थिति में सहन करके जीने की दृढ़ भावना है। इसी विचारधारा से धीरुभाई ने यह बात पिताजी को बता दी और पिताजी के साथ वह पैसे वापिस भेजे थे। पिताजी ने मनहरभाई को प्रेम से समझाकर पैसे वापिस दिये जिससे उन्हें यह दुःख लगा कि धीरुभाई ने मेरी भावना को ठुकराकर मेरे साथ विश्वासघात

किया । मेरे ना लिखने पर भी उन्होंने पिताजी को यह बात क्यों बताई ? यही बात मनहरभाई ने भगवान को बताई थी । उन्हें शान्त करने के लिये भगवान ने वह पैसे ले लिये थे ।

शाम को पाँच बजे भगवान खूब भीड़ के बीच में से मंडप में पधारे। भाविक ग्रामवासियों ने भगवान को उठा लिया । समूह में से निकलते वक्त एक वृद्ध माताजी के पास भगवान रुक गये । माताजी ने प्रणाम करके काँपते हुए हाथ से अपनी साड़ी के पल्लू की गठान खोली । भगवान ने कहा, "हाँ, माँ लाव मोर रुपैया दे दो ।" वहाँ की पद्धति अनुसार हर कोई भगवान के चरणोंमें एक रुपया भेंट करते थे और उन लोगों का भाव देखकर भगवान भी सबका रुपया स्वीकार करते थे । कोई जल्दी में भूल जाते थे तो सामने से कहते थे, "अरे, मोर रुपैया तो दो ।"

बेद बचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करूणा ऐन
बचन किरातन के सुनत, जिमि पितु बालक बैन

कोई दो या पाँच रुपये का नोट रखता तो वापिस लौटाते हुए भगवान बोलते थे, "अरे ! इतना नाहीं हो, मोर फिस एक रुपैया आहे ।" एकबार भगवान ने कहा, "बरध्वान स्टेट के राजा ने एकबार बहुत समय पहले मुझे अपने यहाँ आने के लिये बहुत आग्रह किया । मैं वहाँ गया तब उसने मेरे बैठने के लिये जो सिंहासन बनाया था उसमें सोनामोहर भरी हुई थी । वहाँ से निकलते समय वे मुझे सिंहासन भेंट में देने लगे । मैंने कहा, "हम साधु इसको क्या करेंगे ?" उसने अभिमान से कहा, "ऐसा देनेवाला नहीं मिलेगा, फिर पछताओगे ।" तो मैंने कहा, "मुझे ऐसे देनेवाले तो बहुत मिलेंगे लेकिन तुम्हें ऐसा छोड़नेवाला नहीं मिलेगा ।" उसके बाद उसकी सीमा में कभी पैर नहीं रखा, हमें धन-दौलत से क्या काम है ?" सचमुच पूर्णकाम परमात्मा को और क्या चाहिये ? वे तो जीव के कल्याणार्थ उसका भाव स्वीकार करते हैं । भगवान अपने नियमानुसार बहनों को स्पर्श नहीं करते थे फिर भी ग्रामीण बहनें प्रणाम करते समय क्षण भर के लिये भी भगवान के चरण दबाकर कहती थीं, "बाबा, हमें नाम सुना दो ।" तब खूब प्रेम से उनका घूंघट हटाकर ललाट में टीका लगाकर जोर से बोलते थे बोलो, "श्री राम शरणं मम्", "श्री राम शरणं मम्", "श्री राम शरणं मम्" ऐसे खूब आनन्द कराते थे ।

आज वह माताजी भी एक रुपया भेंट करेगी यही आशा थी । परंतु आश्चर्य ! ! उन्होंने सौ रुपये का नोट निकालकर भगवान के चरणोंमें रख दिया । यह देखकर भगवान बोले, "अरे माँ ! यह क्या ? मोर फिस तो एक रुपैया आहे, इतना नाहीं हो । तुम अपने पास रखो, सब दे दोगी तो फिर तुम्हारे पास क्या रहेगा ?" माताजी ने कहा, "तुम मोर बाबा नाहीं ?" यह देखकर सब गद्गद् हो गये । भगवान भी सजल नयन बोले, "देखो तो सही मैं जानता हूँ, अब इसके पास इसके अलावा कुछ भी नहीं है, इसीलिये कहता हूँ कि लखपति यदि पचास हजार दान दे तो उसने अपने लिये पचास तो बचा के रखा है, परंतु सौ रुपया कमानेवाला अपनी जरुरियातें कम करके पाँच रुपया देता है तो मेरी दृष्टि में उसका मूल्य अधिक है ।" ग्रामवासी अपनी मेहनत मजदूरी से नीति, प्रमाणिकतापूर्वक कमाई हुई संपत्ति का खूब उदारता से प्रेमभावपूर्वक गद्गद् होकर सदुपयोग कर रहे थे । भगवान के शब्द याद आये, "कलियुग में नीति से मिले रोटी साग, उसके हैं बड़े भाग, बाकी शठ बने बिना शेठ नहीं बना जाता है ।" बाहर गाँव से आये हुए मेहमानों के लिये हम क्या-क्या करें ? यह पूर्ण प्रयास वे लोग करते थे । यज्ञ समय इतने दिनों तक अपने बालकों के लिये भी दूध न रखकर पूरा दूध यज्ञकार्य में भेज देते थे । भगवान ऐसे भोले-भाले लोगों के आधीन क्यों न हो ?

रामहिं केवल प्रेम पियारा.......

भगवान यज्ञमें पधारे । रोज बहुत ही बड़े प्रमाण में भोजन चलता था । पपरेंदा और आसपास के गाँव में से लोग उत्साह के साथ दर्शन हेतु आते रहते थे । बांदा से कानपुर जानेवाली पपरेंदा से निकलती हुई सभी बस रोककर सबको प्रेमपूर्वक प्रसाद लेकर जाने के लिये विनती की जाती थी । यदि कोई संकोचवशात् या अन्य भाव से ना कहते थे तो रामदुहाई देकर प्रसाद दिया जाता था । वहाँ की प्रथा अनुसार बूंदी के लड्डू और सोहारी (बड़ी पूरी) और उस पर शक्कर दी जाती थी ।

मेरा मुख्य लक्ष भगवान ही होने से यज्ञ की विशेष जानकारी मेरे पास नहीं है । उस समय मुझे, पिताजी को और मनहरभाई को एक ओर मंडप में भगवान ले गये और अपनी जेब में से तीन सौ रुपये का लिफाफा

निकालकर बोले, "अच्छा पुरुषोत्तमभाई तुम यह पैसे लेना नहीं चाहते हो ना ?" पिताजी ने हाथ जोड़कर कहा, "भगवान, कैसे ले सकता हूँ ?" मनहरभाई से पूछा, "अच्छा मनहर, तुम भी यह वापिस लेना नहीं चाहते हो ठीक है ?" वे तो हाथ जोड़कर रोने लगे। भगवानने कहा, "ठीक है देखो मनहर, यह रमा तुम्हारी बहन है, यह पैसे तुम अपने हाथ से रमा को दे दो और मालूम है ? बहन को तीन सौ नहीं देते, एक और डालो।" भगवान ने मनहरभाई के हाथ से मुझे यह रुपये देते हुए पिताजी से कहा, "अब जयपुर जाकर यह पैसे से रमा के नाम खाता खुलवा देना।" मनहरभाई को संतोष हुआ साथ-साथ खुश भी हो गये।

ता. १४ जनवरी सुबह आठ बजे भगवान समूह में विराजते थे। यज्ञ निमित्त जो बिल्ले बनाये गये थे वह सबको दिये गये थे। एक बहन ने आकर भगवान के सामने मुझसे पूछा, "आपको नहीं मिला ना ?" भगवान के हाथ में बिल्ला देते हुए वे बोले, "भगवान रमा बहन को दो" तब कहा, "अरे, अब इसको क्या जरूरत है ? इसको तो सबसे बड़ा बाघड़ बिल्ला मिल गया है। अरे भाई, यह तो बताव, सोलह तारीख कब है ? मुझे मेरा जवाब मिलने वाला है।" उस दिन सबके बीच मनहरभाई ने कहा, "भगवान, आपने रमा बहन को श्री मानसजी के एक सौ आठ पाठ करने के लिये कहा है ?" प्रत्युत्तर मिला, "हाँ, हाँ, बराबर कहा है", "तो उन्हें इतने समय से पाठ करने पर भी कुछ समझ में तो आता नहीं है फिर ऐसे पाठ से क्या फायदा ?" भगवान ने कहा, "मनहर, तुम्हारी बात ठीक है, वह भले नहीं समझती हो पर जिसके लिये करती है वह तो समझते हैं ना ?" भगवान की उदारता देखकर मनहरभाई खुशी के साथ ताली बजाने लगे।

अब तो समय मिलने पर निर्भयता से भगवान के पास जाकर बैठती थी, कारण लग्न की चर्चा का विषय समाप्त हो चुका था। जब भी मैं बैठती थी, तब भगवान बोलते थे, "रमा, सबको करो क्षमा, रमानाथो रामो या रमारमण पद बंदी बहोरी।" रोज सुबह जहाँ तक हो सकता था, नियम पूरा करके थोड़ी देर के लिये भी बुलाकर कुछ ना कुछ समझाते थे। ता. १५ जनवरी सुबह जब बुलाई तब मैंने पूछा, "भगवान, अब तो मुझे अपने साथ रखोगे ना ?" तब कहा, "नहीं, तुझे मेरे साथ नहीं रखूँगा, मैं तेरे साथ रहूँगा।"

आत्म-समर्पण पश्चात् वियोग का भाव होता ही नहीं।

मैंने कहा, "दो दिन बाद यज्ञ पूरा होने पर आप मेरे साथ जयपुर आओगे ?" "ऐसे नहीं तुम बुलाओगी तब आ जाऊँगा।" मैंने कहा, "मैं तो अभी आपको बुला रही हूँ, अभी आप मेरे साथ चलिये ना।" "नहीं, अभी नहीं जब बुलाओगी तब आ जाऊँगा।" तब इसका अर्थ समझ नहीं पाई थी कि जीवन में अति आवश्यक समय पर बुलाने से भगवान हाजिर हो जायेंगे। आगे मैंने कहा, "बस भगवान, अब तो दो ही दिन में हम चले जायेंगे ?" "अरे नहीं, अभी कहाँ जाती हो ? अभी तो खप्टीहा में यज्ञ है ना ? वहाँ पन्द्रह दिन तुम्हें मेरे पास रहने का है।" यह सुनकर खुश-खुश हो गई।

खप्टीहा पपरेंदा से तीन-चार मील की दूरी पर है। पपरेंदा में भगवान ने एक बार पिताजी से कहा, "पुरुषोत्तमभाई, अभी भी तुम नौकरी करना चाहो तो दिला दूं ?" पिताजी ने कहा, "भगवान, दुनिया की नौकरी बहुत की अब आपकी नौकरी करने दो।" इतना बोलते रोने लग गये। भगवान ने कहा, "जाव विश्वास रखो, जब दाँत न थे तब दूध दियो अब दाँत दिये तो अन्न न देगो ?" इतने दृढ़ विश्वास के साथ अभय वचन सुनकर पिताजी निश्चित हो गये। साथ ही साथ भगवान ने "हरियानी" का अर्थ बताया, हरि+अनी हरि याने भगवान अनी याने रक्षक। हरि जिसका रक्षक हो उसे क्या चिन्ता ?



[२८]

मोपर कृपा सनेह विशेखी

भगवान की गाड़ी में दिनांक १६ जनवरी दोपहर के बाद करीब पाँच बजे हम लोग खप्टीहा गये । पपरेंदा के भाविकजनों के प्रेमवशात् भगवान वहाँ पर रुक गये और कहा, "थोड़ी देर में आ रहा हूँ तुम लोग जाव ।" बाहर मोटर में बिठाने आये और हमें रवाना किये ।

खप्टीहा में एक स्कूल के मकान में हम लोगों के रहने का प्रबन्ध था । हम चार-पाँच बहनें थीं, भगवान के लिये भी वहीं पर व्यवस्था की गई थी । मेरे हाथ में कोई सेवा तो थी नहीं, पाठ और जाप करती रहती थी । भगवान की राह देखते हुए रात हो गई । बहुत देर हो जाने पर सब सो गये । मैं बाहर चौक में बैठी हुई माला जप रही थी । रात को दो बजे छोटे से गाँव में दूर से बिजली का प्रकाश दिखाई दिया । भगवान पधार रहे हैं जानकर आनन्द विभोर हो उठी । थोड़ी क्षणों में गाड़ी आई, प्रणाम करने पर भगवान ने कहा, "अरे अभी सोई नहीं ? चलो ।" भगवान के साथ कमरे में गई, सब लोग उठ गये । पपरेंदा का हिसाब देने के लिये उसी समय सबको बिठाकर पैसे की थैली खोलकर गिनती करवाई । उसी में सुबह हो गई, पाँच बज गये थे । भगवान ने कहा, "मैं थोड़ी देर सो जाता हूँ, आप लोग भी सो जाव ।" मैं नहाकर नित्य नियम में बैठी तो सही परन्तु नींद आ गई । सुबह आठ बजे दर्शन के लिये जाने पर कहा, "क्यों नींद आ गई थी ?" वरना रोज पूछते थे नियम हो गया ना ?

थोड़ी देर बाद मुझे अकेली बुलाकर दरवाजा बन्द किया । एकदम अंधेरा हो गया, क्योंकि सर्दी के कारण खूब बादल छाये हुये थे । मुझे पद्मासन में बिठाकर गले में पहनी हुई, डोरे में बंधी हुई कंठी निकालकर दूसरी कंठी पहनाई । उसका थोड़ा वजन लगने पर सोचा कोई धातु है । कंठी टूटी हुई होने से उसमें डोरा बाँधकर पहनाई । करीब आधे घंटे बाद जाने को कहा तब बोले, "जयपुर जाकर एक चान्द्रायण व्रत कर डालना ।" उसमें क्या करने का होता है पूछने पर कहा, "तीन दिन

निर्जल व्रत करना" बाहर निकलते वक्त दरवाजे में ही एक बहन मिले, कायम साथ रहने से गले में प्रथम बार ऐसी कंठी देखकर कंठी हाथ में लेते हुए बोले, "ओ हो ! सोने की कंठी पहनी है ?" यह सुनकर मैंने देखा तब मुझे मालूम हुआ कि कंठी सोने की है । उन्होंने ईर्ष्यावश होकर भगवान से झगड़ा किया ।

अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान;
जे मतिमंद विमोह वश, हृदय धरहिं कछु आन ।

ईर्ष्या क्या नहीं करवाती ? उस समय इस स्वभाव से मैं अनजान थी । हालांकि पपरेंदा में १२ तारीख को भगवान ने उस व्यक्ति का नाम देकर मुझे सावधान करते हुए कहा था, "उसको कुछ बताना नहीं ।" बाद में विरोध बढ़ने पर उसी दिन रात को भगवान ने पिताजी से कहा, "तुम रमा को लेकर जयपुर चले जाव, यहाँ का वातावरण ठीक नहीं है ।" उस समय थोड़ी देर मुझे भी भगवानने बुलाई थी ।

तारीख १८ सुबह आदेशानुसार जयपुर जाने की तैयारी की तब पिताजी तांबे के लोटे में जल और थाली लेकर आये । भगवान के पास रखते हुए प्रणाम किया, तब बोले, "अरे, यह रख दो, यह रमा कर लेगी, जाव तुम और मनहर साधु रसोडे में थोड़ी मदद करो ।" नौ तो बज चुके थे, ग्यारह बजे की ट्रेन थी, ऐसा लगा मानो उस दिन जाने देने की इच्छा नहीं थी । थोड़ी देर बाद पिताजी और मनहरभाई आये तब कहा, "अब क्या जाओगे ? अब कल जाना ।" तब कमरे में मैं, पिताजी, मनहरभाई, प्रमोद और एक अन्य बहन थे । मनहरभाई ने बाहर से लाये हुए पेड़े अर्पण किये । भगवान ने वह सबको बाँट दिये, यह देखकर वे बोले, "बापु, हम बाहर से खरीद कर लाते हैं इसलिये आप नहीं पाते ना ? और यह बहनें हाथ से बनाकर लाती हैं तो आप स्वीकार करते हो ।" तो कहा, "अरे मनहर, इतने मुँह से तो मैंने तुम्हारा पेड़ा खाया फिर भी तुम्हें संतोष नहीं है ?

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी, सत चेतन धन आनंद राशी
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी, सकल जीव जग दीन दुखारी
राम ब्रह्म चिन्मय अविनाशी, सर्व रहित सब उर पुरवासी

इस तरह से व्यापकता का दर्शन करवाया ।

थोड़ी देर बाद भगवान ने कहा, "अरे देखो, कुछ हो तो लाव, यह प्रसादीया भगत बिना प्रसाद के नहीं जाएगा ।" एक बहन ने पेड़े का पेकेट दिया, जिसमें तीन पेड़े थे । मैं भगवान के तखत के पास खड़ी थी, सब नीचे बैठे थे । भगवान बोले, "ये तीन पेड़ा तुम पाँच को कैसे पूरा होगा ? ठीक है, हो जायगा ऐसा कहकर पाँचों को अपने हाथ से एक-एक पेड़ा दिया ।

प्रभु प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं....

उसी दिन मुझे कहा, "रमा देखो, अब तुमारे छः भाई और पिताजी सात को छोड़कर किसी भी परपुरुष को स्पर्श करो तो उस दिन उपवास करना ।" बाद में हँसते-हँसते कहा, "और मुझे स्पर्श करो तो ?" मैंने कहा, "तो भी उपवास करूँगी ।" कारण आज तक कोई प्रसंगोपात दुःखी होऊँ या कुछ समझाते समय वात्सल्य भरा हाथ सिर पर फिराते थे उस दिन उपवास करने के लिये कहते थे परन्तु आज मेरा जवाब सुनकर हँसते हुए बोले, "अरे पगली, अब काहे का उपवास ? अब तो तुम मेरी हो ना ? इस प्रसंग के पहले दिन पिताजी से भगवान ने कहा था, "यह मनहर तुम्हारा सातवां लड़का है" और मनहरभाई से कहा था, "यह रमा तुमारी बहन है" इसलिये आज यह बातें सुनकर मनहर-भाई भगवान के पास रोने लगे, जिससे पूछा, "अरे मनहर, क्यों क्या हुआ ?" उन्होंने कहा, "भगवान, रमा बहन को स्पर्श करने का मुझे कोई कारण नहीं है परन्तु आज आपने उन्हें दिये हुए नियम में छः भाइयों को स्पर्श की छुट्टी दी और उसमें मेरी गिनती नहीं ?" तुरन्त ही कहा, "अरे बाबा, मैं भूल गया, रमा मनहर के लिये भी छूट है ।

तुम जो कहहू करहु सब सोहा, सो बिलोकि सुरनायक मोहा



[२९]
कीन्ही कृपा जानि जन दीना

भगवान की ग्राज्ञा से ता. १९ की सुबह जयपुर जाने का निश्चित हुग्रा । कल पिताजी चरणामृत लेने की भावना से ग्राये थे वह पूरी नहीं हुई थी जिससे ग्राज फिर पूजा की तैयारी के साथ ग्राकर प्रणाम किया । भगवान ने कहा, "ग्रच्छा ग्राज जाना है ? चरणामृत ले लो ।" मैं, पिताजी ग्रौर प्रमोद ग्रंदर थे । मनहरभाई ग्रंदर ग्राने लगे तो मानो भगवान उनकी मजाक करते हुए बोले, "ग्ररे मनहर, तुम नहीं ग्राना ये तो रमा की पूजा है, वे वहीं पर हाथ जोड़कर खड़े रह गये । मैंने देखा तो सजल नयन खड़े थे । मैंने कहा, "भगवान, भले ग्रा जाय", "ग्रच्छा बाबा रमा कहती है तो ग्रा जाव ।" कमरा बंद करके ग्राज्ञानुसार पूजन किया पर मेरे लिये तो यह भी नया ही प्रसंग था । पिताजी बताते रहे वैसे चरण धोये ग्रौर दूर से ही चंदन, कुमकुम, ग्रक्षत चढ़ाया ।

पाँय पखारी चरणोदक लीन्हे........
गुरु चरणामृत निर्मल सब पातकहारी

पिताजी ने तिलक करने को कहा, ग्रंगुलि में चंदन तो लिया परन्तु सोचने लगी, "कैसे करूँ ?" कारण ग्राज तक सामने से कभी स्पर्श करने का प्रसंग ही नहीं ग्राया था । यह सब मंद हास्य के साथ भगवान देख रहे थे । ग्रब तो भगवान ने स्पर्श के लिये ग्रनुमति दी थी फिर भी इतने सालों से दूर रहने की ग्रादत के कारण संकोच हो रहा था । हमेशा पिताजी भगवान से दूर रहने की सूचना देते थे । ग्राखिर भगवान ने कहा, "तिलक कर दो, ग्रब संकोच क्यों ?" तिलक किया ग्रौर पुष्प न होने से भाव सुमन ही चढ़ाने थे ।

गुरुपद पंकज पूजते, चौद लोक पूजेजाय;
शिव विरंचि ग्रौर शारदा, गुरुजी के यश गाय ।

ग्रारती की सुविधा थी नहीं । पूजन के बाद प्रणाम करते समय भगवान ने भाल में टीका लगाकर माँग में सिंदूर भर दिया । मनहरभाई यह सब देखकर ताली बजाते हुए ग्रानंद विभोर हो गये ।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे, जड़ मोहहिं बुध होहि सुखारे ।

बाद में मेरे पास शीतोफलादि माँगा । दवाई की पेटी में से जैसे भी बताते गये, एक छोटी काँच की कटोरी में शीतोफलादि चूर्ण पर शहद दिया । भगवान के हाथ में कटोरी देते हुए सोचा, मिलाकर देना चाहिये, उस भाव से अंगुलि से घोलकर दिया । भगवान ने कहा, "इधर आव, तुमने अंगुलि क्यों बिगाड़ी ? मैं स्वयं घोल लेता ।" इतना कहकर भगवान मेरी अंगुलि पकड़कर चाट गये । यह देखकर मनहरभाई खुशी व्यक्त करते हुए गद्‌गदित स्वर में बोले, "प्रभु एक जीव पर आपकी इतनी कृपा ! ! ! आपने रमा बहन पर बहुत ही कृपा की है । पिताजी ने पूछा, "आपने यह जो सोने की कंठी दी वह कहाँ से आई ?" भगवान ने कहा, "इसी की पूर्व की मेरे पास पड़ी थी ।" वैसे देखने में भी एकदम पुरानी और टूटी हुई थी । पिताजी ने आगे पूछा, "रमा को खाने-पीने और कपड़े के विषय में कोई विशेष ध्यान देने का है ?" तो कहा, "नहीं, समय-समय पर जो मिल जाय खा लेना और पहन लेना । देखो रमा, पाँच सौ की साड़ी मिले तो वाह वाह और पच्चीस की मिले तो वाह वाह, खूब भजन करना और ध्यान बढ़ाना । शरीर स्वास्थ्य के लिये आसन भी करते रहना ।" उस समय मैं सूर्य नमस्कार, पश्चिमोत्तान और हलासन आदि आसन करती थी । पिताजी से कहा, "इसे संस्कृत सिखाना जिससे शास्त्रों का ज्ञान हो जाय ।" पिताजी ने कहा, "भले भगवान, अच्छा मुहूर्त देखकर चालू कर दूँगा ।" "अरे, अब इसके लिये क्या मुहूर्त और क्या ग्रह देखना ? घर जाकर रमा कथाकार बनेगी और तुम सब श्रोतागण । रोज अर्थवाली रामायणजी में से यह पाँच चौपाई गाकर सुनायगी और उसका अर्थ पढ़ेगी, जहाँ इसको समझ में न आवे वहाँ उसको समझाना ।"

भगवान की यह कितनी अद्‌भुत शैली थी – साधक को तैयार करने की, वह आज समझ में आता है । इतनी बार श्री मानस पाठ करने पर भी अभी तक कुछ समझ नहीं पाती थी, उस विषय में मनहर-भाई ने शिकायत की थी उस समय यदि डाँटकर कहते कि ऐसे पाठ किया जाता है ? तो शायद निरुत्साही बनकर आगे करती या नहीं भगवान जाने, परंतु उस समय प्रोत्साहन दिया, "जिसके लिये करती है वह तो समझते हैं ना ?" अब नियमानुसार नवाह्न पाठ तो करना ही

था, उसके अलावा यह पाँच चौपाई भी रोज पढ़नी थी । भगवान ने कहा, "श्री रामायणजी, गीताजी, स्वाध्याय और विनय पत्रिका के अलावा अन्य पुस्तकें या अखबार भी पढ़ना नहीं और मेरे पत्रों का नित्य स्वाध्याय करना ।" अन्य पठन-पाठन के लिये कहते थे ।

रात दिवस देखत रहे, चित्र बात अरु चोपड़ी;
प्रीति गई भगवान से, खाली होवे खोपड़ी ।

विशेष में कहा, "गलताजी अवश्य जाना, वह गुफा साधारण नहीं है । वहाँ श्री पतितपावनजी भगवान साक्षात् विराजते हैं, कभी ना कभी दर्शन देंगे" तब तू इतना ही माँगना कि आप सदा मेरे साथ रहो । वह पतितपावनजी अवश्य प्रेरणा देते हैं, विश्वास से प्रार्थना करनी चाहिये, प्रभु के यहाँ कछु अदेय नहीं । भगवान अव्यक्त होते हुए भी जनसमूह में व्यक्त है ।" विनय पत्रिका के बारे में पिताजी को लिख दिया है, "जिसका जीवन नीतिमय, फले उन्हें तुलसी विनय ।" इसके अलावा कहते थे,

विनय पत्रिका नित पढ़े, गृही वा अवधूत;
बना आय नहीं दूरी रहे, सपने में यमदूत ।
यह पुत्री रघुनाथ की, करे पाठ लय लाय;
बना राम पद अमल रति, शोक मोह भ्रम जाय ।

मनहरभाई ने कहा, "भगवान, रमा बहन जो कि कुछ जानती नहीं है, उन्हें आपने ध्यान बताया और मैं कह-कहकर थक गया, फिर भी इतने समय से मुझे नहीं बताते ।" "देखो मनहर, तुमको ध्यान बताऊँ तो तुम घर छोड़कर भग जाओगे, फिर जया का कौन ? और सुनो एक बात बताऊँ ?

अकबर के दरबार में एक बाबाजी गये । वे सोना बनाने की क्रिया जानते थे । अकबर को यह बात मालूम हो गई । वह हठपूर्वक बाबाजी के पीछे पड़ गया, मुझे सोना बनाना सिखाव । बाबाजी का एक ही जवाब था, मुझे नहीं आता । अकबर अपनी सत्ता के बल से हुकूमत करता था, नहीं बताओगे तो छः महीने की जेल दे दूंगा । बाबाजी को क्या ? जेल के लिये कबूल हो गये । रोज अकबर जेल में मिलने जाता था और हुकूमत करता था, नहीं बताओगे तो जेल पूरी होने पर फाँसी

दे दूंगा । बाबाजी ने कहा, "भले" । आखिर वह समय पूरा हुआ और फाँसी की तैयारी हुई । फाँसी के पहले दिन रात को चरण सेवा करने वाले नाई को सोना बनाना सिखा दिया । दूसरे दिन सुबह फाँसी के नियत समय पर अकबर हुकूमत से बोला, "अंतिम समय है, बता दो, नहीं तो मर जाओगे ।" बाबाजी का वोही जवाब था, "नहीं आता है ।" अंत में अकबर ने कहा, "नहीं आता है, तो फिर कल रात नाई को कैसे बताया ?" [नाई के वेश में अकबर ही था, दिन में हुकूमत करता था, रात को उस वेश में सेवा करता था ।] बाबाजी ने कहा, "नाई ने लिया होगा तो पैर दबाकर लिया होगा, हुकूमत से नहीं ।"

मनहरभाई ने हँसते हुए पूछा, "भगवान, आपने अकबर राजा को देखा था ?" "हाँ, हाँ बराबर, वह मेरे पास चित्रकूट में आता था, काला-सा गुटका था और मूँछों पर ताव देता रहता था ।" तुरन्त ही हिसाब करते हुए मनहरभाई बोले, "अकबर राजा को तो करीब पाँच सौ साल हो गये फिर आपकी उम्र कितनी ?" यह सुनकर कहा, "चलो उठ जाव, तुम तो बनिये हो ना ? देखो देर हो जायेगी, अब जाने की तैयारी करो, समय हो गया है ।" सबने प्रणाम किया । भगवान ने कहा, "सबको आसीस कहना, माँ को मेरा प्रणाम कहना और आशीर्वाद भी कहना ।" श्री चरणों से दूर जाना किसको अच्छा लगे ? जयपुर के लिये रवाना हुए ।



[३०]

जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई

जाने किस देवता ने मेरा मन चुरा लिया,
दुनिया की खबर ना रही और तन को भुला दिया..........

भगवान से दूर खप्टीहा से जयपुर आकर कैसे सूने दिन लगते थे वह वाणी का विषय नहीं,

श्याम बिना ब्रज सूनुं लागे, ओधाजी हमको न भावे रे..........

गृहकार्य में मन न लगना सहज था । आज्ञानुसार तीन दिन के उपवास हुए कारण यात्रा समय दौरान कुली, रिक्शावाला और गाड़ी में भीड़ में किसी पुरुष को स्पर्श हो गया हो, उसके बाद तुरन्त ही चान्द्रायण व्रत के तीन निर्जल उपवास प्रभुकृपा से पूरे करके नित्य कार्य में तन से तो लग गई परन्तु मन तो परमात्मा के चरणों में ही था । अन्य कार्यों में लगना मुश्किल था क्योंकि मन तो एक ही है दूसरा कहाँ से लाऊँ...

उधो मन न भयो दसबीस

थोड़े दिनों बाद खप्टीहा से भगवान का पत्र आया –

।। श्री रामचन्द्राय नमः ।।

रमा सादर आसीस

(१) भजन बराबर करना ।
(२) संयम पक्का रखना ।
(३) तुम ब्रह्मचारिणी हो यह भूल न जाना ।
(४) जन-सम्पर्क कम रखना ।
(५) प्रभु सर्व साक्षीभूत है यह सतत स्मरण रखना । नियम बराबर करना । आसन सिद्ध करना ।

सबको आसीस कहना ।

मेरा स्वास्थ नरम रहता है । तुम्हारी खूब याद आती है कारण तो भगवान जाने पर विचार बहुत आते हैं तुम्हारे स्वभाव के भोलेपन के विचार आते हैं ।

रणछोड़दास का आसीस

इसी लिफाफे में पिताजी के नाम पर अलग पत्र था जिसमें मेरे बारे में लिखा था, "जब से रमा गई है तबसे कुछ-कुछ विचार आते हैं परन्तु भगवान की कृपा होगी तो रमा का श्रेय अवश्य होगा । रमा पवित्र है ।

इसके बाद तुरन्त दूसरा पत्र आया –

प्रिय पुरुषोत्तमभाई,

सादर आर्शीवाद

प्रमोद का हाथ कैसा है ? भगवान की कृपा से प्रमोद का और सब निपटारा हो गया होगा । मैं परसों यहाँ से बनारस जा रहा हूँ ।

रमा को और सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

रमा नियम खूब करना ।

रणछोड़दास का आसीस

प्रमोद के नाम जो चोरी का आक्षेप हुआ था उसके अनुसन्धान में प्रमोद का और सब निपटारा हो गया होगा और पपरेंदा में संत रसोई घर में हाथ जल गया था उसके बारे में खबर पूछे थे ।

पिताजी ने बहुत पहले मुझसे कहा था, १९४६ में राजकोट में प्रभुदासभाई पुजारा ने रामयज्ञ करवाया था । उनके बारे में मैंने पूछा, "मैंने तो कभी उन्हें देखो ही नहीं । पिताजी ने कहा, "वे अब नहीं आते है ।" "क्यों ? भगवान भी नहीं बुलाते ?" पिताजी ने इस विषय में मुझे थोड़ी बाते बताई थीं, उस प्रसंग पर से विचार आया कि भगवान ने उन्हें छोड़ दिये वैसे मुझे भी छोड़ दे तो ? मैंने भगवान को प्रत्युत्तर में इसके अनुसंधान में लिखा था, "भगवान, मैं तो अभी बहुत छोटी हूँ, भविष्य में कोई भूल होने पर आप छोड़ दोगे तो फिर मेरा कौन ?" मेरे इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में बनारस से भगवान ने ता. २४-२-६२ के पत्र में लिखा :–

बनारस

।। श्री रामचन्द्राय नमः ।।

प्रिय रमा सादर आशीर्वाद,

तुमारा १७-२ का पत्र बराबर मिल गया । तुम कितनी प्रेमाल हो । तुमारे भाव बड़े उत्तम है परन्तु यह भाव अति पवित्र और बहुत उच्च-कोटि में ही रहे इन भावों में विषय की गन्ध न आवे नहीं तो पतन का मार्ग खुलेगा । बड़े पवित्र विचार से मन ओत-प्रोत रहे । जैसी तुम सुन्दर हो वैसे ही विचार और क्रिया सुन्दर हो ।

रमा मानव का जीवन ब्रह्मचर्य है, मानव का विकास ब्रह्मचर्य है। मानव की सुंदरता ब्रह्मचर्य है। कभी भूलकर ब्रह्मचर्य का अनादर न करना हो।

रमा, तुमने लिखा कि कारणवशात् तुम मुझे छोड़ दोगे । धत् पगली कहीं आर्य जगत (आदर्शमय जीवन) ऐसा करता है । हे आर्य पुत्री, तुम निश्चिन्त रहो । कदापि प्रभु अपना कर छोड़ते नहीं है ।

अच्छा तुमने संधी प्रकरण समाप्त कर लिया यह जानकर मुझे कितना आनन्द हुआ है वह तु अपने मन से पूछना और भगवान श्री पतित-पावन भगवान की अहैतुक कृपा पर गद्‌गद्‌ता होती है, मैं तुमे एक अच्छी पंडिता योगिनी देखना चाहता हूँ पर यह जब ही हो सकता है जब तुम बराबर परिश्रम करती रहो ।

अच्छा सुनो रमा, अब तुम कभी ऐसे बुलाने के विचार न करा करो और न शपथ दिया करो । अच्छा कारण अभी भगवत् आज्ञा विश्व की सेवा को है और तुम ऐसा करो तो कार्य में बाधा होगी ना ?

गरदन में पहले दर्द सबको होता है पर उस पर बल रखना, अपने आप बन्द हो जावेगा । भ्रुकुटि में फड़कन शुभ है अभ्यास छोड़ना नहीं मन की चंचलता पर निष्ठा रखो कि मैं तुमे कभी नहीं छोडूँगा शरीर की चिंता करना नहीं ।

मेरी सेवा आध्यात्मिक उन्नति ही है । वही सत्य है और स्थुल सेवा भी मिलेगी ।

एक बात और तुमारे भाव हृदय में ही रखो । पत्रों में न लिखो कारण पत्र दुसरों को पढ़ने को मिले तो तुम पर विचार होवे । उन्हें इस अलौकिक संबंध की खबर न होने से बहुत नीचे विचार आवेंगे ।

जैसे प्राणाधार, आत्माधार इत्यादि ।

पुरुषोत्तमभाई माँ और सब बालकों को आसीस कहना ।

मैं यहाँ ता. ४-३-६२ तक हूँ । पीछे चित्रकूट जाने का विचार है बाद में कलकत्ता ।

खूब मन लगाकर पढ़ना ।

नियम करना और उत्तम विचार रखना । प्रेम विषय से बहुत दूर है । प्रेम में उसकी गंध भी नहीं होती ।

रणछोड़दास का आसीस

ता. क. रामायण पाठ अवश्य करना

जानत प्रीति रीति रघुराई……

पपरेंदा में जीव-ईश्वर के अलौकिक संबंध के बाद पिताजी अपने भावानुसार भगवान को पत्र लिखते समय सब संतानों के प्रणाम लिखते थे जिसमें मेरे नाम के आगे अ. सौ. का प्रयोग करते थे । उसके अनुसंधान में इस पत्र के साथ पिताजी के नाम पर भी भगवान का पत्र आया । वैसे तो किसी के द्वारा लिखाया गया पत्र था परन्तु अन्तर्देशीय पत्र में किनारे की पट्टी में स्वहस्त से लिखा था ।

"रमा को आसीस । अ. सौ. का प्रयोग तुम्हारे पत्रों में न आना चाहिये कारण यह तो है ही कोई आज का तो नहीं है । कारण पत्र कोई पढ़े तो कूतुहल में पड़ जावे और लड़कियाँ रमा को लिखना पूछना प्रारम्भ कर दे तो रमा को मूंझामण उपस्थित होवे इस कारण अ. सौ. का प्रयोग न करे ।"

रणछोड़दास का आसीस

निज भ्रम नहिं समुझहिं अज्ञानी, प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी

ता. २६ को यह पत्र मिला, उसका प्रत्युत्तर भगवान को मिलेगा या नहीं, उस विचार से नहीं दिया था । भगवान के आदेश से संस्कृत सीखना चालू तो किया था परंतु नित्य नियम और गृहकार्य में से उसके लिये समय नहीं मिलता था जिससे धीरे-धीरे वह अभ्यास छोड़ दिया ।

थोड़ दिनों बाद १८-३-६२ का कानपुर से लिखा पत्र मिला ।

।। श्री रामचन्द्राय नमः ।।

कानपुर
१८-३-६२

श्री पतितपावन भगवान को प्रणाम कहना
प्रिय रमा सादर आसीस

तुम्हारा पत्र नहीं मिला, इससे चिंता रहती है। मेरा स्वास्थ्य आज रात को बहुत बिगड़ गया था, उस समय तुम्हारी खूब याद आई।

अब ठीक है, आज चार बजे मैं बनारस को रवाना हो रहा हूँ। वहाँ एक रोज ठहरकर कलकत्ता जाने का विचार करता हूँ।

तुम्हारा नियम खूब अच्छी प्रकार से चलता होगा और पठन-पाठन भी चलता होगा। देखो, संसार की हरी-भरी क्यारियों को देखकर भ्रम में न पड़ जाना, सावधान रहना। विषय सत्य नहीं, परिणाम में पश्चात्ताप ही हाथ में रहता है। श्री भगवान के होकर दूसरे सुखों का त्याग ही सत्य मार्ग है। सदैव अच्छे-अच्छे विचार रखना। मैं तुम्हें दूसरे रूप में देखना चाहता हूँ।

मेरे स्वप्न को सत्य बनाने में तुम्हारा पूरा सहयोग (आदर्श जीवन) अपेक्षा रखता हूँ, भले वह पूर्व संस्कारों से पोषित है।

रमा, तुम्हारे पिता की अनुपम भावना को साकार बनाना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है।

पुरुषोत्तमभाई तथा माँ, जयन्त, वसंत, धीरु, सेल्समेन, कान्ता और महेश आदि को खूब-खूब आसीस कहना।

रणछोड़दास का आसीस

यह पत्र के उत्तर में मेरे नित्य नियम की विगत के साथ आपके विरह में मेरा मन नहीं लगता और आपके पत्र आने पर दर्शन के लिये मन व्याकुल हो जाता है। जल्दी से जल्दी दर्शन कब होंगे? यह लिखने पर जवाब आया –

।। श्री रामचन्द्राय नमः ।।

कलकत्ता
ता. २७-३-६२

प्रिय रमा, आसीस।

तुम्हारा पत्र मिला ता. २२-३ का, तुमको मेरा पत्र पढ़कर अशान्ति क्यों हुई और क्यों मन व्याकुल है?

तुम विचार करो मन को व्यग्र बनाना अपनी हानि है। धीरज रखो मैं शीघ्र ही आकर मिलूँगा ।

भजन खूब करना, ध्यान बढ़ाना और प्रेम भी.... ...।

रणछोड़दास का आसीस

सर्व कुटुम्ब को आसीस कहना ।

[३१]
कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं

भगवान के पत्रों का ही अब तो एकमात्र सहारा था । थोड़े समय बाद ज्ञात हुआ कि श्री रामनवमी का उत्सव बम्बई में मनाया जायेगा । इस प्रसंग में आने के लिये भगवान की संमति मिलने पर मैं, माँ, पिताजी और दो छोटे भाई बम्बई गये । बम्बई मनहरभाई के घर सायन प्रथम बार गये । करीब सुबह दस बजे फुलवाड़ी में भगवान के दर्शन को गये । भगवान के द्वार बंद थे, बाहर से प्रणाम करने पर अंदर से आवाज सुनाई दी, "दरवाजा खोल दो, देखो जयपुरवाले आ गये ।" अंदर जाकर प्रणाम करने पर पूछा, "कब आये ? कहाँ ठहरे ?" फिर कहा, कालबा-देवी पर मेहमानों के लिये व्यवस्था की गई है, पुरुषोत्तमभाई आप लोग वहाँ आ जाव और रमा मेरे पास रहेगी ।" थोड़ी देर के बाद सबको बाहर भेजकर मुझसे पूछा, "नियम विगेरे कैसे चलता है ? संस्कृत में कहाँ तक पहुँची ?" मैंने कहा, "भगवान, मुझे कुछ याद नहीं रहता और रूप रटने के लिये समय भी नहीं रहता, इसलिये मुझे कंटाला आता है । इतना समय इसमें लगाने के बदले रामनाम अधिक रटूँ तो ? आप ही तो कहते हो, रामनाम सर्वशास्त्रों का सार है तो उसी के लिये ज्यादा समय देना अच्छा नहीं ?" यह सुनकर भगवान कुछ बोले नहीं और उसके बाद कभी भी संस्कृत के लिये कुछ कहा ही नहीं । मुझे अपने पास वाले कमरे में रहने को कहा । वहाँ पर श्री भागवत् सप्ताह पारायण चल रही थी । उस वक्त कोई भक्त की ओर से स्वाध्याय

छुपकर आये । भगवान ने अपने हाथ से सबको स्वाध्याय बाँटे और कहा, "नित्य इसका पाठ करना ।" मुझे देते हुए कहा, "लो, तुम तो करोगी ही ।"

इस दिन दिया हुआ प्रवचन जो थोड़ा बहुत याद है उसका सार यहाँ लिखने का प्रयत्न करती हूँ । "यह शुभ अवसर पर आज आप लोग मुझे गुरु-दक्षिणा में क्या दोगे ? यदि देना चाहते हो तो युवान भाई-बहन एक साथ प्रतिज्ञा करो कि हम बारह महीने तक सिनेमा नहीं देखेंगे । अपना समय, स्वास्थ्य और पैसा क्यों बरबाद करते हो ? उसका सदुपयोग करो । दूसरी बात युवान भाई सब एक साथ बीड़ी, सिगरेट छोड़ दो, सोचो, इससे नुकसान होता है । अच्छा, भाइयों से तो दो चीज मांगीं तो माताओं से दूसरी दक्षिणा में यही चाहता हूँ कि बहू सास से न लड़े और सास बहू से नहीं । बहू, सास में माँ का दर्शन करे और सास, बहू में पुत्री को देखे तो घर-घर में शान्ति हो जाय ।" रोज शाम को श्री गीताजी का पारायण भी चलता था, भगवान के साथ वहाँ पर कभी-कभी जाती थी ।

एक दिन रात को मैं और अन्य तीन-चार बहनें भगवान के पास बैठे थे । रात को देर हो जाने से एक बहन को भगवान ने घर जाने को कहा, "बहुत देर हो गई है अब तुम जाव ।" मैं बैठी होऊँ और उन्हें जाने को कहे यह उनके लिये असह्य था । थोड़ी-थोड़ी देर में तीन बार कहा, फिर भी वे गये नहीं । परिणाम में भगवान थोड़े कठोर बने जिससे वे गुस्सा करके चले गये । परन्तु गुस्से के आवेश में सुबह आये तब उनकी मेरे प्रति विरोधी भावना बढ़ गई थी । प्रथम तो सोने की कंठी दी तब से ईर्ष्या के बीज अंकुरित हो चुके थे परन्तु कोई कितना ही विरोध करे फिर भी कृपा पक्ष में खामी न थी । बाह्य दृष्टि से कोई कितना ही दूर रखे लेकिन आंतरिक भावनायें बढ़ती ही जाती थीं । सर्वशक्तिमान प्रभु आप्तजन के प्रति कृपा दृष्टि रखते ही हैं ।

रामनवमी का प्रसंग धूमधाम से मनाने के बाद चर्चगेट राममहल में श्री हनुमान जयंती का उत्सव जल्दी सुबह श्री हनुमान चालीसा एवम् श्री हनुमान बाहुक के पाठ के साथ मनाया गया ।

श्री हनुमान जयन्ती का उत्सव पूर्ण करके भगवान नासिक, त्रंबकेश्वर पंढरपुर और आणंदी पधारने वाले थे । लगभग पाँच-सात गाड़ियाँ साथ

में जाने वाली थीं। मैंने साथ में आने के लिये पूछने पर कहा, "तुम्हें नहीं ले जाऊँगा, तुमने यहाँ आकर अपना नियम छोड़ दिया है।" बात भी ठीक थी, नित्य नियम पूरा नहीं कर पाती थी। मैंने कहा, "भगवान, अब मैं बराबर नियम करूँगी आप कहो तो साथ चलूँ ?" कहा, "ठीक है चलो।"

बम्बई से जल्दी सुबह साढ़े पाँच-छः बजे के करीब सब रवाना हुए। करीब आठ बजे लोनावला पहुँचने पर चाय-नास्ते के लिये सब लोग रुक गये। मैं भगवान के पास नहीं गई, कारण दिये हुए वचनानुसार नियम पूरा करना था। भगवान ने मुझे याद करके एक बहन से पूछा, "रमा कहाँ है? उसने कुछ लिया ?" उन्होंने कहा, "उनकी इच्छा है कि नियम किये बिना कुछ नहीं लेंगे।" मुझे बुलाकर पूछा, "चाय पी ?" दूसरी बहन ने जवाब दिया, "भगवान, वे चाय, कोफी नहीं पीते।" तब कहा, "नहीं पीती है तो अच्छा है कॉफी तो चाय का भी बाप है।" भगवान के लिये गन्ने का ताजा रस लाये थे उसमें से मुझे देते हुए बोले, "लो राम कहकर पी जाव।"

राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे
सहस्र नाम तत्तुल्यं, राम नाम वरानने

मैंने कहा, "भगवान, इस तरह से फिर मेरा नियम पूरा नहीं होगा तो ?" हँसते-हँसते कहा, "अरे बाबा तुम्हारा नियम पूरा हो गया, पी लो।" बचपन से ही कोई भी चीज खाने-पीने से पहले "राम" बोलने का नियम तो था ही।

एक दिन पंढरपुर में कारणवशात् भगवान ने कहा, "मेरे पलंग से सब कोई तीन फीट दूर रहना।" भगवान का कोई भी नियम मेरे से भंग ना हो उसके लिए पूरा ख्याल रखती थी जिससे सबसे आखिर में बैठती थी। भगवान की स्थूल सेवा तो कुछ जानती नहीं थी लेकिन वे नाराज न हो जायें उस विचार से हमेशा डरती रहती थी। पंढरपुर से निकलते वक्त कहा, "चलो सब गाड़ी में बैठो।" सबसे पहले जाकर गाड़ी में बैठ गई। हमेशा मन में एक ही विचार रहता था कि उन्हें एक ही बात दूसरी बार न कहनी पड़े। आधे घण्टे तक गाड़ी में बैठी रही फिर भी कोई आये नहीं जिससे वापिस धर्मशाला में गई तो भगवान के साथ सबको सीढ़ी उतरते देखकर वहीं रुक गई। भगवान ने ऊपर ही खड़े-खड़े

कहा, "रमा इधर आव ।" ऊपर बुलाकर वे कुछ कहना चाहते थे लेकिन कुछ व्यक्ति अपने स्वभावानुसार जानते थे कि इसके साथ बात करना चाहते हैं तब तो खास कितनी बार कहने पर भी हटते नहीं थे । परंतु परम स्वतंत्र परमात्मा जो चाहते वह कार्य किसी भी तरह से पूरा कर सकते हैं । ऊपर के कमरे में बुलाकर पीछे गैलरी में ले गये और पूछा, "तुम मुझसे दूर-दूर क्यों रहती हो ?" मैंने कहा, "भगवान मुझे आपका बहुत डर लगता है", हँसकर कहा, "मैं शेर हूँ क्या ? तुझे खाता हूँ क्या ?" इतना कहकर निकल गये । जब भी डरती रहती थी तब सामने से बुलाते थे । यात्रा पूरी हुई, मोटर द्वारा भगवान नासिक से इंदौर पधार रहे थे और हम बम्बई से जयपुर जाने के लिये रवाना हुए ।

[३२]

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही

भगवान भी इंदौर से पुष्कर होकर जयपुर पधारे । हम लोग रात को जयपुर पहुँचे और दूसरे दिन सुबह अचानक भगवान घर पर आकर बोले, "ओहो, लोहेवाला बिल्डिंग में क्या हो रहा है ?" बरामदे में झूले पर बैठ गये । साथ में आई हुई बहनों को ऊपर आने के लिये ना कहा होगा, फिर भी वे आये, जिससे भगवान ने कहा, "ना कहने पर भी तुम लोग मानते नहीं हो ?" झूले पर से उठकर बोले, "चलो रमा, घर में दिखाव तो सही, पिताजी पूजा में क्या-क्या रखते हैं ?" अंदर जाकर पूजा के स्थान पर खड़े रहकर बोले, "देखो मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आ गया ना !" मैंने कहा, "भगवान, आप रुकेंगे ना ?" तो कहा, "आज शाम को चला जाऊँगा ।" मैंने पूछा, "बस एक ही दिन ?" "अरे, एक दिन कोई कम है ? एक क्षण में सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय हो जाता है ।" मानो अपने स्वरूप का भान करवा रहे थे ।

भृकुटि विलास सृष्टि लय होई........

इतने में एक बहन अंदर आई, उन्हें देखकर नाराजगी से बोले, "चलो रमा, मुझे बाथरूम में जाना है ।" इतना कहकर पीछे गैलरी में जहाँ बाथरूम है वहाँ गये । वहाँ भी वह बहन पीछे आई, तब नाराज होकर कहा, "ये क्या जहाँ देखो वहाँ पीछे-पीछे ?" फिर पिताजी से कहा, "चलो, सब गलताजी चलते हैं, सबका भोजन वहीं होगा, मेरे साथ सब सामान है । रमा मेरे साथ गाड़ी में चलती है, आप सब ताँगे में आ जाना ।" उन दिनों में माँ बम्बई रुक गई थीं ।

गलताजी जाते रास्ते में गाड़ी रोककर दूध, खरबूजे और फूल-मालायें लीं । वहाँ पहुँचकर श्री पतितपावनजी भगवान की गुफा में जाने से पहले कहा, "शौच, स्नान नीचे करके ही फिर ऊपर चलेंगे ।" शौच के लिये थोड़ी दूर जंगल में जाने के लिये निकले । मुझे कहा, "लोटा भर के साथ चलो ।" वह बहन भी पीछे-पीछे आने लगी । थोड़ी दूर जाने पर पीछे देखकर नाराजगी बताते हुए बोले, "लाव लोटा मुझे दे दो, तुम भी चली जाव ।" कुएँ में से पानी निकालकर तैयार रखा था, स्नान करके ऊपर पधारे । थोड़े समय पहले मुझ से कहा था, "रमा, जयपुर जाकर भगवान के पास तुम्हारा नाम बदल दूँगा ।" इस कारण गलताजी में मैंने उस बात की याद दिलाई । ऊपर गुफा में जाकर एक कागज में नाम के साथ आगे लिख दिया, "पर तुमने यदि इसको जाहिर किया तो बस खतम" कारण मेरे प्रति बहुत ईर्ष्या थी और आज भी है ।

भगवान ने रसोई की तैयारी करवाई । गुफा थोड़ी पहाड़ पर होने से पानी भी नीचे से लाना पड़ता था । साथ में आई हुई बहनें भगवान के पास बैठी थीं, मैं काम में रुकी हुई थी । सब तैयारी करके दी, तब दूसरी बहन ने रसोई की । भगवान यह सब चुपचाप देख रहे थे । अन्य बहनें कोई भगवान के पास तो कोई गुफा में जाकर बैठ गयीं । पहले भगवान ने भोजन लिया, उनके लिये चार रोटी बनाकर वह बहन उठ गई । बाकी आठ-दस जनों की रोटी बनाने के लिये मुझे कहा । मैं रोटी बना रही थी, भगवान भोजन करके मेरे पास आकर बैठ गये और कहा, "तुम बेलो, मैं सेकता हूँ ।" करीब पचास रोटी बनानी थीं । मैंने कहा, "भगवान, आप आराम कीजिये, मैं कर लूँगी", तो बोले, "मैं सब देखता हूँ, मेरे पास तो चल बराबर, कर बराबर और खा बराबर का न्याय

है ।" यह देखकर वे बहनें शरमा गईं और आग्रह करने लगीं, "आप उठिये हम करवाते हैं ।" बहुत आग्रह करने पर भी भगवान माने नहीं और कहा, "नहीं, अब तो मैं और रमा करते हैं, आप सब बैठो ।" सब रोटी भगवान ने सेकीं । पिताजी और तीनों भाइयों को भोजन के लिये बिठाया, बाद में हम सब बहनों ने भोजन लिया । इतने सारे बर्तन भी साफ करने थे । भगवान से एक भी बात छिपी नहीं थी । इस तरह कृपा पक्ष मजबूत होता रहा ।

शाम को पुष्कर के लिए रवाना होने वाले थे । साथ में आई हुई बहनों में से एक को बस में जाना था, उसके साथ कौन जाये इस बात में मतभेद होने से दो बहनें भगवान को कहे बिना बस से चली गईं । जिससे अब गाड़ी में जगह होने से पिताजी वगैरा को साथ लेकर भगवान घर पर पधारे । साथ में बहनें ऊपर आईं तब उन्हें कड़क आवाज से कहा, "देखो अब मेरे पीछे न आना, रमा चलो मुझे छत का कमरा दिखाव" इतना कहकर ऊपर गये । और कहा, "सीढ़ी का दरवाजा बंद कर देना" कारण भगवान हमारे साथ थोड़ी देर शांति से बात करना चाहते थे । आधे घंटे तक बैठे और कहा, "खूब नाम जप करना, किसी बात की चिंता नहीं करना ।" जीवन में घटी घटनाओं के विषय में पूछा, बातें बताने पर कहा, "अब डरना नहीं, मैं सदैव तुमारे साथ हूँ, अभी मैं पुष्कर जा रहा हूँ, अजमेर शादी में आना चाहो तो जरूर आना ।" इतना कहकर पचास रुपये दिये मानो अब मेरे खर्च का बोझ पिताजी पर से उतार रहे थे । भगवान के पास कहीं आने-जाने में टिकिट के लिये पैसे चाहिये इसलिये पचास-सौ रुपये इस तरह से कभी-कभी देते रहते थे । जिससे पिताजी से मुझे माँगना न पड़े । साथ-साथ कहा, "कभी भी किसी से माँगना नहीं तुमसे हो सके तो किसी को देना, कुछ भी काम हो तो मुझे बताना, बस अब मैं जाता हूँ ।"

माँगन गये वो मर गये, जो कोई माँगन जाय
उससे पहले वो मरे, जो होत कहत है नाय
सबसे बुरो माँगनो…… …

थोड़े दिनों बाद गुरुभाई के लग्न प्रसंग पर भगवान के आदेश से अजमेर गई, वहाँ से वापिस भगवान जयपुर पधारे । कभी-कभी भगवान के लिये रसोई बनाने की सेवा मिलने पर ख्याल था कि भगवान भोजन

में लौकी, परवल, तुरई, पालक, मेथी आदि भाजी लेते थे । कई बार भोजन की प्रसादी में भी यह सब सब्जियाँ देखती थी, इस कारण मैंने यह सब सब्जियाँ मंगवाकर रखी थीं कि भगवान जो कहेंगे वह बना दूंगी । भगवान से पूछा, "आपको कौनसी सब्जी अनुकूल है ?" तो कहा, "तुम बताव ।" हरेक का नाम बोल गई और सबके लिये ना कही इस कारण सोच में पड़ गई कि अब क्या बनाऊँगी ? थोड़ी देर बाद बोले, "मैं बताऊँ ? नमक और रोटी" यह भी एक शिक्षा थी कि इतना सरल और सादा जीवन होना चाहिये और भगवान भोग के नहीं भाव के भूखे हैं ।

विहाय भोजनानंदम् भजनानंद रूपिणं

६१ की साल में एक दिन चित्रकूट में भगवान कमरे में पधारे, तब एक बहन ने श्रीचरणों के कुमकुम केसर से वस्त्र पर चरण-चिह्न लिये । यह प्रसंग देखकर विचार आया था कि वस्त्र पर चिह्न क्या काम के ? यह तो हृदय में ऐसे अंकित हो जाने चाहिये कि कभी ना मिटे । फिर भी श्रीचरणों में अनुराग के कारण सगुण स्वरूप से दूर रहने पर आधार के लिये मेरे पास चरण पादुका हो तो कितना अच्छा ! ! यह भावना बनी रहती थी । सफेद पादुका जो कि हमेशा भगवान पहनते थे वैसी जयपुर आकर खरीदी और अब कब जल्दी भगवान घर पर पधारेंगे वो ही राह देखती थी । १९६२ की साल में पुष्कर जन्मोत्सव के बाद भगवान घर पर पधारे तब वस्त्र और पादुका जो भेंट चढ़ाये वह भगवान ने सहर्ष स्वीकार किया और पहनी हुई पादुका प्रेमपूर्वक कृपा करके मुझे दी । परम कृपालु भगवान की यह कारण रहित कृपा देखकर गद्-गद् हो गई ।

भगवान गलताजी पधारे वहाँ पर भण्डारा किया । थोड़े भाई बहन साथ में थे, फिर दोपहर को घर पर आये । शाम को जब पिताजी सारा सामान टेम्पो में भरकर घर आ रहे थे तब टेम्पो उलट गया लेकिन प्रभु कृपा से किसी को जरा सी भी चोट न आई । शाम को सब घर पर आये । भगवान के साथ-सब जयपुर से देहली जाने वाले थे । गाड़ी का समय हो जाने से भगवान के साथ जाने वाली बहनें उतावली हो रही थीं । वसंतभाई टेक्सी लेने गये थे, उन्हें आने में विलंब होने से साथवाली एक बहन को कामानी के साथ परिचय होने से उन्होंने कहा, "मैं कामानी

के यहाँ से गाड़ी मँगवा लूँ ?" यह सुनते ही भगवान ने कहा, "भाड़ में गया तुम्हारा कामानी" कारण कामानी में पिताजी नौकरी करते थे वह अब छोड़ दी थी क्योंकि जूठा अनीति का आक्षेप किया था और "सेवक पर ममता अति प्रीति" अर्थात् "जो अपराध भगत कर करहीं......." साथ जाने वाले को गाड़ी चूकने का डर था जिससे अधीर हो रहे थे । भगवान ने कहा, "चिन्ता न करो जब तक अपने लोग स्टेशन नहीं पहुँचेंगे तब तक गाड़ी नहीं आयेगी ।" सही में उस दिन गाड़ी देर से आई ।

[३३]

तात बात फुर राम कृपाहीं

भगवान देहली पधारे, वहाँ से लिखा हुआ पत्र मुझे मिला नहीं । तब तो पत्र न मिलने के कारण मालूम न थे । आगे चलकर समझ में आया कि साथ में रहते हुए कुछ व्यक्ति भगवान के पत्र पोस्ट नहीं करते थे और मेरे पत्र भगवान को नहीं देते थे । अब जो पत्र आया उसमें इसका प्रमाण मिलता है । आगे के प्रोग्राम की जानकारी मेरे पास नहीं थी, इसलिए मैं भी पत्र कहाँ से लिखती ? भगवान देहली से आबू पधारे । ६२ के जून में वहाँ से पत्र आया :—

।। श्री रामचंद्राय नमः ।।

प्रिय रमा सादर आसीस,

तुमको देहली से एक पत्र दिया था मिला होगा, पर तुमने उत्तर दिया नहीं । संभवतः तुमको मुझसे असंतोष है । मैं देहली से स्वास्थ्य खराब होने के कारण गाड़ी से आबू आया हूँ, नहीं तो मैं जयपुर जरूर ठहरता । मैं इहाँ पर बीस दिन ठहरने का विचार करता हूँ । क्या पत्र दोगी ? यदि तुम्हारा मन न हो तो पराणे पत्र न देना । सब को आसीस कहना ।

इस पत्र का उत्तर मैंने थोड़ी नाराजगी के साथ दुःख व्यक्त करते हुए लिखा था, कारण देहली से आबू जाते जयपुर स्टेशन बीच में आने

पर भी दर्शन का लाभ न मिला । इस बारे में मुझे जानकारी क्यों न दी और वैसे भी इतने दिनों से कोई पत्र न मिलने से नाराजगी स्वाभाविक थी । उसके प्रत्युत्तर में दूसरा पत्र आया :—

प्रिय रमा सादर आशीर्वाद,

तुम्हारा स्नेह रहित शुष्क पत्र मिला, संतोष यह भी तो एक गुण है । इससे वैराग्य की उत्त्पत्ति होती है, तुम कितनी अच्छी हो ।

दिल्ली का पत्र मिला नहीं, यह जानकर थोड़ा क्षोभ हुआ । मुझे न चाहो पर भजन करना, साधन न छोड़ना, वह तुम्हारे जीवन का परम धन है ।

सबको आसीस

रणछोड़दास का आसीस

यह पत्र मिलने पर मन अधिक खिन्न हुआ, कारण अति प्यारे पात्र को बहुत जल्दी दुःख लग जाता है, यह सहज था । एक तो दर्शन दिये बिना चले गये, ऊपर से सहानुभूति के बदले, "यह भी तो एक गुण है, इससे वैराग्य की उत्त्पत्ति होती है, तुम कितनी अच्छी हो, मुझे न चाहो पर भजन करना" आदि पढ़कर खिन्नता बढ़ना स्वाभाविक था ।

बालमंदिर का विद्यार्थी अभ्यास में जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, कठिन विषय उसके समक्ष आते हैं, उसी प्रकार भगवान के नित्य नये रंग देखने थे । मानो कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामजी की आदर्श धर्म युग की लीला दिन प्रतिदिन श्री कृष्ण परमात्मा की युग धर्म लीला का मोड़ ले रही थी । आगे चलकर बार-बार यह दर्शन मिलता है ।

मुझे भगवान ने यह दोनों लीला के समन्वय की कृपा करके झाँकी कराई है । भगवान का हस्तलिखित पत्र "मेरे भगवान" प्रकरण में आगे प्रमाणित है ।

मन की खिन्नता का खास कारण था भगवान का विरह····

दरश बिन दुःखन लागे नैन····

मेरे पत्र का उत्तर आया :—

११-६-६२

।। श्री रामचंद्राय नमः ।।

प्रिय रमा सादर आशीर्वाद

तुम्हारा मन खिन्न रहता है सो क्यों ?

यदि उचित समझो तो स्पष्ट लिखना ।

देखो तुमने मुझसे भजन में जीवन निकालने को कहा था । तो भजन के बाधक खिन्नता को छोड़ो ।

थोड़े आवेश या दुःख के कारण कभी व्यर्थ के विचार मन में न आने देना ।

भजन एक ही स्थान पर रहकर जो होता है वह बाहर कभी नहीं होता । इसका खूब विचार करना, मन को संयत रखकर खूब शांत, सहनशील बनना और मिलने पर कहूँगा ।

रणछोड़दास का आसीस

इस पत्र का उत्तर देने में विलंब होने पर दूसरा पत्र आया :—

।। श्री रामचंद्राय नमः ।।

प्रिय रमा सादर आसीस,

मेरा पत्र मिला होगा ।

रमा तुमको पत्रों के आदान-प्रदानों से हो सकता है कि मुझे गलत समझने में मदद की हो ।

रमा मैं तुमको किसी दूसरे रूप में देखने का स्वप्न देखता हूँ मेरे विचार फलित होना कठिन अवश्य है पर असाध्य नहीं रमा खूब सोचो मैं तुमारे जीवन को व्यर्थ विषयों में डालना नहीं चाहता । इसी कारण मैं जो करता हूँ वह ठीक समझता हूँ । रमा अभी तुम बालक हो मैंने तुम्हें खूब पत्रों द्वारा व प्रत्यक्ष में भी विषयों के परिणाम समझाये हैं । इस पत्र का आश्रय कुछ और न समझना मैं तुमसे बराबर स्नेह करता हूँ तुमारा ही हूँ तुम यह भी मत समझ कि तुममें पात्रता नहीं या कोई वस्तु का अभाव है यह बिल्कुल कल्पना मात्र है तुम सर्वांग सुन्दर हो, भाविक हो और········

मैं जयपुर आने का विचार तो करता हूँ,

रणछोड़दास का आसीस

आबू से थोड़े समय के बाद अफ्रीका जाने का प्रोग्राम हुआ । इतने लम्बे समय से भगवान के दर्शन नहीं मिले थे । उसमें भी अब तो विदेश का प्रोग्राम होने से दर्शन के लिये व्याकुलता बढ़ गई लेकिन अफ्रीका जाने से पहले दर्शन मिलना मुश्किल था । अब तो केवल प्रतीक्षा में ही दिन बिताने थे । भारत वापिस लौटने पर भी मुझे कब दर्शन होंगे यह मालूम न था । भगवान भारत में ही बिराजते हों तब दर्शन न मिलने पर भी मन हरा-भरा रहता था कारण मुझसे कहा था कि "जब भी तुमारी इच्छा होवे मेरे पास चली आना ।" अब तो पत्र से मिलन भी संभवित न था क्योंकि अब तो भगवान की नगरी बहुत दूर थी ।

उर अभिलाष निरन्तर होई, देखिय नयन परम प्रभु सोई

[३४]

रामकृपा भा काज विशेखी

भगवान अफ्रीका से लौटे तब दूसरे ही दिन गुरु पूर्णिमा थी । भगवान बम्बई पधारे । वहाँ जल्दी सुबह चांदीवली में श्री गुरु पूजन का उत्सव मनाकर वहाँ से उसी दिन प्लेन द्वारा राजकोट पधारे । सुबह करीब आठ बजे राजकोट में उत्सव था । उस प्रसंग पर माँ-पिताजी राजकोट गये थे, मैं जयपुर थी । लम्बे समय से दर्शन मिले नहीं थे और अफ्रीका गये तब से आज तक कोई पत्र न मिलने से गुरु पूर्णिमा के दिन सुबह करीब ग्यारह बजे रामनाम लिखते-लिखते रो रही थी । सोचती थी भगवान के हजारों भक्तों या शिष्यगणों में मेरी क्या गिनती ? अब तो इतनी दूर जाकर मुझे भूल भी गये होंगे तभी तो पत्र नहीं आया—

काहे ते हरि मोहि बिसारो........
एक मंद मैं मोहवश, कुटिल हृदय अज्ञान
पुनि प्रभु मोहि बिसारेऊ, दीनबंधु भगवान

आज तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से भी पत्रों द्वारा जो स्नेह और आत्मीयता मिली थी वह आज रुला रही थी, कारण दर्शन और पत्रों के बिना दिन सूने लग रहे थे ।

दरश बिना साँवरे, नैनों में सागर भर आया
भूल सकूं ना तुझे साँवरियां तूने बिसराया....

छोटे भाई महेश ने मुझे रोते हुए देखकर पूछा, "रामबेन, क्यों रो रही हो ? (प्यार से वह मुझे रामबेन कहता था) वह क्या जाने ? उसकी बात टालने के लिये प्रयत्न किया पर वह कारण जानने के लिये हठ कर बैठा तब मैंने कहा, "भगवान का कोई पत्र न आने से रो रही हूँ। उसने बाल स्वभाव से कहा, "उसमें क्या रोने का ? पत्र आ जायेगा।" "ठीक है" कहकर मैं अपने काम में लग गई। उस दिन शनिवार था। उसी दिन राजकोट में पूजन के बाद भीड़ के बीच में से निकलते हुए भगवान पिताजी के पास आकर रुक गये और जैसा भी कागज हाथ लगा वह हथेली में किसी आधार के बिना रखकर जल्दी-जल्दी लिखकर पिताजी को यह चिट्ठी देते हुए कहा, "यह रमा को भेज देना।" उसमें लिखा था –

प्रि. रमा सादर आसीस
ध्यान रखो
मैं कभी नहीं भूलूंगा
रणछोड़दास का आसीस

यह पत्र मुझे सोमवार को मिला । पत्र में भले गिनती के शब्द थे लेकिन मेरी मनोव्यथा का पूर्ण उत्तर था इसलिये पत्र हृदय से लगाकर भावविभोर हो गई । भगवान सतत साथ में हैं ही यह भान हुआ । अनेक प्रकार से—

असि सब भाँति अलौकिक करणी....

भविष्य में प्रभु कृपा से ऐसी अलौकिक करणी के दशन बार-बार मिलते रहे हैं, इसलिये –

"भाषा बद्ध करौं मैं सोई, मोरे मन प्रबोध जेहि होई"
"जस कछु बुधि बिबेक बल मोरे, तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरे"

[३५]

परम कृपाल प्रणत अनुरागी

भगवान के पास दीवाली बाद चतुर्थी के दिन नियमानुसार पुष्कर जाने पर बहुत दिनों के बाद दर्शन का लाभ मिला । हर साल की भाँति इन दिनों में पुष्कर से चतुर्थी के बाद सप्तमी जलाराम जयंती के दिन भगवान जयपुर पधारे । समय अनुसार एक-दो दिन रुककर भंडारा किया, उस समय मुझे कहा, "हर मंगलवार को सुन्दरकाण्ड का पाठ अवश्य करना ।" अधिकतर हमेशा कहते रहे और आचरण से भी बताते रहे, "भजन करो और भोजन कराओ ।" जब भी सान्निध्य में रहती थी नाम संकीर्तन, रामायण, स्वाध्याय और भंडारे के कार्यक्रम चालू ही देखने को मिलते थे । कई बार कहते भी थे, "ना जाने क्यों मुझे भोजन करने से ज्यादा कराने में बहुत आनन्द मिलता है" और उन्होंने स्वेच्छा से आश्रम या मंदिर बनाये ही नहीं कारण हमेशा कहते थे, "छप्पर आया वहाँ झगड़ा आया ही समझ लेना ।" और "ईंट पर ईंट न धरो, ईंटों के बदले रोटी का ढेर लगाव ।" यदि कोई सुख की व्याख्या पूछता तो कहते थे –

रामनाम जपते रहो, भूखे को कुछ दो
इतने से सुख ना मिले, तो बनादास से लो

(काव्य रचना में भगवान अपना नाम 'बना' या 'बनादास' लिखते रहे हैं ।)

जयपुर से वापिस भगवान पुष्कर पधारे और वहाँ से भावनगर के लिये रवाना हुए। मुझे साथ ले गये थे। भावनगर में भगवान के निवास-स्थान से मेरा रहने का स्थान दूर था। रोज दो-तीन बहनों के साथ सुबह-शाम दर्शन के लिये जाती थी। भगवान के निवास-स्थान के सामने एक गुरुभाई का घर था, वे रोज अपने घर आने के लिये आग्रह करते थे। मेरे पिताजी के प्रति पूज्य भाव से उनके साथ पत्र-व्यवहार भी रखते थे। उनके रोज के आग्रह वश होकर एक दिन हम तीनों बहनें दोपहर में भगवान के द्वार बन्द होने से उनके घर गये। थोड़ी देर बैठकर वापिस लौट रहे थे तब उन्होंने दूसरी बहनों से कहा, "आप लोग जाव, रमा बहन थोड़ी देर बाद आयेंगे उनके पिताजी का पत्र आया है।" यह सुनकर विचार आया कि ऐसा क्या पत्र आया होगा ? मुझे जल्दी बुला रहे होंगे क्या ? दूसरी ओर भगवान के दर्शन को मन आतुर था। साथ वाली बहनों के जाने के बाद मैंने जल्दी पत्र माँगते हुए कहा, "जल्दी जाना है।" उन्होंने कहा, "ऊपर पूजा के कमरे में पत्र है, आप ऊपर चलें मेरी पूजा के भी दर्शन कराता हूँ।" थोड़ा भी रस न होने पर भी संकोचवशात् मना न कर सकी। मुझे उनका व्यक्तिगत परिचय थोड़ा भी न था। ऊपर जाते ही मैंने पत्र माँगा। उन्होंने कहा, "पत्र नहीं आया, मैंने तो ऐसे ही कहा था।" भगवान की बातें सुनने के लिये बैठने को कहा, उनके यह असत्य शब्दों को सुनकर दुःख के साथ आश्चर्य हुआ, बाद में आऊँगी कहकर निकल गई। रास्ते में ही एक बहन सामने मिले, जो भगवान के आदेश से मुझे बुलाने आ रहे थे। भगवान के पास पहुँचते ही कड़क आवाज में कहा, "लाव पिताजी का पत्र कहाँ है ? मैंने सब बात बताई तो लिखकर दिया, "नहीं आगे बहुत विचार आया मैं यहाँ से अनुसंधान कर रहा था उसके कमरे में अकेले रहना ठीक न था पर खैर, भविष्य में ऐसे संकोच में मत पड़ जाना।"

भावनगर मुकाम दौरान एक दिन रात को भगवान के पास एक ज्योतिष विद्या के जानकार भाई आये। भगवान की हस्तरेखा देखकर उसकी छाप लेने को तैयार हुए। हाथ में स्याही लगाकर कागज पर छाप लेने का प्रयत्न किया पर कागज कोरा ही रहा। दूसरी बार अधिक स्याही लगाकर अच्छी तरह से हाथ दबाकर प्रयत्न करने पर भी बात बनी नहीं। इस तरह से पन्द्रह-सत्रह बार प्रयत्न करने पर भी असफल

रहे और पसीने से भीग गये । यह देखकर भगवान उनका भाव रखने के लिये बोले, "लो ले लो जाव" इतना कहकर सुन्दर छाप दे दी । वह भाई भी खुश-खुश हो गये परन्तु जितनी रेखायें देनी होंगी उतनी ही तो छपी होंगी ।

राम कीन्ह चाहहिं सो होई, करे अन्यथा अस नहीं कोई

भावनगर का कार्य पूरा करके मोटर द्वारा सुरेन्द्रनगर होते हुए अहमदाबाद जाना था । दो-तीन गाड़ियाँ साथ में थीं । भगवान की गाड़ी में बैठने के लिये तो कुछ व्यक्ति अपना ही अधिकार समझते थे । मैं तो इच्छा होने पर भी कैसे कह सकती थी ? परन्तु अन्तर्यामी भगवान मन की इच्छा जानते ही थे जिससे अन्य व्यक्ति द्वारा बुलवाया, "भगवान, अहमदाबाद से आगे आपके साथ जो कलकत्ता जानेवाले हों वह दूसरी गाड़ी में बैठें ।" उस समय भगवान मेरे सामने देखकर मंद-मंद मुस्काये और अपनी गाड़ी में अहमदाबाद तक साथ ले गये और वहाँ से मुझे जयपुर भेजा ।

अहमदाबाद जाते हुए बीच में वीरमगाम के पास वणी गाँव में भगवान पधारे । वहाँ पर मनहरभाई के कुटुंबीजन होने से भगवान के लिये रसोई बनाने की सेवा का अमूल्य अवसर मिला । भगवान भोजन में उबली हुई सब्जी और हाथ से पीसे हुए आटे की बिना घी-तेल की रोटी खाते थे । मेरे लिये तो यह सेवा की शुरूआत थी जिससे भगवान की अनुकूलता, प्रतिकूलता के विषय में चिंतित रहती थी । परंतु भगवान तो भाव के ही भूखे हैं जिससे प्रेम से सेवा स्वीकारते भी थे । भविष्य में भी जयपुर या और कहीं सेवा का अवसर मिलता था तब प्रेम से स्वीकार करते थे । जो जीव जिस संस्कार से तैयार हुआ हो उसकी प्रसन्नता के लिये उसकी इच्छानुसार भोजन बनवाते थे ।

जयपुर आई और थोड़े दिनों में पत्र आया :—

।। श्री रामचंद्राय नमः ।।

प्रिय रमा सादर आसीस

मेरा पत्र मिला होगा, तुम सुप्रसन्न होगी

भजन करना, चित्त प्रसन्न रखना ।

विषय से सावधान रहना ।

सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

यह पत्र आने पर मालूम हुआ कि इससे पहले का पत्र मुझे मिला नहीं । इस तरह से कई बार पत्र नहीं मिलते थे ।

[३६]

कृपानिधान राम सब जाना

भगवान को मैंने गोंदिया पत्र लिखा, कारण १२ जनवरी मेरा प्रथम आत्मसमर्पण दीक्षा दिन था । उसके जवाब में एक तार और पत्र आया । तार में आशीर्वचन लिखे थे :—

Ashirvad on your Auspicious Day—Ranchhoddas.

।। श्री रामचंद्राय नमः ।।

११-१ रात्रि १
गोंदिया

प्रिय रमा आशीर्वाद,

तुम्हारा पत्र आज श्याम को मिला । मैं यही सोचता रहा कि रमु का पत्र आवे तो दूसरा पत्र लिखूँ, बराबर है न, एक तार दिया है मिला होगा ।

अच्छा पत्र पहुँचने तक तुम श्रीचरणों में हो आई होगी । कुछ शिकायत तो नहीं की ?

देखो अपने पत्र का संदेश किसी को न देना, अच्छा वह हृदय से अच्छी है पर गुस्सेल बहुत है, पूरा ध्यान रखना, कहीं लिख मत देना बाबा ।

१२ तारीख का मेरा खूब-खूब स्नेह।

मेरा स्वास्थ ठीक तो नहीं है पर आराम खूब लेने के कारण कुछ अच्छा लगता है।

मैं ता. २८ को यहाँ से चला जाऊँगा जोधपुर को मोटर द्वारा।

सब को आसीस कहना।

रणछोड़दास का प्यार

इस पत्र का उत्तर मैंने गोंदिया लिखा था, परंतु वह पत्र भगवान को पहुँचे उससे पहले ही भगवान ने दूसरा पत्र धीरुभाई के हाथ लिखवाया। उन दिनों में नागपुर से धीरुभाई भगवान के पास गये थे।

॥ श्री रामचंद्राय नमः ॥

गोंदिया ता. १८.१.६३

तुम्हारा पत्र नहीं। चिन्ता होती है, मेरा प्रोग्राम एक रोज के लिये ता. ३-४ को पुष्कर में होगा। तुम जरूर वहाँ मिलोगे, ऐसी पूर्ण आशा है। गुना में ओपरेशन २०-२-६३ को रखा हुआ है। इस वास्ते जोधपुर से लौटते समय तुम्हारे यहाँ पहुँचने का अवसर रहेगा अवश्य। अस्तु पुष्कर जरूर-जरूर आ जाना। यदि पिताजी आज्ञा दें तो गुना तक के प्रबन्ध के साथ आना संभव है, तुम्हें गुना साथ ही चलना पड़े। ता. १२-२-६३ मेरे तार की प्रतीक्षा करना, वह निश्चित प्रोग्राम होगा। इस पत्र के बाद मुझे तुम्हारा पत्र मिला। तुमने मेरी शिकायत नहीं करी, यह मुझे विश्वास है।

बाद में मनहरभाई द्वारा मालूम हुआ कि भगवान जब धीरुभाई से पत्र लिखवा रहे थे तब वे पास में बैठे थे। उस समय कमरे में कोई आया भी न था फिर भी जब यह वाक्य लिखाया कि, "इस पत्र के बाद मुझे तुम्हारा पत्र मिला" यह सुनकर मैंने पूछा था, "भगवान, पत्र कहाँ आया है?" तो कहा, "देखो तो सही आ रहा है।" उसके दो घंटे पश्चात् पोस्ट आने पर कहा, "देखो यह रमा का पत्र।"

आगे इसी पत्र में भगवान ने स्वयं लिखा था –

देखो भजन ही सार है जगत को याद रखो, ब्रह्मचर्य जीवन का धन याद रखो, कुसंग घोर नर्क है याद रखो, आज का भजन कल पर मत छोड़ो ।

विषयों से सावधान रहना पुरुषोत्तमभाई, माँ, जयन्त, प्रमोद और तुमको आसीस ।

कुछ लोग अपनी भूमिकानुसार विषय याने केवल कामवासना ही समझते हैं, यह तो है ही लेकिन, "विषयों से सावधान रहना", बहुवचन का प्रयोग है याने सुनना कान का विषय, देखना आँख का विषय, बोलना और स्वाद लेना जीभ का विषय इत्यादि । अर्थात् हरेक कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय को नियन्त्रित करके प्रभु प्रित्यर्थ पथ पर मोड़ना है क्योंकि प्रकृति को तोड़ा नहीं जाता, मोड़ा जाता है । सुनना अच्छा लगता है तो प्रभु कथा का सत्संग सुना जाय, देखना है तो संत और भगवन्त के दर्शन किये जायें या सबमें अपने इष्ट को देखा जाए । बोलना तो उन्हीं का परम पावन नाम या उन्हीं के गुणगान किये जायें, उन्हीं के प्रसाद का आस्वादन किया जाए । ऐसे अपनी हरेक क्रिया और चिन्तन, मनन वगैर उन्हीं परमात्मा के प्रति होना चाहिये । मानसजी में यह सारी बातों की प्रमाणभूत चौपाइयां मिलती हैं –

जिन हरिकथा सुनी नहिं काना, श्रवणरंध्र अहि भवन समाना
नयनन संत दरश नहिं देखा, लोचन मोरपंख कर लेखा
जे नहिं करहिं रामगुण गाना, जीह सो दादुर जीह समाना

इत्यादि, हरेक अंगों का साफल्य बताया गया है ।

इसके प्रत्युत्तर में मैंने पत्र लिखा था, आपकी अनुकूलता मुताबिक प्रोग्राम बनाइयेगा, आपको तकलीफ हो ऐसा कुछ भी न कीजियेगा । तबियत का पूरा ख्याल रखना । तबियत के बारे में चिन्ता रहती है । आप जयपुर न आ सको तो कोई आग्रह नहीं है आप कहेंगे तो मैं जोधपुर आ जाऊँगी । इस अनुसंधान में दूसरा पत्र आया –

।। श्री रामचन्द्राय नमः ।।

ता० २८-१-६३

प्रिय रमु सादर आसीस,

तुम्हारा पत्र मिला । बहुत सन्तोष मेरा स्वास्थ ठीक नहीं रहता पर तुम चिन्ता न करना यह तो शरीर है ।

देखो रमा तुम जोधपुर आवो तो खूब संभाल कर रहना अच्छा काम के बोझ से तुम से विशेष बात न करूँ और न मिल सकूं तो मेरा स्नेह न्यून्य न समझना हो ।

सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

मैं २९ को गुना जा रहा हूँ ।

बाद में यह तार आया,

SEND RAMA BY KOTA BUS ASHIRWAD

RANCHHODDAS

यह पत्र ता० २९ को मिलने पर मैं जोधपुर न जाकर सीधी गुना गई ।

[३७]

रामकृपा बिनु आई न जाई

भगवान के कमरे से बाहर बांधे गये टेन्ट में मुझे रहने का था । नेत्रयज्ञ देखने का यह प्रथम अवसर था । कभी गुजराती रसोईघर में तो कभी वॉर्ड में काम करने जाती थी ।

इन दिनों में मेरा जन्मदिन होने से भगवान का पूजन किया । कई भाविकजन रोज पूजन करते थे परन्तु मैं जिस दिन जयपुर से आती थी और वापिस लौटती थी और बीच में कोई विशेष प्रसंग होने पर पूजा करती थी । पूजन करके अपने कमरे में जा रही थी तब एक बहन मिले उन्होंने मेरा जन्मदिन जानकर साल मुबारक कहा और फिर दूसरी बहन मिली जिन्होंने पूछा, "आज क्या बात है कि पूजन किया ?" "मेरा जन्मदिन है" बताने पर वे बोले, "तुमने दुनिया में जन्म लेकर क्या उपकार किया ?" जवाब में तो कहा, "कुछ नहीं" परन्तु मन में यह बात बहुत लग गई ।

बानी से जीव की परख होती है, सच, जीवन में बानी का बहुत मूल्य है जभी तो भगवान भी कहते थे, "गोली का मार सहा जाता है पर बोली का नहीं ।"

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय;
औरों को शीतल करे, आपु ही शीतल होय ।

यह भी भगवद् कृपा का ही एक दर्शन है कि मुँह पर मीठा बोलने वाली व्यक्ति के अन्तःकरण में क्या-क्या भरा रहता है ? जिस विषय से मैं अनजान थी मानो उस विषय का भगवान भान करा रहे थे । आज भी प्रतिवर्ष जन्मदिन आने पर यह प्रसंग याद आ ही जाता है क्योंकि,

कपटी मित्र शूल सम चारी –
अे दिल तू किसी फूल पर पत्थर न उछाल,
क्योंकि जन्म लग जाता है एक जख्म को मिटाने में

इसलिये भगवान भी कहते रहे कि,

"अपने को बूरा लगे वह दूसरों को न दो"

बानी पर जीवन का बहुत बड़ा आधार है । सत्यं वद, प्रियं वद सत्य भी मधुरता से ही कहना चाहिये । रामचरित मानस में भी बार-बार बानी पर ध्यान रखा गया है । इस विषय में कई चौपाइयाँ मिलती हैं ।

वाणी मधुर अमिय रस बोरी, जेवत देहि मधुर धुनि गारी
और लगी देन गारी मृदु बानी····

इसलिये मानसजी जीवन दर्पण है । भगवान इसलिये समझपूर्वक नित्य इसका पारायण करने को कहते हैं क्योंकि जीवन बनाने के लिये हर बात मानसजी से मिलती है । कैसे बोलना, चलना, उठना, सुनना, देखना वगैरे, किसी ने बहुत ही अच्छा गाया है –

हमें निज धर्म पर चलना, सिखाती रोज रामायण;
सदा शुभ आचरण करना, बताती रोज रामायण ।
जिन्हें संसार सागर से, उतरकर पार जाना है;
उन्हें सुख से किनारे पर, लगा देती है रामायण ।
कभी छबी विष्णु की बांकी, कभी शंकर की है झांकी;
हृदय आनंद झूलों पर, झुलाती रोज रामायण ।

सरल कविता की कुंजों में, बना मंदिर हिंदी का;
जहाँ प्रभु प्रेम का दर्शन, कराती रोज रामायण ।

कभी वेदों के सागर में, कभी गीता की गंगा में;
कभी शास्त्रों के सुखों में, डुबाती रोज रामायण ।

हमें निज धर्म पर चलना, सिखाती रोज रामायण;
सदा शुभ आचरण करना, सिखाती रोज रामायण ।

गुना के रहने वाले दो हरिजनभाई खूब भक्ति-भाव से नेत्रयज्ञ में सेवा देते रहे जिनका नाम श्री हजारीलाल और शिवचरण है । इस समय पर उन्होंने भगवान के पास कंठी और मंत्र की माँग की तब खूब प्रेम से कहा, "मैं तुम्हें अवश्य मंत्र दूंगा ।" नेत्रयज्ञ के बाद भगवान उनके घर गये और उन्हें कंठी मंत्र देकर उनके यहाँ प्रसाद का भी स्वीकार किया । पपरेंदा गाँव में भी एक चमार जाति की बेटी जिनका नाम सुखदैया है उन्हें भी राममंत्र देकर शरण में लिया है । कारण –

भक्तिवंत अति नीचौं प्रानी, मोहि प्राणप्रिय सुनु मम बानी
और भक्तिहीन विरंचि किन होई.........

चतुराई चूले परो, धिक परो आचार,
तुलसी हरि भगति बिन, चारों वर्ण चमार ।

भगवान के पास हरेक जाति के भाई-बहन आते थे और बिना किसी आग्रह के उनकी रुचि अनुसार इष्ट मंत्र देते थे कारण भगवान तो एक भक्ति का ही नाता मानते हैं । मानसजी में भी कहा है –

मानौं एक भक्तिकर नाता...........

मनहरभाई जैन होते हुए भी भगवान श्रीराम को अपना इष्ट मानते हैं जिससे उन्हें राम मंत्र मिला है परन्तु उनके पिताजी जैनधर्म में रुचि रखते थे जिससे उन्हें श्री महावीर भगवान का मंत्र दिया था । इसी तरह से भगवान के पास एक बहन आते हैं उनके यहाँ स्वामी नारायण सम्प्रदाय मानते हैं, उनके पिताजी श्री जलाराम बापा के प्रति विशेष श्रद्धा रखते हैं और वे बहन भगवान में भली-भांति श्रद्धा रखते हैं इस कारण जब भी वे आते तब कहते थे "जय स्वामी नारायण", "जयजलाराम बापा", "जय गुरुदेव", उनकी भावना को साथ देकर दृढ़

बनाते थे । वैसे तो धर्म एक ही है, सम्प्रदाय अलग-अलग हो सकते हैं धर्म नहीं । गोस्वामीजी ने मानसजी में धर्म की व्याख्या बताई है –

धरम न दूसर सत्य समाना……………………सत्य
परहित सरिस धर्म नहीं भाई ~~अहिंसा~~………परोपकार
परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा……………………अहिंसा
सब ते सेवक धर्म कठोरा…………………………सेवा

यह कथनानुसार मानव धर्म ही मुख्य है । भगवान कहते हैं –

"मूर्ति, माला और मंत्र न बदलो, अपने-अपने इष्ट में पूर्ण निष्ठा रखो ।" भक्ति मार्ग में साधक को कहते थे, "पहले इष्ट नक्की करो, जो भी रुचि हो, इष्ट से नाता जोड़ो कारण वहाँ सभी नाते सुलभ हैं फिर श्रद्धा भाव से उनकी सेवा करो फल अवश्य मिलेगा ।" और यह भी कहते हैं कि, "गुरु एक देशीय नहीं होते हैं, गुरु व्यापक तत्त्व है । पानी का रूप कैसा ? जिस पात्र में डालो वैसा । इसी प्रकार पात्र के भावानुकूल मूल तत्त्व परमात्मा सगुण स्वरूप धारण करते हैं ।"

नेत्रयज्ञ पूरा होने पर भगवान अनंतपुर पधारे । अनंतपुर के बारे में सुना तो था देखा नहीं था । वह गाँव और वहाँ के निवासी लोग भगवान को अतिप्रिय होने से देखने की इच्छा थी ।

अतिप्रिय मोहि यहाँ के बासी………

भगवान के पास इच्छा व्यक्त करने पर मुझे साथ ले जाना चाहते थे यह स्पष्ट दिखाई देता था परन्तु कुछ लोग द्वेष करेंगे उस हेतु से अपनी गाड़ी में साथ न ले जाकर दूसरे दिन बस द्वारा आने को कहा । मैं अनंतपुर जाने वाली हूँ यह बात मालूम हो जाने पर उसी बहन ने भगवान को देने के लिये मेरे साथ पत्र भेजा । अनंतपुर पहुँचकर श्रीचरणों में प्रणाम करके जब पत्र दिया तो पढ़कर हँसते हुए बोले, "तुम क्या लाई हो मालूम है ? रमा तुम शुरू से ईर्ष्या का पात्र बन गई हो । खप्टीहा, पपरेंदा की सारी बातें तुमने उसको बताई हैं ?

मैंने आश्चर्य से कहा, "मैंने तो कुछ नहीं बताया ।" "तो फिर इसको सब बातें कैसे मालूम हुईं ?" तब तो मैं सबको पहचानती नहीं थी, इसलिये मुझे मालूम न था । समय बीतने पर मालूम हुआ कि मनहरभाई खप्टीहा, पपरेंदा में हरेक प्रसंग में हाजिर थे और उन्हें

सारी बात मालूम थी । उन्होंने बम्बई जाकर कुछ गुरुभाइयों को एक जीव पर भगवान की परम कृपा का दर्शन कराने के भावार्थ से सब बातें वताई थीं । उन दिनों में बम्बई से एक भाई का पत्र भी खुशी व्यक्त करता हुआ आया था, वह बात भी याद आई और वे भाई के द्वारा इस बहन को सारी बात मालूम हुई थी ।

अनंतपुर में भगवान वहाँ के ग्रामवासियों के साथ बैठकर आत्मीयता से साधारण बातें भी करते थे । कभी खेत में जाकर बैठ जाते और रमेशभाई को खेती के विषय में योग्य सूचनायें भी देते थे । नेत्रयज्ञ में जरूरत पड़ने पर अधिकारपूर्वक गेहूँ का ट्रक भी मंगवा लेते थे । रमेशभाई भी परम आज्ञापालक है । वहाँ पर अलग ही स्वरूप के भगवान के दर्शन हुए । रमेशभाई का परिवार भगवान को "मामाजी" संबोधन करते थे । गाँव के छोटे बालक "आम बाबा" भी कहते थे, कारण आम की सीझन में भगवान आम ले जाकर बाँटते थे ।

[३८]

करिय कृपा शिशु सेवक जानी

भगवान के साथ एक दिन अनंतपुर रुककर मोटर द्वारा चित्रकूट के लिये रवाना हुए । रास्ते में बांदा से भगवान ने पत्र लिखा –

।। श्री रामचंद्राय नमः ।।

प्रिय हरियाणी सादर आसीस,

मेरा स्वास्थ साधारण है, पर चिन्ता नहीं, रमा मेरे साथ झरिया जा रही है, उसकी चिन्ता न करना ।

वह खूब सेवा करती है । जब समय मिलता है तब सबको आसीस कहना, शेष कुशल ।

रणछोड़दास का आसीस

चित्रकूट में प्रसंगोपात् एक दिन भगवान ने कहा, "रमा, तुम कितनी अच्छी हो ?" मैंने हंसते हुए कहा, "भगवान झगड़ती हूँ तब कैसी कड़वी लगती हूँ ?" तो लिखकर दिया, "कड़वी तुमड़ी भी तो है, पर कितने काम की है, साधुओं को उसके बिना एक क्षण नहीं चलता ।"

जयपुर से पिताजी का पत्र आया था । भगवान को उनके प्रणाम कहने पर पूछा, "तुमको जयपुर तो नहीं बुला रहे हैं ?" मैंने ना कहा और मैं पिताजी से डेढ़ सौ रुपये मँगवा रही हूँ, यह बताने पर कहा, "हाँ हाँ, मँगवा लो ।" तब तो मैं समझ नहीं पाई किस भाव से कह रहे हैं, बाद में मालूम हुआ कि नाराज होकर मँगवाने को कहा था । झरिया जाने के लिये पूछने पर कहा, "अरे बाबा, झरिया का तो पूछो ही नहीं, तुमको चलना ही है ।"

ता. २०-३-६३ के दिन झरिया पहुँचे । धनबाद के कुसुन्डा गाँव में रहने का था । दूसरे दिन से १०८ नवाह्न पारायण का कार्यक्रम चालू होनेवाला था । गुरु भाई-बहनों के साथ मुझे भी पाठ में बैठने का था । बहनों को केसरी साड़ी और भाइयों को केसरी टोपी पहनने के लिए भगवान का सूचन था । नौ दिन खूब धूमधाम से भगवान के सान्निध्य में नवाह्न पाठ हुए । चित्रकूट से कई साधुसंत पधारे थे ।

एक दिन भगवान ने मुझे बुलाकर सौ रुपये दिये । मैंने लेने के लिये मना करते हुए कहा, "पिताजी से मँगवाये हैं, अभी मुझे जरूरत नहीं है", यह सुनकर कड़क स्वर से बोले, "मैं कहता हूँ ना ले लो ।" मैं आगे कुछ बोल न सकी । मेरे लिये इस समय पहली ही बार दो महीने तक साथ रहने का और इतने गाँव घूमने का प्रसंग था । मेरे पास तीन-चार साड़ी से अधिक रहती नहीं थीं । अब साड़ी की जरूरत थी और अपने हाथ से मैंने कभी खरीदी नहीं की थी और पैसे भी खतम हो गये थे । अति जरूरत होने से दिये हुए सौ रुपये में से एक सोलह रुपये की साड़ी और चार रुपये के दो ब्लाउज पीस ले तो आई परंतु दिन भर, बीस रुपये में इतनी ही चीजें यह विचार आता रहा । भगवान मन की बात जान गये । शाम को मुझे बुलाकर कहा, "रमा जो चीज की आवश्यकता हो ले आना और आनंद से रहना ।" घबराते हुए लाई हुई चीजों की बात करने पर खुशी व्यक्त करते हुए कहा, "बहुत अच्छा हुआ और कुछ भी लाना हो तो जरूर ले आना ।" मैंने कहा, "भगवान,

पिताजी का मनीआर्डर आ जाने पर मैं आपको यह पैसे दे दूंगी ।" तो कहा, "पागल हो क्या ?"

दूसरे दिन शाम को भगवान समूह के बीच बगीचे में विराज रहे थे, उस वक्त एक छोटा-सा भजन जो मुझे बहुत प्रिय है, मैंने लिखकर दिया, तब तो पढ़कर कागज फाड़ दिया । भजन गुजराती में है, जिसके शब्द इस प्रकार हैं –

तारी मीठी मुलाकात राम देवी पडशे
तारा अन्तरनी वात मने कहेवी पडशे
जगना स्वामी तने काम घणां होय तोये
आटली निरांत तारे लेवी पडशे...तारी........

भावार्थ – हे भगवान ! आपकी मीठी मुलाकात देनी ही पड़ेगी और तेरे मन की बात मुझे कहनी ही पड़ेगी । हे जगत के स्वामी तुझे बहुत काम होने पर भी इतना समय निकालना ही होगा ।

संध्या समय पर भगवान कमरे में पधारे और मुझे बुलाई । मुझे तो सहज प्रिय भजन होने से लिखकर दिया था, ऐसी तो कल्पना भी नहीं थी कि भगवान उसको क्रियात्मक बनायेंगे । मुझे बुलाने पर विचार आया, क्या काम होगा ? परन्तु बुलाकर पूछा, बोलो क्या काम है ? क्यों तुमने मीठी मुलाकात माँगी है ना ?" स्वयं साक्षात् राम है यह स्वीकार किया ।

रोज कोई ना कोई कारण से मुझे बुलाते थे जिससे एक बहन ने कहा, "हम तो गुरुजी के पास समय माँग-माँग कर थक जाते हैं और आपको तो रोज सामने से बुलाते हैं ।" उन्हें श्रीमंताई का थोड़ा नशा था क्योंकि :— **कनक कनक ते सो गुनी, मादकता अधिकाय,**
अेक खाये बौरात है, अेक पाय बौराय ।

(कनक याने धतूरा, कनक याने सोना)

धन, बुद्धि या चतुराई का नशा जब तक न उतरे तब तक "अहैतुक कृपा" सम्भवित नहीं ।

मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई, भजतहिं कृपा करहिं रघुराई

यह तो परम कृपालु परमात्मा का स्वभाव है वरना श्रीमंत, सत्ताधारी, बुद्धिमान और चतुर लोग संत और भगवंत के चरणों तक उनकी दृष्टि में दिखने वाले निर्बल को पहुँचने ही नहीं देते ।

एक दिन एक बहन इलेक्ट्रिक मशीन से भगवान की अनिच्छा होने पर भी हठाग्रह से दाढ़ी बनाने लगे कोई थोड़े भी नाराज हो वह सह नहीं

सकते थे इस कारण नापसन्द हरेक बात स्वीकार लेते थे। अर्थात् मानो कि परइच्छा अनुसार जीवन जीने का शुरू कर रहे थे। मेरे पास कागज-पेन माँगकर लिख दिया,

देखो इन्साफ की दशा, ऐसी दशा सुनी न देखी
देवदूतों के साथ न देखी, फिरश्ताओं के साथ न देखी
खुदा के कयाम में न देखी, जैसी बना की हजामत में

झरिया से जगन्नाथपुरी पहुँचे, वहाँ भी तीन-चार दिन गरीब एवम् साधु भोजन बड़े प्रमाण में करवाया। संतों को भजन करना और भोजन कराना ही तो प्रिय होता है। कई बार कहते थे,

स्वाहा आहा एक है, सुनो मानो विश्वास
स्वाहा से हरि तोषिये, आहा से हरिदास

गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराजजी के शब्दों में भी,

तुलसी इस जग आई के, कर लीजे दो काम,
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरिनाम

संत श्री कबीरदासजी भी यही कहते थे और सौराष्ट्र में श्री जलाराम बापा ने भी यही किया है।

जगन्नाथपुरी में एक दिन एक बड़े वृक्ष के नीचे समूह में भगवान विराज रहे थे। वहाँ पर रसोई बन रही थी, बहनें पूड़ी बेल रही थीं। उस समय एक बन्दर ने पेड़ पर से भगवान की गोद में पेड़े का पैकेट डाला। भगवान ने कहा, "लो, हनुमानजी महाराज ने प्रसाद भेजा है" कारण आश्चर्य ही था बन्दर पेड़े लाया कहाँ से और लाया तो देता ही क्यों? भगवान ने अपने करकमल से सबको प्रसाद बाँटा। श्रीपुरी के मंदिर में भगवान के साथ गर्भद्वार में जगन्नाथजी के चरणों तक जाकर दर्शन का लाभ मिला। साक्षात् आनन्द स्वरूप परमात्मा इस तरह नित्य नया आनन्द प्राप्त कराते थे।

श्रीपुरी से भगवान कटक पधारे। मैं जयपुर आई तब मालूम हुआ कि पिताजी ने कई दिनों से जो डेढ़ सौ रुपये का मनीआर्डर भेजा था वह मुझे न मिलकर कई दिनों के बाद जयपुर वापिस आया। मानो सर्वज्ञ भगवान जानते ही थे कि मनीआर्डर मुझे मिलनेवाला नहीं है जिससे झरिया में जबरदस्ती पैसे दिये थे।

[३६]

कृपा सनेह सदन रघुराऊ

थोड़े दिनों बाद वृन्दावन से भगवान का पत्र आया, जिसमें गाँव का नाम कहीं भी लिखा न था लेकिन पोस्ट की स्टेम्प में वृन्दावन पढ़ने में आ रहा था। वृन्दावन जयपुर से नजदीक होने के कारण दर्शन की उत्सुकता से दो घंटे में तैयार होकर वृन्दावन जाने के लिये रवाना हुई। रात को बारह बजे मथुरा पहुँची। मथुरा प्रथम बार ही गई थी कुछ देखा न था। पिताजी के कहने से बंगाली घाट पर एक धर्मशाला में रात रुकी, सुबह वृन्दावन गई। कोई पता न होने से सीधी पोस्ट ऑफिस पहुँची। पोस्ट मास्टर से मिलकर भगवान के बारे में पूछने पर बताया वे तो यहाँ से परसों चले गये, उन्होंने भगवान का हस्तलिखित पत्र बताया जिसमें लिखा था –

आदरणीय पोस्ट मास्टर साहब,

मैं यहाँ से जा रहा हूँ मेरे पत्र, तार या मनीआर्डर आये तो निम्न पते पर भेजने की कृपा करें, पता झरिया का लिखा था। ऐसा लगता था मुझे पत्र लिखने के बाद तुरन्त ही निकल गये होंगे। मैं उसी वक्त मथुरा वापिस लौटी और जयपुर जाने के लिये बस स्टेण्ड गई। बस आने में देर होने से वहीं पर बैठे-बैठे भगवान को पत्र लिखा, दर्शन न मिलने से प्रेम से लेकिन थोड़े रोष के साथ पत्र लिखना प्रारंभ किया –

भगवान, क्या आप नहीं जानते थे कि मैं आऊँगी ही, भले आप ने पत्र में गाँव का नाम न लिखा यदि चले ही जाना था और आप कहाँ हैं यह नहीं बताना चाहते थे तो पोस्ट की स्टेम्प में भी क्यों छपने दिया ? आप मुझे अपनी नहीं मानते हो जभी तो ऐसा करते हो ना ? फिर आपको अन्तर्यामी कौन कहेगा ? मैं जयपुर से जिस तरह से मथुरा आई और वापिस जा रही हूँ वह भी सारी बात लिखी। आप सदैव साथ में हो तो इस तरह परेशान क्यों करते हो ? इसका मतलब आप चाहे तब साथ रहते हो, सब जानते हो और चाहे तब अनजान बन जाते हो और जरूर मुझे अपनी नहीं मानते हो तभी तो पत्र में भी

सम्बोधन केवल 'प्रिय रमा' करते हो, 'मेरी रमा' नहीं लिखते हो ना ? बस आ जाने पर पत्र पूरा करके वहीं से पोस्ट कर दिया ।

जयपुर पहुँच कर प्रत्युत्तर की राह में दिन बीतने लगे । एक सप्ताह बाद पिताजी के मित्र भगवानजी भाई कोटक खादी कार्यालय के काम से राजकोट से बांदा गये थे, वहाँ से वे जयपुर आये । उन्होंने भगवान का पत्र दिया, लिफाफे पर ही भगवान ने लिखा था,

रमा रमण भगवान की जय

बड़ी जिज्ञासा से पत्र खोलकर पढ़ा ।

श्री रामचन्द्राय नमः

बांदा
२३-५-६३

प्रिय मेरी रमा सादर आशीर्वाद

वृन्दावन से पत्र दिया था मिला होगा । स्वास्थ साधारण है केवल उल्टी बन्द है शेष वैसा ही है जैसा तुम देख गई थी ।

मैं जब स्थान ठीक कर लूंगा तब तुमसे मिलूंगा तुम मेरी चिन्ता न करना ।

भजन करना विषयों से बचना
मैं शीघ्र ही आने वाला हूँ चिन्ता न करना
सबको आसीस कहना

रणछोड़दास का आसीस

भगवानजीभाई द्वारा जानने को मिला कि उनको अचानक बांदा में भगवान के दर्शन का लाभ मिल गया और वहाँ से वे जयपुर आ रहे थे जिससे यह पत्र भगवान ने उनके साथ भेजा था । भगवान का आगे का प्रोग्राम उन्हें मालूम न था ।

मैं तो "मेरी रमा" संबोधन पढ़ते ही आश्चर्य में डूब गई कि मेरा पत्र मिला तो नहीं लगता फिर मेरे पत्र का जवाब कैसे मिल गया ? परन्तु सर्वेश्वर भगवान के लिये क्या असम्भव है ? इसके प्रत्युत्तर में मैंने झरिया के पते पर दूसरा पत्र लिखा ।

थोड़े दिनों बाद झरिया से मेरे दोनों पत्रों का उत्तर आया ।

श्री रामचन्द्राय नमः

रामनगर

२-६-६३

परम प्रिय रमा, सादर आशीर्वाद

तुम्हारे दो पत्र मिले, उनमें मीठा ठपका बड़ा संतोषप्रद है। मेरी रमा तुमसे छिपाव रखता ऐसा तो मैंने सोचा भी नहीं था देखो तुम सत्य मानो या न मानो यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है पर बात यह है कि मैंने तुमसे कहा था कि तुमारे पास में रहने का विचार करता हूँ और वृन्दावन रहने का सोचा। मथुरा में रहकर स्थान आदि का निश्चय करके रहना चाहता था पर वहाँ का जलवायु अच्छा नहीं रहा, प्रतिकूल पड़ा तब विचार आया कि मैं उदयपुर जाऊँ पर वह न बन सका। कुसुन्डा का सोचा और अभी तक तो पहुँचा नहीं। अब तुम ही विचार करो कि मैंने तुमसे क्या छिपाव किया ? जब मुझे स्वतः ही मालूम नहीं कि मैं कब कहाँ पहुँचूंगा तब तुमसे क्या कहूँ ? तुम ऐसा कभी न मानो जैसा मानती हो।

मेरा स्वास्थ ठीक हो रहा है बराबर भोजन लेता हूँ, आराम करता हूँ और बराबर नियम चालू कर दिया है। मैं कल बरवारा जा रहा हूँ। वहाँ पर बिल्कुल एकान्त में रहूँगा और बाद में गुरु पूर्णिमा गोंदिया की करूँगा।

मैं कभी भी तुमसे छिपाव नहीं रखता पर ऐसा हो ही जाता है क्या करूँ ?

सबको आसीस कहना।

रणछोड़दास का आसीस

ता. क. मैं कुसुन्डा नहीं बरवारा जा रहा हूँ तुमको मथुरा जाने का बहुत कष्ट हुआ पर क्या करूँ।

रणछोड़दास

थोड़े ही दिनों में दो पत्र और एक तार आया।

श्री रामचन्द्राय नमः

श्री रमारमण परमात्मने नमः

मेरी रमु सादर आशीरवाद

रमु मेरे पत्र, तार पहुँचे होंगे । मेरा स्वास्थ साधारण सुधारा पर है रमा तुम वृन्दावन गई यह बहुत कष्ट हुआ पर धर्म तो तुमारा यही था मुझे समझ में आया ।

मेरा स्वास्थ ठीक होने पर बहुत जल्दी पूर्ण स्वास्थ पर मिलूंगा । रमु तुम गुरु पूर्णिमा पर जरूर गोंदिया आना हो ।

देखो भूलना नहीं सबको आसीस

श्री रामचन्द्राय नमः

श्री रमारमण विजयते

प्रिय अतिप्रिय रमा सादर आशीरवाद

तुमको वृन्दावन जाने में कष्ट हुआ उसे विचारते ही तुमारे प्रेम आवेश से मन गद्गद् हो जाता है पर क्या करूँ मैं तो चला आया था ।

मेरा स्वास्थ ठीक है उल्टी को तो १½ मास से विदा कर दी है । यदा कदा खांसी आती है वह भी जब परिश्रम का अनुभव होवे तो । रमा गोंदिया जरूर आना फिर अपने सोचेंगे अच्छा सबको आसीस

रणछोड़

आप्तजनों का थोड़ा भी कष्ट भगवान सह नहीं पाते । वृन्दावन जाने पर दर्शन न होने से मुझे जो दुःख लगा था वह अभी भी प्रभु भूल नहीं पाये । उस विषय में थोड़े-थोड़े दिनों में पत्र आते रहे । परन्तु इस बार के पत्र से जानने को मिला कि भगवान के पास रहने वाले व्यक्ति मेरे कोई पत्र भगवान को नहीं देते थे और कई बार उनके लिखे पत्र मुझे पोस्ट नहीं करते थे । ऐसी घटना से भगवान को भी बहुत दुःख होता था । कभी-कभी बोलते थे, "किसी के भी पत्र चोरी करना या छिपकर बात सुनना बहुत बड़ा अपराध है ।" कोई पुण्योदय से संत और भगवंत के दर्शन व सान्निध्य मिल पाता है लेकिन उनके हृदय में स्थान प्राप्त करने के लिये उनकी आज्ञानुसार शुद्ध आचरणमय जीवन बनाने पर ही उनकी प्रसन्नता प्राप्त होती है । इस बात का दुःख व्यक्त करते हुए भगवान ने पत्र लिखा –

प्रिय रमा सादर आसीस

तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला । यहाँ पर पत्र खोल डालते हैं । तुमने पत्र तो नहीं दिये ? यदि दिये तो कितने और क्या लिखा था ? यह सब पत्र खोल लेते हैं तुम सावधान रहना और हमेशा पत्रों का ध्यान रखना । मुझे बहुत चिन्ता हो गई । यहा सब पत्र खोलते हैं देखो इनकी नीति ।

मेरा स्वास्थ ठीक है २७ को मैं जा रहा हूँ ।

रणछोड़दास का आसीस

तुमको मेरे पत्र मिले की नहीं ।

१६६६ में इसके साथ लिखा हुआ एक पत्र विचित्र ढंग से मिला जिसकी चर्चा आगे आयेगी । ऐसे व्यक्तियों से भगवान पत्र द्वारा और प्रत्यक्ष मिलने पर भी उनके नाम देकर उनसे सावधान करते थे । ईर्ष्या और द्वेष से मानस कितना नीचे उतरता है !! जिन व्यक्तियों से भगवान जिस तरह से सावधान करते थे और जिस प्रकार से मैं उनके वर्तन की अनुभूति करती थी तब मन ही मन प्रश्न उठता था, ऐसी व्यक्तियों को साथ रखकर भगवान अधिक स्नेह देते हुए क्यों दिखाई देते हैं ?

इस विषय में मेरे परम उदार पतितपावन भगवान मुझे समझाते थे, "रमा सोचो, अच्छे को तो सभी चाहते हैं, प्यार करते हैं फिर ऐसे लोग कहाँ जाय ? यदि मैं भी इन लोगों को छोड़ दूंगा तो क्या हाल होगा तुम्हें मालूम है ? करत करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान । कभी न कभी तो सुधरेंगे । इस प्रसंग से संतों से सुनी हुई बात याद आती है कि भगवान राम धनुष बाण क्यों रखते हैं ? शरणागत को अभय करने के लिये ही कि, तुम सीधे या टेढ़े कैसे भी हो शरण में आ जाव यहाँ पर सबका स्वीकार है और परम करुणामय प्रभु बाण जैसे सीधे को तो कभी कोई कार्य हेतु अपने से दूर भी भेजते हैं लेकिन धनुष जैसे टेढ़े जीवों को तो सदैव अपने पास रखते हैं । भगवान के प्यारे संतों का भी यही परम उदार, करुणामय सहज स्वभाव देखने को मिलता है ।

मेरे दीनदयालु के ऐसे करुणासभर शब्दों को सुनकर मैं गद्‌गद्‌ हो गई । अन्य किसी व्यक्ति की प्रश्नोत्तरी में भी भगवान के शब्द सुने हैं:— एक व्यक्ति ने अमुक व्यक्ति का जीवन जानते हुए पूछा कि, "भगवान यह व्यक्ति आपके इतने निकट रहते हैं और आप भी उसे इतने मान-सम्मान के साथ समीप रखते हो तो क्या आप उसके व्यवहार से अनजान हो ?" भगवान ने कहा, "देखो भाई, साधु याने उकरडा, वहाँ कचरा ही तो आता है उसे साफ करना ही तो संतों का काम है, ऐसा नहीं कि मैं कुछ नहीं जानता, जानते हुए भी रखता हूँ कारण यही हमारा धन्धा है ।" संत कृपा करके ऐसे जीवों को अधिक स्नेह, आदर देते हैं, परन्तु—

बायस पालिय अति अनुरागा, होहि निरामिष कबहुँ कि कागा
विषयी जीव पाई प्रभुताई, मूढ मोहवश होहि जनाई

शठ हो तो सुधर सकता है लेकिन खलों का सुधारना तो —

"शठ सुधरही सतसंगति पाई, पारस परसि कुधातु सुहाई"

लेकिन

"खलहु करहि भल पाय सुसंगू, मिटहि न मलिन सुभाव अभंगू"

[४०]

करिहहिं सत्य कृपानिधि ईशा

भगवान के बुलाने से गुरु पूर्णिमा पर गोंदिया गई । पूर्णिमा के दिन सुबह रामायणजी के विषय में कोई प्रसंग चल रहा था तब भगवान ने कहा, "किसी के पास रामायण हो तो लाव मैं चौपाई भूल गया ।" मैंने रामायणजी दी तो कलम माँगकर सही कर दी,

रमा रमण परमात्मने नमः

बाद में पूजा के लिये मुझे बुलाई तब कहा, "रमा, तुम नाक में नथ क्यों नहीं पहनती हो ?" मुझे आश्चर्य लगा ! आगे कहा, "देखो भारतीय आर्य संस्कृति के हिसाब से आदर्श जीवन जीना, यह सब आर्य नारी के भूषण हैं । हाथ में चूड़ी, नाक में नथ, गले में कंठी और टीका होना ही चाहिये ।" आज शरीर पर जो भी श्रृंगार है वह सब भगवान

की प्रसादी है । आज कई लोग मुझे इस विषय में प्रश्न करते हैं और कई विरोध के साथ तरह-तरह की बातें भी करते हैं । क्या पहनना, कैसे रहना, कहाँ रहना उस बारे में बिन माँगे सलाह-सूचन भी करते हैं परंतु मुझे समाज को तो रिझाना नहीं है, जिसे रिझाने हैं वे तो सब जानते हैं फिर भी—

जो तुम मिलतेहु प्रथम मुनीशा, सुनतिऊ शिख तुम्हारि धरि शीशा
अब मैं जन्म शंभुहित हारा, को गुण दूषण करै विचारा

श्री रामकृष्णदेव परमहंस के जीवन में उनके अन्त समय में जब केन्सर की तकलीफ हो गई थी, लोग तबियत देखने के नाम पर आकर अपने स्वार्थी स्वभाव से व्यवहार करते थे उस वक्त वे खड़े होकर माँ काली की छबी के पास जाकर कहते थे, "हे माँ ! जगदम्बा तो तू है मैं नहीं कि इस सेर दूध में मिले हुए पांच सेर पानी जैसे संसारियों को शुद्ध कर सकूँ" यदि ऐसे महान पुरुष की यह दशा हो तो पामर जीव का क्या ?

समाज में संसारियों का मानो यह मौलिक स्वभाव है कि साधुओं को मनमाने जैसे अपनी इच्छानुसार की परिधि में बांधने के पूर्ण प्रयत्न करते हैं । कोई समय पर आपने संन्यास लिया है, आप साधु हो, आपको ऐसे रहना चाहिये, वैसे करना चाहिये आदि सिखावन की गठरियाँ बँधाते है परंतु यदि सचमुच किसी के प्रति साधु भाव होवे तो साधु के प्रति अपना क्या फर्ज है या हम संसारियों को उपदेश देने का अधिकार है या नहीं वह भूल जाते हैं । अस्तु साधु जीवन को जो सन्ताप पहुँचाता है उसे धिक्कार है।

खैर! जिसको इस मार्ग पर चलना है उसके साथ ऐसा होगा ही । इस तरह से प्रभु के विविध कोमल या कठोर कृपा के अनुभवों में से निकलने के लिये संसारियों से सावधान रहना है, ऐसे प्रसंगों से तो आत्मबल अधिक बढ़ता है ।

संत पू. श्री मोटाने भी अपना अनुभव लिखा है कि, "आज इस कठिन काल में हर किसी को उनके ढंग से रहो, जीवो, बरतो यही रुचि रहती है लेकिन अब इस जीव से सदाकाल उस प्रकार बर्ताव संभव नहीं है, अन्य जीवों को यह रुचिकर न हो वह भी समझने वाली बात है ।

साधना की कुछ कक्षा बिताने के बाद एक समय ऐसा आता है कि जीवात्मा उस समय एक साथ परवाह करने वाला और लापरवाह भी हो जाता है। परवाह करनेवाले के रंग-ढंग हर किसी को पसन्द आते हैं और लापरवाह के रंग-ढंग किसको पसन्द ? अब प्रभु कृपा से केवल किसी की रुचि अनुसार हमें जीना नहीं है। पूर्व जीवन का तो प्रभु कृपा से कायापलट हो चुका है उसे समझने के लिए, अनुभूति के लिये और निरीक्षण के लिये जिस जीव को जो भी लगता है ठीक है। हमें तो अब उनकी कृपा से किसी को अच्छा-बुरा लगाने की जरा भी इच्छा नहीं है। समझपूर्वक बहुत समय तक उनकी कृपा से ऐसा वेश पहना था। हर कोई जीव यदि अपनी-अपनी इच्छा और रीति से चलता है तो फिर यह जीव भी स्वतंत्रता से बर्ते उसमें किसी को क्यों बाधा होनी चाहिये। मैं कहाँ किसी को कहने जाता हूँ कि मेरे पास आव। यदि आप अपनी मरजी से आते हो तो जिस हेतु से आये हो उस हेतु को पूरा करने के भाव से कुछ कहना, करना बनता है, उसे ठीक ढंग से स्वीकारने की तैयारी न हो तो अवश्य जा सकते हो। उसके लिये प्रभु कृपा से हमें कोई हर्ष-शोक नहीं है, हम तो प्रभु कृपा से हमारे रंग में जैसे भी है वैसे है। हम हमारा कुछ भी ढकना नहीं चाहते। हम जैसे भी लगेंगे, दिखेंगे या बर्तेंगे उसकी परवाह नहीं है। हमारे जीवन के लिये यदि किसी को कोई बाधा है तो वह पल भर भी खड़ा न रहे ऐसी हमारी बार-बार विनती और प्रार्थना है। जीवन में कुछ बाधा लगे तो हमें लगनी चाहिये। समय-समय पर कैसी-कैसी चोट लगी है, उस वक्त, उस हेतु श्री प्रभु कृपा से जो-जो प्रार्थना हुई है वह देखकर कोई जीव उस बारे में सोचे, यह भी ऐसे जीवों को हमारी विनती है।

समाज के इस स्वभाव से कोई भी भक्त या महापुरुष नहीं बच पाये हैं। मेरे जीवन में भी ऐसी अनेक घटनायें घटी हैं, आज भी घट रही है और आगे भी घटेगी। उसमें यदि परमात्मा का सहारा और उनकी कृपा का बल न होता तो ना जाने क्या दशा होती ? यह अनुभूति आज भी मिल रही है। विद्यार्थी अभ्यास क्रम में जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा उसके समक्ष कठिन विषय आयेंगे ही और जो कुछ पढ़ाया गया, सिखाया गया वह सब प्रयोगात्मक सिद्ध करना ही पड़ता है उसी प्रकार जीवन बनाने के लिये भी प्रसंग उपस्थित होना आवश्यक है।

गोंदिया से परिवार के साथ मैं नागपुर गई, भगवान भी नागपुर बड़े भैया के घर थोड़ी देर के लिये पधारे। दूसरे दिन सुबह कुछ बहनों को ट्रेन में बिठाने के लिये वर्धा पधारे। वहाँ से वापिस नागपुर घर पर पधारे, सुबह भोजन पाया। उसके बाद अनंतपुर वाले भाई और एक बहन को साथ लेकर दक्षिण की ओर पधारे और मैं जयपुर आई।

[४१]

करौं कृपानिधि एक ढिठाई

भगवान के पास से आने पर घर में मन न लगना स्वाभाविक है परन्तु गृहकार्य की जिम्मेदारी सम्हाले बिना छुटकारा न था। धीरे-धीरे नियम चालू किया।

मन तहँ-जहँ रघुवर वैदेहि, बिनु मन तन दुःख सुख सुधि केही

थोड़े दिनों बाद हैदराबाद से पत्र आया :–

श्री रामचन्द्राय नमः

प्रिय रमा सादर आसीस

मेरा स्वास्थ साधारण है मेरा एक पत्र मिला होगा। मेरे स्वास्थ के विषय में चिन्ता न करना मैं जल्दी तुमसे मिलूंगा ता. २४ से ता. ४ तक हैदराबाद रहूंगा। मैं आराम तो लेता हूँ पर स्वास्थ पर कोई असर नहीं पड़ता।

तुम बराबर नियम करना हं और सुनो तो बराबर खूब विचार-पूर्वक हं। सबको आसीस

रणछोड़दास का आसीस

बहुत दिनों से पत्र की राह थी। इस पत्र से मालूम हुआ कि एक पत्र मिला नहीं। लम्बे समय से खबर न मिलने पर मन अशांत था उस कारण आवेश में पत्र लिखा था कि आपकी आज्ञा मानकर मैं जयपुर आ जाती हूँ, आप नियमित पत्र देने को कहते हो परन्तु नहीं देते हो तो

अब मैं भी आपको पत्र नहीं लिखूँगी और आपका पत्र पढूंगी भी नहीं। आपने मुझे लिखकर दिया है ना कि पत्र लिखोगी ? पत्र पढ़ोगी ? तो इसका पालन नहीं करूँगी। राह देख देखकर थक गई आपका कोई पत्र नहीं मिला जिससे गुस्सा आ जाता है। भगवान आप क्या जानो कि दूर रहने पर पत्र कितना बड़ा सहारा है, आपको हमारे जैसे की क्या जरूरत ? कि याद भी क्यों करो।

कमलन को रवि एक है, रवि को कमल अनेक
हमसे तुमको बहुत है, तुमसे तुम मोंहे एक

अब पत्र नहीं आयेगा तो मैं भी आपका कहना नहीं मानूँगी। भजन नियम किसके लिए करने का ? क्या अन्य कोई देव को प्रसन्न करना चाहती हूँ ? आदि बहुत कुछ लिखा था। यह पत्र मिलने पर दूसरा पत्र क्षमा याचना के लिये लिखा। मेरे दोनों पत्रों का प्रत्युत्तर आया।

प्रिय रमु सादर आसीस

तुम्हारे पत्र मिले तुम लिखती हो वह बराबर पर मेरी रमु तुम विचार करो क्रोध के बस में होने से यह परिणाम आया।

मेरी रमु तुम सर्वदा क्रोध के बस में न होने का प्रयत्न करना विषयों से बचना और भजन करना। मैं ता. २१ को कव्वल जा रहा हूँ। सबको आसीस कहना।

रणछोड़दास का आसीस

इस पत्र के जवाब में मैंने लिखा था, भगवान गुस्सा करना अच्छा तो नहीं लगता है परन्तु जब मन व्याकुल और विह्वल बन जाता है तब भान भूल जाती हूँ और आपको गुस्से में कुछ न कुछ लिख देती हूँ क्योंकि और तो किससे कहूँ ? बाद में तो दुःख और पश्चाताप होता है और सोचती हूँ अब कभी गुस्सा नहीं करूँगी, प्रयत्न भी करती हूँ परन्तु

सीस नवें तो तुमहिसु, तुमहिसु भाखुं दीन,
जो झगरू तो तुमहिसु, तव चरणन आधीन।

भगवान आपको गुस्से में मनमाना लिख देती हूँ जिससे अब आप सब याद रखकर मुझसे नाराज रहोगे ? और मुझे नहीं बुलाओगे ? इस बार क्षमा कर देना, आगे से ध्यान रखूंगी।

मैं जानऊँ निज नाथ सुभाऊ, अपराधि पर कोह न काऊ

श्री रामचन्द्राय नमः

ता० १-८-६३

प्रिय मेरी रमु सादर आशीर्वाद,

तुमारा प्रेमाल पत्र मिला, तुम जरा भी भूतकाल का विचार न कर, विषयों को क्षणिक समझकर उससे दूर रहने का प्रयत्न कर भजन बढ़ाना मुझे तुमसे पूर्ण संतोष तथा विश्वास है।

मैं आज ही ५½ की गाड़ी से डाकोर की तरफ जा रहा हूँ और थोड़े दिनों में अवश्य अपने मिलेंगे।

अच्छा अब सुनो तुम्हें क्षमा नहीं करके दंड करेंगे भरोगी दंड ठीक है न ?

सबको आसीस कहना

रणछोड़दास का आसीस

रहती न प्रभु चित चूक किये की, करत सुरति सतवार हिये की

डाकोर पहुँचकर भगवान ने पत्र लिखा –

श्री रामचन्द्राय नमः

डाकोर

ता० १०-८-६३

प्रिय रमा सादर आसीस,

मेरा स्वास्थ ठीक है तुमारा मानसिक सन्तुलन कैसा है ? तुम पत्र तो पढ़ोगी ही नहीं ठीक है न ?

रमु देखो जीवन शंकायुक्त न बनाओ और अपना सम्बन्ध लौकिक या विषयात्मक नहीं है। देखो तुम पूर्व संस्कारों द्वारा इस शरीर से सम्बन्धयुक्त हुई हो। तो कुछ कर लो (खूब ध्यान) मैं गुरुवार को यहाँ से इन्दौर जाने का विचार करता हूँ। वहाँ से लखनौ पीछे का नक्की नहीं। सबको आसीस

रणछोड़दास का आसीस

इस पत्र के बाद थोड़े दिनों के लिये भगवान कहाँ हैं यह खबर न थी जिससे पत्र लिखने का ठिकाना था नहीं जिससे सिर्फ राह ही देखनी थी। आदेशानुसार हर गुरुवार को गलताजी नियमित जाती थी उसके अलावा और कहीं नहीं जाती थी। कभी स्वप्न दर्शन होते थे और

पिताजी को कभी प्रत्यक्षता की अनुभूति मिलने पर प्रतीक्षा के लिये बल मिलता रहता था । थोड़े समय के बाद नैनीताल से पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

नैनीताल

ता० २-१०-६३

प्रिय रमा सादर आसीस,

स्वास्थ ठीक है तुम चिन्ता न करना ।

भजन को सुन्दर तन है विषयों को नहीं यह ध्यान में रखना मैं ता० १६ को पुष्कर पहुँचूंगा तुम आओगी न ?

मैं आज यहाँ से जा रहा हूँ ।

राजकोट जा रहा हूँ ।

सबको आसीस

हमेशा साथ नहीं रख पाते थे परन्तु प्रोग्राम बराबर बताते रहते थे और स्वयं तो साथ रहते ही थे । जरूरत पड़ने पर अनोखी दिव्य झांकी की अनुभूति भी कराते थे । बस थोड़े ही दिनों में दर्शन का लाभ मिलने वाला था जिससे आनन्द के साथ प्रतीक्षा में समय बीतता था ।

हर साल की भाँति पुष्कर में कार्तिक की चतुर्थी भगवान का प्रागट्य दिन होने से दर्शन पूजन का अनोखा लाभ मिला ।

आज जनम का दिन है सुहाना
कैसे मैं खुशियाँ मनावौं
हरि कैसे मैं खुशियाँ मनावौं
दिल के सिवा क्या दूँ तोहफा
मेरी उमरिया तुम पावौ........

हमेशा की भाँति उत्सव समाप्त करके भगवान जयपुर पधारे । एक-दो दिन ठहरे और भंडारा करके आनन्द प्रदान करके जयपुर से आगे के लिये रवाना हो गये । थोड़े दिनों बाद पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

प्रिय रमा सा० आ०,

मेरा स्वास्थ सुधार पर है तुम चिन्ता न करना, भजन करना खूब मन लगाकर । यहाँ ठंडी न होने से खाँसी नहीं आती श्वास भी कम है शीघ्र मिलूंगा अच्छा ।

रणछोड़दास का आसीस

जयपुर से निकलते समय कहा था, "मैं तुम्हें थोड़े दिन अपने साथ रखना चाहता हूँ, हो सका तो मथुरा, वृन्दावन बुलाऊँगा । देखो कभी भविष्य में हिमालय में भी ले जाऊँगा ।" पत्र आया,

श्री रामम्

प्रिय रमा सादर आसीस

स्वास्थ खराब है । वृन्दावन, मथुरा जाना नहीं मैं तार दूंगा । सबको आसीस

रणछोड़दास



[४२]

मोपर कृपा परम मृदुलाऊ

भगवान के पास १९६४ के फरवरी में गोंदिया नेत्रयज्ञ में जाना हुआ । जयपुर से मेरी एक सहेली साथ में आई थी । गुजरात, सौराष्ट्र से जयपुर दूर हो जाने से मुझे किसी का साथ मिलना मुश्किल था । सदा केवल भगवान का ही साथ रहता था । स्थान तो बराबर याद नहीं है लेकिन एक बार एक जगह पर भगवान ने मुझे बुलाया था वहाँ पर रात को देर से गाड़ी पहुँच रही थी जिससे पिताजी ने मुझे नहीं भेजा । थोड़े समय के बाद भगवान जयपुर पधारे तब मुझे न भेजने का कारण पूछकर बोले, "अच्छा पुरुषोत्तमभाई, अभी भी तुम उसे अकेली समझते

हो यह कभी भी अकेली नहीं है, इसको कभी भी, कहीं भी आने देना मैं सदैव इसके साथ हूँ ।" उसके बाद पिताजी भी कभी रोकते नहीं थे। मैं भी घर में अकेली अंधेरे में एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने के लिये जो डरती थी अब भगवद् कृपा से कभी भी, कहीं भी जाने में डरती नहीं थी। भगवान सदैव साथ होने से पहुँच जाती थी। भय का नामोनिशान अब मानो जीवन में रहा ही नहीं। आज भी इसी कारण निर्भयता से घूम-फिर सकती हूँ। आज भी कई लोग पूछते हैं, "बहन, आप सब जगह अकेले आते-जाते रहते हो, डर नहीं लगता ?" तब मन में कहती हूँ, "एक ही भरोसे से अभय हूँ कि मैं अकेली नहीं हूँ।"

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास
राम भरोसो राम बल, राम आस विश्वास
सुमिरि राम मंगल कुशल, चाहत तुलसीदास

एक बार जो भगवान ने अभय वचन दिया है, "मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ, मेरे साथ रहते हुए किसी की ताकत नहीं तुमारा बाल बाँका कर सके" बस यही बल से कहीं जाने-आने में किसी प्रकार का विचार या रात-दिन का भय नहीं रहता। समय-समय पर सतत् सान्निध्य की प्रतीति कराते रहते हैं।

मन अब तोहे चिंता काहे की, तेरे सिर पर गुरु महाराज.......

महिलाओं के डिब्बे में सफर करने पर बहनें अपने स्वभावानुकूल अनेक प्रश्न पूछती थीं। पहले तो सत्य बातें कहने पर खूब विचित्र प्रश्न पूछती थीं कि जवाब देना मुश्किल हो जाता था कारण साधक जीवन को समझने की क्षमता कहाँ ? जिससे उनके प्रश्नों के उत्तर हाँ या ना में ही दे देती थी। "ससुराल जा रही हो ? शादी हुए कितने साल हुए ?" आदि प्रश्नों के जवाब देते थक जाने से मौन रहने का निश्चय किया तब बहनें परस्पर बातें करती थीं, लड़की देखने में तो सुन्दर है पर बेचारी गूंगी है, ऐसे नित्य नये अनुभव मिलते थे।

गोंदिया में भगवान के निवास-स्थान से थोड़े दूर केम्प में हमारे लिये रहने का प्रबन्ध किया गया था। प्रथम बार नियमितता से माइनर

वॉर्ड में सेवा स्वीकार की थी । सुबह से रात तक वॉर्ड में ही समय पूरा हो जाता था, कार्य में आनन्द आता था । मरीजों के बिछाने आदि का ध्यान रखना, ठीक से ओढाना, समय पर जमादारिन को बुलाकर सौंपना और कभी-कभी जरूरत पड़ने पर उनके साथ भी जाना पड़ता था । रजिस्टर बनाना और मरीजों के साथियों से मिलाने का काम भी बड़े प्रमाण में चलता था । माइनर वॉर्ड होने से हर दो-तीन दिन में नये मरीज आते-जाते रहने से उनकी हेर-फेर में भी उतना ही समय लगता था । मरीजों को दवाई देने की जिम्मेदारी मैं नहीं स्वीकारती थी कारण उस विषय में मैं अनजान थी ।

भगवान के पास कभी कोई भारी चीज उठाने की या ऊँचाई पर रखने की या उतारने की रहती थी तब कहते थे, "कहाँ गई रमा, उस पहाड़ी को बुलाव वह उठा लेगी ।" उन दिनों में अधिक मात्रा में श्रम या जागरण करने पर भी प्रभु कृपा से थकान महसूस नहीं होती थी ।

स्वयं भगवान को भी एक मरीज की भूमिका निभाते वक्त सेवक-गणों को अपने भावानुसार दवाई देते हुए देखती थी । हालांकि ऐसी सेवा का अवसर मेरे भाग्य में आया ही नहीं कारण दो-चार बार जब भगवान के साथ एकांत में रही उतने दिन ना तो दवाई लेते थे और ना ही तबियत बिगाड़ते थे । भगवान स्वयं एक बार बोले भी थे,

कफदानी और कानखुतरनो, सौंफ सुवा और लौंग
पेप्स मल्हम और तेल देखकर, बना भयो है मौन

इन शब्दों पर से प्रतीत होता है कि जो भी व्यक्ति अपने भावानुसार सेवा करते थे भगवान मौन रहकर वह स्वीकारते थे । बाकी उनके लिए यह कोई चीज की आवश्यकता नहीं थी ।

चिदानंदमय देह तुम्हारी, विगत विकार जान अधिकारी
सो जाने जेहि देहु जनाई..........



[४३]

करहिं कृपानिधि सोई संयोगा

भगवान के आदेशानुसार नेत्रयज्ञ पूरा होने के बाद नागपुर होकर मैं जयपुर आई । नेत्रयज्ञ में अफ्रीका से उषा बहन आई थीं, हम वॉर्ड में साथ ही काम करते थे, यही परिचय था और वे मेरे प्रति स्नेह रखती थीं। उनकी भाभीजी अफ्रीका से थोड़े समय के लिए भगवान के दर्शनार्थ राजकोट आई थीं । उन दिनों में भगवान कहाँ हैं यह खबर न होने से वे राजकोट, बम्बई तलाश करते हुए पुष्कर आये । वहाँ भी खबर न मिलने पर जयपुर आये । हालांकि मेरे पास भी पक्की खबर नहीं थी लेकिन जब भी मुझे कोई खबर न हो तब मैं अनंतपुर पत्र लिखती थीं कारण अनंतपुर में हमेशा भगवान के प्रोग्राम के बारे में हरेक खबर रहते थे । कई बार भगवान की आज्ञा न होने से वे लोग खबर न दे यह बात अलग थी । मैंने उषा बहन को अनंतपुर जाने के लिये कहा । उन्हें जल्दी ही अफ्रीका लौटना था इसलिये दर्शन के लिये अधीर थे । उन्होंने मुझे साथ चलने के लिये आग्रह किया लेकिन आज्ञा के बिना जाने का डर था जिससे मैंने ना कही । परन्तु वे अनजान होने से अन्त में मुझे साथ देना पड़ा । भगवान नाराज होंगे तो ? मन में यही डर था ।

मैं, उषा बहन, भाभीजी और उनकी छोटी बेबी अनंतपुर के लिये रवाना हुए । घर से निकलते ही सुन्दर सगुन मिले, बछड़ा गाय का दूध पी रहा था । मानसजी में बताया गया सगुन याद आया,

सुरभि सन्मुख शिशुहिं पियावा..........

मोरे जिय भरोस द्रढ़ सोई, मिलिहहिं राम सगुन शुभ होई

यह देखकर मन प्रसन्न हुआ और विश्वास भी दृढ़ हुआ कि भगवान अवश्य मिलेंगे । कई बार गुरुवार को गलताजी जाने पर नेवले के दर्शन मिलते थे तब भी मानसजी के सगुन याद आते थे –

नकुल दरश सब काहु पावा

मानसजी के आधार पर बहनों के लिये बांया अंग फड़कना सगुन माना गया है उस हिसाब से बायीं आँख या भुजा फड़कने पर कई बार भगवद् दर्शन का लाभ मिला है । कभी-कभी भगवान स्वयं पधारते थे या मुझे अपने पास बुलाते थे । रास्ते में भगवद् गुणगान करते-करते हम कोटा, गुना होकर तीसरे दिन दोपहर में अनंतपुर पहुँचे, जाते ही दर्शन मिले । पहले तो डर के कारण मैं न गई । भगवान ने उषा बहन से पूछा, "कौन-कौन आया है ?" उन्होंने मेरा नाम बताया तब पूछा, "रमा कहाँ है ?" फिर तो मैं भी दर्शन को गई । भगवान खूब प्रसन्न थे । एक दिन रुककर जयपुर वापिस आये ।

अधिक मास होने से दो बहनों के साथ मैं चित्रकूट के लिये रवाना हुई । भगवान रामनवमी पर चित्रकूट पधारने वाले थे परन्तु अधिक मास चित्रकूट में करने की भावना से मैं जल्दी गई थी । चित्रकूट पहुँचते ही कितना आश्चर्य कि अचानक भगवान के दर्शन हुए ! ! हमारे पहुँचने से पहली रात को ही भगवान वहाँ पधारे थे और उसी दिन पुष्कर जाने के लिये निकलने वाले थे । मुझसे कहा, "अब यहीं रुको मैं थोड़े दिनों में वापिस आ रहा हूँ । अधिक मास के कारण केवल दूध-केला लेकर मैं उपवास करती थी परन्तु वह वहाँ मिलना संभवित न था जिससे वहाँ की बाड़ी में जो पके टमाटर होते थे वही लेकर उपवास किये थे । नागपुर से धीरुभाई भी आये थे, उनके साथ रोज जल्दी सुबह श्री कामद्गिरि परिक्रमा को जाती थी । करीब दस-बारह दिन में भगवान पधारे । श्री रामनवमी और श्री हनुमान जयन्ती का उत्सव भगवद् सान्निध्य में मनाकर मैं जयपुर आई और भगवान बम्बई पधारे ।

मैं आदेशानुसार मई में पुष्कर गई । भगवान बम्बई से जोधपुर एक लग्न प्रसंग हेतु जाकर पुष्कर पधारे । उन दिनों में पुष्कर में आज जो रामधाम है वह भूमि लेने के लिये बातचीत चल रही थी । भगवान ने कहा, "रमा, जाव देखकर आव, गांधी आश्रम के सामने की जमीन तुम्हारे रहने के लिये लेने की है ।" इस विषय में कुछ जानती तो नहीं थी परन्तु आज्ञा होने से देख आई । थोड़े दिन भगवान वहाँ रुके । उस समय वह जमीन लेने की बात पक्की हो जाने पर भगवान ने कहा, "अच्छा अब यहाँ से जयपुर जाकर पतितपावनजी भगवान के चरणों में इस जगह का नाम रखूंगा ।"

इन दिनों में वहाँ के माँजी ने भगवान से कहा, "भगवान, मेरे भाई के लिये आशीर्वचन का पत्र लिख दीजिये ।" भगवान ने पूछा, "क्यों ?" "मेरे भाई का जन्मदिन है इसलिये", "तो क्या हुआ ?" माँजी ने फिर आग्रह किया, "भगवान जन्मदिन है तो फिर आशीर्वाद तो लिख ही देना चाहिये ना ?" "पर क्यों ?" इस तरह से माँजी अपना आग्रह छोड़ती न थी । अन्त में भगवान ने कहा, "अरे वाह, जन्मदिन है तो उसका प्रणाम का पत्र आया है क्या कि मैं आशीर्वाद का पत्र लिखूँ ? देखो, आशीर्वाद और श्राप माँगने से नहीं मिलता और ऐसा नहीं कि यह कुछ व्यक्ति ही दे सकता है, कोई भी व्यक्ति किसी के व्यवहार से अत्यधिक प्रसन्न हो जाता है और अन्तःकरण में आह्लाद उठता है तब जो वचन निकलते हैं वोही आशीर्वाद होता है और यदि किसी की आत्मा को गहरी ठेस पहुँचने से वह अति व्यथित हो जाता है तब जो शब्द निकल जाते हैं वोही श्राप होता है ।"

वापिस जोधपुर दूसरे लग्न प्रसंग में जाने का था, सबको साथ में जाने की इच्छा थी लेकिन गाड़ी एक ही थी । अन्त में निर्णय लिया गया, पहले प्रसंग में जो गये थे वे अब न जाय । भगवान की इच्छा से मैं और अन्य दो बहनें साथ में जोधपुर गये, रात को करीब ग्यारह बजे पहुँचे । उन दो बहनों में से एक नेत्रयज्ञ का मैदान देखने गये और दूसरे लग्न प्रसंग में भाग ले रहे थे । भगवान आराम कर रहे थे । मुझसे पूछा, "सब कहाँ गये ?" मेरे बताने पर कहा, "ठीक है जिसको नेत्रयज्ञ का मैदान देखना हो, जाने दो तुम तो जाप करो और सृष्टि का मैदान देखो और दरवाजा बंद कर दो मैं सो जाता हूँ ।"

पूरी रात सान्निध्य में रहने का लाभ मिला । "सृष्टि का मैदान देखो" यह गूढ़ वाणी मैं समझ न सकी और न तो मैंने कुछ पूछा । उसके अलावा भी न कोई बातचीत हुई फिर भी यह आनंद अवर्णनीय है । सुबह करीब आठ बजे वापिस पुष्कर के लिये रवाना हुए ।

पुष्कर में भगवान के पास थोड़े दिन रुकी । एक दिन समूह में मुझे लिखकर दिया –

मैं ५००० रु. तुम्हारे नाम
पर बैंक में रखना चाहता हूँ
तुमारी क्या सम्मति है
जैसा कि मैंने पहले कहा था
जब मैं बुलाऊँगा आओगी

"मैं ५००० रु. तुम्हारे नाम पर बैंक में रखना चाहता हूँ तुमारी क्या सम्मति है जैसा कि मैंने पहले कहा था जब मैं बुलाऊँगा आओगी ?"

जवाब में मैंने लिखकर दिया, "मैं अपने नाम पर कुछ रखना नहीं चाहती क्योंकि मुझे पैसा नहीं चाहिये मुझे पैसे का कोई कष्ट नहीं है आप बुलायेंगे जब ना ?" तो लिखकर दिया, "हाँ जी जभी की पूछता हूँ मुझे रखना है तुम मना क्यों कर सकती हो ?"

पहले भी मुझे इस बारे में पूछा था तब भी मैंने यही कहा था, "मुझे पैसा नहीं, आपके चरणों में भक्ति चाहिये ।"

परन्तु भगवान का स्वभाव :-

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेम वहाम्यहम्

वापिस बुलाकर कहा, "देखो रमा, मैं नहीं चाहता हूँ कि भविष्य में तुम्हारा जीवन ओशियाला बन जाय ।" सचमुच उस वक्त तो ओशियाला का अर्थ भी मालूम न था, कारण परिवार में चाचा, बुआ कोई नहीं, उसमें भी जयपुर रहने के लिये जाने से और यह जीवन बन जाने के बाद कोई संसारी कुटुंबीजनों का सम्पर्क थोड़ा भी न रहा कि जिससे इस विषय में कुछ जानकारी मिले । अन्य कोई पठन-पाठन

की भी आदत नहीं है और उसमें भी भगवान ने मोहर लगा दी कि, "अखबार विगेरे भी देखना नहीं ।" मैं सोचती थी मेरे छः भाई हैं, मुझे चाहिये कितना ? लेकिन भगवान तो त्रिकालदर्शी होने से सब जानते थे, इसीलिये कहा, "याद रखो, भविष्य मैं तुम्हें कोई रखेगा नहीं, तुम भोली हो ।" बाद में पूछा, "तुम कितने रुपयों में मासिक खर्च चला सकती हो ?" उस समय कभी बाजार तो जाती ही नहीं थी और ना ही कभी अपने खर्च का कोई अलग हिसाब रखती थी, फिर भी कैसे बोला गया वह तो प्रभु जाने ! मैंने कहा, "भगवान, ५० रुपयों में ।" मंद हास्य के साथ भगवान ने कहा, "ठीक है ।"

एक दिन समूह में बैठे थे, तब कहा, "रमा देखो तुम्हारे साथ कच्छप न्याय है हो, तुम्हें मालूम है कच्छप रहता पानी में है और अण्डे देता है जमीन पर । फिर द्रष्टि से अंडों को पोषण देता रहता है । उसी तरह तुम मेरे से कितनी ही दूर रहो पर मेरी द्रष्टि हमेशा तुमारे पर रहती है ।"

कैसी अहैतुक कृपा ! ! !

कई बार प्रसंगोपात् समूह में भगवान के शब्द सुने हैं कि, "शरणागत भक्तों को मार्जार न्याय लागू होता है और ज्ञानियों को मर्कट न्याय लागू होता है क्योंकि बिल्ली का बच्चा म्याऊँ-म्याऊँ के सिवा कुछ जानता ही नहीं । बिल्ली स्वयं उसकी देखभाल करती है ठीक उसी तरह शरणागत भक्त राम राम (प्रभु नाम) के सिवा कुछ नहीं जानते इसलिये स्वयं भगवान को ही उसकी चिंता रहती है । जबकि ज्ञानी अपने ज्ञान के बल से परमात्मा को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं जैसे बन्दर का बच्चा खुद अपनी माता को पकड़े रहता है ।"

पंडित श्री जवाहरलाल नेहरू के लिये २७ मई, १९६४ के लिये भगवान ने कहे हुए शब्द ठीक से याद नहीं हैं, सिर्फ इतना याद है कि पुष्कर में २६ मई को किसी से कहा था, "कल सुबह तुम्हारा रेडियो क्या बोलता है मुझे बताना ।" दूसरे दिन रेडियो पर श्री जवाहरलाल नेहरू के निधन के समाचार आये । उस दिन राजस्थान में कई जगह आँधी चलने से जयपुर-अजमेर रोड पर अनेक बड़े-बड़े वृक्ष गिर गये थे जिससे ता० २८ की सुबह तीन बजे भगवान के साथ मोटर द्वारा जयपुर जाने को निकले थे और सुबह नौ बजे करीब पहुँचे ।

जयपुर पहुँचकर सीधे गलताजी गये । ऊपर श्री पतितपावनजी भगवान के दर्शन को जाने पर भगवान ने पुष्कर में गांधी आश्रम के सामने वाली ली हुई जमीन का नाम "रामधाम" रखा, जैसे पहले कहा था । करीब दो घंटे रुककर आगे के लिये रवाना हुए । भगवान से अलग होना कितना दुःखदाई होता है यह तो अनुभवी ही समझ सकता है । प्रणाम करने पर सहज ही आँखें भर आने से कहा, "भजन करना, आनन्द से रहना, फिर जल्दी बुलाऊँगा ।"

[४४]

रामकृपा तव दर्शन भयऊ

भगवान को दुर्घटना में नाक पर ज्यादा चोट आई थी । यह खबर चार-पाँच दिनों के बाद बम्बई से मनहरभाई के पत्र द्वारा मिली । ता० २८ रात को करीब नौ बजे शिवपुरी गाँव के पास भगवान की गाड़ी की दुर्घटना होने पर इंदौर गुरु मंदिर में बिराज रहे हैं, यह पढ़कर चिन्ता से जल्दी जाने की इच्छा होवे यह सहज था । उसी दिन पिताजी की अनुमति से इंदौर जाने के लिये रवाना हुई । मन में अनेक विचारों के साथ डर था कि भगवान नाराज होंगे कारण बिना बुलाये जा रही हूँ । वहाँ के लोगों को अच्छा नहीं लगेगा और मुझे जाने नहीं देंगे तो ? कारण आर्थिक परिस्थिति साधारण होने से पिताजी भी अपने अनुभव कहते थे कि श्रीमंत लोग और भगवान की सेवा करने वाले कैसे-कैसे अपमान और तिरस्कार करते थे । आज भी कई संतों के पास निर्बल के प्रति ऐसा व्यवहार उनके अगल-बगल में रहने वाले व्यक्ति करते दिखाई देते हैं । संतों को खबर मिलने पर तो वे ऐसा नहीं होने देते परंतु कुछ बातें संतों को मालूम ही नहीं होती हैं । इस विषय में भगवान के पास खूब जानने को मिला है । सुना है भगवान के सेवक, बापू के चेले और अफसरों के चपरासियों का मिजाज जब बढ़ जाता है तब भारी पड़ता है, यह हकीकत कई अनुभवों से सत्य साबित हुई है ।

दोपहर में करीब बारह बजे इंदौर पहुँची, रिक्शा लेकर गुरु मंदिर गई । नियमानुसार घर से निकलने के बाद चरणामृत लिये बिना पानी भी पीने का नहीं रहता था, साथ-साथ भगवान के आदेशानुसार किसी परपुरुष को स्पर्श होने पर भी ट्रेन में उपवास करने का होता था । गुरु मंदिर पहुँचने पर कुछ भाई लोग मिले । प्रथम तो उन्होंने मुँह फेरकर आपस में धीरे-धीरे कुछ चर्चा की, बाद में मेरे पास आकर कहा, "चलो, रिक्शा घर पर ले चलो, हम सब भोजन को जा रहे हैं, भगवान ने तो कल रात नौ बजे से दरवाजे बंद कर दिये हैं, एक सप्ताह के लिये एकांत में मौन रहने वाले हैं, अंदर कोई नहीं है ।" बात बढ़ाते हुए बोले, अंदर तो चिड़िया भी नहीं जा सकती ।" मुझे तो कुछ बोलने का था नहीं, उनके हावभाव देखते हुए तबियत के बारे में भी कुछ न पूछ सकी । उनके घर जाकर नित्य कार्य से निपटकर बताये हुए कमरे में चली गई । मन अनेक विचारों से घिरा हुआ था, मेरा तो उपवास था । उनका बर्ताव देखते हुए एक-एक क्षण वहाँ रहना भारी लग रहा था परंतु लाचार थी । वे भोजन करने के लिये कह रहे थे लेकिन बिना प्रेम का मेवा, मिठाई भी क्या काम का ? प्रेम से भाजी भी मीठी लगती है, खैर, मेरा तो वैसे भी उपवास ही था । शाम होने पर राजकोट के एक गुरुभाई मिले, जिन्होंने थोड़े स्नेह भाव से बातचीत की तब मैंने उन्हें गुरु मंदिर के नजदीक कोई धर्मशाला हो तो उसकी पूछताछ की । सोचा था आठ दिन वहीं रहूँगी कारण गुरुमंदिर के दरवाजे पर रोज प्रणाम करने तो जा सकती थी । इतनी दूर आकर दर्शन किये बिना वापिस लौटने को मन नहीं मान रहा था ।

वे भाई मेरे साथ आये । धमशाला में दूसरे दिन कमरा मिलने वाला था । वापिस लौटते हुए गुरु मंदिर गये क्योंकि आई जब से वहाँ तक भी प्रणाम करने नहीं जा सकी थी । भगवान के साथ कौन है या कौन सेवा कर रहा है यह तो मैंने किसी से पूछा नहीं था परंतु आश्चर्य ! ! ! वहाँ पर पहुँचते ही दुर्घटना के समय जो बहन साथ में थी वोही मिली । मैं कब आई वगैरह उन्होंने मुझसे पूछा, तब मैंने भी भगवान की तबियत के लिये पूछताछ की और मुझे जो मौन, एकांत की बातें मिली थीं वह मैंने बताईं । उन्होंने भी उस बात में सम्मति देते हुए कहा, "हाँ मैं भी कमरे में नहीं जाती हूँ, रसोई बनाकर, थाली परोसकर

बाहर निकल जाती हूँ जिससे मुझे भी दर्शन नहीं मिलते हैं, एकदम आराम में हैं ।" उसके बाद मेरा प्रोग्राम सुनकर उन्होंने कहा, "अच्छा रात को ग्यारह बजे भगवान दूध लेने पधारेंगे तब मैं तुम्हारा प्रणाम कहकर सब बात बताऊँगी ।" मैं उसी वक्त समझ गई कि इसका मतलब भगवान मिलते तो हैं । कैसी-कैसी चालाकी की जाती है यह जानने को मिला । रात को वे भाई के घर जाकर गुपचुप सो गई । कब जल्दी सुबह हो और मैं धर्मशाला में चली जाऊँ उसी राह में नींद न आई । सुबह छः बजे सामान बाँधकर तैयार हो गई थी इतने में तो गुरु मंदिर से फोन आया, "रमा बहन को भगवान बुला रहे हैं" यह सुनते ही मन की स्थिति क्या हुई होगी ? जिसकी कल्पना तो अनुभवी ही कर सकता है । जल्दी से गुरु मंदिर गई । वहाँ वोही बहन के सिवा और कोई अंदर दिखा नहीं । तबियत के बारे में अनेक कल्पनाओं के साथ कमरे में पैर रखते हुए देखा तो कितने प्रसन्न स्वरूप के दर्शन ! ! ! कितना आश्चर्य मानो कि कोई घटना घटी ही नहीं ! ! ! मुझसे पूछा, "कब आई ?" कल दोपहर को बारह बजे बताने पर कहा, "अच्छा मुझे तो रात को ग्यारह बजे खबर मिली", सेवा करनेवाली बहन का नाम लेते हुए बोले, "उसने मुझे रात को बताया ।" आगे पूछा, "तुम उसको कब मिली थी ?" शाम का समय बताने पर भगवान के चहेरे पर खिन्नता छा गई और बोले, "अच्छा सब भाई लोग भी मेरे पास आये थे किसी ने मुझे नहीं बताया ?" तब उन्होंने जिस तरह से मुझे मौन और एकांत की बात बताई थी वह और साथ-साथ मेरा धर्मशाला में रहने जाने का प्रोग्राम बताया, यह सुनकर दुःखी होकर बोले, "ठीक है रमा, तुम्हें अकस्मात् की बात कैसे मालूम हुई ?" पूरी बात जानकर कहा, "मुझे तो मालूम ही था कि तुम्हें मालूम पड़ने पर तुम जरूर आओगी, अब तुम्हारा प्रोग्राम क्या है ?" मैंने कहा, "भगवान आपके एक्सीडेन्ट की बात सुनकर दर्शन के लिये आई हूँ" तो बोले, "अब तो बिल्कुल ठीक है, चिंता की कोई बात नहीं है ।" मैंने कहा, "भले तो आप कहोगे जब पहली गाड़ी से वापिस चली जाऊँगी क्योंकि मैं कुछ सेवा तो जानती नहीं फिर क्यों रहना ?" मुझे पूछा, "सामान कहाँ है ? यहाँ मँगवा लो आई हो तो दो-तीन दिन रुक जाव । तुम नहीं जाना सामान लेने को, ओंकार को बुला दो ।"

ओंकार भाई के आने पर कहा, मेरी गाड़ी लेकर जाव रमा का सामान ले आव।"

जेहि दीन पियारे........

सामान आने पर कहा, "मेरी ही रसोई में तुम अपना भोजन बना लेना।" पूरे दिन गुरु मंदिर के बाहर के आंगन में बैठकर अपना साधन भजन करती रहती थी। अब तो अन्दर ही होने से सब व्यवस्था देखने को मिली कि कौन-कौन भगवान के पास आता-जाता है और भगवान को कैसा मौन-एकांत रहने देते हैं। दोपहर के बाद उस बहन ने मुझसे कहा, "मुझे भगवान ने कहा है, देखो रमा आई है तो हिल-मिलकर रहना, झगड़ा नहीं करना।" उन्होंने कहा, "भगवान, दो बर्तन इकट्ठे होने पर आवाज आती ही है", तब भगवान ने प्रत्युत्तर दिया, "तुम्हारी बात ठीक है लेकिन दो बर्तनों के बीच उदारता रूपी कपड़ा रख दिया जाय तो आवाज नहीं आती।" जीवन में उदारता का सद्गुण हो तो काम बन जाता है।

रोज सुबह भगवान बुलाते थे, करीब दस मिनिट पास बैठने को मिलता था। रात को करीब आठ बजे सेवा के लिये सब भाई आते थे। तीन दिन पूरे होने पर जयपुर जाने के लिये पूछने पर कहा, "क्यों यहाँ अच्छा नहीं लगता?" मैंने कहा, "नहीं भगवान, आपने कहा था, दो-तीन दिन रुक जाव, इसलिये पूछती हूँ, वैसे तो आपके पास से जाना अच्छा थोड़ा ही लगता है?" "बस तो फिर अभी रुको फिर देखेंगे।"

एक दिन भगवान के पास बैठकर स्वाध्याय कर रही थी परन्तु मन में विचार चल रहे थे कि भगवान प्रेमाल तो हैं ही साथ में कड़क भी बहुत हैं कभी कोई कारण से छोड़ दें तो? थोड़ी देर बाद मुझसे कहा, "रमा, क्या कर रही हो" स्वाध्याय की किताब बताते हुए मैंने कहा, "स्वाध्याय कर रही हूँ", तो कहा, "इधर लाव, कलम दो।" स्वाध्याय के प्रथम पृष्ठ पर मेरे विचारों के अनुसंधान में लिख दिया,

"श्री भगवत् शरणागति कभी भयप्रद नहीं"

यह पढ़कर चकित हो गई कि कोई विचार भी भगवान से छिपे नहीं रह सकते!! आगे कहा, "देखो रमा, साधु, मगर, ऊँट और मकोड़ा पकड़ना ही जानता है, छोड़ना नहीं समझी?"

इन दिनों में एक बहन ने मेरे हाथ पर सफेद धब्बे देखकर पूछा, "रमा बहन, यह क्या है ? यह तो कोढ़ जैसा लगता है ।" मैंने कहा, कोढ़ नहीं है, बहुत समय से है, सर्दी में मिट जाता है, गरमी में बढ़ जाता है", वे माने नहीं और कहा, "चलो, भगवान से पूछते हैं ।" भगवान को मेरा हाथ बताते हुए पूछा, "भगवान, यह कोढ़ की निशानी है ना ?" यह सुनकर हँसकर कहा, "अरे नहीं बाबा, मैंने बहुत दिनों से यह देखा है, ये तो सेहुरा है सेहुरा ।

दाद खाज और सेहुरा, बड़ भागन को होय,
उसको जल्दी निकसत है, जो बिनु कारण दे रोय ।

कारण बिना रोना तो संत और प्रभु कृपा के बिना असंभव है, ऐसा सुना है । थोड़े दिनों बाद भगवान ने मुझे बुलाई, तब मैंने पूछा, "भगवान, आपने जो मुझे नियम दिया है, किसी भी परपुरुष को स्पर्श से उपवास करने का तो जब मैं आपके पास नेत्रयज्ञ या कोई उत्सव में आती हूँ तब वॉर्ड में काम करते समय कोई पुरुष मरीजों को और स्वयं सेवक भाइयों को काम की भागदौड़ में स्पर्श हो जाता होगा उसका ख्याल भी नहीं रहता तो उन दिनों में रोज उपवास करूँ ? भगवान ने हँसकर कहा, "छोड़ो अब यह सब, अब वो समय गया पर जान-बूझकर किसी पुरुषों को स्पर्श नहीं करना" तब से यह नियम भी पूरा हो गया ।



[४५]

परम कौतुकी कृपा निकेता

भगवान ने मेरे आने के चार-पाँच दिन बाद कहा, "चलो पुरुषोत्तम भाई को पत्र लिखो :—

।। श्री रामचंद्राय नमः ।।

इंदौर

ता. ८.६.६४

प्रिय पुरुषोत्तमभाई सादर आशीर्वाद,

मेरी तबियत बराबर नहीं है पर चिन्ता जैसी बात नहीं है।

इतना लिखाकर कहा, "रख दो बाद में मैं लिखूँगा ।"

दो दिन बाद उसी पत्र में आगे स्वहस्त से लिखा,

अब मैं रमा की शिकायत लिखता हूँ। यह हमेशा उदास रहती है और सदैव मौन जैसो रहती है। सेवा करती है, पवित्र है, इसमें शंका नहीं। गुरुपूर्णिमा भगवान के चरणों में ७५ टका होगी। ऐसा अभी लगता है रमा संभवतः मेरे साथ जायगी, यदि कोई विक्षेप हुआ तो रविवार को जयपुर रवाना होगी ।

पूर्णिमा के बाबत रमा आकर कहेगी, रमा बड़ी होश्यार है ।

मुझे खूब सुख दिया, विचार करता हूँ कि कुछ दिन साथ रहे ।

सबको आसीस

रणछोड़दास का आसीस

इस तरह से भगवान के लिखे अनुसार कई बार स्वेच्छा से मुझे साथ रखने का प्रयत्न करते थे, परंतु द्वेष और ईर्ष्या से कुछ व्यक्ति द्वारा वातावरण उग्र बन जाने से अपनी अनिच्छा से भी मुझे जयपुर भेज देते थे ।

भगवान की बातचीत से ऐसा लगा कि इस साल की गुरुपूर्णिमा जयपुर में मनाई जायगी । थोड़े दिनों बाद कारणवशात् भगवान के नियम में थोड़ी हेरफेर हुई । मौन में रहना चाहते हैं, ऐसा सबको बताया गया, इस कारण सब लोग गेस्ट हाउस में रहने गये । वहाँ पर हम पाँच बहनें थीं । रोज जल्दी सुबह एक बहन अपने भावानुसार भगवान के लिये दूध बनाकर रखती थी । गुरुमंदिर के चारों ओर ऊँची दीवार थी, जिसमें एक जगह पर छोटी अलमारी बनाई गई थी जो अंदर-बाहर दोनों ओर से खुल सकती थी । सेवा करनेवाली बहनें समय-समय पर उसमें दूध, भोजन और वस्त्र आदि रख देते थे । इस कार्य के हेतु हम वहाँ पर सुबह पाँच बजे जाते थे और सब अपने-अपने कार्य में लग जाते थे । मेरे हाथ में कोई सेवा तो थी नहीं, इस कारण बगीचे में बैठकर माला करती थी । कभी-कभी भगवान छत पर घूमने निकलते थे तब दर्शन का लाभ मिलता था । कभी दोपहर में किसी-किसी को अंदर बुलाते थे । दोपहर में हम लोग कमरे पर चले जाते थे और शाम को वापिस गुरुमंदिर जाते थे ।

भगवान के देहविलय बाद आज्ञानुसार मैं पुष्कर रामधाम में रहती थी, तब कंई बार कोई-कोई गुरुभाई-बहन भगवान के अद्भुत लीला प्रसंग कहने-सुनने की इच्छा से मेरे पास आते थे, तब एक भाई ने इस प्रसंग के बारे में मुझसे कहा कि, "रमा बेन ! इंदौर में उस समय मैं भी था और आपको मालूम है, एक बार भगवान ने क्या किया ? भगवान जब अंदर मौन में बिराजते थे और आप सब गेस्ट हाउस में रहते थे, उस समय शाम को आप लोगों के जाने के बाद हम सात-आठ भाई सेवा के लिये अंदर जाते थे । एक दिन भगवान ने तीन-चार दिन के लिये अनंतपुर जाने की इच्छा बताकर कहा, "कैसे जाऊँ ?" यह जो बहनें सेवा करती हैं वे मुझे जाने नहीं देंगी या साथ चलने की हठ करेंगी ।" हमने कहा, "भगवान, उन लोगों को बाहर से ताला देखकर मालूम ही नहीं पड़ेगा ।" तो कहा, "फिर दूध, टिफिन वगैरह कौन लेगा ?" एक भाई ने कहा, "भगवान, वह काम मेरा । मुझे सिर्फ बता दीजिये कौन समय क्या लेने का, क्या रखने का और किस तरह से प्रसाद वापिस रखने का ।" भगवान खूब हँसने लगे और कहा, "सम्हालोगे ?" वे भाई ने कहा, हाँ हाँ भगवान, आपके आशीर्वाद से

बराबर सम्हालूँगा । कपड़े जो धोने के लिये रखने हों वे आप बता दीजिये, आपके दो जोड़ी कपड़े प्रसादी में दे दीजिये, रोज पहनकर रख दूंगा ।" आखिर प्रोग्राम निश्चित हुआ और दूसरे दिन रात को भगवान अनंतपुर के लिये निकल गये । तीसरे या चौथे दिन रात को ही वापिस लौटे और आकर पूछा, "क्या हुआ ? सब ठीक तो रहा ना ?" उस भाई ने कहा, "हाँ, किसी को खबर नहीं है, समय-समय पर मैं सब ले लेता था और प्रसाद रख देता था ।" आई हुई सब चिट्ठियाँ भगवान को दीं । भगवान खिलखिलाकर हँस पड़े । इस तरह से कृष्णलीला भी प्रभु करते थे ।

पिताजी का पत्र आया जिसमें गुरुपूर्णिमा पर थोड़े जल्दी जयपुर पधारने के लिये भगवान को विनती की गई थी । मैं उसका जवाब लिख रही थी तब कहा, "मैं तो २२ को यहाँ से निकलकर २३ की रात या २४ की सुबह वहाँ पहुँचूंगा । वैसे मैं वहाँ बराबर हाजिर ही हूँ ।" आगे थोड़ा स्वहस्त से लिखा :—

भगवान को प्रणाम,

देखो मैं आगे से नहीं आ सकूँगा, अस्तु दुःख न लगाना ।

सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

मैं सिर्फ दर्शन के लिये इंदौर आई थी और भगवद् इच्छा से डेढ़ महीना हो गया । इंदौर से निकलने के पहले आखरी आठ दिन से मौन, एकांत का नियम छोड़ दिया था । हम पूरे दिन भगवान के पास आ-जा सकते थे । एक दिन मुझे बात करने बुलाया, तब कहा, "धीरे बोलो, वह सुनती होगी", बाद में दूसरे कमरे में ले जाकर बात की । साक्षात् परमात्मा के पास रहकर भी जीवात्मा अपनी प्रकृति नहीं छोड़ सकता है लेकिन जीव मात्र अपनी भूमिकानुकूल जीवन बिताता है, जैसे धरती माता एक है, उस पर वर्षा भी एक-सी होती है, परंतु जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही फल मिलता है । गन्ने के बगल में ही यदि करेले का बीज बोया जाय तो भी उसमें कदापि मिठास नहीं आ सकती, इसी प्रकार से आध्यात्मिक क्षेत्र में भी सद्गुरु चाहे एक ही हो, चाहे मंत्र भी

एक हो, सत्संग भी एक-सा मिलता हो, सद्गुरुरूपी परमात्मा की कृपा वृष्टि भी एक-सी होती हो फिर भी जन्म-जन्म के संस्कार के जो बीज अंतःकरण में पड़े रहते हैं उनके अनुसार ही फल मिलता है । कभी चोरी-छुपे कोई बात सुनी होगी और उस विषय में खटपट भी की होगी, कारण रसोईघर कमरे के बिल्कुल बगल में ही था । मैंने कहा, "भगवान, आप अंतर्यामी हो, आपके साथ ऐसा करे तो उन्हें यह ख्याल नहीं आता होगा कि आप सब जानते हो", "रमा, मुझे भगवान मानते हो तो ना ?" मैंने आश्चर्य से कहा, "आपको भगवान तो कहते हैं", "देखो रमा, कहना अलग बात है....।"

वाणी में भगवान है, तन से है गुरुदेव,
मन से है फोटो फकत, तो किस विध होवे सेव ।

सच है आज इस बात की अनुभूति भी मिल गई । पूर्ण रूप से भगवद्भाव से लिखी गई इस पुस्तक का विरोध खूब जोर शोर से अपनी निम्न विचार धारा द्वारा किया और करवाया लेकिन सत्य को कौन मिटा सकता है ? तब तो ऐसी बात समझ नहीं पाई थी, इसीलिये मैंने कहा, "भगवान, जो सेवा करे, साथ रहे, प्रणाम-पूजा करे, फिर भी ऐसा कैसे कर सकते हैं ?" "छोड़ो यह सब तुम्हें समझ में नहीं आयेगा, तुम्हें क्या मालूम ?

नमन नमन में फेर है, बहुत नमे नादान,
दगाखोर दूना नमे, चित्तोचोर कमान ।

इस प्रसंग पर से विचार आया कि जो जीवात्मा नित्य भगवद् चरणामृत, भगवद् प्रसाद, भगवद् सेवा-सान्निध्य प्राप्त करके भी ऐसे अनैतिक कृत्य करते हो और अपने अहम् की पुष्टि के लिये पत्रों की चोरी, छिपकर बातें सुनना, राग-द्वेष, ईर्ष्या, दंभ, कपट और असत्य का साथ लेते हो, उन्हें यदि भगवद् सान्निध्य प्राप्त न हुआ हो तो उनकी क्या स्थिति हो सकती है उसकी कल्पना भी कैसे की जा सकती है ? चाहे घड़े भर, भरकर चरणामृत और टोकरियाँ भर भरके प्रसाद क्यों न खाते हो लेकिन....

रामभक्ति बिनु सुनु खगराई, अभ्यंतर मल कबहुँ न जाई........

मुझे एक घटना याद आई, एक बाबाजी के पास पारसमणि था जिसकी जानकारी एक भाई को मिल गई । उन्होंने पारसमणि बताने

के लिये बाबाजी को बहुत ही विनती की तब पारसमणि दिखाने पर वे मानने को तैयार न थे कि यह पारसमणि है कारण लोहे की डिब्बी में रखा हुआ था जिससे उन्होंने बाबाजी से पूछा यदि यह पारसमणि होता तो यह लोहे की डिब्बी सोने की क्यों न बन गई ? देखा तो डिब्बी जंगवाली थी और पारसमणि कपड़े में लपेटा हुआ था इसलिये स्पर्श असम्भव था फिर डिब्बी कैसे सोने की बन सकती है इसी तरह जब तक जीवात्मा अपने अन्तःकरण का जन्म जन्म का जंग दूर करके माया के पट को हटाकर प्रभु पद को स्पर्श न करें तब तक संत और भगवंत जो लोहे को कांचन ही नहीं अपितु पारसमणि बनाने की क्षमता रखते हैं वह प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

पारसमणि अरु संत में, बड़ो अंतरों जान
पारस तो कांचन करे, संत करे आप समान

एक दिन भगवान मानस पीयूष के विषय में बात कर रहे थे, उसके सात भाग हैं जिसमें से सुंदरकांड की पुस्तक भगवान के पास थी। मुझसे कहा, "रमा, तुम्हारे लिये यह अच्छा है इसको पढ़ना ।" किसी भी प्रकार के पठन-पाठन में रुचि न होने से मेरे चेहरे पर अनिच्छा देखकर फिर कभी उसके अभ्यास के बारे में नहीं कहा । अब तो इन्दौर छोड़ने के दिन नजदीक आ रहे थे । हम लोग भगवान के साथ इन्दौर से पुष्कर आये ।



[४६]

को कृपाल अस अहे भवानी

भगवान के दर्शन हेतु जयपुर से पिताजी पुष्कर आये । गुरु पूर्णिमा जयपुर में मनाने के लिये कुछ लोगों की इच्छा न थी कारण एक तो शहर से दूर और व्यवस्था करनेवाले हम छोटे लोग होने से सबको मनमानी सुविधा नहीं मिल सकती थी । संत और भगवंत तो प्रेम, भाव-भक्ति देखते हैं, बाह्य सुविधाओं की परवाह नहीं करते परन्तु साथ में आये हुए महानुभाव बाह्य सुविधा पहले देखते हैं । पुष्कर में तरह-तरह की बातें सुनकर गुरु पूर्णिमा जयपुर में होगी या नहीं उसकी आशंका हुई और उस विषय में भगवान से पूछने पर लिखकर दिया,

अगर ज्यादा हुआ तो देखो क्या ? गाड़ी तो है ही
महेश, जयंति तीनों भाई, मोटर में ही तीनों जाइ
मैं और तुम साथ में रमा, नोकर सुरेश करे क्षमा
हम सब दरशन करके सीधे चले जायेंगे
मैं केवल प्रथम गेईट पर प्रणाम करूँगा

इसका अर्थ यह था कि यदि गुरु पूर्णिमा पुष्कर में मनायेंगे तो फिर भी जयपुर पधारेंगे । तीनों भाई, पिताजी और मुझे मोटर से गलताजी साथमें ले जायेंगे । नौकर और सुरेश को बस द्वारा या और कोई ढंग से जयपुर या अन्य कहीं भेज देंगे । भगवान दर्शन करके वहाँ से आगे चले जायेंगे ।

भगवद् इच्छा से गुरु पूर्णिमा जयपुर में ही मनाई गई । यथाशक्ति सब सुविधा रखी थी, काफी मेहमान आये थे । बम्बई के तीन श्रीमंतों ने खर्च उठा लिया था । पिताजी ने इस प्रसंग पर कुछ देने की इच्छा व्यक्त की तब भगवान ने कहा, "लाव, सवा रुपया दे दो", कारण पिताजी ने नौकरी छोड़ दी थी और सब भाई छोटे थे ।

श्री पतितपावनजी भगवान का विधिपूर्वक पूजन करवाया गया। गोपालजी के मंदिर में पूजन विधि के बाद भगवान ऊपर गुफा में पधारे, सब साथ में गये थे। मैं सबसे आखिर में खड़ी थी। भगवान प्रणाम करके जब वापिस लौट रहे थे तब हाथ में फूलमाला ली हुई मुझे देखकर, पास में आकर कहा, "लाव मुझे माला दे दो" और वापिस माला पहनाने गये। उसके बाद बाहर बरामदे में आकर बिराजे, आसन बिछाने की अनिच्छा बताते हुए कहा, "भगवान के सामने नहीं और भाविकजनों के प्रणाम करने पर कहा, "भगवान को प्रणाम करो, यहाँ मुझे नहीं।" साक्षात् भगवान ने भी सद्गुरुदेव की कितनी मान-मर्यादा रखनी चाहिये यह चरितार्थ करके दिखाया। कई बार समूह में प्रवचन देते समय बीच में से कोई प्रणाम करने जाता तो कहते थे, "वहाँ दूर से ही प्रणाम कर लो, देखो, मानसजी में से धार्मिक, सामाजिक, कौटुम्बिक और व्यवहारिक सभी बातें सीखने को मिलती हैं। "गुरुही प्रणाम मनही मन कीन्हा"। एक बार मैं गाड़ी में फर्स्ट क्लास में बैठा था। एक दम्पति गाड़ी चलने के समय पर पहुँचे, भाई चढ़ गये और उनकी पत्नी रह गई। परिणाम में जंजीर खींचकर गाड़ी रुकवाई और उनकी पत्नी आ गई, थोड़ी देर बाद उनके स्वस्थ होने पर मैंने कहा, आपने कभी मानसजी का पाठ किया है ? यदि एक बार भी ध्यान से मानसजी का पाठ किया होता तो आज यह घटना नहीं बनती। उन्होंने कहा, "क्यों बाबाजी मानसजी में ऐसी क्या बात है ?" मैंने कहा, मानसजी में, 'प्रिया चढ़ाई चढ़े रघुराई' है ना यदि पहले अपनी पत्नी को चढ़ाकर बाद में आप चढ़ते तो यह घटना न घटती।" इस तरह से मानसजी के आधार पर प्रसंगोपात समझाते रहते थे।

उस वक्त वहाँ की अखंड धूणी के लिये भी कहा, "यह तो भवरोग की औषधि है और कभी किसी को कोई बीमारी में जरूरत पड़े तो श्रद्धा से लेने पर लाभ होगा" कई भाविकजनों को श्रद्धापूर्वक यह भस्म लेने पर लाभ मिला भी है। बाकी तो

गुरु के वचन प्रतीति न जेही, सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही ।

गुरु पूर्णिमा का महात्म्य समझाते हुए कहा, "देखो, 'गु' याने अंधकार, 'रु' याने प्रकाश। अंधकार में से प्रकाश की ओर ले जाते हैं

वोही 'गुरु' । अपने नित्य बोलते हैं ना ? गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वर तो यह किस तरह से ? ब्रह्मा उत्पत्ति करते हैं, विष्णु पालन कर्ता और शिवजी संहार के देव हैं, ये तीनों उपाधि गुरु को दी गई हैं तो गुरु निज जन के हृदय में विद्यारूपी गुण प्रगट करते हैं, फिर उसका पालन भी करते हैं और अवगुणों का नाश करते हैं। या विद्या प्रगट कर अविद्या का नाश करते हैं ।

उस दिन बहुत बड़े प्रमाण में भंडारा करवाया। साधुओं और गरीबों को वस्त्र बाँटे और प्रसंगोपात बोले, "अरे भाई, यह सब तो सफेद कपड़ेवालों की मेहरबानी है नहीं तो आज तक कितनी ही बार मैं यहाँ आकर चला जाता था, किसी को मालूम भी नहीं पड़ता था ।"

जयपुर से जाते वक्त पार्वती बहन को साथ में ले जानेवाले थे। परंतु किसी को मालूम न हो इसलिये गलताजी से घर पर पधारे और मुझसे कहा, "तुम पार्वती को आगरा की बस में बिठाकर आव ।" मैंने कहा, "भगवान, मैं वापिस आऊँ तब तक आप चले नहीं जाना", सही में मैं वापिस लौटी तब घर से नीचे आकर गाड़ी के पास खड़े रहकर मेरी राह देख रहे थे। प्रणाम करने पर बोले, "रमा, अब मैं जाऊँ ?" और रवाना हुए । पार्वती बहन की बस मुख्य बस स्टेन्ड से रवाना होकर आगरा स्टेन्ड पर पहुँची होगी, इतने में भगवान की गाड़ी पहुँच गई और उन्हें अपने साथ ले लिया। भगवान की आज्ञानुसार करने से खूब प्रसन्न रहते थे और सारी बातें बताते थे। मेरे जीवन का एक ही लक्ष है कि भगवंत और संत की प्रसन्नता प्राप्त हो। इसीलिये मैं कई बार पत्र में लिखती थी, "मैं राजी हूँ मालिक जिसमें तेरी रजा है ।" आज भी भगवान से यही प्रार्थना है ।



[४७]

नाथ कृपा तव जापर होई

भगवान मथुरा जाने के लिये रवाना हुए । गुरु पूर्णिमा के बाद पिताजी को अचानक बम्बई जाना पड़ा, कारण हमारे जीजाजी बीमार थे । थोड़े दिनों बाद कानपुर से पत्र आया ।

।। श्री रामचंद्राय नमः ।।

प्रिय रमा सादर आसीस,

तुम्हारे यहाँ से निकलकर रास्ते में एक्सीडेन्ट खाते हुए सकुशल कानपुर पहुँचे । आज रांची को रवाना हो रहे हैं । कल शाम तक पहुँच जावेंगे ।

स्वास्थ ठीक है, चिन्ता करना नहीं और····

देखो भजन बराबर करना हो ।

सबको आसीस

राँची पहुँचकर दूसरा पत्र आया :—

।। श्री रामचंद्राय नमः ।।

राँची
ता. १०.८.६४ समय १½

प्रिय रमा सादर आसीस,

मेरा स्वास्थ अच्छा है । तुम्हारे पास से निकलकर हम दोसा में रात्रि रहे और पार्वती मोटर स्टेन्ड पर ही मिल गई थी । और रास्ते में खूब परेशानी तथा एक्सीडेन्ट आदि का सामना करते हम मथुरा पहुँचे । वहाँ दो रोज रहे और बाद यहाँ आ गये । यहाँ १२ दिन ठहरकर बांसरा जायेंगे और वहाँ से कहाँ जावेंगे, पता नहीं ।

तुम भजन खूब करना, मन को सावधान रखना । विषयों को सत्यता से परे समझना और ईर्ष्या डायन से दूर रहना ताकि मानसिक व्यथा न हो और मन प्रफुल्लित रहे ।

तुम यह न भूलना कि संबंध आत्मसंबंध है न कि स्थूल ।

प्रेम वासना नहीं पर एक अद्‌भुत दिव्य तत्त्व है ।

सबको आसीस कहना

रणछोड़दास का आसीस

यह पत्र पढ़कर भगवान के शब्द याद आये –

प्रेम प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न चिन्हें कोई
जो कोई प्रेम को चिन्हे, सो जट हरि का होय

प्रेमी, कामी और व्यसनी तीनों की बाहरी दशा एक होती है लेकिन तीनों की आन्तरिक दशा में बहुत भारी अन्तर है । व्यसनी और कामी को क्षणिक सुख है जबकि प्रेमी को अनन्त सुख होता है ।" भगवान ने प्रेम और वासना का अंतर बताते हुए कहा, "प्रेम पाप नहीं, वासना पाप है, प्रेम और वासना दोनों चीजें ही अलग हैं, दोनों का स्वरूप अलग है । प्रेम का सम्बन्ध मन से है, वासना का शरीर से । प्रेम में समर्पण की भावना होती है, वासना में स्वार्थ की गंध । प्रेम दिव्य है, वासना भौतिक । प्रेम में दिन व दिन वृद्धि होती है वासना में उपरति । प्रेम की पराकाष्ठा स्वयं प्रेम में होती है और तब सब कुछ प्रेममय हो जाता है । प्रेमी में प्रेम होता ही नहीं, प्रेमी को प्रेमास्पद द्वारा ही प्रेम की प्राप्ति होती है । शबरी प्रसंग में भगवान ने प्रेम दर्शन कराया है ।

देखा जब श्री राम ने, भीलनी लाई बोर,
मानो भूखे जनम के, टूट पड़े तेही ओर ।

शबरी ने भी लिया यहाँ, चतुराई से काम,
सहित बेर पीछे हटी, ना ना ना श्री राम ।

अभी खिलाती चाखकर, हे प्राणों के प्राण,
खट्टे, मीठे की नहीं, है तुमको पहिचान ।

अस कही चख देने लगी, मृदु मुख में मृदु बोर,
बार बार प्रभु मुख निरखी, शबरी भई विभोर ।

बेसुध में देती रही, रहा न तन का भान,
बेसुध में खाते रहे, दीनबन्धु भगवान ।
प्रेमी, प्रेम, प्रेमास्पद, भये एक ही रूप,
प्रेम सरोबर में मिला, ब्रह्मानंद अनूप ।
बना देवता ने किया, भक्ति भक्त यश गान,
सुनि शबरी को हो गया, बाह्य जगत का ज्ञान ।
सकुच रुकाकर शीघ्र ही, पलकन बिच भये नैन,
हेरि हँसे प्रभु लखन तन, बोले मृदुवर बैन ।
मात, तात, मिथिला, अवध, गुरु गृह कर परसाद,
छः रस चार में नहीं बना, इन बैरन का स्वाद ।

थोड़े दिन बाद पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

प्रिय रमा, सादर आसीस

मेरा स्वास्थ ठीक है तुम चिन्ता न करना

हिम्मतलाल के स्वास्थ की खबर देते रहना । भजन करना, विषयों से दूर रहना और तो क्या २७ को बांसरा जाने का है वहाँ ठीक २५ दिन ठहरूँगा । आज गैस ज्यादा है बस सबको आसीस

रणछोड़दास का आसीस

इन दिनों में पिताजी बम्बई गये थे । जीजाजी के पैर में केन्सर हुआ था, उनके ऑपरेशन के कारण वहाँ रहना जरूरी था । लेकिन अधिक तलाश करने पर डाक्टरों ने ऑपरेशन के लिये मना कर दिया । कारण रोग मुक्त होने की अब आशा न थी । बड़ी बहन के ससुर पक्ष वाले भगवान में श्रद्धा नहीं रखते थे जिससे कभी दर्शन को भी नहीं आते थे । इसलिये परिवार के सभी सदस्यों को मंत्र दीक्षा दी थी परन्तु बड़ी बहन और वसन्तभाई के लिये ना कहा था । वसन्तभाई जब अमरीका गये तब उन्हें मन्त्र देने के लिये पिताजी ने कहा था तो जवाब मिला था, "अभी देर है ।" तब तो हम भविष्य नहीं जानते थे लेकिन सर्वज्ञ प्रभु तो जानते ही थे । आज उनका पाश्चात्य जीवन है, शायद इसीलिये मंत्र नहीं दिया होगा कारण भगवान भारतीय संस्कृति के पूर्ण आग्रही रहे ।

हरेक व्यक्ति को मंत्र दीक्षा देते भी न थे। पात्रता देखकर किसी को तुरन्त तो किसी को थोड़ा कसकर या किसी को स्पष्ट ना कह देते थे। कभी कोई समय ऐसे पात्र को कंठी देते हुए बोलते थे –

तुलसी की कंठी कंठ बिराजे, मस्तक सोहे हीरा,
बनादास की दशा देखकर, रोबे दास कबीरा।

कई शिष्यों को मंत्र दीक्षा देते हुए देखा है और स्वमुख से बोले हुए शब्द भी सुने हैं। अधिकतर दीक्षा के समय कुछ प्रतिज्ञायें देते थे हरेक प्रकार की नशीली चीजों का त्याग, अभक्ष्य भक्षण नहीं करना, परस्त्री मात समान, चोरी आदि कुकर्म न करना, यथाशक्ति मंत्र जाप करना और साल में चार उपवास करना, श्री रामनवमी, जन्माष्टमी, महा-शिवरात्रि और कोई भी एक एकादशी। इसके अलावा कम अधिक नियम सामने आये हुए पात्र के संस्कारानुसार बताते थे। कभी कोई शिष्य को यह भी कहते थे, "देखो, अब गले में कंठी पहन ली है तो बराबर नियमों का पालन करना, तुम सोचोगे गुरुजी हमारे साथ थोड़े ही हैं परन्तु याद रखना तुम जब मेरे पास आओगे तो तुम्हारी कंठी का एक-एक मणी मेरे से बात करेगा।" कभी-कभी ऐसा भी बोलते थे, "देखो भाई, कंठी ले लेना सरल है, कंठी बंधवाकर शिष्य बन जाना भी सरल है पर तुम्हें मालूम है मेरी कितनी जवाबदारी बढ़ जाती है? जैसे पुलिस का बिल्ला रहता है वैसे यह भगवान का बिल्ला है। कंठी बंधवाकर तुम भगवान के हो जाते हो तो तुम्हारी जवाबदारी है कि तुम कोई अयोग्य कर्म न करो। अन्त समय में यमदूत लेने आते हैं तो गले में कंठी देखकर तुम्हें भगवान के समझकर भाग जाते हैं। साधारण रूप से एक पालतू कुत्ते के गले में मालिक का पट्टा देखकर म्युनिसिपलिटी वाले उन्हें नहीं ले जा सकते हैं तो फिर यह तो भगवान के नाम का पट्टा पहनने पर तुम्हें कौन ले जा सकता है?

तुम्हें मालूम है अपने यहाँ जब कोई भी चीज का भगवान को भोग लगाया जाता है या भगवान को कोई चीज अर्पण की जाती है तब उसमें तुलसी दल छोड़ा जाता है, जभी भगवान उसको स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार जिसके गले में तुलसीजी की कंठी पड़ गई वह भगवान को अर्पण हो गया, यही कंठी का हेतु है फिर उस जीव का अपनापन रहा ही कहाँ?

मैंने एक बात ग्रौर भी पू. मोरारी बापू से सुनी है जो कि बड़ी मौलिक है, मुझे बहुत ही ग्रच्छी लगी । कंठी गले में ही पहनी जाती है जिसे कंठ कहते हैं इसीलिये इसे कंठी कहते हैं। कंठी हाथ में या कमर में नहीं पहनी जाती । सद्‌गुरु द्वारा जिसके कंठ में कंठी डाली गई उसके पीछे यह भाव है कि सद्‌गुरु ने उसका कंठ पकड़ा है, जो प्राण है याने प्राण तत्त्व को पकड़ा है । सद्‌गुरु की पकड़ ऐसी मजबूत होने से शिष्य सदा के लिये ग्रभय, निश्चिंत हो जाता है । छूट नहीं सकता ।

इस विषय से पपरेंदा में घटी घटना याद ग्रा रही है । श्री हनुमानसिंहजी नाम के भाई खूब सात्त्विक ग्रौर भक्त हृदय के हैं । उन्होंने जब मंत्र दीक्षा की माँग की तब मानो भगवान उनकी कसौटी कर रहे हों या निष्ठा की परिपक्वता देख रहे हों, इस प्रकार से तीन दिन तक मंत्र देने के लिये मना कर रहे थे। वे भी निष्ठा में पक्के थे। नियमानुसार मंत्र दीक्षा लेने के दिन उपवास करना होता है। उन्हें लगातार तीन दिन के उपवास हुए ग्राखिर भगवान ने कृपा करके मंत्र दीक्षा दी ग्रौर पूछा, "गुरु दक्षिणा में कितनी माला दोगे ?" उत्तर दिया, "एक भी नहीं ।" हँसते हुए भगवान ने कहा, "फिर मंत्र क्यों लिया ?" तो बोले, "बिना माला फेरे पार होने के लिये । इसीलिये तो तीन दिन भूखे रहकर ग्राप से ही नाम लिया है वरना नाम सुनाने वाले साधु कम मिलते हैं क्या ?" हालाँकि वे भाई नाम जप के प्रेमी हैं, भक्त हैं परन्तु भगवान के प्रति उनकी ऐसी ग्रद्‌भूत निष्ठा है । भगवान के ऐसे कई निष्ठावान भक्त भी हैं, भगवान को कहते हुए सुना है, "कोई-कोई मेरे ऐसे भक्त हैं जो कि एक बार मंत्र लेकर चले गये फिर दिखते भी नहीं है ग्रौर खूब भजन करते हैं ।"

समय-समय पर ग्रलग-ग्रलग पद्धति से सबको मंत्र दीक्षा देते थे तब कई लोगों को प्रश्न उठता था, "हमें तो इस प्रकार से दीक्षा नहीं दी है कारण किसी को जाहिर में यज्ञ करके तो किसी को एकांत में किस-किस ढंग से तैयार करते होंगे यह तो भगवान ही जाने लेकिन जब कभी भगवान के पास कोई तुलनात्मक प्रश्न करते थे तब प्रत्युत्तर में कहते थे, "देखो भाई, पात्र सामने ग्राने पर उसकी पात्रतानुसार दीक्षा दी जाती है । मुर्गी के पैर का ताला हाथी के पैर में नहीं लग सकता ग्रौर हाथी के पैर का मुर्गी के पैर में नहीं लग सकता ।"

भगवान के हजारों भक्त और शिष्य वृंद में अनेक ढंग से भगवान सबको तैयार करते हैं कारण जीवमात्र के जनम-जनम के संस्कार त्रिकालदर्शी भगवान से छिपे नहीं रहते । गत जन्म में किसका अभ्यास कहाँ से अधूरा है या किसको अभी बालमंदिर से चालू कराना है वे बराबर जानते हैं । जीवात्मा को अपनी दृष्टि से मतभेद दिखाई देते हैं परन्तु जीव मात्र पर भगवान की अहैतुक कृपा है ही । वे भाव में भेद कैसे कर सकते हैं ? व्यवहार में जरूर ऐसा लगता है कारण जैसे माँ, अपने पाँच साल के बालक और पन्द्रह साल के बालक के साथ व्यवहार अलग-अलग करती है । पाँच साल के बालक को खिचड़ी और पन्द्रह साल के बेटे को मेवा-मिठाई खिलायगी क्योंकि उसी में दोनों का हित देखती है । आंतरिक भाव में फर्क नहीं होता है । ठीक उसी प्रकार भगवान ने भी सब शिष्यों में से किसी को सेवा, किसी को ध्यान, किसी को योग की क्रियायें तो किसी को मात्र भक्ति करने के लिये कहा है । प्रभु प्राप्ति के तीन मार्ग तो शास्त्रों में बताये गये हैं – ज्ञान, भक्ति और कर्म, परन्तु मेरे जैसी निर्बल के लिये तो गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराजजी ने बताया हुआ चौथा मार्ग दीनता, शरणागति या केवल राम-नाम का ही है ।

तुलसी त्रिपद विहाय के रामदुवारे दीन

प्रसंगोपात् भगवान के अनेक प्रवचनों में से रामनाम के प्रति और प्रेम भक्ति के प्रति ही मेरी रुचि अधिक रही है । वैसे मुझे अंगत भी इस विषय में कहते रहे हैं, अधिकतर मेरे आये हुए पत्रों में भी, "भजन खूब करना" यही मुख्य इशारा है । इसके अनुलक्ष में स्वमुख से बोले गये और रचे गये दोहे और पद मुझे अधिक प्रिय हैं ।

रामनाम जपते रहो, भूखे को कुछ दो,
इतने से सुख ना मिले, तो बनादास से लो ।

सब योगन को योग है, सब वेदन को सार,
बना राम को नाम है, सबको प्राण आधार ।

सभी रसायनी हम करी, नहीं नाम सन कोई,
किंचित् घट में संचरे, तो सब तन कंचन होई ।

रामनाम की औषधि, खरी रीत से खाय,
अंग पीड़ा व्यापे नहीं, महारोग मिट जाय ।

रामनाम जपते रहो, जब लग घट में प्राण,
कबहुँक दीनदयालु को, भनक पड़ेगी कान ।

पुरान को पार नाहीं, वेदन को अंत नाहीं,
वाणी अपार कहो, कहाँ चित्त दीजिये,
लाखन की एक कहूँ, करोड़ की एक कहूँ,
सबहीको सार एक, राम नाम लीजिये ।

मुझे भी कहते थे, रमा,

रमा, रहो कोई से भी गाम, करो कोई सा भी काम
पर भजो आठों धाम, श्री राम राम राम

सत्य की राह बताई,
गुरुजी ने सत्य की राह बताई
प्रभु के नाम से नेहा लगाई,
सद्गुरुजी ने सत्य की राह बताई
जो भजे हरि को सदा, वोही परम पद पायगा
जो भजे हरि को सदा ...

भगवान हमेशा कहते रहे,"कैसे भी नाम जपो, खेत में उल्टा-सीधा कैसे भी बीज डालो, जरूर अंकुरित होता है । "एक बार भगवान ने कहा, सौराष्ट्र में मैं एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहा था । रास्ते में एक बाड़ी में एक किसान खटिया पर बैठकर माला फेर रहा था । मैंने कहा, "ए भाई, क्या कर रहे हो ?" जवाब मिला, "माला फेर रहा हूँ" मैंने कहा, "ऐसे कहीं माला फेरी जाती है ?" उसने कहा, "बापु, आप कैसे फिराते हो ?" मैंने कहा, "मैं तो माला फेरता ही नहीं हूँ ।" तो कहा, "बापु, आपसे तो मैं अच्छा हूँ, किसी भी तरह से माला फेरता तो हूँ ।" तो भाई, कैसे भी, किसी भी हालत में माला फेरो, किसी ने कहा है,

माला फेरत युग गया, गया न मन का फेर
कर का मन का छोड़कर, मन का मन का फेर

परंतु

माला मन से लर परी, तू क्यों बिसरे मोहि
बिना शस्त्र को शूरवीर, लरत न देखो कोई

भाव कुभाव अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिशि दसहूँ

इसके अलावा भगवान का स्वरचित पद जो मुझे अतिप्रिय है उसे आचरण में डालना तो प्रभुकृपा के बिना मुश्किल जरूर है, फिर भी प्रयत्न करती हूँ, उनकी परम कृपा से कभी ना कभी सफलता मिलेगी,

प्रभु नहीं मैं शुभ गति इच्छुक,
नहीं मोक्ष की मुझको साध,

नहीं सिद्धि अणिमादिक चहता,
नहीं स्वर्ग में है विश्वास ।

यही अभिलाषा प्राणी मात्र के,
जीवन में हो सुख आभास,

भले भोग लूं कष्ट सबों के,
हो उनके दुःखों का नाश ।

पिताजी के कहने से और अब और कोई उपाय न होने से जीजाजी के साथ उनकी माँ भी भगवद् दर्शन के लिये बम्बई से झरिया जाने के लिये तैयार हुए । उस समय भगवान राँची में बिराजते थे परंतु उन्हें झरिया का ख्याल था । जीजाजी की तबियत अधिक नरम होने के कारण उन्हें राँची ले जाना मुश्किल था इसलिये झरिया से फोन द्वारा भगवान को सूचित किया तब भगवान ने कहा, "तुम नहीं आना मैं आ रहा हूँ ।" कष्ट सहन करके भी एक जीव के कल्याणार्थ भगवान कृपा करके झरिया पधारे । जीवात्मा जब चारों ओर से हार जाता है तब भाव कुभाव से भी सब कुछ करने को तैयार हो जाता है ।

पिताजी के कहने पर जीजाजी ने भगवान को प्रणाम करके पूजन किया, चरणामृत लिया और कभी न माननेवाले या बोलनेवाले जीवात्मा ने रामनाम का जाप चालू कर दिया ।

भगवान ने पिताजी से कह दिया था, कि "कान्ता को सम्हालना पड़ेगा ।" अब और कुछ नहीं हो सकता था परन्तु पिताजी की एक ही भावना थी कि अन्त समय में इनका कल्याण हो कारण मानसजी के आधार पर भगवान के श्रीमुख की बानी है –

सन्मुख होय जीव मोंहि जबहीं, जन्मकोटि अघ नाशौं तबहीं

जीजाजी को लेकर पिताजी बम्बई गये, भगवान वापिस राँची पधारे और राँची से जयपुर पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

राँची
२७-८-६४

प्रिय रमा सादर आसीस

मेरे सब पत्र मिले होंगे ।

मेरा स्वास्थ ठीक है पर चिन्तायें खूब रहती हैं देखो तुम खूब भजन करना और आनन्द से रहना । हिम्मतलाल (जीजाजी का नाम) के स्वास्थ की खबर देना जो कि निराशा है फिर भी भगवान को कोई अशक्य नहीं मैं ३० तक यहाँ हूँ बाद बांसरा जाऊँगा २० दिन रहूँगा । तुम धीरज रखना और भजन करना सबको आसीस ।

रणछोड़दास का आसीस

भगवान ने कहा था वैसा ही हुआ । बम्बई पहुँचकर एक सप्ताह में जीजाजी का शरीर शान्त हो गया लेकिन रामनाम अन्त तक चालू रहा । उनके कुटुम्बीजन पिताजी से कहने लगे – आपने इनके मुँह में रामनाम कैसे दिलाया ? कोई संस्कारवश उनके क्रोधी स्वभाव से वे गालियाँ बोलते थे उसके बदले रामनाम !! यही तो प्रभु की अहैतुक कृपा का प्रमाण है ।

मज्जन फल पेखिय ततकाला, काक होय पिक बकहुँ मराला
सुनि अचरज करै जनि कोई, सत संगति महिमा नहिं गोई



[४८]

सोई करहु अब कृपा निधाना

भगवान को जीजाजी का शरीर छूटने की खबर देने पर राँची से भगवान का पत्र आया –

प्रिय रमा सादर आसीस,

रमा तुम्हारा पत्र पढ़ते ही अति संवेदना उत्पन्न हुई और कल पत्र न लिख सका। भगवान उनकी आत्मा को चिर शान्ति दे और कान्ता को साहस और धीरज दे यही प्रार्थना यहाँ जिसने सुना सबको अति दुःख हुआ।

पुरुषोत्तमभाई को एक नवीन परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा वह तो परमार्थ शैधक है पर देशकाल से व्यथित हो गये होंगे। कुछ बस नहीं चलता भावि से।

कान्ता का क्या होगा यह जटिल प्रश्न उनके जीवन में उपस्थित हो गया क्या करूँ पतितपावनजी रक्षा करें।

सबको आसीस रणछोड़दास का·······

व्यवहार-कुशलता भी कितनी अद्भुत !! सोलह कला में निपुण परमात्मा के बारे में क्या कहना ?

कला अपरंपार उसमें पहुँचे नाहीं विचार
प्रभु तेरी कला अपरंपार जी·················

भगवान राँची से निकलने के बाद लिखे अनुसार शायद बाँसरा में बिराजते होंगे। पत्र आया परन्तु उसमें तारीख या गाँव का नाम न था।

श्री रामचन्द्राय नमः

प्रिय रमा सादर आसीस,

तुम्हारे पत्र मिलते हैं और प्रेमबिन्दु नेत्र से विवश होकर बाहर आ ही जाते हैं ।

देखो तुम सदैव अपने को पापी पापी का उल्लेख करती हो यह मेरे से सहन नहीं होता न जाने क्यों मन ग्लानि से भर जाता है अस्तु तुम ऐसे शब्दों का प्रयोग न करो । तुम पापी नहीं पर पापों को पीनेवाली हो समझी ।

अच्छा अब थोड़ा जो वज्रपात् हुआ उसका विचार करो कान्ता के स्वभाव को तुम खूब जानती हो और भाइयों के स्वभावों को भी मैं चाहता हूँ कि तुम भी उनके कष्ट में मददरूप बनो और थोड़ा परिश्रम करो तो ठीक देखो कान्ता बहन जयपुर आ रही है उनको खूब सान्त्वना देना और हिम्मत, साहस और जगत की नश्वरता का संस्कार डालना खूब प्रेम से समझाना ।

रणछोड़दास का आसीस

इसी पत्र में आगे लिखा था,

रमा तुम विश्वास करो तुमसे एक क्षण अलग नहीं हूँ और न तुमको कभी भूलता हूँ । तुम्हारी सहनशक्ति सराहनीय है तुम धीरज रखो भगवान का भजन करो । विषयों पर दोष दर्शन करने का सतत् अभ्यास करो ।

भगवान हिम्मतलाल की आत्मा को अवश्य शान्ति देंगे इसमें कभी शंका नहीं है ।

तुम खूब भजन करो, रमा तुम दो साल वाले बालक को अपने पास रखो तो ? तुम उसकी पालक माँ बनो तो ? मैं बराबर तुम्हारी उलझन सुलझाता रहूँगा हो । तो कान्ता को बड़ा ही सहारा होगा रमा तुम कितनी अच्छी हो ।

इस पत्र के प्रत्युत्तर में मैंने लिखा था, भगवान, आपका प्रेमपूर्ण पत्र मिला । मैं जब तक जयपुर रहूँ तब तक गृहकार्य की पूरो जवाबदारी सम्हालती रहूँ यह ठीक है । परन्तु आपने जो पूछा है, "रमा, तुम दो साल वाले बालक को अपने पास रखो तो ? तुम उसकी पालक माँ बनो तो ?" भगवान यह कैसे हो सकता है ? क्योंकि मेरे लिये यह कितना बड़ा बंधन हो जायेगा फिर तो मुझे कभी भी आपके पास आना कितना मुश्किल हो जायेगा । फिर भी यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं कुछ नहीं कह सकतो । हाँ आप मुझे इस बहाने अपने से दूर रखना चाहो तो यह उपाय ठीक है । आपकी सेवा के लिये तो मुझ में कोई पात्रता है नहीं अब इस बहाने आपके पास आना ही बंद हो जायेगा और इस झंझट से भजन में भी विक्षेप होना सहज है । मेरी बुद्धि अनुसार तो यही समझ पाती हूँ बाकी तो जैसे आप कहेंगे वैसे करूँगी । मुझे तो कई बार आपकी कृष्णलीला देखकर मन ही मन गुस्सा आता है क्योंकि मेरे इष्टदेव श्री राम हैं न कि श्री कृष्ण, कहाँ तो रामजी का सीधा सरल जीवन और कहाँ श्री कृष्ण की अटपटी लीला ! !

मैंने जो कुछ भी लिखा था उसके अनुसंधानिक पत्र आया –

।। श्री रामचन्द्राय नमः ।।

श्री कृ..........

रमा..........

प्रिय रमा सादर आशीरवाद

तुम्हारा प्रेमाल पत्र मिला उसमें निष्ठा की परिपक्वता का दर्शन हुआ हां जी कृ. ली. देखकर तुमको दुःख और भीतर-भीतर गुस्सा भी आता था पर जैसा तुम सोचती हो वैसा नहीं पर साधुता के नाते समत्व नहीं टूटना चाहिये न ? अस्तु तुम्हारा दुःख जानते हुये भी निर्वाह करना पड़ता था और झंझट से तुमको बचाने का भी प्रयत्न के कारण दूर रखने का था (इसका कोई गंभीर अर्थ नहीं लेना)

मेरी रमा तुम कितनी अच्छी हो रमा तुममें कितना त्याग है तुम्हारा स्नेह इसी सहनशीलता में अपना स्वरूप निखार रहा है ।

रमा क्षुद्र विषयों पर विचार कर, वैराग्य को दृढ़ कर वासनाओं का शमन करना ही मानव का कर्तव्य है अक्रोध बनने का प्रयत्न करना हो ।

अरे हाँ कान्ता के बच्चों के पोषण को निमित्त बनाकर तुम्हें दूर रखना चाहता हूँ ?

अरे भोली ऐसी बात नहीं है पर जब-जब विपत्ति आती है तब-तब मानव का सहयोग धीरज को अवलम्ब देता है यही मेरा हेतु था ।

पुरुषोत्तमभाई आ गये होंगे और सब शोक मुक्त होने का प्रयत्न करते होंगे ।

मेरी रमा स्वास्थ ठीक है पर कमजोरी बहुत है ।

सबको आसीस

मैं तारीख २७ तक यहाँ हूँ बाद में महाबलेश्वर जाऊँगा ।

रणछोड़दास का आसीस

इस पत्र के पश्चात् २२-६-६४ को लिखा हुआ भगवान का दूसरा पत्र आया ।

श्री रामचन्द्राय नमः

२२-६-६४

प्रिय रमा सादर आसीस

मेरे पत्र मिले होंगे । मेरा स्वास्थ ठीक है । मैं चतुर्थी चित्रकूट में करने का विचार करता हूँ आओगी ना ? क्यों आने को गुद्‌गुदी आई कि नहीं सच बताना अच्छा सुनो खूब आनन्द की बात देखो, चित्रकूट में केम्प डल रहा है और नौ नवम्बर को ऑपरेशन प्रारम्भ होगा । मैं दशहरे बाद १३ दशी को पहुँचूंगा । अब तुम कब पहुँचोगी लिखना पर जल्दी आना अच्छा ।

वहाँ फिर द्वेषादि में न पड़ना, अच्छा मनहर और धीरु भी आवेंगे, खूब आनंद रहेगा ।

देखो पुरुषोत्तमभाई से भी पूछना कि वह आवेंगे ?

सबको आसीस

रणछोड़दास का आसीस



[४६]

जय कृपाल जय जयति मुकुंदा

भगवान का पत्र मिलने पर मैं दो-चार दिन में चित्रकूट के लिये रवाना हुई । उस साल गुरु पूर्णिमा जयपुर हुई थी । उत्सव पर आये हुए भेंट वस्त्रों की एक बड़ी पेटी भगवान जयपुर रख गये थे वह भी मुझे साथ ले जानी थी, मेरा बेग, बिस्तर और रसोई का सामान तो था ही । पिताजी ने मुझसे कहा था, "शाम को सात बजे आगरा फोर्ट पहुँचने पर तुरंत ही आगरा छावनी की गाड़ी वहाँ से मिलेगी । सामान अधिक है और अंधेरा हो जायेगा, इसलिये तुम उसी में चली जाना । मैं आगरा पहुँची तब उस ट्रेन का जाने का समय हो चुका था । सामान लेकर पहुँचने पर ट्रेन चालू हो गई । मेरे साथ एक बहन थीं, उन्हें भी आगरा छावनी जाना था । मेरे कहने से वह हम दोनों की टिकिट लेकर ट्रेन में चढ़ गये थीं परंतु जीवन में प्रथम बार वह प्रवास में निकली थीं, इस कारण डरते हुए मेरी राह देख रही थीं । मैं प्लेटफोर्म की दूसरी तरफ थी । वहाँ से सामान लेकर चढ़ना मुश्किल था । मैंने उन्हें जंजीर खींचने के लिये कहा, गाड़ी रुक गई, मैं सामान के साथ चढ़ गई । उस डिब्बे में आगरा कॉलेज के सब विद्यार्थियों के साथ उनके प्रोफेसर और एक पुलिस भी था । हम दोनों को अकेले देखकर कैसे भी सिनेमा के गाने गाना और अंटसंट बोलना चालू कर दिया । मुझसे यह सहन न होने पर वापिस जंजीर खींचने की सोचने पर उस बहन ने मुझे रोक लिया । इतने में कोई अन्य कारण से गाड़ी रुक गई । गार्ड का डिब्बा बगल में ही होने से जाकर उन्हें यह बात बताई । वे विद्यार्थियों को समझाने के लिये आये, खबर नहीं कैसे भगवद् कृपा से मैं उस दिन बोल पाई । गाड़ी चलने पर सब शांति से बैठ गये ।

आगरा छावनी से तुरंत झांसी के लिये गाड़ी मिल गई, वहाँ से कर्वी, सीतापुर होकर जानकीकुंड पहुँची । भगवान भी वहीं बिराजते थे, प्रणाम करने पर बोले, "अच्छा आगरा में खटपट हो गई क्यों ?

फिर तो कोई तकलीफ नहीं हुई ना ?" बस इतना ही बोले, परंतु इसमें सब बात आ गई । इसी प्रकार साथ रहकर विघ्नों में से पार करते रहे हैं ।

दीवाली के लिये अभी २०-२५ दिन की देर थी, थोड़े भाई-बहन आ गये थे । नेत्रयज्ञ के लिये अनाज साफ करने का कार्य चल रहा था, उसमें मदद करने जाती थी । दो-चार दिन बाद मैंने चिट्ठी लिखी, "भगवान, बहुत बात करना चाहती हूँ, थोड़ा तो समय निकालो । आप तो ऐसे रहते हो जैसे पहचानते भी नहीं, सामने देखते भी नहीं हो ।"

प्रत्युत्तर लिखकर दिया, "यह तो उल्टा ही निकला, मैं समझता था कि तुम मेरे पास आती नहीं और उपेक्षा का भाव है, आज ही तुम्हारे रूम में जाने का था, पर तुम तो गेहूँ साफ कर रही थीं, फिर क्या करूँ ?

पूछा दो बार, रमा कहाँ है ? जवाब मिला, नहाने गई है और फिर पूछा तो सो रही है ।

अच्छा मैं कल अवश्य समय दूंगा और १५ मिनिट रोज दूँगा ।"

भगवान ने मुझे बुलाकर सबके कुशल समाचार पूछे । बड़ी बहन जयपुर आ गई थी । चतुर्थी उत्सव पर सब आयेंगे वह बताया और भेंट आये हुए वस्त्रों की पेटी भगवान को सौंप दी । कभी-कभी अनुकूलता से बातचीत करने बुलाते रहते थे ।

नेत्रयज्ञ प्रमोदवन में होनेवाला था । भगवान रोज केम्प का बांधकाम देखने के लिये वहाँ पधारते थे, कभी-कभी मैं भी साथ जाती थी । एक दिन पहनी हुई गरम टोपी निकालकर मुझे दी और स्वयं काम देखने के लिये थोड़ी दूर पधारे । वहाँ से मुझे एक सुन्दर मयूरपंख मिला, वह मैं भगवान की टोपी में सजा रही थी । मेरा ख्याल न था इतने में अचानक आकर मेरे हाथ से टोपी ले ली और पहनकर बोले, "मोर मुकुट बंसीवाले की जै", भावानुकूल आनंद कराते थे । शरद् पूर्णिमा के दिन भी कहा, "आज तो रास का दिन है ना, सबको इकट्ठा करके रास खेलेंगे क्यों ?" इस तरह से श्री कृष्ण स्वरूप के दर्शन कराये, कारण मेरे लिये राम या कृष्ण जो भी कहो मेरे भगवान ही हैं ।

दशहरे के दिन मैंने कहा, "भगवान, मैंने ऐसा सुना है कि आज के दिन प्रेमभाव से श्री कामद्गिरि में रात को दस-ग्यारह बजे के समय पर परिक्रमा में रामजी के दर्शन होते हैं, तो मैं परिक्रमा करने जाऊँ ? मेरे साथ दो-तीन बहनें आने वाली थीं । हँसते हुए कहा, "ठीक है जाव, दो विद्यार्थी को साथ ले जाना ।" परिक्रमा में बिराजमान श्री हनुमानजी के पूजन के लिये चूरमा के लड्डू बनाकर ले गये थे । मौन रखकर परिक्रमा चालू की । बीच में हनुमानजी के मंदिर पर रुक कर सुन्दरकांड, हनुमान बाहुक, हनुमान चालीसा और हनुमान अष्टक का पाठ करके पूजन, आरती किया । उस दिन परिक्रमा में ग्रामवासियों की भी काफी भीड़ थी । उसमें से कई भावपूर्वक दंडवत परिक्रमा कर रहे थे ।

परिक्रमा पूरी होने पर भी दर्शन तो मिले नहीं । अपनी मूर्खता समझ पाई कि साक्षात् रामजी के पास से निकल कर यहाँ किसके दर्शन को मैं आई ? वापिस लौटते एक सूखी नदी के किनारे भजन गाते हुए बैठ गये । इतने में पपरेंदा के दो-तीन भाइयों ने आकर कहा, "चलो बहनजी, महाराजजी बुलाते हैं ।" वहाँ से पहली ही टेकडी चढ़ने पर सामने ही जानकीकुंड आश्रम दिख रहा था । भगवान संस्कृत विद्यालय की ऊपर की छत में भक्त समूह के साथ बिराजमान थे । देर हो जाने से प्रणाम करने के लिये पास जाने की हिम्मत न थी । फिर भी प्रणाम करने पर हँसकर बोले, "क्यों दर्शन हो गये ?" भगवान ने भी मानो हमारी परीक्षा करने के लिये ही परिक्रमा में जाने की इजाजत दी थी । अपनी नादानी समझ में आई । साथ वाले बहनों ने भगवान को हनुमानजी का प्रसाद दिया ।



[५०]

जासु कृपा अज शिव सनकादी

भगवान के दर्शनार्थ आसपास के गाँव से अनेक भक्तजन आते रहते थे । पपरेंदा, खप्टीहा, हस्तम, अत्तर्रा, सरैया और बांदा में भगवान के अनेक शिष्य रहते हैं । उनके लिये भोजन और रहने की व्यवस्था भगवान ने करवाई थी । उनके साथ बैठकर उन्हीं की भाषा में कुशल खबर पूछते थे । नेत्रयज्ञ में भारी से भारी काम के लिये भगवान के शब्दों पर वे लोग हमेशा तैयार रहते थे । वे लोग हर साल अपनी खेती में से कुछ हिस्सा जानकी कुंड पहुँचाते थे । भोले-भाले भाविक भक्तों के बीच भगवान मुक्त हास्य के साथ आनन्द करते थे और कराते थे ।

अब तो धीरे-धीरे बाहर गाँव से बहुत गुरुभाई-बहनें आने लगे थे । साधुओं के लिये भावपूर्वक भंडारे होते थे और रोज अलग-अलग चीजें भगवान प्रेमभाव से बनवाते थे । अधिकतर साधु भोजन में काली रोटी, सफेद दाल बनाने को कहते थे, काली रोटी याने गुड़ के मालपूए और सफेद दाल याने खीर । साधु भाषा में खीर को "तस्मय" कहते हैं । साधुजन नमक को "रामरस", चावल को "रामप्रसाद", दही बड़ा को "रामचक्रा" कहते हैं । कोई भी चीज के साथ भगवान का नाम जोड़ते हैं । वे लोग परस्पर एक दूसरों को बुलाते हैं तब भी "सीताराम, सीताराम" कहकर बुलाते हैं ।

अधिकतर रामनवमी का उत्सव हर साल चित्रकूट में ही मनाया जाता था । उन दिनों में गरमी का प्रमाण काफी रहता था फिर भी खुल्ले पैर, अचले को ऊपर बांधकर अपनी कलाई पर मालपूए लेकर तेजी से चलते हुए साधुओं को प्रेमभाव से आग्रहपूर्वक परोसकर जिमाते थे । कोई साधु परिस्थितिवशात् मालपूए पत्तल के नीचे छिपा लेते तो प्रेम से कहते थे, "पहले ये खा जाव, साथ में ले जाने के लिये भी दूंगा और जितने चाहिये उतने माँग लेना ।" जब पंगत उठने का समय होता

था तब वापिस परोसने निकलते थे और कहते थे, "जो एक मालपूवा खायेगा उसको एक रुपया दूंगा ।" इतने प्रेमाग्रह से साधुओं को जिमाते थे । भोजन के बाद खूब प्रसन्नता से बोल उठते थे, "ना जाने क्यों मुझे खाने से अधिक खिलाने में बहुत आनन्द आता है ।" आगे हँसते-हँसते बोलते थे, "अरे बाबा, देने वाला देता है, खाने वाला खाता है, हमारे बाप का क्या जाता है ?" हर साल रामनवमी, भगवान् का जन्मदिन और गुरुपूर्णिमा इन तीन उत्सव पर मेवा-मिठाई और वस्त्रों के ढेर लगते थे । उन दिनों में जहाँ भी हो वहाँ से, जितना हो सके जल्दी सब बाँट देते थे । कभी-कभी अधिक वस्त्र होने पर नेत्रयज्ञ में या छोटे गाँवों में पहुँचा देते थे । सूखे मेवे के डिब्बे भराकर मोटर में रखवाकर जहाँ भी जाते थे रास्ते में छोटे गाँवों में बाँट देते थे । गरीब लोग जिन्होंने कभी मेवा देखा भी न हो वह बहुत प्रसन्न होते थे, उनकी प्रसन्नता देखकर भगवान आनन्द विभोर हो जाते थे ।

अनन्तपुर छोटा गाँव है, रेलवे लाइन से दूर होने पर वहाँ की गरीब जनता को कोई-कोई चीजें तो देखने को भी नहीं मिलतीं । भारत देश में ऐसे तो कई गाँव हैं पर मानो अनन्तपुर भगवान का गाँव था ।

अब तो दीवाली नजदीक आने से अन्नकूट की तैयारियाँ होने लगीं । सबको अलग-अलग काम सौंप दिया था और भावपूर्वक अनेक चीजें बनवाते थे । स्वयं भगवान सब के साथ रहकर काम करवाते थे जिससे खूब उत्साह रहता था । मुझे हर प्रकार के लड्डू बनाने का काम सौंपा गया था । मूँग, चावल, चूरमा, बेसन और उड़द के लड्डू बनाने थे । मुझे चावल के लड्डू बनाना नहीं आता था, तो पास रहकर सब विधि बताकर बनवाया । संत रसोईघर में बहुत बड़े प्रमाण में बूंदी के लड्डू बनवाते थे ।

एक दिन सुबह मंदिर में मैं पाठ कर रही थी तब एक भाई बुलाने आये, "चलो जल्दी आपके कमरे में भगवान पधारे हैं ।" मेरे साथ और भी दो बहनें थीं । कमरे में जाकर देखा तो मेरी पूजा के स्थान पर आसन बिछाकर बैठे थे और दीया जलाकर भगवान की आरती कर रहे थे । कितना आश्चर्य !!! भगवान स्वयं ही अपनी आरती उतार रहे थे, मैं पीछे खड़ी थी । आरती पूरी होने पर, मेरे सामने देखकर मधुर

स्मित के साथ बोले, "मोर मुकुट बंसीवाले को जै" और पूछा, "अरे ! तुम्हारे भगवान का नाम क्या है ? सब लोग होने से मैंने एक चिट्ठी में लिखकर उत्तर दिया, वह काटकर लिख दिया, "रमा रमरा ।"

दूसरे दिन सुबह आठ-नौ बजे मंदाकिनीजी के किनारे जानकीजी के चरणों की पूजा करने जा रही थी । रास्ते में एक गुफा में एक गुरु-बहन का निवास-स्थान था । तब तो कच्ची गुफायें थीं, सब गोबर से पोतकर स्वच्छ रखी जाती थी । उस बहन ने "जय भगवान" कहकर अपनी गुफा में आने के लिये कहा । मैं अभी बैठी ही थी, इतने में एक भाई आकर, "जय भगवान, कैसे हो ?" कहकर चले गये । भगवान ने ही उन्हें भेजा था कि, "देखकर आव, वहाँ कौन-कौन है ?" थोड़ी देर में वे भाई वापिस मुझे बुलाने आये । मेरे जाते ही भगवान ने सबको बाहर भेजकर अकेली बुलाकर कड़क स्वर में कहा, "क्यों कहाँ गई थी ?" मेरे बताने पर कहा, "मालूम है किसके संग में बैठी थी ? जीवन बिगाड़ना चाहती हो ? आगे से ध्यान रखना, जीवन बरबाद हो जायेगा ।" तब मैं सबके स्वभाव से इतनी परिचित न थी । सबसे छोटी होने से सबको प्रणाम करके आदर करती थी । परंतु भगवान हर क्षण साथ रहकर सम्हालते थे और सबके स्वभाव से सावधान करते रहते थे । धीरे-धीरे समय बीतने पर इस विषय में भी बहुत अनुभव मिले ।

भगवान के शब्द याद आये,

मन कौआ तन बक सरिस, बैन मयूर समान,
बनादास फिर कौन विध, तू चाहे कल्याण ।

भगवान के इन शब्दों के अनुसार आज के समाज में अधिकतर ऐसे व्यक्तियों के दर्शन मिलते हैं ।

उसी दिन दोपहर में भगवान की छोटी-सी गुफा में आठ-दस जने बैठे थे, तब कहा, "रमा, 'जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी' उसका अर्थ क्या ?" तब कई बार मानस पाठ करने पर भी मन लगाकर न करने से शब्दार्थ भी मुश्किल से समझ पाती थी । मैंने अपनी समझ से कहा, "भगवान, बत्तीस दांत के बीच जीभ की तरह रावण के राज्य में विभीषणजी की दशा थी ।" भगवान ने कहा, "यह तो ठीक है पर

तुम्हारे लिये क्या ?" मैं कुछ बोली नहीं, आगे कहा, "देखो, भोजन चबाने की मेहनत कौन करता है ? बत्तीस दांत ना ? परंतु उनमें स्वाद ग्रहण करने की क्षमता नहीं होती, स्वाद तो जीभ ही ले सकती है, बस तो तुम्हारे लिये यही अर्थ लागू होता है । भले सब मेहनत करते रहें, स्वाद तुम ले जाना ।"

दो-चार दिन बाद रात को भगवान सोये थे तब गरमी अधिक होने से मैं हाथ से पंखा कर रही थी । धीरे-धीरे सब सो गये, भगवान गाहरी निद्रा में हों, ऐसा प्रतीत होता था । दो-तीन बहनें बाहर दरवाजे में ही सोये थे । करीब ढाई बजे आवाज किये बिना उठे और मुझे साथ चलने को इशारा किया । गुफा की बगल में ही गुजराती रसोईघर था जिसका दरवाजा खोलकर अंदर ढँके हुए भगौने खोलकर देख रहे थे । ऐसा करने का हेतु तो भगवान ही जाने । वापिस आकर सो गये । फिर साढ़े तीन बजे उठे, तब दो-चार व्यक्ति उठकर आ गये थे । उठते ही अंदर की गुफा में से शक्कर के मालपूए की थाली मँगवाकर देखी, उसमें आठ-दस मालपूए थे, वह सब मुझे देकर कहा, "जाव स्नान करके बाल भोग लगाना और धीरु, मनहर को भी देना ।"

कभी-कभी सेवा, सान्निध्य मिल जाता था । भोजन की प्रसादी न मिलने पर किसी से माँगती नहीं थी परंतु इच्छा तो रहती ही थी । हमेशा यह इच्छा किसी भी तरह से भगवान अवश्य पूरी करते थे । कुछ भी नहीं तो खाँसी के कारण मुँह में रखी गई पेप्स गोली या लौंग दे देते थे । कभी अनुकूलता देखकर पीने का पानी मुझ से माँगते थे और वह प्रसादी जल मिल जाता था ।

धूमधाम से दीवाली, अन्नकूट का उत्सव मनाया गया । जल्दी सुबह प्रेमपूर्वक पूजन स्वीकार किया, अब तो भगवान के जन्मदिन चतुर्थी पर और भी मेहमान आ गये । नेत्रयज्ञ की तैयारी भी हो गई थी ।

बीच में एक दिन कहा, "जाव-जाव, खा पी के सो जाव ।" भगवान के मुखारविंद से "जाव" शब्द सुनना असह्य लगता था । मैंने लिखकर दिया, "भगवान, खाना, पीना और सोना तो घर में भी करने का है, यहाँ तो बैठने दीजिये ।" प्रत्युत्तर दिया, "क्या यह तुम्हारा घर नहीं है ? यदि हाँ तो जाव, खाव और सो जाव ।" मैंने थोड़ी नाराजगी से

लिखकर दिया कि, "ठीक है, आप भगाना ही चाहते हो तो जा रही हूँ", इतना कहकर उठने पर वापिस बुलाकर लिख दिया, "अरे बस खतम जवाब में ही दु:खी अरे, वाह जी वाह, मजाक में भी गपाड़ा करती हो, अच्छा जो अब मजाक को तलाक दे देंगे बस ना ? पर नाराज न हो ।"

भैया दूज के दिन शाम को संस्कृत विद्यालय के बगल के खुले आँगन में भगवान समूह में बिराजते थे । इतने में जयपुर से माँ-पिताजी वगैरा सब आये । भगवान ने कहा, "चलो उठो रमा, सम्हालो, तुम्हारे घर मेहमान आये हैं ।" भगवान के बताये हुए स्थान पर सबको पहुँचाने गई और जरूरी व्यवस्था कर दी । इन शब्दों में कितनी आत्मीयता थी । हरेक व्यक्ति के साथ भगवान ऐसा ही बर्ताव रखते थे । कोई भी आवे उन्हें प्यार से पूछते थे, "कब आये ? सामान कहाँ है ?" रहने की व्यवस्था कराकर भोजन या चाय-पानी के लिये पूछते थे । जभी तो सब की अनुभूति थी कि भगवान मेरे ही हैं । छोटे-बड़े या अमीर-गरीब का भेद किये बिना भावानुकूल सबको स्नेह देते थे । हमें भी तब वह हमारा घर ही लगता था लेकिन अब तो मानो सब आश्रम हमारे लिये बिक चुके हैं । रामराज्य याने प्रेमराज्य, वह समय तो मानो स्वप्न बन गया । समदरशी है नाम तिहारो····

चतुर्थी जन्मोत्सव प्रेमभाव से मनाया गया ।



[५१]

रामकृपा नाशहिं सब रोगा

भगवान के सान्निध्य में नेत्रयज्ञ शुरू हुआ, मैंने माइनर वॉर्ड की सेवा स्वीकार की । वॉर्ड में करीब दो सौ मरीज थे और काम करनेवाली हम दो बहनें और एक भाई थे । प्रमोद वन में वॉर्ड नहीं बांधे थे । बहुत लंबा बरामदा जैसा मकान था जिससे पहले मरीज से आखरी मरीज तक दवाई, भोजन या अन्य कार्य के लिये बार-बार इतना लंबा आना-जाना रहता था । सुबह भगवान के दर्शन करके काम पर जाते थे तो रात के ग्यारह बजे तक वॉर्ड में ही रहते थे और फिर सर्दी भी चालू हो गई थी । काम चालू होने के बाद रोज हम दोनों बहनें शाम को बारी-बारी से दर्शन को जाते थे । एक दिन मैं गई तब भगवान ने दरवाजा बंद करवाया, अंदर हम तीन बहनें थीं । अचानक पानी माँगा, एक घूँट पीने के बाद मुँह में पानी भरकर पलंग पर बैठे-बैठे ही सामने की दीवार पर पिचकारी मारी और ग्लास का स्टील का ढक्कन हमारी ओर फेंका फिर कुछ समझ में न आवे ऐसा बोलते थे और अपने तकिये हमारी ओर फेंकने लगे । थोड़ी देर के बाद अपने पहने हुए अचले का एक छोर नीचे से फाड़ दिया । यह सब समझ में न आनेवाली क्रियायें थीं । थोड़ी देर तो शांत सोये रहे और बाद में वस्त्र बदलकर स्वस्थ हो गये । इसका मतलब अवश्य किसी का पागलपन लिया होगा, कारण प्राणी मात्र के दुःख स्वयं भोग लें, ऐसी भावना हमेशा रखते थे । कई बार कई लोगों के असाध्य रोग भी भोगते थे । साल बराबर याद नहीं परंतु रामनवमी पर चित्रकूट में ही ऐसी एक घटना प्रत्यक्ष देखी, सुनी है ।

बम्बई के एक सज्जन दंपति भगवान के प्रति खूब श्रद्धा के साथ पूज्यभाव रखते हैं एवम् भगवान के कृपापात्र हैं, सब प्रकार से सुखी थे । उनके यहाँ बालकों का जन्म भी भगवान के आशीर्वाद से ही हुआ है । भगवान के अलौकिक अनुभव भी उन्हें प्राप्त है । उनका नियम था साल में तीन उत्सव, रामनवमी, गुरुपूर्णिमा और जन्मदिन कार्तिक

शुक्ला चतुर्थी पर भगवान भारत के कोई भी कोने में क्यों न हों अवश्य जाते थे । रामनवमी पर भगवान ने उनके लिये गुफा भी तैयार करवाई थी । इतने में उनका तार आया कि उनकी पत्नी को केन्सर की तकलीफ है इस कारण चित्रकूट आने का प्रोग्राम बंद रहा है । भगवान ने तार पढ़कर कहा, "उन्हें तार दे दो, केन्सर केन्सल है आ जाव ।" वे आये तब बहन को बुखार था, गले पर गठान थी । प्रणाम करते रो पड़े, भगवान ने कहा, "इधर आव, कहाँ है तुम्हारा केन्सर ? तुम यह भूल गई कि केन्सर का सेन्सर मैं हूँ, कुछ भी नहीं है, जाव गंगाजी में स्नान करके आव ।" मंदाकिनीजी में स्नान करके आये तब स्वस्थ हो गये थे । अनेक जीवों पर प्रभु की कृपा आज भी बरस रही है । इस प्रकार से कोई भी मुसीबत में हो और भगवान के पास जाकर अपना दुःख जाहिर करके कृपा याचना करने पर मंत्रित किया हुआ जल भी देते थे । एक बोतल में जल भरवाकर अपनी नजर समक्ष खुल्ली रखवाकर सहज ही बोलते थे, "मैं कुछ जानता नहीं, ये लोग मानते नहीं" यह शब्द तीन-चार बार दोहराकर बोतल बंद करवाकर दे देते थे । इससे कई लोगों को लाभ होता था और ऐसे प्रसंग पर बोलते थे, "भाई शरीर रोगों की खान है और गृहस्थ शोकों की खान है" परंतु भगवान की छत्र छाया में,

दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहीं काहुहि व्यापा

शाहों की निगाहों में अजब तासीर होती है ।
निगाहें लुफ्त से देखे, तो खाक अक्सीर होती है ।।

चित्रकूट नेत्रयज्ञ के दौरान, पागलपन की लीला के बाद दूसरे दिन शाम को दर्शन के लिये गये, तब सब बैठे थे, उसमें से एक बहन भगवान के सामने बैठे-बैठे अपने पास रखी हुई बैटरी चालू-बंद करती थी, यह देखकर कहा, "तुम्हारी उम्र कितनी है ?" बहन की उम्र करीब सत्रह साल की थी । भगवान ने कहा, "काम तो पाँच साल के बालक जैसा कर रही हो, बिना कारण टोर्च चालू-बंद क्यों करती हो ?" छोटी-छोटी हरेक बातों पर ध्यान रखते थे । नेत्रयज्ञ के बांधकाम के समय सुतली के छोटे-छोटे टुकड़े भी व्यर्थ नहीं जाने देते थे । एक छोटी-सी कील भी सम्हालकर रखने को कहते थे, कारण धर्मादा की एक पाई का दुरूपयोग होने नहीं देते थे । यहाँ तक कि कोई मिठाई का पेकेट लाता था तब

उस पर लपेटा हुआ डोरा भी सम्हालकर रखने को कहते थे और जरूरत पड़ने पर याद करके उपयोग करवाते थे। १९६३ के गुना नेत्रयज्ञ में एक दिन सब्जी का हिसाब देखते हुए कहा था, "यह क्या पंद्रह रुपये का हरा धनिया ? यहाँ पर सेवा करने आये हो तो पंद्रह दिन धनिया के बिना नहीं चला सकते। यह धर्मादा का पैसा है।" गुजराती रसोईघर में अचानक जाकर दाल-सब्जी के भगौने खोलकर देखते थे और कहते थे, "इतना तेल ? डिब्बा ही उलट देते हो क्या ? गुड़ खाय घोड़ा और तेल पिवे जोड़ा, थोड़ा तो विचार करो।" उस दिन एक बहन को भगवान ने कुछ व्रत करने के लिये कहा, तब मैंने भगवान से कहा, "मैं तो कोई भी व्रत नहीं करती।" तब बोले, "तुम हरितालिका का व्रत करना।" मैंने पूछा, "उसमें क्या करने का होता है ?" तो कहा, "निर्जल व्रत करना और कुछ भी नहीं।" परंतु उस व्रत की किताब पढ़ने पर उसमें जागरण करने का लिखा था, इसलिये घर पर सारी रात बैठी-बैठी मानसजी का अखंड पाठ कर लेती थी।

उसी दिन रात को एक भाई भगवान के आठ-दस फोटो सही करवाने को लाये। उनसे पूछा, "इतने फोटो का क्या करोगे ?" उन्होंने कहा, "भगवान, यह मेरी मौसी के लिये, बुआ के लिये, मित्र के लिये, मामा के लिये वगैरह।" भगवान ने पहले ही फोटो में लिख दिया, "यदि अपने गुरु को ही किसी को दे दोगे तो फिर तुम्हारे पास क्या रहेगा ?" इतना लिखकर और सब फोटो ऐसे ही वापिस दे दिये। वह भाई उसी दिन सुबह भगवान से आज्ञा लेकर श्री कामद्गिरि की दंडवत् परिक्रमा करने गये थे और आशीर्वाद माँगे थे कि, "भगवान परिक्रमा पूरी करवा देना।" रात को थके हुए आये, भगवान ने पूछा, "क्यों परिक्रमा पूरी हो गई ?" निराशा से कहा, "भगवान, एकदम थोड़ी-सी ही रह गई। करीब आधा फर्लांग मुश्किल से बाकी होगा, लेकिन अंत में मुझसे उठा ही नहीं जाता था, इसलिये लौट आया।" निराश देखकर उनसे कहा, "अच्छा मैं कहता हूँ ना पूरी हो गई बस।" यह सुनते ही वे बोल उठे, "भगवान, तो फिर इस भाई से मुझे सौ रुपये दिलवा दो।" आश्चर्य से पूछा, "क्यों ?" भगवान, मैंने उनके साथ शर्त लगाई थी।" भगवान ने हँसकर कहा, "इसीलिये तुम्हारी परिक्रमा अधूरी रह गई।" "लेकिन आपने कहा ना पूरी हो गई", "देखो वैसे अधूरी रही पर तुम उनको

पैसे देना नहीं और मेरे कहने से पूरी हो गई पर तुम उनसे लेना नहीं ।"

अब तो नेत्रयज्ञ में धीरे-धीरे मरीजों की संख्या बढने लगी जिससे समय मिलना मुश्किल था । बारी-बारी से दर्शन को जाते थे, तब कोई न कोई कारण से द्वार बंद रहते थे और निराश होकर वापिस लौटते थे । ऐसे एक-दो दिन नहीं पूरा सप्ताह बीत गया, फिर धैर्य न रहा क्योंकि सब कार्य हमारे लिये गौण थे – भगवान के दर्शन के बिना । कोई भी काम करते थे तो केवल भगवान का सामीप्य, सान्निध्य, प्यार और प्रसन्नता पाने के लिये । दर्शन के बिना फिर कार्य में उत्साह कहाँ ? इसी कारण एक दिन हम दोनों बहनें बात कर रहे थे कि आज रात को अपने दोनों नींद के लिये दो-दो गोली लेकर सो जायेंगे, कम से कम नींद तो आ जायेगी, कारण इतने दिनों तक दर्शन न मिलने से मन व्यथित हो गया था और निराशा से नींद भी नहीं आती थी, फिर दिन में काम भी नहीं होता था । हम लोग मरीजों के आराम के लिये २५ मिलीग्राम की लार्जेक्टील की दो गोली देते थे, वे करीब तीन घंटे आराम से सो जाते थे । इसी हेतु से हमने भी यह सोचा था । यह बात एक भाई ने सुनी और हमें खबर किये बिना वे भगवान के पास जाकर सेवा करने-वाली बहनों को कहकर आये कि रमा बहन मरने की गोली खा गये हैं । थोड़ी देर बाद एक के बाद एक दो-तीन व्यक्ति बुलाने आये, हमें तो कुछ मालूम न था, इसीलिये बहुत खुश-खुश हो गये कि हमें भगवान ने याद किया । साथ में काम करनेवाली बहन ने भी खुश होकर कहा, "मेरी भी याद दिलाना ।"

भगवान के पास जाने पर कमरे के बाहर खड़े हुए लोग विचित्रता से सामने देख रहे थे, पर मैं समझ न पाई । कमरे में गई, भगवान दरवाजा बंद करने को कहते हुए बोले, "इसकी माँ को बुलाव", गुस्से से कहा, "क्यों कितनी गोली खाई हैं, मरने के लिये ?" मैं तो यह सुनकर स्तब्ध हो गई । घबराते हुए पूछा, "भगवान, कैसी गोली ? मैंने तो कोई गोली नहीं खाई ।" तो कहा, "झूठ बोलती हो ? मेरे पास खबर आई है ।" आप तो अंतर्यामी हैं फिर भी विश्वास न हो तो अपने पास बिठा रखिये, कुछ होगा तो आप देखेंगे ना ?" मैंने रात को नींद के लिये जो दो गोलियाँ ली थीं वह अभी साड़ी के पल्लू में ही बंधी हुई थीं ।

मैं रो पड़ी, भगवान बाहर पधारे । अब ख्याल आया कि बाहर सब ऐसे क्यों देख रहे थे ? इतने में माँ रोती हुई आई, उन्हें शांत किया । भगवान के पास रहनेवाली एक बहन मुझे समझाने लगी, "इसमें क्या रोने का ? भूल तो सबसे होती है, भगवान अपने को नहीं कहेंगे तो कौन कहेंगे ? भूल स्वीकार कर लेने की आदि" क्योंकि दूसरों को उपदेश देना आसान है । "अरे, पर क्या स्वीकार करूँ ? यही समझ में नहीं आता है, ऐसी झूठी बात फैलाने वाला कौन है ?" उन्होंने कहा, "देख रमा, भगवान को तो मैंने बात बताई पर मुझे जिसने कहा है उसका नाम नहीं दूंगी, कारण उसने मुझे शपथ दी है । अंत में कहाँ तक बात छिप सकती है ? कहने वाले व्यक्ति खुद ही सबसे पूछते रहते थे, "इसमें मेरा नाम तो नहीं आया ?" मैं समझ गई, हालाँकि आज तक इस बारे में मैंने कभी उनसे कुछ नहीं कहा है, परंतु वे खुद ही सामने आने में डरते हैं । ऐसे व्यक्ति को कुछ बहनें पैसे से मदद करती रहती थीं, इस कारण उन्हें अच्छा लगाने के लिये वे इधर-उधर की सच्ची-झूठी बातें बताते रहते थे । पैसे से क्या नहीं होता है ? आज भी ऐसे व्यक्ति को जो मदद करता है उनकी दिल्लगी के लिये वे ऐसे धंधे करते हैं । खुद ऐसे अयोग्य काम करते हैं, वह छिपाने के लिये ईर्ष्या से अन्य की बदनामी करना चाहते हैं ।

थोड़ी देर बाद भगवान ने वापस बुलाया, सांत्वना दी और मैं अपने काम में लग गई । हँसते-रोते नेत्रयज्ञ पूरा हुआ । भगवान की आज्ञानुसार जयपुर जाने का था । जाते समय वापस कब दर्शन मिलेंगे यह पूछने पर कहा, "हो सका तो बहुत जल्दी बुलाऊँगा ।" मैंने कहा, "भगवान, ऐसा तो आप हमेशा कहते हो पर आज तक कभी बुलाया है ?" जवाब लिखकर दिया –

"यह मैं जानता हूँ रमा, सुनो मैं हृदय से प्रयत्न तो करता हूँ पर वातावरण इतना तंग है कि सब झूठे पड़ते हैं । तुम प्रसन्न रह सको तो बस ।" मुझे बुलाने के लिये हमेशा एक बहन जिसको शुरू से जलन थी वह खूब झगड़ा करके अपना मनमाना कराती थी, सबसे बड़ा आत्महत्या का डर दिखाती थी ।

जब भी उत्सव या नेत्रयज्ञ से समूह विदा होता था तब गुजराती रसोईघर में पकौड़ी की कढी बनवाते थे और कहते थे, "कढी पकौड़ी

बेसन की, रस्ता पकड़ो स्टेशन की ।" चित्रकूट में ज्यादा दिन रहने के लिये यदि कोई अपनी इच्छा व्यक्त करता था तो कहते थे –

आटे का घाटा नहीं, घी के नहीं हैं दरसन
दाल मिले कभी कभी, पड़े रहो बरसन

उत्सव के बाद तो आश्रम में साधुओं को दोपहर के भोजन में दाल-रोटी ही दी जाती थी, सब्जी तो कभी-कभी होती थी, कारण जंगल था । अधिकतर सब साधु हमेशा एक ही बार भोजन पाते हैं ।

[५२]

मोपर कृपा करिय अब स्वामी

भगवान के सान्निध्य में बिताये हुये दिनों का चिंतन, मनन करती हुई रवाना हुई । जयपुर जाते ही वोही नित्य कार्यक्रम में लग गई । थोड़े दिन तो बिल्कुल भी मन नहीं लगता था, गृहकार्य में ही अधिक समय बीतता था । जितना समय मिलता उतना नित्य नियम में बिताती थी । थोड़े दिनों बाद भगवान का पत्र आया :—

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिय रमा सादर आसीस,

मैं ता० १६ को यहाँ आया हूँ, स्वास्थ्य एकदम खराब होने से पत्र न लिख सका, तुम यहाँ जल्दी आ जाओ । संभवतः मैं यहाँ ज्यादा न ठहरूं, मैं वृन्दावन में कलाधारीजी के बगीची में ठहरा हूँ । तुम पुरुषोत्तम भाई से इतना कहकर आना कि वह धीरु और मनहर को न लिखे कि तुम मेरे पास गई हो । कारण सबको मालूम होने से भीड़ हो जावेगी, मैं यदि चला गया तो तुमको तार दूंगा ।

सबको आसीस   रणछोड़दास

यह पत्र मिला उस दिन शनिवार था । दोपहर को बारह बजे पत्र मिलने पर दो बजे की बस से रवाना होकर रात्रि नौ बजे मथुरा पहुँची ।

दिसम्बर की कड़ी सर्दी थी। बस में से उतरते ही वृंदावन जाने के लिए तांगे वाले से पूछने पर उसने आश्चर्य से पूछा, "बहनजी, आप अकेले हो ?" बात भी ठीक थी उसकी दृष्टि में मैं अकेली थी। वृंदावन चलने की उसकी इच्छा न होने से, उन दिनों में अधिक से अधिक दो रुपये लगते थे उसके बदले उसने पाँच रुपये बताये। मैं तैयार हो गई, उसको आश्चर्य लगा। अब वह अन्य व्यक्ति को भी वृंदावन के लिए पूछने लगा तब एक दम्पति आने को तैयार हुए। साढ़े नौ बज गये थे। इन लोगों ने रास्ते में चाय पानी के लिए तांगा रोका, कोई दुकान खुली न थी। एक जगह दुकान खुलवाकर सिगड़ी पर चाय बनवाते घण्टा भर निकल गया। करीब ग्यारह बजे वृंदावन के लिए रवाना हुए। खूब तेज हवा, घना अंधेरा और बद्दल भी छाये थे, लोमड़ी बोलने की आवाज आ रही थी। रात को बारह बजे वृंदावन पहुँचे। गाँव के परली पार कलाधारीजी की बगीची थी। उस रास्ते पर खूब रेत थी, घोड़े को चलना मुश्किल था। कोने पर से गली चालू होने पर करीब आठ फीट ऊँची दीवार शुरू होते ही तांगेवाले ने कहा, "लो बहनजी, कलाधारीजी की बगीची आ गई।"

कहीं भी दरवाजा न देखने से तांगा आगे लेने के लिए कहा, गली में बहुत दूर जाने पर बड़ा दरवाजा आया। रात को देर हो चुकी थी, सर्दी भी खूब थी और अनजान स्थान था। तांगेवाले से कहा, "पहले किसी को बुला दो बाद में तुम जाना।" उसने महाराजजी के नाम पर सात-आठ आवाज लगाईं तब बहुत दूर की आवाज सुनाई दी, "कौन है ? आ रहा हूँ।" जवाब मिलने के दस मिनिट बाद कोई अनजान साधु आये। उन्हें भगवान के बारे में पूछने पर कहा, "वे तो यहाँ से चले गये हैं और गोकुल गये हैं।" सर्दी के कारण सामान अधिक होने से उन्होंने सामान उठाने में मदद की। एक कमरा खुलवा दिया, रात को वहीं पर सो गई। सुबह वैष्णवदासजी महाराजजी मिले, उन्हें मालूम न था कि भगवान ने मुझे बुलाया है इस कारण भगवान के लिए पूछने पर ठीक से जवाब नहीं दिया। मुँह बिगाड़कर इतना ही कहा, "कहाँ गये हमें मालूम नहीं।" मैं समझ गई, आगे कुछ भी न पूछकर अपना कमरा बंद करके नियम चालू कर दिया। नियमानुसार चरणामृत के बिना कुछ खाना-पीना तो था नहीं। शाम को मैं बाहर निकली तब महाराजजी ने मेरे पास आकर कहा, "यहाँ से दो सौ मिल की दूरी पर

गये हैं ।" मैंने सुन लिया कारण जिन्होंने बुलाया था उन्हें चिन्ता है ही। थोड़ी देर बाद फिर बोले, "ग्वालियर की ओर गये हैं, आज आ जाने चाहिये, यदि आज नहीं आयेंगे तो फिर परसों आवेंगे ।" रवि-सोम निकल गये, अब तो आतुरता से राह देख रहे थे, एक-एक क्षण भारी पड़ रहा था परन्तु निराशा ! अंत में बुधवार को राह देखकर दूध लिया, गुरुवार भी निकल गया । शुक्रवार को अनंतपुर तार करने गये, वहाँ से आते ही नन्नु महाराज (भगवान की गाड़ी के ड्राइवर) आये । उन्हें देखकर सोचा, भगवान की गाड़ी बाहर खड़ी होगी । इतने में तो वे बोले, "महाराजजी यहाँ नहीं आये ?" हम तो चकित हो उठे । वैष्णवदासजी महाराजजी ने गुस्से में कहा, "तुमने महाराजजी को कहाँ और क्यों अकेले छोड़ा ?" उन्हें मजाक सूझ रही थी जिससे कहा, "हमें कुछ नहीं मालूम, पहले हमें चाय पिलाव ।" थोड़ी देर बाद पत्र दिया । वैष्णवदासजी महाराजजी हाथ में पत्र लेकर घूमते रहे, उन्होंने सोचा इसमें जो लिखा होगा वह शायद रमा बहन को बताने का न होगा और मुझे भी मालूम नहीं कि वे अनपढ़ हैं परन्तु और कोई पढ़ने वाला न होने से अंत में उन्होंने मुझे ही पत्र दिया । भगवान ने लिखा था–

श्री रामचन्द्राय नमः

श्री वैष्णवदास

सादर आशीर्वाद,

मेरी तबियत खराब है तुम देखते पत्र के शीघ्र चले आओ । साथ में रमाबेन जयपुर वाली को लेकर चले आओ । सामान, मेरा पलंग, बिस्तर और कपड़ों की पेटी लेकर बाकी सामान पेक कर डिब्बों में ताले लगाकर महंतजी की सलाह लेकर सुरक्षित जगह में रखवा देना ताकि कोई नुकसान न हो पाये और प्रतिष्ठा के समय में काम आवे, अधिकारी को साफ ही स्पष्ट कह देना कि जिजवान के स्थान पर प्रतिष्ठा में श्री कुन्दनलाल उपाध्याय अनंतपुर वाले बैठेंगे । सामग्री सब पोशाक मुकुट सहित तैयार करवा के लिखे अनुसार हम आकर रुपया पेमन्ट कर देंगे । तुम केवल उनको २०० रुपया दे देना ।

यदि वह आग्रह करे तो २०० रुपया और दे देना और मेरी छोटी पेटी साथ में लेते आना और उसी में से रुपया निकालकर देना, रास्ता झांसी, बीना बदलकर गुना आओ, पाट लेते आना ।

रणछोड़दास

[५३]

नाथ कृपा अब गयऊ विषादू

भगवान के पास जल्दी से जल्दी पहुँचने की उत्सुकता से उसी समय सामान पैक करके हम मथुरा गये । वहाँ से शाम को रवाना हुए । दूसरे दिन दोपहर बारह बजे अनंतपुर पहुँचे । आज जयपुर से निकलने को ठीक एक सप्ताह पूरा हो चुका था । पहुँचते ही भगवान ने कहा, "रमा, पहले भोजन बनाओ, मुझे भूख लगी है ।" जानते थे कि मुझे पूरे सप्ताह के उपवास थे । भिंडी की सब्जी, मूँग की दाल और रोटी बनाई । भोजन के बाद मैंने पूजन किया, बाद में मैंने भी प्रसाद पाया ।

भोजन के बाद कहा, "अब तो विश्वास है ना, बुलाया ना !" उस दिन वहाँ रुके, रात को देर तक मैं भगवान के पास थी । मेरे कमरे में बिछोना करवाया था लेकिन पढाई छोड़ी तब से गरमी के दिनों में टाट, चटाई या रेकजीन का टुकड़ा ही मेरा बिछोना था और सर्दी के दिनों में कम्बल का उपयोग करती थी । अभी तो सर्दी के दिन होने से मेरे पास दो कम्बल, गरम शाल, ओढने-बिछाने का सब था । कमरे में गद्दा बिछाया हुआ देखा तो सही परंतु मैं अपना बिस्तर बिछाकर सो गई । सुबह भोजन के बाद भगवान ने कहा, "रमा, तुमने माँ को बहुत दु:खी कर दिया ? मैंने कहा, "भगवान, मैं तो कुछ भी बोली नहीं हूँ", तो कहा, "अरे, उन्होंने बिस्तर लगवाया था, फिर भी तुम नीचे क्यों सो गई ? तुम्हें मालूम है उनको कितना दु:ख लगा ?" अपना नियम बताते हुए मैंने कहा, "भगवान, मैं तो घर पर भी ऐसे ही सोती हूँ तो बोले, "देखो रमा, ऐसा कुछ नियम नहीं रखना, कोई एक के ऊपर एक दो गद्दा बिछा दे तो भी सो जाना और कभी सफर में सड़क के किनारे केवल जमीन पर सोना पड़े तो भी सो जाना । आज माँ को कितना दु:ख लगा, ऐसा नहीं करना ।" तब से यह नियम धीरे-धीरे छूट गया ।

दोपहर में भगवान, मैं, वैष्णवदासजी महाराजजी और नन्नु महाराज अनंतपुर से जिस गाड़ी में रवाना हुए वह लाल पट्टा के नाम

से पहचानी जाती थी, बड़ी स्टेशन वेगन जीप थी । कहाँ जाना है इससे मैं अनजान थी । बीच में जंजाली का जंगल आया, वहाँ से हाई-वे पर निकलते ही माइल-स्टोन में उज्जैन-इन्दौर के नाम लिखे थे, उस बारे में मैंने कुछ पूछा नहीं । शाम को करीब चार बजे एक गाँव में बाजार भरा था । वहाँ गाड़ी रुकवाई और वैष्णवदासजी महाराजजी को गोभी और आलू लाने के लिये कहा । प्रथम बार भगवान के साथ अकेली जा रही थी जिससे कोई समझ न थी, सब देखती रहती थी । वहाँ से आगे चलने पर गोदी में एक रुमाल बिछाकर भगवान सब्जी अमनियाँ करने लगे । मैंने कहा, "भगवान, मुझे दे दो", तो कहा, "देखो तो सही मुझे आता है कि नहीं !" इतना कहकर आलू भगवान ने अमनियाँ किये और गोभी मैंने । सर्दी के दिन होने से पाँच बजे तो अंधेरा होने लगा था । आगे जाकर एक बडे पेड़ के नीचे गाड़ी रोक दी और सब सामान खुलवाकर, नन्नु महाराज को पानी लेने भेजा । मैंने स्टोव और वैष्णवदासजी महाराजजी ने सिगड़ी जलाई । इतने में पानी आ जाने पर भगवान एक भगौनी में सब्जी धोने लगे और कहा, "चलो, सब्जी छोंक दो ।" भगवान, महाराजजी से सब सामान लेते-देते रहे । एक थाली में आटा निकाला और मुझसे कहा, "इतना आटा बना लो ।" सिगड़ी पर मैं रोटी बनाने लगी और भगवान सब्जी सम्हालते-सम्हालते रोटी सेकते जा रहे थे । मुझसे कहा, "बड़ी-बड़ी बना दो ।" चार-चार रोटी तैयार होने पर प्रथम नन्नु महाराज और महाराजजी को हाथ में रोटी और अगल-बगल के पेड़ के पत्ते चुनकर दोना बनाकर उसमें सब्जी देते हुए कहा, "जाव वो दूर पेड़ के नीचे बैठकर खा लो ।" फिर कहा, "लाव, अब मुझे दो ।" भगवान पारदर्शक काँच के बर्तनों में भोजन पाते थे । पेड़ के तने का सहारा लेकर खूब प्रसन्नता से भोजन लिया । आखिर एक ही रोटी बची हुई देखकर कहा, "अरे, तुम्हारे लिये तो कुछ बचा ही नहीं ।" मैंने कहा, "भगवान, मुझे बहुत भूख नहीं है", "अरे ऐसा नहीं, ये आटा बचा है, उसकी भाखरी बना दो ।" भगवान के आग्रह से भाखरी बनाई, मैं बेल रही थी तो कहा, "मैं सेकता हूँ, तुम भोजन करो ।" भगवान के सामने भोजन करने में संकोच होता था । एक रोटी, एक भाखरी खाने के बाद दूसरी भाखरी के लिये मैंने मना किया तो बोले, "ठीक है ।" दूसरी भाखरी दो हाथ से पकड़कर आराम से

पेड़ का सहारा लेकर खाने लगे । अब सब्जी तो थी नहीं, ऐसी खबर होती तो रहने देती । "सूखी भाखरी गले कैसे उतरे ?" यह पूछने पर कहा, "अरे, इसमें तो बहुत आनंद आता है । चारों ओर से भाखरी खाने के बाद बीच का गोल टुकड़ा मुझे देते हुए कहा, "लो, ये प्रसादी खाओगी ना ?" करीब ४०-४५ मिनिट में तो सब काम निपटाकर वहाँ से रवाना हो गये । शाम को करीब साढ़े सात बजे उज्जैन श्री फूलचंदजी के घर पर पहुँचे । एकदम सीधे सरल भोले-भाले मारवाड़ी वृद्ध दम्पति थे । उन्हें कोई संतान थी नहीं । साधारण स्थिति से अकेले रहते थे । वहाँ एक कमरे में रात रुके । यह सब मेरे लिये नये व्यक्ति थे, भगवान ने उन्हें मेरा परिचय दिया । ऐसी जगह जाने से पहले भगवान रास्ते में ही भोजन निपटा देते थे । कई बार ऐसा होता था कि अनंतपुर जैसी जगह जाने पर रास्ते में ही कहते थे, "देखो वहाँ संकोच नहीं करना, अपना घर समझकर जो चाहिये माँग लेना" और कई बार बड़े शहरों में कोई श्रीमंतो के घर जाने पर समय-समय पर अलग-अलग सूचना देते थे, "वहाँ कुछ भी लेना नहीं, जो अपने पास हो उसी से चला लेना" और कोई जगह पर तो किसी के घर में आने के लिये भी ना कहते थे, "तुम गाड़ी में बैठे रहो, मैं अभी जाकर आता हूँ ।" चाहे कैसे ही श्रीमंत का घर क्यों न हो लेकिन भगवान स्वमान रखने के आग्रही थे । अर्थात्,

आव नहीं आदर नहीं, नयनन नहीं सनेह;
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह ।

यह पालन करते थे और करवाते भी थे । सुना है कि उपास्य देव के गुणधर्म उपासक में उतरते हैं, उस हिसाब से आज भी जीवन उसी तरह से बन गया है । यह सब बातें जीवन में सहज ही उतर आई हैं ।



[५४]

कृपा राम की जापर होई

भगवान के साथ दूसरे दिन सुबह उज्जैन से देवास पहुँचे, वहाँ पर भगवती सराय में रुके । भगवान ने हँसते-हँसते कहा, "अरे बाबा गाड़ी पीछे रखो और तालपत्री ढँक दो, क्योंकि ये इंदौर-भोपाल रोड है कोई न कोई गाड़ी देखकर आ जायेंगे तो शांति से रहने नहीं देंगे ।" प्रथम दिन तो सब व्यवस्थित करने में ही बीत गया । मैंने भगवान से कहा, "मैं कुछ सेवा जानती नहीं, उसमें भी दवाइयों के विषय में तो मैं बिल्कुल अनजान हूँ तो आपको जब जो दवाई अनुकूल हो माँग लेना और मुझे बिना संकोच बताते रहना ।" भगवान के लिए दवाई की एक छोटी पेटी रहती थी वह खोलकर सब देख रहे थे तब उसमें देखा तो सितोफलादी, शहद, मोती भस्म, परवाल भस्म जैसी थोड़ी दवाइयाँ छोटी-छोटी बोतल में थीं । पेटी बंद करके मुझे देते हुए कहा, "रखो, मुझे कोई चीज की जरूरत नहीं है ।"

हम अनंतपुर से निकले तब से करीब पन्द्रह दिन मैं साथ थी । उन दिनों में न तो कोई दवाई ली और न ही खांसी, उल्टी हुई । भगवान जब जो चाहे करने को समर्थ है । रोज सुबह भोजन बनाने से पहले मुझे अपना भजन-पूजन करने को कहते थे, "मैं मदद करूँगा पर तुम नियम छोड़ना नहीं ।" आज्ञानुसार मैं थोड़ी देर भी माला कर लेती थी । अब तो मानो रोज परीक्षा करते हों, ऐसा प्रतीत होता था । दूध लेने की तो बात ही न थी, कहते थे, "मुझे तो दूध से गैस होता है तुम्हें चाहिए तो मंगवा लो ।" हम तीनों में से कोई चाय-कॉफी तो पीते नहीं थे जिससे दूध की जरूरत न थी । रोज वैष्णवदासजी महाराजजी को सब्जी लेने भेजते थे और हम सबसे पूछते थे, "तुम्हें क्या सब्जी अच्छी लगती है ?" हम कहते थे, "भगवान आपको जो अनुकूल हो मंगवाइये हमें सब चलेगा ।" नन्नु महाराज को पूछने पर वे कहते थे, "बेना, हमें तो आलू चाहिये", यह सुनकर हँसते हुए कहा, "वह भालू को आलू के

बिना नहीं चलता ।" वैष्णवदासजी महाराजजी को प्यार से 'गुट्टुजी' कहते थे । उनको बुलाकर कहते, "जाव गुट्टुजी पत्ता-गोभी ले आव, ना उसमें गुण है ना अवगुण है और आलू जरूर लाना ।"

भगवान को आलु से गैस होने के कारण मैं कहती थी, "भगवान आलू की सब्जी अलग बना दूंगी", तो कहते थे, "नहीं चार जनों के बीच में दो सब्जी क्यों ? आलू के बड़े-बड़े टुकड़े करना, मैं बीन-बीन कर निकाल दूंगा ।" वैष्णवदासजी महाराजजी को मेरा बनाया हुआ भोजन चलता नहीं, लेकिन भगवान ने कहा, "देखो रमा सब्जी बना देगी, उसमें क्या है ? और रमा रोटी बेलेगी फिर सेकना तुम बाद में रमा हाथ नहीं लगायगी ।" सबके लिए एक साथ एक-सा ही भोजन बनता था । देवास के पन्द्रह दिन दौरान एक बार भी दूसरी सब्जी नहीं बनी, सुबह-शाम वो ही आलू, गोभी । हालाँकि भगवान के सान्निध्य में परमानन्द में समय या खाने-पीने का कोई ख्याल ही नहीं रहता था । लेकिन भगवान हमारी कसौटी कर रहे थे कि ऐसा सादा जीवन जीना चाहिये । रोज भोजन के समय आलू के टुकड़े निकालकर मुझे कहते थे, "तुम ये प्रसादी ले लेना । कभी मूँग की दाल बनाने को भी कहते थे । घर की पद्धति अनुसार दाल गलने पर हल्दी, नमक, धनियाँ डालते देखकर कहते थे, "अरे, तुम्हें कुछ नहीं आता, इतनी देर से हल्दी डालती हो तो हल्दी कच्ची रह जायगी ना ? देखो, मैं सिखाता हूँ, एक उफान आने पर हल्दी नमक छोड़ देना चाहिये और रोटी भी जरा कड़क सेकने को कहते थे और बोलते थे, "रोटी जली हुई और चावल गले हुए खाने से अपच नहीं होता । अधिकतर तुम लोग स्वाद को देखते हो लेकिन घाटी के नीचे उतरे और माटी, जीवन के लिये भोजन होना चाहिये न कि भोजन के लिये जीवन ।"

एक दिन मेरे बाल धोये हुए देखकर पूछा, "रमा तुम बाल किससे धोती हो ?" मैंने कहा, "भगवान, जब जो साबुन मिल जाता है उसी से ।" तब कहा, "देखो, आँवले से धोया करो" मानो कि साबुन उपयोग में लेने के लिये मना कर रहे थे ऐसा लगा कारण उस वक्त स्वयं भगवान भी साबुन का उपयोग नहीं करते थे । शौच जाकर भी मिट्टी से हाथ धोते थे । जितना हो सके सादा जीवन रखने को सिखाते थे ।

बड़े भाई साहब के लड़के का नाम राशि पर से प्रशांत रखा था । परंतु वह खूब जिद्दी स्वभाव का होने से दो साल की उम्र में ही अपनी मनमानी बात न होने पर गुस्से से जमीन पर सिर पटकने लगता था । भाभीजी बहुत चिंतित रहती थीं । जयपुर से निकलते समय वे नागपुर से आये हुए होने से मुझसे कहा था, "आप भगवान को यह बात जरूर कहना, प्रशांत का नाम बदलकर और कुछ नाम भगवान देंगे तो ही यह सुधरेगा, ऐसा मुझे लगता है ।" भगवान को यह बात बताने पर थोड़ी देर सोचकर उसका नाम सतीश रखने के लिये कहा और सही में नाम बदलने के बाद उसका स्वभाव शांत हो गया ।

आनंद से दिन बीत रहे थे । १२ जनवरी मेरा दीक्षा दिन नजदीक आ रहा था जिससे कहा, "उस दिन इन्दौर से गोरधन को भोजन के लिये बुलायेंगे और बताओ क्या बनायेंगे ?" मैंने कहा, "जो आप कहेंगे ।" "नहीं तुम्हें क्या अच्छा लगता है ? हलवा-पुड़ी बनायेंगे तो घी चाहिये और घी लेने अनंतपुर जाना पड़ेगा ।" मैंने कहा, "तो खीर-पुड़ी बनायेंगे ।" भगवान की अनंतपुर जाने की इच्छा होगी जिससे कहा, "पुड़ी में भी घी तो लगेगा ही, ठीक है अनंतपुर हो आते हैं ।" उस दिन गोरधनभाई और उनके जीजाजी आये थे । वे लोग कभी-कभी आते-जाते रहते थे । शाम का समय था, अचानक ही अनंतपुर जाने की तैयारी हुई । वैष्णवदासजी महाराजजी को वहीं रहने को आदेश दिया । दो दिन यहाँ रहकर भजन करो, हम हो आते हैं" इसलिये वे देवास में ही रुके थे । गोरधन भैया गाड़ी चला रहे थे, उनकी बगल में उनके जीजाजी बैठे थे । रात को करीब ढाई बजे होंगे । जंजाली के जंगल में से गाड़ी निकली, उस समय रास्ते में शेर मिला, मैं सो गई थी, सर्दी भी खूब थी । भगवान ने कहा, "देखो रमा, शेर आया ।" मैं उठी तब कहा, अरे निकल भी गया, गोरधन डर गया था, पर अपनी गाड़ी निकल गई ।" अनंतपुर एक दिन रुककर साथ में घी, अनाज आदि जरूरी चीजें लेकर दूसरे दिन सुबह वापिस लौटे । दीक्षा दिन को खीर, पुड़ी और आलू-बड़े बनाये । गोरधनभाई और उनके जीजाजी ने भी वहीं भोजन पाया । भगवान ने भी वोही भोजन स्वीकार किया । उस दिन मैंने सादे वायल की हल्के हरे रंग की साड़ी पहनी थी, वह देखकर भगवान बोले, "रमा, ऐसी तीन-चार साड़ी गोरधन से मँगवा लो ।" उसका मतलब सफेद

कपड़े के ही आग्रही न थे, सादा जीवन पसंद करते थे अर्थात् कपड़ों से साधुता नहीं लेकिन आचरण में साधुता चाहते थे । उस दिन दोपहर को मुझसे कहा, "रमा, पद्मासन में कितनी देर बैठ सकती हो ?" मैंने कहा, "करीब पौन घंटा", तो कहा, "देखो, सादे आसन में तीन घंटे और पद्मासन का एक घंटा बराबर होता है, धीरे-धीरे एक घंटे तक बैठना तो आसन सिद्ध हो जाता है, बाद में भले सुखासन में बैठना ।" मैंने कहा, "भगवान, ध्यान में नासिकाग्र पर दृष्टि रखने से बहुत सिर दुःखता है इसलिये मेरी तो आँखें बंद हो जाती हैं तो कहा, "कोई बात नहीं नाभि से मंत्र उठाना ।" मैंने कहा, "भगवान, बिंदी के नीचे खिचाव के साथ खूब फड़कन होती है" तो बोले, "भृकुटि में फड़कन शुभ है, अभ्यास छोड़ना नहीं, देखो इससे गरमी बढ़ जाने पर रोज सुबह एक कटोरी दूधपाक (खीर) पीना, रात को बनाकर रख दिया करना ।" मैंने कहा, "पद्मासन में ज्यादा बैठकर पैर भी दुःखते हैं" तो कहा, "बदाम के तेल से मालिश करना ।"

उस दिन शाम को भगवान के लिये पपीता मँगवाया । वैष्णवदासजी महाराजजी सब्जी के साथ ले आये थे । भगवान के पास बैठकर मैं पपीता अमनियाँ कर रही थी तो पूछा, "क्या कर रही हो ?" मैंने कहा, "आपके लिये……" तो कहा, "ठहरो, लाव मुझे दो" मेरे हाथ से ले लिया और एक से चार टुकड़े करके रख दिये । मानो छोटे बच्चों के लिये हिस्से कर दिये हों । सबसे कहा, "चलो अपना-अपना हिस्सा उठा लो ।" कितनी समत्वता ! ! हरेक चीज जो भी स्वयं पाते थे उतना ही हिस्सा ड्राइवर को भी बराबर देते थे । पहले सबको देने के बाद कहा, "अब मुझे अपना हिस्सा अमनियाँ कर दो ।" मैंने अपने हिस्से में से अधिक देने के लिये कहा तो बोले, "सब अपना-अपना हिस्सा खा लो ।"

रोज तो भगवान भोजन ले उसके बाद प्रसाद लेने का रहता था परन्तु आज भगवान के सामने ही बैठकर पपीता खाने का था । मैं खाने जा रही थी इतने में कहा, "अरे, तुलसीजी नहीं छोड़ा ? कोई चीज कभी भी कंठी लगाये बिना खाना-पीना नहीं ।" हमेशा कुछ भी स्वीकार करने से पहले कंठी लगाते हुए मैं भगवान को देखती तो थी पर उसका हेतु मालूम न था । बाद में तो कायम के लिये यह आदत हो गई । और हर जगह तुलसीजी न मिलने से गले में पहनी हुई तुलसी माला का उपयोग किया जाता था ।

"तुमहिं निवेदित भोजन करहीं………

दूसरे दिन एकादशी थी, इंदौर से दो-चार भाई आये । केला आदि लाये थे । भगवान ने कहा, "रमा, आज तुमारी एकादशी है ना ? देखो फल आ गये, एक तपेली लाव ।" अपने हाथ से केले काट कर इलायची, केसर, शक्कर डालकर तैयार करके कहा, "लो तुम फलाहार कर लो ।" दोपहर में सब के जाने के बाद शाम को कहा, "चल रमा, थोड़ा घूमने चलते हैं ।" पहले भी एक दिन अकेले बाहर गये थे, तब तो पोस्ट ऑफिस किसी को तार करने गये थे । आज मैं और भगवान भोपाल रोड़ पर चलते-चलते दो फर्लांग जितना दूर गये होंगे । एक जगह छोटी-सी पुलिया जैसा था वहाँ बैठ गये । मैं श्रीचरणों में नीचे बैठी थी । भगवान ने कहा, "कितना सुन्दर वातावरण है । रमा, रामायण खूब पढ़ना, यह तो सागर है, जितनी गहरी जाओगी रत्न हाथ आयेंगे । देखो, कभी समय मिलने पर मैं भी तुम्हें समझाऊँगा ।" थोड़ी बातें करके वापिस लौटे । रोज रात को सोते-सोते बारह बज ही जाते थे । सुबह जल्दी जाग जाने पर भी सर्दी के कारण मैं सोई होऊँ तो कभी भी उठाते नहीं थे ।

दूसरे दिन संक्रांत थी । अब तो खबर मिल जाने से इंदौर से वापिस दो-तीन भाई आये । तिल, मुरमुरा और चूरमा के लड्डू लाये थे । दोपहर में सब भगवान के पास बैठे थे । शाम को देवास छोड़ने का निश्चय किया । गाड़ी में सामान जमाने लगे, निकलते वक्त भगवान ने कहा, "रमा, भूख लगी है तो क्या बनाओगी ?" मैंने कहा, "आप जो कहो सो ।" रोज शाम को सब्जी लाते थे इस कारण सब्जी तो थी नहीं, तो कहा, "रोटी बनाव मैं गुड के साथ खा लूँगा ।" मैं सामान लेने गाड़ी के पास जा रही थी तो पूछा, "कहाँ जा रही हो ?" मैंने कहा, "सामान गाड़ी में रख दिया है वह लेने जाती हूँ ।" तो कहा, "ठहरो, बाहर कोई चीज नहीं है ?" मैंने कहा, "सिगड़ी के सिवा सब सामान रख दिया है ।" "चलो, मैं रसोड़े में चलता हूँ, सिगड़ी जलाव और गाड़ी में से सिर्फ आटा ले आव ।" एक भगौनी का ढक्कन बाहर था, उसी में आटा भिगोया, बाद में वोही ढक्कन साफ करके सिगडी पर रखा और हाथ से रोटी बनाकर उस पर सेकी । गुड, रोटी पाते समय कहा, "अच्छा रमा, कभी जंगल में अपने पास एक भी बर्तन न हो और मैं तुमसे रोटी, साग बनाने को कहूँ तो तुम क्या करोगी ?" मैं तो सोचने लगी । आगे

कहा, "देखो, जंगल में से कोई अच्छा पत्थर ढूंढकर, उसे धोकर उस पर आटा बनाना, इधर-उधर से लकड़ी, कंडे इकट्ठा कर जला लेना और हाथ से टिक्कड बनाकर चारों ओर सेकने रख देना, आलू, बेंगन जो सब्जी अपने पास हो उसे भी धोकर आगी पर सेकने रख देना, बस फिर नमक डालकर हो गया । रसोईघर में कोयले की बोरी आदि रखा था वह साफ कर रही थी तब आकर कहा, "क्या कर रही हो ?" सफाई करती हुई देखकर बोले, "अच्छा हुआ मैं कहने ही वाला था कि सब व्यवस्थित साफ कर देना । हमेशा ध्यान में रखना कभी भी कहीं से भी निकलते समय सफाई करके ही जाना चाहिये ।"

देवास से उज्जैन आये, साथ में इंदौर की गाड़ी भी थी । सबकी इच्छा से थोड़े दूर उज्जडखेड़ा हनुमानजी के दर्शनार्थ गये । श्री हनुमानजी को इंदौर से आये हुए लड्डू का भोग लगाया । श्री हनुमान चालीसा और हनुमान बाहुक करके सबको प्रसाद देकर करीब एक घण्टा रुककर इंदौर वाले भाइयों को बिदाई दी । हम लोग वहाँ से आगे के लिए रवाना हुए । रात को नौ बजे गाड़ी में पंचर होने पर सड़क के किनारे एक पत्थर पर भगवान बिराजे और बोले, "लाव रमा, मुझे भूख लगी है ।" प्रसादी के लड्डू मांगते हुए कहा, "हम तो चूरमा के लड्डू खायेंगे ।" तीन लड्डू चारों ओर से खाकर बीच का हिस्सा मुझे देते हुए कहा, "लो ये प्रसादी । रमा, यह दिन तुम्हें याद रहेगा ?" मैंने कहा, "जी हाँ", तो कहा, "कैसे याद रखोगी ?" मेरे प्रत्युत्तर से पहले ही कहा, "देखो मैं बताता हूँ, संक्रांति की रात है, रात के नौ बजे हैं, नैनबास गाँव है, गाड़ी में पंचर हुआ है, नन्नु महाराज और गुट्टूजी पंचर ठीक कर रहे हैं और हम दोनों लड्डू खा रहे हैं, बोलो याद रहेगा ना ?" थोड़ी देर में पंचर ठीक हो जाने पर वहाँ से आगे के लिए रवाना हुए ।

अनंतपुर पहुँचकर वहाँ से ट्रेन द्वारा कोटा आये । अब तो मैं, भगवान और सुरेश तीन ही जने थे । कोटा रीटायरींग रूम में रात रुके । भगवान ने कहा, भूख लगी है, क्या बनाओगी ?" सब्जी तो कुछ थी नहीं । मैंने कहा, "आप जो कहो ।" साथ में थोड़ी हरी मिर्च थी जिससे कहा, "परोंठा बना दो और मिर्ची तल दो ।" भोजन लेकर भगवान सो गये । सुबह मुझे सुरेश जयपुर की बस में बिठाने आया और भगवान अहमदाबाद पधारे ।

卐

[५५]

रामकृपा आपनी जड़ताई

भगवान कच्छ में नारायण सरोवर पधारनेवाले थे। पाकिस्तान के साथ युद्ध का समय होने से भारत की रक्षा निमित्त बोर्डर पर दिशाबन्धन हेतु गये थे। पता न होने से पत्र कहाँ लिखूँ ? भगवान के पत्र की राह देख रही थी। करीब हर पन्द्रह दिन में एक पत्र तो आता ही था उसके बदले एक महीना से अधिक दिन बीत जाने से धैर्य न रहना स्वभाविक था। अधिकतर तबियत के बारे में चिंता होने लगती थी। अन्त में अनंतपुर पत्र लिखा, पत्र द्वारा अपने विचार बताये। लंबे समय से पत्र न होने के कारण अनेक संकल्प विकल्प होते थे, उस अनुसंधान में लिखा, "भगवान, यह सत्य है कि मैं सेवा नहीं जानती, उसमें भी जीवन में प्रथम बार अकेले सेवा करने का अवसर मिला था। मैं जानती हूँ आपको अवश्य मुझसे असंतोष रहा होगा और हो सकता है कि मुझसे नाराज हो, जभी तो इतने लंबे समय से कोई पत्र नहीं दिया। ऐसे धीरे-धीरे करते आप छोड़ देंगे तो फिर मैं क्या करूँगी ? मैं तो अभी छोटी हूँ क्या आप मेरी गल्तियों को क्षमा नहीं करेंगे ? आपकी तबियत के बारे में भी हमेशा चिंता बनी रहती है। आप जो चाहो सो करना पर कहीं छोड़ मत देना।"

जो करणी समझो प्रभु मोरी, नहीं निस्तार कलपशत कोरी
जन अवगुण प्रभु मान न काऊ, दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ

मैं जानती हूँ कि सेवक पर आपको अधिक ममता या प्रेम रहे यह स्वाभाविक है, इसीलिये जिसकी सेवा से आपको संतोष मिलता है उन लोगों को सदैव साथ रखना सहज है और यह गुण मुझमें है नहीं इसी कारण मैं साथ में नहीं रह पाती हूँ। बार-बार अपनी न्यूनता के विचार आते थे। मन में एक ही डर होने से वह व्यक्त हो जाता था, "भगवान, जैसी भी हूँ आपकी हूँ, आप मुझे छोड़ मत देना।"

कपटी कुटिल मोहिं प्रभु चीन्हा, ताते नाथ संग नहिं लीन्हा

भगवान नारायण सरोवर के बाद घूमते-घूमते वृन्दावन होकर जयपुर पधारे, उसके पहले मेरा पत्र मिल गया होगा, जिसका प्रत्युत्तर आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

प्रिय मेरी रमा सादर आसीस

(१) मैं तुमको छोड़ना चाहता हूँ यह तुम्हारा नितान्त भ्रम है और बालक जैसे विचार है। मेरी धारणा पक्की है कि तुम मेरी हो, रहोगी और थी।

(२) देवास में मुझे तुमसे पूर्ण संतोष रहा। यह मेरा मन बराबर स्मरण करता रहता है। यदि तुमको विश्वास न हो तो मेरे पास सिवाय मनके और पुरावा नहीं है।

(३) वैसे तुम जो चाहो कहो पर मुझे यह कलंक न दो कि मैं तुमसे स्नेह नहीं करता या छोड़ना चाहता हूँ।

(४) केवल पत्र न देने से तुमने अपने मन को दुःख की पराकाष्टा पर पहुँचा दिया, यह समझ न सकी कि मैं तुमको कितना चाहता हूँ।

(५) तुमको यह बिल्कुल जम गया है कि मैं औरों को साथ रखता हूँ और उनसे प्रेम करता हूँ यह सरासर झूठ है तुम जो देखती हो वह केवल हठ का परिणाम है।

यदि इस प्रकार तुम करो और उलझन पैदा करो तो तुम भी चलो और खूब राग-द्वेष ईर्ष्या में जलो मुझे कुछ नहीं कहना है।

पत्र पढ़कर गद्गद् हो गई, ऐसे दयालु देव और कौन हो सकते हैं ?

दीन को दयालु दानी दूसरो न कोई

भगवान सीधे गलताजी पधारे थे, साथ में एक बहन और भाई थे। रात को वे भाई गाड़ी लेकर घर आये। उन दिनों में जब भी रात को भजन गाते हुए आर्त भाव से रोती थी तब दूसरे दिन अवश्य भगवान पधारते थे या मुझे बुलाने के खबर आते थे इसलिये आज राह देख ही

रही थी । रात को अचानक उन्हें देखकर बहुत खुश हो गई । मैं उनके साथ गाड़ी में गलताजी गई, भगवान आराम कर रहे थे । सुबह मुझसे पूछा, "पत्र मिल गया ?" बाद में बताया, "नारायण सरोवर से तुम्हें दो पत्र लिखे थे, पोस्ट करने थे इसलिये मेरे गरम कोट की जेब में रखे थे तो एक दिन तांगे में वह कोट रह गया उसमें वह पत्र भी गये इसीलिये तुम्हें पत्र मिले नहीं ।" थोड़ी देर रुककर आगे के लिये रवाना हो गये ।

[५६]

रघुपति कृपा मर्म सब पावा

भगवान ने देवास से निकलते वक्त सागर नेत्रयज्ञ में आने के लिये मुझे मना किया था; तब मैंने कहा था, "भगवान, नेत्रयज्ञ में तो सब कोई आते हैं फिर आप मुझे क्यों मना करते हो ?" तो बोले, "उन लोगों को अच्छा नहीं लगेगा क्योंकि अभी तुम मेरे साथ एकान्त में थी ।" यह सुनकर दुःख लगा, मैंने कहा, "भले भगवान, आप ना कहते हो तो मैं नहीं आऊँगी परंतु आपने मुझे जो कारण बताया उससे मुझे दुःख होता है कारण मेरा जीवन उन लोगों के लिये है या आपके लिये ?" तो कहा, "ठीक है रमा, परंतु मेरी बात मानो तुम नहीं आना", इस कारण अब नेत्रयज्ञ में तो जाने का था नहीं । जयपुर से माँ नेत्रयज्ञ में गई थी, इसलिये जिम्मेदारी से गृहकार्य सम्हालना था और यथाशक्ति नियम करती थी । करीब बीस दिन बाद वहाँ से माँ ने आकर सब खबर दिये ।

अब मैं जोधपुर भगवान के पास रामनौमी उत्सव पर गई । मैं शाम को पहुँची, भगवान दूसरे दिन सुबह पधारे । मैं पूजन के लिये राह देख रही थी, इतने में एक बहन ने कहा, "रमा, भगवान ने तीन महीने के लिये किसी को स्पर्श न करने का नियम लिया है, तू पूजा करने जावे तब अनजान रहकर ही चरणस्पर्श करके पूजा करना ।" अब तो कई

अनुभवों से सबके स्वभाव का परिचय मिल चुका था । जब कभी ठीक से बोलते थे तो समझ जाती थी कि जरूर कोई कारण होगा ।

आगे कह मृदु बचन बनाई, पाछे अनहित मन कुटिलाई
जाकर चित अहिगति सम भाई, अस कुमित्र परिहरे भलाई

करीब दोपहर को बारह बजे भगवान ने पूजन के लिये बुलाई । मेरे दिल में अनजान बनकर पूजा करने का भाव न था पर भगवान के कहे बिना वह नियम मेरे लिये क्यों लागू करूँ ? उसी भाव से चरणस्पर्श करके चरणामृत लेने लगी । भगवान ने चरण हटाते हुए कहा, "रमा, मैंने तीन महीने के लिये नियम लिया है ।" मुझे तो खबर मिल चुके थे, वह मैंने बताया तो कहा, "देखा ना कितनी चालाक है ? तुम सावधान रहना ।" मैंने कहा, "भले भगवान, मैं आपका नियम नहीं तोड़ूंगी, परंतु एक बात पूछुं ? आपने ऐसा नियम क्यों लिया ?" तो कहा, "सागर में बहुत ही झगड़ा होता था, अच्छा हुआ तुम नहीं आई ।" मैंने कहा, "भगवान, यदि झगड़े के कारण यह नियम हो तो जो उसमें शामिल हो उसके लिये ही यह नियम होना चाहिये ना ? मुझे तो आपने सागर आने को मना किया तो मैं नहीं आई, फिर भी यह नियम मेरे लिये ? यह तो "ओर करे अपराध कोई और पाव फल भोग ।" भगवान ने कहा, "रमा, एक के लिये नियम रखूंगा और दूसरों के लिये नहीं तो दंभ कहा जायगा ना ?" मैंने कहा, "ठीक है मैं नियम नहीं तोड़ूंगी ।" दूर से ही पूजन करने के बाद प्रणाम करते समय पीठ पर दो-तीन बार हाथ फेरा । मैंने कहा, "भगवान, आपका नियम टूट गया ।" तो कहा, "प्रेम में नेम नहीं ।" सर्वशक्तिमान प्रभु नियम ले भी सकते हैं और तोड़ भी सकते हैं । मुझे लिखकर दिया, "स्पर्श की बात उसे न कहना, वह बड़ी चालाक है, बस सावधान रहना ।"

पूजन के बाद भोजन करके आये तब दोपहर में एक हॉल में भगवान पाट पर विराजमान थे । मैं हॉल में सामने की दीवार से सहारा लेकर बैठी थी, वह बहन मेरे पास आकर बैठ गये । वे कभी भी भगवान से इतने दूर और उसमें भी मेरे पास आकर तो बैठते ही नहीं, यह देखकर भगवान ने तुरंत चिट्ठी लिखकर दी,

देखो -- तो ठीक पर से तुमारा प्रेम होगया
है सावधानी से स्नेह निभाना मेरे को दुख पहुंचे ऐसी कोई
अपने दो की बात न करदेना - और यह मेरे लिये कागज
फाडदेना या सुरक्षित रखना पहले जैसी भोली न रहना

देखो....तो ठीक पर....से तुम्हारा प्रेम हो गया है। सावधानी से स्नेह निभाना मेरे को दुःख पहुँचे ऐसी कोई अपने दो की बात न कर देना और यह मेरे लिये कागज फाड़ देना या सुरक्षित रखना, पहले जैसी भोली न रहना।

कारण मेरे कई पत्रों की चोरी हो जाती थी। मैंने इससे पहले भी मेरे लिये उन्होंने किये हुए झगड़े की याद लिखी तो प्रत्युत्तर दिया, "इसी से तो मैं कहता हूँ कि मेरा कहना करो।"

शठ सुधरत सतसंग से, चतुर सुभाव न जाय
खल की प्रीति यथा थिर नाहीं....

हर प्रसंग में भगवान परम कृपा करके मेरे हित के लिये मुझे जागृत करते रहते थे। इसीलिये जीवन में ऐसे कुसंग से हमेशा सावधान रहना चाहिये। सतसंग न मिले तो ना सही परंतु कुसंग से भगवान बचावे क्योंकि यह तो मीठा जहर है। जीवन बरबाद हो जाता है।

यह नवरात्रि के नौ दिन दौरान एक दिन मानसजी के अरण्यकांड, किष्किन्धाकांड और सुन्दरकांड का समूह में पाठ करवाया। मुझे बुलाकर कहा, "चलो रमा, तुम सबको पाठ कराव। आज तक समूह में कभी भी मानसजी का पाठ किया न था और चौपाइयों के राग भी नहीं आते थे इसलिये संकोच होता था। भगवान ने कहा, "संकोच क्यों? मेरे साथ गाव।" भगवान ने अर्धालि से पाठ शुरू करवाया। थोड़ी चौपाइयाँ गाने के बाद मुझ पर पाठ छोड़कर चले गये। थोड़ी देर तो पाठ न करवा सकी, बाद में भगवान ने बताये हुए राग से पाठ पूरा किया। पाठ की पूर्णाहुति में भगवान पधारे और स्वरचित पद, "हे प्रभु! अस मन कर दो" गाने के लिये कहा, वह भी भगवान के साथ ही गाने का था।

श्री प्रभु प्रार्थना

हे प्रभु ! अस मन कर दो.......
असुरारी ! अघहारी ! हे हरि जन मन बनचारी;
हे प्रभु ! अस मन कर दो (१)

मुदित रहे प्रत्येक दशा में, तोष सुधा रस पावे,
जग भोगों की चकाचौंध में, भूल भटक नहिं जावे;
हे प्रभु ! अस मन कर दो (२)

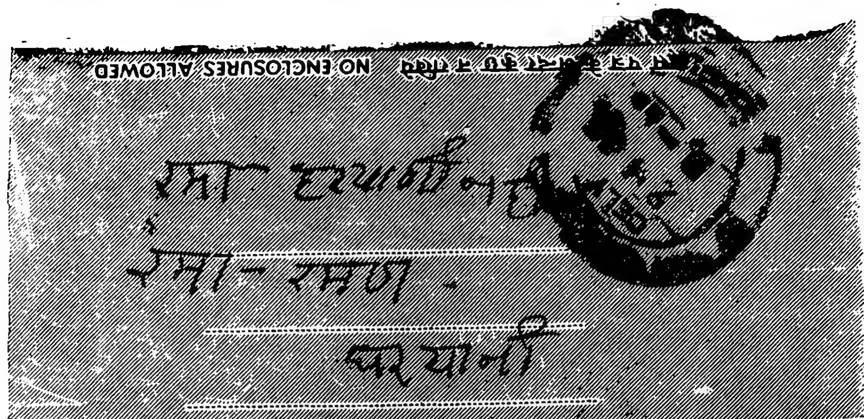
राग द्वेष ईर्ष्या मद ममता, सपनेंहि इन्हें न ध्यावे,
करै निरंतर ध्यान आपका, प्रेम से गुन गन गावे;
हे प्रभु ! अस मन कर दो (३)

अणु अणु और परमाणु में, देखे रूप तुम्हारा,
सर्व समर्पण होय आप में, रहे न अंश हमारा;
हे प्रभु ! अस मन कर दो (४)

उत्पीड़क ना बने किसी को, हो विनम्र मृदुभाषी,
सेवा धर्म परायण होवे, तज कर आश पिशाची;
हे प्रभु ! अस मन कर दो (५)

बना है यह तन भव तरने को, बूडत है मझधारा,
किजै कृपा सफल हो जीवन, दे दो जरा सहारा;
हे प्रभु ! अस मन कर दो (६)

रामनवमी के उत्सव पर प्रणाम निमित्त पिताजी का पत्र आया था । भगवान को यह बताने पर कहा, "लाव पत्र कहाँ है ?" पत्र पढ़ने के बाद एड्रेस पढ़ा जिसमें पिताजी ने "रमा हरियानी" लिखा था । भगवान ने उसी अंतरदेशीय पत्र में पीछे भेजने वाले के नाम के पत्ते की जगह लिख दिया ।



"रमा हरियानी नहीं रमा-रमण घरयानी ।" ऐसा सुना है कि साधु समाज में जब जो जीव प्रभु की शरणागति स्वीकार करता है उसे सद्गुरु द्वारा दीक्षा देने के बाद उसके नाम, स्थान, परम्परा आदि आध्यात्मिक ढंग से बदल दिये जाते हैं उसी प्रकार नाम विगेरे भगवान ने बदल दिये।

एक दिन एक भाई अपनी बेटी को लेकर आये। उस बहन ने भगवान के पास रोते-रोते आर्तभाव से एक भजन गाया। भजन की आखिरी पंक्ति थी, "निर्मल आई शरण में प्रभु स्वीकार कर लो" इतने करुण भाव से गाते देखकर मैंने भगवान को लिखकर दिया, "यह कितना प्रेमाल और भाविक जीव है और आखरी पंक्ति से तो वह निर्मल है, यह भी मालूम हो गया और आपका तो प्रण है ।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा....... ....

तो फिर आप स्वीकार कर लो ना ? उस बहन का नाम निर्मला था वह मुझे मालूम न था। उन्होंने तो अंतिम पंक्ति में अपना नाम जाहिर किया था इसलिए भगवान ने मुझे लिखकर दिया, "तुम मानती हो वैसी नहीं है ।" उनका जीवन भगवान जानते थे। सही में भगवान को तो निर्मल मन ही प्रिय होता है ।

जोधपुर रामनवमी का महोत्सव मनाकर वहाँ से दो-तीन गाड़ी द्वारा सबके साथ गुना से थोड़े दूर बजरंग गढ़ में श्री हनुमान जयंती का महोत्सव मनाने के लिये गये। वहाँ से घूमते हुए तारंगा हिल होकर राजकोट गये ।



[५७]

रामकृपा बिनु सुनु खगराई

भगवान के एक प्रेमी भक्त राजकोट में पोपटपरा स्थान में रहते हैं जिनका नाम श्री हीराभाई है, उनकी इच्छा से वहाँ पर श्री रघुवीर मंदिर बनाया गया है। उनका प्रेम भाव देखकर भगवान ने इस प्रतिष्ठा महोत्सव पर हाजिर रहने का स्वीकार किया। समय कम होने से मूर्ति के विषय में वे चिंतित थे। उस समय भगवान ने जो १९६१ में चित्रकूट रघुवीर मंदिर के लिए आर्डर से मूर्तियाँ बनवाई थीं जो अनंतपुर में मंदिर बनाने की इच्छा से रखी थी वह वहाँ से मंगवा ली और धूमधाम से भगवान के वरद् हस्त से युगल सरकार की प्राण प्रतिष्ठा की गई। उस उत्सव पर १०८ नवाह्न पारायण विधि से करवाये गये। व्यास पीठ पर पू. श्री हरिचरणदासजी महाराजजी विराजमान थे। सब गुरु भाई-बहनों में खूब आनन्द, उत्साह था। भगवान के आदेशानुसार बहनें केसरी साड़ी और भाई लोग केसरी टोपी पहनकर पाठ में बैठे थे उसमें मैं भी थी। इतने बड़े प्रमाण में भीड़ थी कि भगवान के दर्शन दुर्लभ हो गये थे।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव पर पहले भगवान राजकोट आश्रम में पधारे थे। वहाँ पर एक बहन को दीक्षा दी गई, उस दिन मैंने भगवान के पूजन हेतु चिट्ठी लिखी थी, "इतनी भीड़ में यदि आपको अनुकूलता हो तो मैं पूजन करना चाहती हूँ कोई आग्रह नहीं है यदि आपको समय मिले तो ही" भगवान के कमरे की बगल में ठाकरमढी में मैं थी। भगवान उन बहन को दीक्षा देकर अचानक सीधे मेरे कमरे में पधारे, खूब प्रसन्न थे और दरवाजा बंद करके पूजन करने के लिये कहा। पूजन के बाद मानो मेरी परीक्षा ले रहे हों वैसे बोले, "लो रमा, अब तो एक और भी बढ़ गई।" मैंने कहा, "भगवान, आप तो दीनदयालु हैं और विश्वपति हैं, आपके पास एक क्या एक हजार भी बढ़ेंगे तो भी आपके

चरणों में मेरा जो स्थान है वह तो रहेगा ही ।" यह सुनकर खूब प्रसन्न होकर सिर पर हाथ फिराते हुए बोले, "रमा, सदैव ऐसी विशाल भावना के साथ उदार और उत्तम विचार रखना, मुझे इतने में ही नहीं समझना ।" वैसे भी गुरु एकदेशीय नहीं होता है, गुरु व्यापक तत्त्व है ।" उन दिनों में कोई कारणवशात् मैंने उपवास किया था, तब सागर नेत्रयज्ञ से किसी को स्पर्श न करने का लिया हुआ तीन महीने का नियम चालू था, इस कारण उसी बहन ने जिससे भगवान ने जोधपुर में सावधान किया था, मेरे उपवास के बारे में अनुमान लगाकर कुछ चर्चा की होगी । जिस कारण भगवान ने मुझे पूछा, "रमा दो-चार दिन पहले तुमने उपवास किया था क्या ?" "जी हाँ" तो कारण पूछा, उसके बाद उनके अनुमान की बात बताते हुए फिर से सावधान किया ।

पोपटपरा में एक दिन भगवान ने बुलाकर कहा, "रमा, धीरु के लिये तुमने लड़की देखी ?" मैंने पूछा, "कौन-सी ?" तो कहा, "बाद में बताऊँगा ।" भगवान ने तो धीरुभाई का संबंध उसी दिन अपने ढंग से पक्का कर दिया था, यह हमें मालूम न था । सन् '६७ में उन्हीं के साथ संबंध जाहिर किया ।

एक दिन भगवान राजकोट में राजासाहब के बंगले पर पधारे थे । शाम होने पर मैं, मनहरभाई, भाभी तथा नीला, उर्वशी और उनके साथ एक अन्य बहन भी थे । हम सब साथ में घूमने निकले थे । थोड़ी दूर जाने पर भगवान की गाड़ी सामने मिली । भगवान ने गाड़ी रोकी, हमें शांति से प्रणाम करने का अवसर मिला । प्रसन्नता से हँसते-हँसते पूछा, "कहाँ जा रहे हो ?" मनहरभाई ने उत्तर दिया, "घूमने जा रहे थे ।" बाद में भाभी के प्रणाम करने पर पूछा, "इसका नाम क्या है ?" साथ वाली बहन ने कहा, "बापू, इनका नाम तो जयाबहन है ।" उसके बाद मेरे प्रणाम करने पर फिर से पूछा, "इसका नाम ?" उस बहन ने कहा, "बापू यह तो हमेशा आपके आगे रहते हैं जिससे आपको मालूम ही होगा ना ?" भगवान ने कहा, "अरे, यह मेरे आगे नहीं पीछे रहती है ।" इस तरह से थोड़ी देर बातें करके खुश कर दिये और वापिस लौटने को कहा । हम गाड़ी के पीछे-पीछे कमरे पर पहुँच गये ।

श्री हीराभाई जिन्होंने श्रीराम मंदिर की स्थापना करवाई वे खूब सरल और प्रेमाल स्वभाव के भक्त हृदय हैं। बड़ी उम्र में उनके यहाँ भगवान के आशीर्वाद से पुत्र जन्म हुआ जिसका नाम "रघु" रखा है।

पोपटपरा के प्रसंग से पहले प्रसंगोपात् भगवान गंदा बाड़ी में पधारे थे, वहाँ पर बहुत भीड़ थी। भगवान के पास हमेशा स्वाध्याय होता था, उस समय मनहरभाई की दोनों लड़कियाँ, नीला-उर्वशी बहुत छोटी थी, फिर भी मनहरभाई ने कुछ प्रार्थनायें कठस्थ करवाई थीं। भगवान ने उन दोनों को बुलाकर प्यार से अपने चरण रखे हुए पाटे पर बिठाकर माइक में प्रार्थना बुलवाई और प्रसन्नता से सुनी। बाद में राजकोट से भगवान के साथ मैं बगसरा गई।

[५८]

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी

भगवान बगसरा से वीरपुर पधारने वाले थे, तब मुझे बुलाकर कहा, "रमा, मैं आठ दिन के बाद वापिस राजकोट आऊँगा, तुम इतने दिन राजकोट में श्री वजुभाई जीबनपुत्रा के यहाँ रहना, वीरपुर मैं तुम्हें साथ नहीं ले जाता हूँ क्योंकि उन लोगों को अच्छा नहीं लगता।" मैंने कहा, "भगवान, यदि आप कहें तो मैं आठ दिन राजकोट न रहकर बरसडा, अमरेली और सलड़ी, लीलीया मामा, मौसी के यहाँ मिलने जाऊँ?" हाँ कहते हुए बोले, "भले, बराबर आठवें दिन राजकोट पहुँच जाना मैं तुम्हें राजकोट में मिलूंगा।" भगवान की संमति लेकर मैं बरसडा, अमरेली होकर लीलीया मामा के घर गई।

बहुत साल के बाद मामा से मिलने के लिये जो भाव और प्रसन्नता लेकर गई थी वह सब छिन्न-भिन्न हो गयी कारण उनके वाणी, व्यवहार में उपेक्षा का भाव था। मामा परम कृष्ण भक्त थे। मैं दस साल की थी तब उनसे मिली थी इस कारण उनकी विचारधारा से अनजान थी।

मैंने सोचा था उन्हें भक्ति में रस है जिससे मेरा यह जीवन देखकर खुश हो जायेंगे । वे मुझे जन्म से ही 'देवी' कहकर बुलाते थे और माँ से कहते थे, "देखना यह तुम्हारी बेटी शादी न करके भक्ति मार्ग स्वीकार करेगी ।" इतना प्यार होते हुए भी उस दिन का वाणी-व्यवहार स्नेहरहित शुष्क देखकर मैं समझ न सकी लेकिन अब वहाँ रहने की इच्छा न थी । शाम को वहाँ पहुँची थी इसलिये किसी भी तरह से रात रुकना पड़ा । सुबह पहली बस से निकल जाने वाली थी । मामा ने व्यवहारिकता से भोजन करके जाने के लिये आग्रह किया पर सुबह वे बोले बिना न रह सके, तब उनको क्या तकलीफ थी वह मालूम हुआ । उन्होंने कहा, "तुम्हारा यह जीवन ठीक है परन्तु अपने 'कृष्ण' ही सही ।" मैंने कहा, "मामा, आप ऐसा क्यों कहते हो ? राम और कृष्ण एक ही तो हैं ।" थोड़ी चर्चा के बाद समझ में आया कि वे तो राम-नाम लेने के लिए भी राजी न थे । बार-बार उनके एक ही शब्द थे, "तुम कुछ भी कहो पर अपने तो कृष्ण ही सही ।" बचपन से मैंने उन्हें देखे थे, उनकी जिह्वा पर सतत "राधाकृष्ण, राधाकृष्ण" या "श्री कृष्ण शरणं मम" का जाप चालू ही रहता था ।

खूब प्रेमाल थे और व्यवहार शुद्धि भी जीवन में भरपूर थी परन्तु धर्म के नाम पर इतनी जड़तापूर्वक ग्रंथि बंध गई थी कि कोई चाहे कितना भी समझाये वे 'राम' और 'शिव' नाम लेने को तैयार न थे । यहाँ तक कि गुजराती में कपड़े सिलाने को "शिवडाववा" कहते हैं उसमें 'शिव' शब्द का समावेश होने से यह शब्द भी नहीं बोलते थे । मैंने कहा, "मामा, आप मुझे हवेली में ले जाव या कोई भी कृष्ण भजन गाने को कहो तो मैं तैयार हूँ कारण मेरे राम ही तो आखिर कृष्ण रूप में प्रकट हुए थे और फिर भी यदि आपको राम-नाम से इतना विरोध है तो आपका नाम 'रामजी' क्यों रखा है ? मेरे भगवान का नाम आप क्यों ले गये ? किसी भी ढंग से उन्हें कहने, समझाने पर भी जीवन के अन्तिम समय तक उनमें कोई फर्क न हुआ ।

रघुनाथजी ने स्वमुख से कहे हुए शब्द,

शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास......

इस तरह का द्रोह देखकर दुःख तो बहुत हुआ। मेरे इष्टदेव रामजी और रामजी के इष्टदेव शिवजी हैं उनके प्रति किसी भी जीवात्मा का इतना कुभाव कैसे सहा जाय ? कारण,

शिवपद कमल जिन्हहिं रति नाहीं, रामहिं ते सपनेहुं न सोहाही ।
बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू, राम भक्त कर लक्षण एहू ।।

शुष्कतापूर्ण उनका सन्मान स्वीकार करके दोपहर को वहाँ से निकल गई। भगवान के आदेशानुसार एक दिन जल्दी राजकोट पहुँच गई। भगवान सीधे पोपटपरा पधारने वाले थे जिससे सीधी वहीं दर्शन के लिए गई। परन्तु अतिशय भीड़ के कारण प्रयत्न करने पर भी दर्शन न मिलने से हीराभाई के घर में चली गई। भगवान वहाँ पधारे, बहुत थोड़े लोग अन्दर थे। दरवाजे बन्द कर दिये, शान्ति से दर्शन हुए। मुझसे पूछा, "तुम कब आई ?" फिर अन्दर कमरे में बुलाकर पूछा, "तुम्हारे पास कुछ है क्या ? मुझे भूख लगी है।" योगानुयोग उस दिन मेरे बटवे में थोड़े नमकीन पिस्ते थे। मुझे उस समय विचार तो आया था कि मैंने भगवान के लिए यह लिए तो हैं परन्तु मुझे कब ऐसा मौका मिले कि मैं दे सकूँ। आज मानो मेरे यही भाव के कारण सामने से मांग कर स्वीकार किया। बाद में पूछा, "तुम्हारा सामान कहाँ है ?" बताने पर कहा, "तुम सामान लेकर सीधी आश्रम पहुँचो, वहाँ से तुम्हें मेरे साथ गाड़ी में चलने का है।"

आश्रम से रात को भगवान के साथ सुरेन्द्रनगर जाने के लिये रवाना हुए। दूसरे दिन ट्रेन द्वारा वहाँ से बम्बई गये। बम्बई स्टेशन पर कई भाविकजन दर्शन को आये थे। उसमें मनहरभाई के बहन ललिता बहन भी थे। मुझसे कहा, "रमा, तुम ललिता के घर रहना" कारण मनहरभाई, भाभी राजकोट से उनके गाँव वणी गये थे। एक-दो दिन भगवान सायन में ही थे बाद में चर्चगेट राममहाल पधारे, मैं ललिता बहन के साथ दर्शन के लिये आती-जाती थी। ललिता बहन की विनती स्वीकार करके भगवान उनके घर भी पधारे थे। थोड़े दिनों बाद भगवान महाबलेश्वर पधारे और मैं आज्ञानुसार जयपुर गई।

卐

[५६]

करहु कृपा प्रभु होहु सहाई

भगवान का महाबलेश्वर से लिखा हुआ एक पोस्टकार्ड मिला :–

रमा, तुम सकुशल पहुँच गई होगी ।

मैं तुमसे बिदा लेकर १०½ बजे महाबलेश्वर पहुँचा, मार्ग के श्रम के कारण बुखार आ गया था । अब अच्छा है, चिन्ता न करना । मैं १५ दिन ठहरूंगा बाद अनंतपुर होकर राँची जाऊँगा, राँची ठहरूंगा कुछ रोज ।

रमा तुमको राजकोट बम्बई में बहुत अव्यवस्था के कारण बहुत कष्ट हुआ पर मैं क्या करता । पत्र देना, सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

मैंने पत्र लिखा था । उसके प्रत्युत्तर में चार दिन बाद दूसरा पत्र आया :–

श्री रामचन्द्राय नमः

महाबलेश्वर

ता० २६-५-६५

प्रिय रमा आशीर्वाद

मेरा पत्र मिला होगा तुम्हारा पत्र मिला बहुत संतोष हुआ । स्वास्थ पहले जैसा ही है पर चिन्ता करना नहीं । ता० ६ को प्रातःकाल यहाँ से जाने का विचार करता हूँ जहाँ जाऊँगा पत्र दूंगा । एक बात लिखूँ बुरा न मानना, सच तुम बड़ी सहनशील हो ।

रणछोड़दास का आसीस
सबको आसीस कहना

इसी पत्र में आगे पिताजी के नाम पर लिखा था –

प्रिय पुरुषोत्तमभाई सादर आसीस

कान्ता की व्यवस्था बराबर है । प्रमोद को आगे पढ़ना चाहिये । भगवान की कृपा होगी तो मैं शीघ्र मिलूँगा । सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

तारीख १६-६-६५ को दूसरा पत्र आया :–

श्री रामचन्द्राय नमः

बांदा

१६-६-६५

रमा, सादर आशीर्वाद

तुम्हारा पत्र मिला । स्वास्थ ठीक नहीं । उल्टी बहुत होती है रोज दो क्या करना ? याद आती है या नहीं यह अपने मन से पूछो क्या लिखूं ?

मैं राँची ता० १९-२० को पहुँचूंगा । वहाँ १५-२० दिन ठहरकर विलासपुर जाने का विचार है । धीरज रखना बालक सम्हालना पड़ता है ? अच्छा जी प्रमोद आनन्द में है मजा है कम्पनी है । सब को आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

छोटा भाई प्रमोद भगवान के दर्शन के लिये महाबलेश्वर गया था । वहाँ से उसको भी अपने साथ ही ले गये थे । मैंने उसके साथ एक पत्र भेजा था । ता० १८-६ का खप्टीहा से लिखा हुआ प्रमोद का पत्र आया । उसी में आगे भगवान ने लिखा था :–

सादर आसीस

'जे हरि करसे ते मम हितनो' यह वाक्य जीवन में उतरे तो बस रमा को सब भाइयों को माँ को व कान्ता को आसीस कहना ।

रमा सादर आसीस

पुरुष परखिये समय सुहाये

हरि मम रक्षक ज्यादा क्या ? बस

रमा सेवा की इच्छा बलवती बनाओ भजन बराबर करो और मन लगाओ ।

रणछोड़दास का आसीस

इस पत्र में लिखे गये भगवान के दोनों मार्मिक वाक्य जब तो समझ में न आये परन्तु समय बीतने पर यथार्थ अनुभूति हुई ।

थोड़े दिनों बाद ता० २२-६-६५ का लिखा हुआ भगवान का पत्र मिला :–

तुम्हारा १६ पेज का पत्र आज मोटर में प्रमोद ने दिया बांचा-विचारा खूब विचारा । मेरे साथ न रहने के कारण असह्य वेदना का तुम अनुभव करती हो यह मेरे से छिपा नहीं है और न मेरे से दूर रहना चाहती हो यह सत्य है ।

तुमने लिखा है उसका सार समझ कर बहुत दुःख होता है प्रथम साथ न रहने से जो वेदना होती है उसका परिणाम विकल्प ।

तुम खूब सोचो केवल अन्य विकल्प या कोई (उदाहरण) को माध्यम बनाकर न सोचना ।

मेरा जीवन बाल्यकाल से अस्थाई भ्रमणशील रहा है ।

स्थाई रहने बिना तुमको साथ रहना या रखना कितना जोखम भरा है तुम विचार करो ।

यदि तुम औरों के जैसा हठ कर रहना पसंद करो तो मुझे केवल चिन्ता के गर्त में डालना है जैसा कि अभी चल रहा है तुम जानती हो कि जो साथ है उनकी कितनी चिन्ता रहती है ?

मैं थक गया हूँ पीछे पत्र लिखूँगा मेरे स्वास्थ के बारे में प्रमोद बतावेंगे सदैव तुम्हारी याद आती है ।

मेरे पत्र की प्रतीक्षा करना, कोई काम व्यर्थ में न करना उत्साह से रहना किसी काम को बोझा समझकर करना नहीं । मन निर्बल बनेगा कर्तव्य समझकर करो । पूरा पत्र फिर लिखूँगा ।



[६०]

कृपासिंधु बहु विधि समुझावहिं

भगवान के पत्र से राहत मिली । बड़ी बहन अपने तीन बालकों के साथ जयपुर रहने आये थे । माँ को हमेशा मुझसे असंतोष रहता था कारण एक तो मैंने उनकी इच्छानुसार नौकरी नहीं की दूसरी बात उनसे काम नहीं बनता था । घर में नौकर नहीं और मैं कभी भी अचानक भगवान के पास चली जाती थी तब इस कारण से वे नाराजगी बताकर मेरे साथ बोलते भी न थे । इसके अलावा उनको ऐसा लगता था कि पिताजी मुझे हर जगह भेजने में खर्च करते हैं और उन्हें आर्थिक कठिनाई सहनी पड़ती है । खैर, यह शंका तो बड़ी बहन और छोटे भाई को भी थी परन्तु सन् ६२ की रामनवमी के प्रसंग पर माँ पिताजी के साथ बम्बई गई थी, उसके बाद का संपूर्ण खर्च भगवान देते रहते थे और देवास बुलाया तब तो रुपये ५०००) जैसे पहले कहा था वैसे मेरे नाम पर बैंक में रखवा दिये थे और कहा था, "यह पैसा किसी को देना नहीं, तुम सावधान रहना, भविष्य में तुम्हें कोई नहीं रखेगा, सब गरज परे कछु ओर है, गरज सरे कछु और । तब से उसी ब्याज में से मेरा खर्च चलता था । घर में रहती थी तब तो मेरा निजी खर्च कुछ होता न था । १९६१ में चार साड़ियाँ लेने के बाद कपड़े का खर्च भी नहीं था कारण घर में तो परिस्थिति अनुसार कैसे भी चला लेती थी और बाहर गाँव के लिये अधिक से अधिक तीन-चार साड़ियों से काम चल जाता था जो कभी कोई प्रसंग से कोई दे देता वो ही चलती थी । अन्य कपड़े कई बार भगवान केम्ब्रिक की धोतियाँ प्रसाद के रूप में देते थे उसी में से बनवाती थी । हालाँकि पिताजी इस बात के पूर्ण साक्षी थे फिर भी समझाने पर भी घर के सदस्यों के दिमाग में यह बात नहीं उतरती थी । पिताजी माँ को भी समझाते थे, "रमा को तो अपने भगवान को सौंप दी है, अब तो भगवान की अमानत के रूप में अपने यहाँ रहती है तो भगवान बुलावे तब उसको जाना ही चाहिये ना ?"

परन्तु उनसे गृहकार्य न सम्हलने के कारण दु:खी रहती थी । उसमें भी अब मासिक खर्च के लिये धीरूभाई जो पैसे भेजते थे उसमें से छ: के बदले दस व्यक्तियों का निर्वाह करने में बहुत मुश्किल पड़ती थी । मेरे ब्याज की रकम जरूरत पड़ने पर हमेशा काम में लेने के लिये पिताजी को कहती रहती थी ।

माँ परिस्थिति से हारकर गाँव में चली गयी थी । बड़ी बहन का स्वभाव उन पर आये हुए दु:ख के कारण विचित्र बन गया था जिससे उन्हें सम्हालने में मानसिक रूप से भी सहन करना पड़ता था । अब मेरा भगवान के पास जाना एकदम बंद हो गया था । छोटे भाई पढ़ते थे और कम खर्च में घर चलाने की जिम्मेदारी पिताजी ने मुझे सौंपी थी । दिन भर काम में से फुरसत न मिलने से नित्य नियम में भी त्रुटि आने लगी थी । कई बार अधिक मुश्किल होने पर नौकरी करके मदद करने के लिए सोचने लगती थी और उसमें भी अपनी न्यूनता के विचार आते, एकदम निराश होकर सोचने लगती थी कि भगवान की सेवा में रहने के मैं लायक नहीं हूँ, माँ गाँव चली गई है तो मैं किसी आश्रम में रहने चली जाऊँ या सब मुसीबत से कायर बनकर जीवन के लिए नफरत आ जाने से मृत्यु के विचार आते थे । इन सब कारणों से अपनी मनोव्यथा से भरा हुआ सोलह पेज का एक पत्र भगवान को भेजा था । और तो कहती भी किससे ? यह पत्र प्रमोद द्वारा भगवान को मिलने पर वे भी बहुत व्यथित हो गये थे और करीब रोज इस अनुसंधान में मुझे पत्र लिखते थे –

१६ पेजी पत्र के अनुसंधानिक उत्तर तुमने लिखा कि नौकरी कर पिताजी की मदद करूँ और मेरा भी निर्वाह हो नौकरी में मेरी सम्मति बिल्कुल नहीं ।

आश्रम में जाना भी वैसा ही है जैसा नौकरी में, न मान रहेगा न आबरू मजूर जैसा काम करो, रोटी खाओ और दुराचार में शामिल रहो बस यह दशा आश्रम की है ।

रही मृत्यु की बात यह तुम कर नहीं सकतीं क्योंकि शरीर तुमारा नहीं मेरा है यदि तुम अपना समझो तो भी कायरता है तुम वचनबद्ध

हो ऐसा कर नहीं सकती । तब फिर करना क्या यह प्रश्न का सीधा-सा उत्तर है धीरज रखो ।

यह शब्द कितने योग्य है ! ! ! पुरुषार्थ करके जीवात्मा कितना पा सकता है ? कारण पुरुषार्थ सीमित है, कितना किया जा सकता है ? जीवात्मा की शक्ति भी सीमित है, इसलिये परमात्मा के बन जाने में ही जीवात्मा का कल्याण है । किसी ने गुजराती में कहा है –

जीवन अर्पण करी दीधु कोई ने एटला माटे के
मरण आवे तो कही शकु आ मिल्कत पराई छे..........

भावार्थ – इसीलिये जीवन किसी को सौंप दिया कि मृत्यु आने पर कह सकूं कि यह मिल्कत पराई है । यह तो साक्षात् भगवान ने कह दिया कि, "शरीर तुमारा नहीं मेरा है" ऐसा अभय वचन परमात्मा की परम कृपा के बिना संभवित नहीं । थोड़े दिनों बाद दूसरा पत्र आया –

राँची

ता० १-७-६५

सोलवें पृष्ठ पत्र
१६ पेजी
'नौकरी'

तुम नौकरी करना चाहती हो ?

(१) देखो नौकरी की पराधीनता सहन कर सकोगी ?

(२) तुमको मासिक क्या पगार होगा उसका विचार किया ?

(३) जब नौकरी करोगी तब टायम की पाबन्दी करनी पड़ेगी । क्या ऐसी दशा में भजन हो सकेगा ?

(४) यदि मान लो कि तुम तुमारे पिता को मदद कर सको तो क्या इससे उन्हें प्रसन्नता होगी ? और धीरू को संतोष होगा ? रमु यह विकल्प है यह सब व्यर्थ है बच्चों की देखभाल करना ।

इसको गंभीरता से विचार करो कांता के स्वभाव के तरफ न देखो पर अपना स्वभाव संभालो । अच्छा अब सुनो, देखो समय है धीरज से सामना करके निकाल दो ।

फिर –

मेरा स्वास्थ खराब है मुश्किल से पत्र लिख रहा हूँ भूल सुधार के पढ़ना ।

बुरे विचार न आने दो रमा १० तक यहाँ हूँ पुरुषोत्तमभाई का करुण पत्र मिला है ।

कांता के विषय में एक उपाधि ही है केस में सफलता तो मिलेगी पर बहुत अस्तव्यस्त होना पड़ेगा और खर्च, समय सब बिगड़ेगा ।

पत्र पीछे लिख रहा हूँ ।

रणछोड़दास का आसीस

धीरूभाई नागपुर रहते थे इसलिये मेरी नौकरी के विषय में उनकी विचार धारा मालूम न थी परन्तु माँ-पिताजी की तो मैं नौकरी करूँ उसमें परिस्थितिवशात् संमति थी । नौकरी न करने से माँ-पिताजी असंतुष्ट थे पर क्या करूँ ? भगवान की संमति नहीं थी । पहले से ही भगवान नौकरी करने की बात से नाराज थे, यदि आज्ञा बिना नौकरी करूँ तो भगवान की नाराजगी सहनी पड़े जो मेरे लिये असह्य था । इस विषय में भगवान कभी भी संमत नहीं होते थे । अधिकतर सबको नौकरी के लिये ना कहते थे । पिताजी भी हार चुके थे कारण बड़ी बहन के भविष्य के लिये क्या करना यह जटिल प्रश्न था । बचपन में बड़ी बहन गुजराती में छठी कक्षा तक ही पढ़ी थी । जयपुर में हिन्दी भाषा होने के कारण वे आगे अभ्यास के लिये तैयार नहीं थी । उन्हें अहमदाबाद कांताविकास गृह में अभ्यास के लिये भेजने को पिताजी सोचते थे लेकिन वे जयपुर छोड़कर कहीं जाने को राजी न थी । उनके तीनों पुत्र बहुत छोटे थे और जीजाजी की कोई मिल्कत तो थी नहीं, जो कुछ था वह उनके ससुर और जीजाजी की मृत्यु के बाद उनकी सास अपनी बेटी को देना चाहती थी । उनकी सास ने तीनों बालकों के साथ कुछ भी दिये बिना अपने घर से उन्हें निकाल दिया था । ऐसी विपत्ति से उनका स्वभाव विचित्र बन गया

था। उनके हक के लिये केस करने के विषय में भगवान से पूछने पर जो भी कहा, वैसी ही परेशानी उठानी पड़ी । अभी थोड़े समय पहले ही उन्हें अपना हक मिला । आगे के पत्रों में भगवान ने जो भी लिखा है उसी अनुसार पिताजी को एक नवीन परिस्थिति का सामना करना पड़ा । इसी अनुसंधान में फिर से भगवान का पत्र आया :–

श्री रामचंद्राय नमः

मेरी रमा तुमारा ता. २७ का लिखा पत्र मिला पूर्ण संतोष हुआ प्रमोद के पहुँचने का तार मुझे मिला है तुमको बाद में १६ पेजी के उत्तर में दो पत्र दिये हैं उसमें थोड़ा कठोर है आज ही एक पत्र पुरुषोत्तम भाई को पोस्ट किया है ।

रमा, **संत परिवार सदा सहनशील होता है संत पर हित के लिये कष्ट सहन करने की परम्परा बनाये रखना चाहते हैं अपने लिये तो कष्ट सब ही सहन करते हैं** तुम थोड़ा सहन कर लो बस तुम धीरज रखना ।

मेरा स्वास्थ साधारण है तुम रांची आने का विचार न करना और मैं जो सोचता हूँ वही ठीक है जल्दी मिलूंगा घबड़ाना नहीं ।

"भगवान, मैं अपने दुःख सुख की बातें आपके सिवा किसको लिखूँ ? परन्तु इससे आपको बहुत ही कष्ट पहुँचाया है इसके लिये क्षमा भी किस शब्दों में मांगूं ? मुझसे जितना सहन हो सकेगा कर लूंगी सहन शक्ति आप दीजियेगा और आगे से आपको कुछ नहीं लिखूँगी" उसके जवाब में पत्र आया :–

श्री रामचंद्राय नमः

ता. ८-७-६५

प्रिय रमा सादर आसीस

मेरा स्वास्थ साधारण है तुमारा, पुरुषोत्तम भाई का, प्रमोद का पत्र मिले जाना हाल तुमारा अच्छा देखो १६ पेज तो तुमारे पत्र आते ही बंद कर दिया है पर जो पत्र पोस्ट हो चुके हैं वह तो पहुँचेंगे ही ।

रमा दु:ख न लगाओ तुम सब लिखो पर कायरतापूर्वक नहीं थोड़ा सहन करना । मैं तुमसे जल्दी मिलने की सोच रहा हूँ पर क्या करूं ? जैरामभाई की तबीयत ठीक नहीं मेरे भरोसे रांची पड़े हैं उन्हें छोड़कर जा नहीं सकता कहीं और क्या कहूँ तुमसे तुम सुनकर दु:खी ही होगी । यहाँ तार टपाल की बड़ी अव्यवस्था है बहुत देर से मिलते हैं ।

सबको आसीस कहना तुम भले विलासपुर आ जाना । मैं १७ को यहाँ से चलूंगा विलासपुर को ।

रणछोड़दास का आशीर्वाद

यह पत्र आने पर फिर से पत्रों की लेन-देन की गड़बड़ी मालूम हुई । कुछ बुद्धिशाली व्यक्ति साथ होने पर हमेशा यह घटना घटती थी ।

[६१]

कृपा दृष्टि रघुवीर विलोकी

भगवान ने विलासपुर गुरु पूर्णिमा निमित्त बुलाई फिर भी संजोगवशात् न जा सकी । बस यही बंधन अखरता था । गुरु पूर्णिमा निमित्त प्रणाम का पत्र लिखा, दर्शन तो दुर्लभ थे ही । थोड़े दिनों बाद उज्जैन से पिताजो के नाम भगवान का तार आया,

Come by first train with Rama

Ranchhoddas

परन्तु यह तार सबसे छोटे भाई महेश के हाथ में आने से वह पढ़कर रोने लगा, मैं जाने नहीं दूंगा या मैं भी साथ चलूंगा । उसकी परीक्षा होने से साथ में नहीं ले जा सकती थी इस कारण पिताजी अकेले उज्जैन गये । वहाँ से पिताजी का पत्र आने पर मालूम हुआ कि वहाँ से भगवान भाडवा (सौराष्ट्र) में एकांत और मौन के लिये पधारनेवाले हैं, कितने समय के लिये, यह तो नहीं लिखा था । इस कारण दर्शन के लिये व्याकुलता होना सहज था क्योंकि ना जाने फिर कब दर्शन मिलें ? और बहुत लम्बे समय से दर्शन न मिलने पर मन अधीर हो चुका था ।

पत्र आया तब महेश स्कूल गया था जिससे उसको बताये बिना ही स्कूल से आने से पहले प्रमोद को उसकी जिम्मेदारी सौंपकर दो दिन के लिये उज्जैन गई । वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि भगवान ने मेरे नाम पर पत्र लिखकर पिताजी को दे दिया था जो मुझे वहीं पर पढ़ने को मिला ।

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिय रमा सादर आसीस

अच्छा तुमारा पत्र मिला देखो अब तो अकस्मात ही भाडवा जाने वाला हूँ तुमको अभी और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ।

किसी ने कहा है

जो मजा इन्तजार में··········

एक मास पीछे जयपुर आऊँगा जन्माष्टमी हो गई ।

लीला खतम (क्यों ?)

अच्छा हम हनुमानजी जा रहे हैं ।

रणछोड़दास का आसीस

मैं पहुँची तब भगवान उज्जड़ खेड़ा हनुमानजी के दर्शन को गये थे इसलिये मैं भी सीधी वहाँ पर गई । वहाँ से वापिस लौटने पर मुझे बुलाया । पूजन करके थोड़ी बातें कीं । भगवान उसी दिन शाम को वहाँ से इन्दौर जाने के लिये निकल गये और हम वापिस जयपुर गये । भगवान इन्दौर से राजकोट पधारे । उन दिनों में माँ बरसडा से राजकोट गई थी, भगवान के पास दर्शन के लिये जाने पर माँ को जयपुर जाने को कहा होगा, परन्तु जयपुर आने के लिये माँ की अनिच्छा जानकर मुझे पत्र लिखा। मुझे भी भगवान के प्रोग्राम की खबर न होने से जयपुर पहुँचकर पत्र नहीं लिखा था इसलिये इस बारे में भी लिखा था ।

श्री रामचंद्राय नमः

अच्छा तुमने अपने पहुँचने का पत्र दिया नहीं । चिन्ता स्वाभाविक है । तुमारी माँ राजकोट में मिली थी भीड़ के कारण बात कुछ हुई नहीं उनका मन जयपुर आने को कहता नहीं वह आज ही बरसड़ा चली गई

होगी । मेरा स्वास्थ खराब है ठीक नहीं दो चार दिन में यहाँ से चला जाऊँगा सबको ग्रासीस ।

रणछोड़दास का ग्रासीस

इस पत्र का जवाब मैंने भाडवा लिखा था उसका प्रत्युत्तर

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिय रमा सादर ग्रासीस

तुमारा पत्र मिला तुमने जो उत्तर दिये हैं वह संतोषजनक हैं

मेरा स्वास्थ साधारण है क्या करूँ दैवगति विलक्षण है प्रयत्न तो जरूर करूँगा कि तुम मुझे शीघ्र मिलो । सबको ग्रासीस कहना ।

रणछोड़दास का ग्रासीस

उस वक्त भारत-पाकिस्तान युद्ध चल रहा था इसलिए भगवान भाडवा से देहली की ग्रोर जाने वाले थे, एक गुरुभाई द्वारा यह खबर मिली । भगवान ने फोन से जयपुर यह खबर भेजी थी कि इस दिन इस ट्रेन से जयपुर से निकलने वाला हूँ । टिफिन लेकर स्टेशन जाना था । सुबह साढ़े दस बजे भगवान पधारने वाले थे, हम स्टेशन गये । गाड़ी ग्राधे घण्टे तक रुकने वाली थी जिससे भगवान ने प्रतीक्षालय में स्नान करके भोजन लिया । थोड़ी बातें कीं ग्रौर भगवान देश की रक्षा के लिए ग्रमृतसर पधारे ।



महुँ सनेह संकोचवश, सनमुख कहेउ न बैन
दरशन तृप्ति न आज लगि, प्रेम पियासे नैन



कारुणिक बिनु कारण, हरि जानत जन की पीर

[६२]

हरखि गहे पद कृपा धाम के

भगवान की ओर से हाल अभी कोई खबर नहीं आयी । इस प्रसंग के बाद करीब पन्द्रह दिन पश्चात् घर में ऐसी घटना घटी कि एकदम हिम्मत हार गई । रात को सब के सो जाने के बाद घर छोड़कर निकल जाऊँगी ऐसा निर्णय कर लिया । शाम से रो रही थी, भोजन भी नहीं लिया था । भगवान कहाँ विराजमान हैं यह खबर न थी । मेरी पूजा के स्थान पर बैठकर भगवान के साथ मन ही मन लड़ रही थी कि क्या आपको रुलाने में ही आनन्द आता है कि बैठे-बैठे देखते रहते हो ? क्या आप यह सब नहीं जानते ? या सब जानते हुए भी आँख, कान बन्द करके बैठे हो ? आपको अंतर्यामी कौन कहेगा ? सही में आप अंतर्यामी हो तो जहाँ भी हो वहाँ से आज आ जाओगे तो ही मानूँगी । मीरा, द्रौपदी के जीवन याद आये कि उन्हें सही जरूरत होने पर कैसे दौड़कर पहुँच गये थे, वैसे आज यहाँ आने की आपको जरूरत नहीं लगती ?

घर में रोज रात को आठ बजे सब साथ में बैठकर भगवान की आरती-स्तुति करते थे पर घर का वातावरण उदास था । पिताजी आरती के लिये मुझे बुलाने आये । छत के कमरे में मेरी पूजा थी वहाँ से नीचे आने पर आठ से सवा आठ रेडियो में समाचार आ रहे थे । उस समय हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की लड़ाई होने से ब्लेकआउट चल रहा था जिससे नीचे सीढ़ी का दरवाजा जल्दी बन्द कर देते थे । समाचार के बाद आरती करनी थी इसलिए आरती की राह देखकर मैं बैठी थी इतने में नीचे दरवाजा खटखटाने की आवाज आई, क्षण भर सबको लगा अपनी बिजली का प्रकाश बाहर जा रहा होगा जिससे होमगार्ड आया होगा परन्तु एकदम मेरे मुँह से निकल गया, "पिताजी, भगवान पधारे ।" प्रमोद दरवाजा खोलने जा ही रहा था इतने में भगवान की आवाज सुनाई दी, "रमा खोलो" । प्रमोद ने नीचे जाकर देखा तो भगवान अकेले । साथ में एक छोटा थैला, बिस्तर और पानी का जग

था । भगवान ने रिक्शा वाले को आठ आने देने को प्रमोद से कहा । भगवान के पधारते ही मैं सब दुःख भूल गई ।

अब मैं कुशल मिटे भय भारे, देखि राम पद कमल तुम्हारे ।

"अरे ! कितनी दूर से तुम्हारे लिए भागकर आया हूँ" मानो कि दीक्षा के समय कहा था, "अभी नहीं जब तुम बुलाओगी तब आ जाऊँगा" वैसे आज जरूरत पड़ने पर बुलाने से आ गये । बाथरूम में हाथ-पैर धोते समय मुझसे कहा, "मैंने धीरू के लिए राजकोट में एक लड़की देखी है, शायद तुम भी उसे जानती हो" मैंने कहा, "कौन ?" तो कहा, "भीमजी भाई राजदेव की लड़की है ।" हाथ पैर धोकर कहा, "चलो मैं ऊपर के कमरे में रहूँगा ।" भगवान ऊपर पधारे, कुछ तैयारी तो थी नहीं । जल्दी-जल्दी छोटे भाई जयंत का एन०सी०सी० का कम्बल पड़ा था वह पिताजी ने बिछा दिया । मैं दूसरा अच्छा कम्बल लेकर गई वह बिछाने पर कहा, "अरे नहीं मैं तो इसी पर बैठूंगा ।" मैंने कहा, "भगवान, यह चुभने वाला है ।" तो बोले, "चुभने वाला है पर प्रेम तो है ना ?" आखिर उसी पर विराजमान हुए । सबसे ऊँचो प्रेम सगाई...... फिर तो तखत पर बिछोना तैयार किया । भोजन के लिए पूछने पर कहा, "सिर्फ राब पीऊँगा ।" राब बनाकर लाई तो कहा, "पहले तुम भोजन करो बाद में मैं लूंगा ।" अभी कुछ बात तो हुई ही नहीं थी, फिर भी सब जानते थे कि मैंने भोजन नहीं लिया था इसलिए तो दौड़कर आये थे । मैंने बहुत कहा, राब ठंडी हो जायगी, पहले आप पी लीजिये बाद में मैं प्रसाद लूंगी परन्तु माने नहीं और अपने सामान में से एक डिब्बे में से पुड़ी निकाल कर अपने सामने ही मुझे खिलाकर बाद में ही राब पी, फिर कहा, "अभी मैं बहुत थक गया हूँ, सो जाता हूँ, बाद में ही बात करूँगा । रमा, मुझे छाती में दर्द हो रहा है तुम गरम पानी की थैली तैयार कर दो, सुबह आठ-नौ बजे मुझे बीकानेर की ओर जाना है बीकानेर की बस में बिठा देना ।" पिताजी ने कहा, भगवान, साथ में कोई नहीं है तो रमा को सेवा के लिए ले जाइये । तो कहा, "अभी नहीं, आठ दिन बाद बुलाऊँगा ।"

जल्दी सुबह उठकर भगवान के लिए पीने का पानी उबालकर स्नान और भोजन की तैयारी की । करीब छः बजे उठकर स्नानादि से

निपटकर भगवान रसोई में आये और कहा, "तुम रोटी बनाव, इतने में मैं कांता से बात कर लेता हूँ ।" बड़ी बहन ने अपने सुख-दुःख भगवान को सुनाये और उनकी बातें सुनकर भगवान भोजन के लिये पधारे । अभी तक मुझसे तो कोई बात ही नहीं की थी । भोजन करते समय इतना ही कहा, "देखो, तुम अपने मन पर कुछ लेना नहीं और थोड़ी धीरज रखो, थोड़े दिनों बाद बुला लूंगा ।" भोजन के बाद वापिस ऊपर के कमरे में जाकर बैठे और मुझसे कहा, "आज का अखबार तो लाव ।" उस दिन रविवार होने से अखबार में राशिफल पढ़कर बोले, "अरे रमा, मेरी और तुमारी राशि तो एक है ।" मैंने कहा, भगवान, मेरा नाम राशि पर से नहीं रखा गया तो कहा, "अरे, कुछ भी हो हमारे लिये तो यही राशि है, अरे भाई, अब ये दिन तो हमारे तुमारे दोनों के लिये अच्छे हैं ।"

अति विचित्र रघुपति चरित....

थोड़ी देर में बस का समय हो जाने से जाने के लिये तैयार हो गये । मेरे हाथ में पर्स देखकर बोले, "लाव, लाव तुमारा पर्स मुझे दे दो ।" बस में सबके साथ एकदम साधारण व्यक्ति की भाँति बैठ गये । बस चलते समय खिड़की में से पर्स वापिस देकर बिदा ली । घर जाकर देखा तो उसमें पचास रुपये रखे थे ।

भगवान पधार गये । उसके दूसरे दिन सोमवार सुबह बड़ी बहन अपने तीनों बालकों के साथ अहमदाबाद पढ़ने के लिये चले गये । मालूम नहीं भगवान उन पर क्या कृपा कर गये ! वरना अभ्यास के लिये उनकी बिल्कुल भी इच्छा न थी । परिणाम में आज वे सुखी हैं । एक सप्ताह बाद पिताजी अहमदाबाद बहन को सामान देने गये तब वहाँ से माँ को लाने के लिये बरसड़ा जाने वाले थे । पीछे से भगवान का पत्र आया । कुछ व्यक्ति ने मुझे नहीं बुलाने के लिये भगवान को वचनबद्ध किये थे उस कारण भगवान ने पत्र में इस प्रकार से लिखा था :–

रमा रमण पद बंदि बहोरी

प्रिय रमा सादर आसीस

तबीयत ठीक न होने से अपंग हो गया हूँ बहुत कमजोरी है, पड़ा हूँ । आज मुश्किल से तुझे पत्र लिख रहा हूँ सो जानना याद आती है तब

मन को मार लेता हूँ कि मैंने कौन तुमको सुख दिया जो······· भगवान जैसा करे ठीक है ।

संभवतः दो-चार दिन के भीतर सुरेश गुना से सामान लेकर आवे तो उसे बीकानेर की बस में बैठा देना है और सामान जरूर देख लेना ।

यदि नहीं तो रख देना सब बालको को, हरियाणी को सबको आसीस कहना, भजन करना, सहन करना ।

रणछोड़दास

सीधे शब्दों में मुझे बुलाने के लिये नहीं लिख पाते थे वरना सुरेश को तो गुना से सीधे बुला सकते थे, जयपुर होकर बुलाने की कोई जरूरत न थी और जयपुर से जाते समय भी भगवान ने पिताजी से कहा था कि "आठ दिन के बाद बुलाऊँगा ।" पत्र में लिखे अनुसार दो-तीन दिन में सुरेश और साथ में गुना से रामेश्वर भैया जयपुर आये । मैं उनके साथ बीकानेर के लिये रवाना हुई ।

[६३]

कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना

भगवान को हृदय में धारण किये रात को बीकानेर पहुँचने पर वहीं धर्मशाला में रात रुके । दूसरे दिन सुबह बस से श्री कोलायत गये जो बीकानेर से करीब छब्बीस मील दूर है । श्री कोलायत की धर्मशाला में पहुँचकर प्रणाम करने के लिये न जाकर सुरेश के साथ चिट्ठी भेजी, जिसमें मैंने लिखा था, "भगवान, बिना बुलाये आई हूँ आप कहेंगे तो अभी वापिस जयपुर चली जाऊँगी परन्तु आप नाराज न होना ।" प्रत्युत्तर मिला, "तुमसे बहुत नाराज हूँ पर उससे ज्यादा प्रसन्न भी हूँ, अच्छा चिन्ता न करना ।" उसी दिन सुरेश और रामेश्वर भैया को बीकानेर भेजते हुए कहा, "जाव, तीन दिन बाद आना ।" उस दिन मेरा निर्जल व्रत था ।

धर्मशाला में एक माजी रहते थे, उन्होंने हमारे जाने से पहले भगवान को कोई साधारण साधु समझकर विचित्र व्यवहार किया होगा। भगवान के साथ कुछ सामान न होने से तिरस्कृत और अपमान भी किया था परन्तु इतने सामान के साथ हम लोगों को देखकर उनका व्यवहार बदल गया। इतने दिनों तक भगवान कुछ भी थोड़ा-सा भोजन लेकर चला लेते थे। स्वयं बीकानेर जाकर एल्युमिनियम की भगौनी और एक प्रायमस ले आये थे उसी से खिचड़ी या दलिया बनाकर पा लेते थे। अब तो माजी खूब भाव से सेवा करने को तैयार हो गये थे। दूसरे दिन सुबह तीन बजे से भगवान के शब्द सुनाई देते थे, "हे राम, हे रामा"। पाँच बजे स्नान करके मैं भगवान के पास गई। चरणामृत लिये बिना पानी नहीं पीने का नियम था इसलिये प्रणाम करते समय बोले, "अरे! इतनी देर से आई हो कब से आवाज लगा रहा हूँ" और स्वयं भगवान ने ही अपने पानी पीने के गिलास में से एक चमचे में अपने दायें पैर का अंगूठा धोकर चरणामृत दिया। उसके बाद रामेश्वर भैया मिठाई लाये थे उसमें से चम्मच भरकर देते हुए कहा, "पहले इतना खा लो बाद में बात करूँगा।" अपने कपड़े टावल में लपेट कर बगल में दबाते हुए कहा, "चलो नीचे"। नीचे एक कमरा था वहाँ पर स्नान किया और टावल पहनकर ही भोजन बनाने लगे। मुझे कमरे के दरवाजे पर बैठने को कहा। भोजन के लिये तैयारी करते हुए देखकर मैंने कहा, "भगवान, मेरा एकादशी का व्रत है" तो बोले, "तुम चुपचाप बैठी रहो, कुछ बोलना नहीं।" एक प्रायमस पर दलिया बनाया और दूसरे पर आलू सीझने के लिये रखे। बोलने के लिये मना किया था फिर भी मैंने कहा, भगवान, मुझे कुछ नहीं खाना है, मेरे लिये आप कष्ट न करें। जवाब दिया, "कह दिया ना कुछ बोलना नहीं ?" सामान में से कुछ ढूंढते हुए दिखाई दे रहे थे, न मिलने पर वस्त्र पहनकर बंडी की जेब में पैसे रखते हुए कहा, "तुम यहाँ बैठो मैं अभी आता हूँ दस मिनट में लौटने पर एक पूड़ीकी खोलकर बेसन में सोडा डालते देखे। आलू गल जाने पर उसके बड़े-बड़े टुकड़े करके बेसन में डुबोकर तलने लगे। दलिया और पकौड़े बनाये। अपनी प्लेट और मेरे लिये थाली परोसकर कहा, "कुछ बोले बिना भोजन कर लो।" मैंने कहा, "भगवान, एकादशी है ना ?" तो कहा, "यही तुमारी एकादशी है।" महाप्रसाद में अन्नबुद्धि अपराध माना गया है।

सुबह माजी कहने आये थे कि, "यह बहन मेरे साथ भोजन करेगी" तब कहा था, "यह तो पीला-पीला पहनती है और पीला-पीला खाती है ।" उस दिन मैंने पीली साड़ी पहनी थी परन्तु भगवान के शब्दों का भावार्थ समझ नहीं पाई थी कि आज पकौड़े बनायेंगे । भोजन लेकर भगवान ऊपर के कमरे में पधारे । थोड़ी देर में बर्तन आदि साफ करके मैं भी ऊपर गई तब कहा, "देखो मैं तीन-चार घंटे के बाद आऊँगा, तुम आराम करना और मेरी चिन्ता न करना ।" बाहर जाते समय कहाँ जा रहे हो पूछना उचित न लगने से मैं कुछ बोली नहीं परन्तु छत में से देखती रही, एकदम खुले रेगिस्तान में सिर पर एक रूमाल ढककर दूर-दूर पैदल जा रहे थे । बहुत दूर जाने के बाद तो दिखाई नहीं दिये मैं कमरे में आ गई । ग्यारह बजे गये थे तो तीन बजे वापिस लौटे । आकर कहा, "यहाँ से पाकिस्तान की बोर्डर सिर्फ चौदह मील की दूरी पर है, वहाँ जाना जरूरी था ।"

माजी के व्यवहार के विषय में भगवान ने मुझे थोड़ी बातें बताईं । मैंने दुःख के साथ कहा, "भगवान, सेवा के लिये मैं आई और आपको उल्टा कष्ट दे रही हूँ", यह सुनकर कहा, "ऐसा कभी न सोचना, देखो कभी नाव गाड़ी में तो कभी गाड़ी नाव में, कल से तुम सब करना ।" आदेशानुसार दूसरे दिन से मैं सब काम में लग गई । दोपहर में भगवान के पास बैठी थी तब अखबार पढ़ते हुए बोले, देखो तो सरोज बहन और बलवंतभाई चले गये ।" उस समय लड़ाई के कारण रोज अखबार देखते थे । फिर कहा, "देखो, मेरी डायरी लाव", उसमें भगवान ने उनके बारे में लिखा हुआ मुझे पढ़ाया, "सरोजबहन और बलवंतभाई···· भगवान रक्षा करे ।" भगवान की दी हुई एक डायरी मेरे पास है जिसमें एक घटना के विषय में जो कुछ लिखा है वह आठ मास के बाद लिखे हुए शब्दों के मुताबिक एकदम सत्य साबित हुआ है । त्रिकालदर्शी प्रभु के लिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

दूसरे दिन मुझसे कहा, "रमा, एक काम करोगी ? थोड़ा कष्ट उठाओगी ? देखो, तुम थोड़ी मेहनत करो तो अपने पास सामान है, पूड़ी वगैरा बनाकर गरीबों को खिला दें ।" मेरे हाँ कहने पर कहा, "अच्छा तो कल यह काम करेंगे ।" दूसरे दिन सुबह भगवान स्वयं बाजार जाकर आलू, बैंगन और अपने लिये पालक की भाजी ले आये । मुझसे कहा,

"मेरे लिये रोटी, भाजी बना देना और मैं सबको निमंत्रण देकर आता हूँ, सबके लिए सब्जी, पूडी और मीठे चावल बनायेंगे ।" थोड़ी देर में आकर कहा, "ग्यारह बजे सब लोग भोजन के लिए आ जायेंगे ।" सुबह नौ बजे भगवान ने भाजी-रोटी का भोजन पा लिया । वैसे तो अधिकतर बिना घी तेल की रोटी और उबली हुई भाजी भोजन में पाते थे । मुझे कभी-कभी भाखरी बनाने के लिए भी कहते थे कारण जयपुर घर में शाम को अधिकतर भाखरी बनती थी । सबकी अनुकूलता के मुताबिक भोजन स्वीकारते थे । जयपुर में कभी-कभी बाजरी की रोटी चूरकर उसमें घी-गुड़ मिलाकर हमारी खुशी के लिए स्वीकारते थे ।

भगवान के भोजन के बाद आदेशानुसार एक सिगड़ी पर सब्जी छोंककर दूसरे प्रायमस पर चावल चढ़ाये । करीब ढाई किलो सब्जी थी, डेढ़ किलो चावल और पाँच-सात किलो आटा था । चावल बन जाने पर ऊपर से घी, शक्कर, इलायची और जितना भी केसर था सारा घोलकर डाल दिया । बाद में कहा, "चलो तुम जल्दी-जल्दी पूड़ी बेलो, मैं तलता हूँ ।" थोड़ी पूड़ी बाकी थीं इतने में सुरेश और रामेश्वर भैया आ गये उनसे कहा, "अच्छा हुआ तुम आ गये अभी सब लोग भोजन को आयेंगे तुम परोसना" । बाद में तो मैं अकेली ही पूड़ी बना रही थी, भगवान कमरे के दरवाजे में बैठे थे । एक वृद्ध दुबले-पतले दादाजी आये, उन्हें चौक में बैठने के लिये कहकर बोले, "बैठो अभी सब लोग आने पर भोजन मिलेगा ।" आधे घंटा राह देखने के बाद बोले, "अच्छा इनको तो दे दो ।" सुरेश परोसने लगा । वे इतनी झड़प से भोजन कर रहे थे कि करीब एक घंटे में सारी रसोई खतम हो गई और आश्चर्य तो यह था कि और कोई आया भी नहीं हो सकता है कि भगवान इस एक को ही कहकर आये हों । यह कौन विभूति होगी यह तो भगवान ही जाने !! कारण :–

हर देश में तू, हर वेश में तू, तेरे रूप अनेक, तू एक ही है........

भगवान ने कहा, "मुझे तो डर लगता है कि यह यहीं पर खाते-खाते मर न जाय ।" आखिर कुछ भी बचा नहीं तब भगवानने कहा, "अब क्या दोगी ? कुछ है क्या ?" मैंने कहा, "प्रसाद की डेढ़ रोटी और जरा-सी भाजी पड़ी है", "अच्छा उसमें से एक रोटी दे दो ।" रोटी देते ही उन्होंने कहा, "अब कुछ नहीं चाहिये ।" वे भोजन करके गये बाद में

भगवान ने भी आश्चर्य से कहा, "यह कौन होगा भगवान जाने ! अब तुम तीनों जने क्या खाओगे ?" कारण सब अनाज तो काम में ले लिया था । आगे कहा, "चलो देखेंगे ।" इतना कहकर सुरेश और रामेश्वर भैया के साथ ऊपर कमरे में गये । मैं सब बर्तन और चौका साफ करके ऊपर गई तब देखा तो सामान बाँध लिया था और मुझसे कहा, "रमा, आज यहाँ से चलना है, बहुत तार और चिट्ठियाँ आ रही हैं, कल से लोगों का आना चालू हो जायगा । देखो, अब यह लोग तो बीकानेर जाकर होटल में भी खा लेंगे पर तुम क्या खाओगी ?" मैंने कहा, "भगवान, मैं भी बीकानेर जाकर केले आदि लेकर खा लूंगी, आप मेरी चिन्ता न करें ।" इतने में तो पोस्टमैन आया, एक पार्सल दिया । भगवान ने खोलकर देखा तो एक डिब्बे में प्लास्टिक की थैली में केले की वेफर और मिठाई थी, किसी बहन ने बम्बई से भगवान के लिये दशहरा निमित्त मिठाई भेजी थी । भगवान ने कहा, "लो रमा, तुमारे लिए भोजन आ गया, अब पहले यह खा लो ।" जब दांत न थे तब दूध दियो, अब दांत दिये तो अन्न न देगो", यह भगवान के शब्द याद आये और वैसे भी,

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम,
दास मलूका यूं कहे, सबका दाता राम ।

थोड़ी देर में वहाँ से बीकानेर जाने के लिए निकल गये । वहाँ से कहाँ जाना था मुझे खबर न थी । भगवान ने सुरेश से दो फर्स्ट क्लास और दो थर्ड क्लास की टिकिट मंगवाई । मैं और भगवान फर्स्ट क्लास में थे, दूसरे दिन सुबह जयपुर पहुँचे ।



[६४]

संतत मोपर कृपा करेहु

भगवान ने जयपुर पहुँचकर कहा, "रमा, तुम घर जाकर मेरे लिए भोजन बनाव, अपने को दोपहर तीन बजे की गाड़ी से निकलकर डिग्गी जाना है, मैं यहीं पर प्रतिक्षालय में स्नान करके घर आ रहा हूँ और यह दोनों सामान की देखभाल करेंगे और यहीं कहीं होटल में खा लेंगे।" मेरा सामान भी स्टेशन पर रखकर मैं जल्दी घर गई। घर पर हमेशा ग्यारह बजे सब भोजन पा लेते थे, वह समय निकल गया था। इसलिए रास्ते में से सब्जी खरीदी और घर पहुँचकर स्नान करके भोजन बनाया, भगवान के लिए पीने का पानी उबाल कर ठंडा किया। भगवान तारीख ८-१०-६५ के रोज घर पर पधारे तब भोजन के बाद माँ-पिताजी ने पूजन किया। पिताजी ने भगवान के फोटो में सही करवाई, लिख दिया, "जे हरि करशे ते मम हितनो……" हँसते हुए माँ से कहा, "माँ, रमा से खूब काम लेना हो", माँ खुश हो गई। थोड़ी देर के बाद आगे कहा, "परन्तु माँ इसकी आशा नहीं रखना, यह समझना कि यह ससुराल चली गई है।" बाद में मैंने भगवान को रामायणजी देते हुए कहा, "भगवान, मुझे बताइये पाठ कहाँ से चालू करने का ?" कारण एक बार पिताजी ने कहा था, "भगवान पात्रता अनुकूल अपने को कोई चौपाई बतावे, वहाँ से पाठ चालू करके वहीं पूरा करने का महत्त्व है।" पिताजी को बालकांड की चौपाई दी है, "मंत्र महामणि विषय व्याल के, मेटत कठिन कुअंक भाल के।" कई सालों से आज भी पिताजी इसी तरह से पाठ करते हैं, उसी प्रकार मुझे पहले तो हँसते-हँसते कहा, "देखो तुम तो "पराधीन सपनेहूँ सुख नाहीं……" वहाँ से चालू करना।" बाद में कहा, "लाव बताता हूँ" बालकांड में मनु-शतरूपा का प्रसंग निकाल कर उसमें से,

नील सरोरुह नीलमणि, नील निरधर श्याम
लाजहि तन शोभा निरखी, कोटि कोटि शत काम

इस दोहे से पाठ चालू करने को कहा । बाद में बोले, "चलो अब देर हो जाएगी ।" जरूरी चीजें घर से साथ में लीं ।

मैं और भगवान रिक्शा से स्टेशन गये । थोड़ी देर बाद ट्रेन आने पर डिग्गी के लिये रवाना हुए । शाम को करीब सात बजे डिग्गी पहुँचे । एक धर्मशाला में गये, वह बहुत गंदी थी । पानी के लिये कुआ था और दिये से काम चलाने का था । भोजन में सब्जी और पराठे बनाये । सब भोजन करके सो गये । सुबह कहा, "रमा, कमरा बहुत गंदा है, धो डालो ।" कुआ खुला, खड्डे जैसा था, गिर जाने का डर लगता था, रामेश्वर भैया पानी निकालते गये, सुरेश पहुँचाता गया और करीब पन्द्रह बाल्टी पानी से गंदा कमरा साफ हुआ । फिर कहा, "चलो पहले कल्याणजी के मंदिर में दर्शन करके आते हैं ।" मन्दिर खूब प्राचीन है, बहुत गौर से भगवान देख रहे थे, उसका इतिहास तो मुझे मालूम नहीं है । वापस लौटते बूंदी के लड्डू खरीदकर बच्चों को बाँटे । मैंने कहा, "भगवान, मुझे साथ में न लाये होते तो अच्छा रहता, आपको भोजन में बहुत देर हो जायेगी ।" भगवान ने कहा, "अभी जाकर सब मिलकर, जल्दी-जल्दी बना लेंगे ।"

धर्मशाला में पहुँचते ही सबने मिलकर रसोई तैयार की । लौकी की सब्जी और रोटी बनाई । भगवान की प्लेट परोस रही थी इतने में मेरे पीछे से एक प्लेट में रात के पराठे ढके हुए थे वह गुपचुप ले लिये । मैंने वापिस ले लेने का बहुत प्रयत्न किया पर माने नहीं । छोटी-छोटी बात का इतना ख्याल रखते हैं । चार पराठे में से एक लेकर कहा, "सब एक-एक ले लेंगे ।" भगवान को कई बार बोलते हुए सुना है कि, "पंगत भेद जैसा पाप नहीं है" मानो कि ऐसी बातें सिर्फ शब्दों में ही न थीं लेकिन व्यवहार में चरितार्थ करके दिखाते थे ।

उस दिन दोपहर में दूसरी अच्छी धर्मशाला में चले गये तब कहा, "रमा सुबह तुमसे कितनी मेहनत करवाई ना ? परन्तु वह कमरा धोने में तो तुमने कितने लोगों के पाप धो डाले ।" वहाँ दो दिन रुकने के बाद मुझे जयपुर भेजा और भगवान अनन्तपुर पधारे । मुझसे कहा, "तुम चतुर्थी पर गोंडल जरूर आना ।" शरद् पूर्णिमा का दिन था, मैंने कहा, "भगवान, इतने दिनों से मैं साथ में थी तो अब

पन्द्रह दिन में फिर से पिताजी मुझे आने देंगे ?" तो कहा, "चिट्ठी लिख देता हूँ, ना । देखो, तुम कार्तिक सुदी दसवीं को पुष्कर पहुँच जाना, पुष्कर में तुम पहुँचोगी तब वहाँ तुम्हें जरूर पूछेंगे कि तुम्हें यहाँ आने को किसने कहा ? तो यह न बताना कि अभी तुम मेरे साथ में थी । बस इतना ही कहना सुरेश द्वारा संदेशा मिला है । वहाँ मेरी गाड़ी आयगी, उसमें उन लोगों के साथ तुम भी चले आना ।" बाद में सुरेश से पत्र लिखवाया और भगवान ने सही कर दी ।

श्री राम

प्रिय पुरुषोत्तमभाई डिग्गी

सादर आशीर्वाद

हम यहाँ पर आये लेकिन व्यवस्था ठीक न होने के कारण यहाँ से जा रहा हूँ, रमा को भेज रहा हूँ । कार्तिक सुदी १०वीं को रमा को पुष्कर भेज देना और आप लोग चतुर्थी पर नहीं आना क्योंकि चतुर्थी बहुत दूर हो रही है रमा को चतुर्थी के लिये भेज देना ।

रणछोड़दास का आसीस

[६५]

अब कृपाल जस आयसु होई

भगवान के आदेशानुसार मैं पुष्कर पहुँची । मुझे देखकर प्रथम तो वहाँ के लोग अनजान बनकर कहने लगे, गाड़ी आनेवाली है ? आयगी या नहीं मालूम नहीं । मुझे कैसे मालूम हुआ उसके लिये पूछताछ की । मुझे तो भगवान ने जैसा सिखाया था वही कहना था लेकिन भगवान की गाड़ी में मुझे साथ ले जाने की उनकी इच्छा न थी परन्तु कर भी क्या सकते थे ? पुष्कर से राजकोट के लिये रवाना हुए, सुरेन्द्रनगर पहुँचने पर भगवान के दर्शन हुए । भगवान के साथ दो गाड़ियाँ थीं । भगवान को प्रणाम करके पिताजी ने दी हुई चिट्ठी देने पर मेरे प्रति अभाव

दिखाते हुए बोले, "आते से ही चिट्ठी ?" भविष्य में तो भगवान की यह लीला समझ में आ गई । जब-जब विरोधियों को खुश करना हो या मनाना हो तब ऐसा बर्ताव करते थे परन्तु शुरू में न समझने से ऐसा व्यवहार बहुत अखर जाता था । श्री कोलायत से भगवान के नाम पर आये हुए कई पत्र रीडायरेक्ट होकर जयपुर आये थे, वह सब पिताजी ने भगवान को देने के लिये मेरे साथ भेजे थे । पिताजी की चिट्ठी में चतुर्थी जन्मोत्सव निमित्त सबके प्रणाम और आये हुए पत्रों की विगत लिखी थी । राजकोट पहुँचकर पत्र मांगने पर दे दिये ।

मैं राजकोट आश्रम में भगवान के कमरे के बगल वाली ठाकर मढी में थी और भगवान वीरपुर पधारे । कुछ लोग साथ में गये थे । दीवाली और अन्नकूट के दिन भगवान वापिस लौटे । उस दिन जो बहन भगवान की सेवा में थे उन्होंने अपने भावानुकूल अनेक सामग्री बनाई थी, उसमें मदद के लिए मुझे बुलाई थी परन्तु भगवान के साथ आई हुई बहन रसोईघर में मुझे देख न सकी । तब तो मुझे इस विषय में कुछ मालूम ही न था, उनको सेवा करने वाली बहन से इस विषय में मनदुःख हो गया । उनके द्वारा बात भगवान के पास पहुँची ।

भैयादूज के दिन हम सब गोंडल गये । तीज के दिन सुबह से भगवान ने अखंड मानस पाठ चालू कराया था । जोधपुर में प्रथम बार रामनवमी के प्रसंग में मुझे समूह में पाठ करवाने बिठाया था उसी प्रकार गोंडल में पाठ चालू करवाया । जब तक भगवान पाठ में विराजते थे तब तक तो कई लोग बैठे, बाद में धीरे-धीरे सब चले गये । हम दो ही बहनें सुबह आठ बजे से शाम को पाँच बजे तक अर्धालि से पाठ कराते रहे । भगवान के दर्शन को जाने की खूब इच्छा थी । इस कारण यह एक बंधन लगता था ।

शाम को करीब पाँच बजे भगवान मंडप में पधारे, फिर तो मंडप भर गया । मुझे कहा, "रमा, अब तुम उठो, जाव आराम करो ।" मुझे दुःख लगा कि भगवान सुबह से पाठ निमित्त मैं दूर रही और अभी आप पधारे तब मुझे जाने के लिए कहते हो ? मैंने चिट्ठी लिखकर दी, "भगवान, आराम है राम के पायन में और आप मुझे आराम के लिए भेजते हो ?" तो कहा, "देखो इस लड़की का दिमाग ? सुबह से बैठी

है तो थक गई होगी यह सोचकर उसको आराम के लिए भेज रहा हूँ तो उसको बुरा लग गया । अरे भाई, रात को फिर तुम्हें पाठ सम्हालना पड़ेगा ।" मैं अपने निवास-स्थान पर गई, भगवान भी दस मिनट में सब को बिठाकर अपने कमरे में चले गये । लेटते ही मुझे नींद आ गई । रात को करीब ग्यारह बजे होंगे । माइक में भगवान की आवाज सुनते ही उठकर मंडप में गई । भगवान ने कहा, "आ जाव, चलो अब सम्हालो और मैं भी बैठता हूँ, अर्धालि तुम बोलो, अर्धालि मैं बोलूँगा" । भगवान के साथ सब लोगों का बैठना भी सहज था, सुबह चार बजे तक बराबर साथ दिया । करीब सात बजे पूर्णाहूति हुई ।

नौ बजे समूह पूजन था, खूब भीड़ थी । बारह बजे उत्सव पूरा होने पर कमरे में पधारे । अन्दर जाने के लिए सिफारिश चाहिए मुझे कौन जाने दे ? और मेरा तो सीधा सम्पर्क भगवान से ही था । किसी की सिफारिश का सहारा लेने का स्वभाव नहीं है । "एक ही साधे सब सधे····" ऐसे बड़े दिन पूजन के बिना तो पानी भी नहीं लेती थी । भीड़ देखकर शंका हुई कि पूजन करने को मिलेगा या नहीं । दोपहर में ढाई बजे भगवान ने बुलाई । आगे का दरवाजा बन्द देखकर मुझे लगा अन्दर कोई नहीं होगा परन्तु पीछे के दरवाजे से आना-जाना चालू होगा जिससे कमरा भरा हुआ था । पूजा की सामग्री के साथ एक ओर खड़ी थी । नाराजगी बताते हुए अन्दर बैठे हुए लोगों से कह रहे थे, "अब तो जाव, अब तो छोड़ो, मैं तो पूजा वालों से परेशान हो गया हूँ ।" यह सुनकर मैंने सोचा, "मुझे पूजा करनी ही नहीं है किसी से चरणामृत ले लूंगी ।" परन्तु :

जोई जोई भाव दिखावहि, आपु न होई न सोई ।

ऐसे बड़े दिन पर प्रसन्नता के बदले नाराजगी सहन नहीं होती उस विचार से मैं सबके साथ बाहर जाने लगी तो कहा, "रमा, तुम कहाँ जाती हो ? थोड़ी देर ठहरो" धीरे-धीरे सबके जाने के बाद दरवाजा बंद करने को कहा और बोले, "चलो अब शान्ति से पूजा कर लो ।" बहुत थके हुए लग रहे थे इस कारण जल की बोतल और थाली ही थैली में से निकाल कर सिर्फ चरणामृत लेने लगी, बैठी भी नहीं तो कहा, "अरे डरो नहीं, शान्ति से पूजा कर लो ।" थैली में से पूजा का

सामान निकाला परन्तु हाथ काँप रहे थे । भगवान एक के बाद एक डिब्बियाँ खोलकर देते जा रहे थे और बताते थे, "अब कुमकुम लो, अक्षत लो" । आरतो के लिए दोपक भी लगा दिया । पिताजी ने दिये हुए वस्त्र और मेवा आदि भेंट में रखने पर बोले, "अरे वाह ! यह सब वापिस ले जाना चाहती थी ? मैं छोड़ने वाला थोड़ा हूँ ?" फिर बैठने को कहा और पूछा, "राजकोट में तुम्हारे साथ क्या हुआ था ?" मुझे तो कुछ मालूम न था इसलिए मैंने कहा, "कुछ नहीं ।" उन व्यक्ति के नाम देते हुए कहा, "उन दोनों में मन दुःख हुआ और वह भी तुम्हारे कारण ।" मैंने कहा, "भगवान, मैं किसी से कुछ बोली नहीं हूँ मुझे सब्जी अमनियाँ करने दी थी वह काम कर रही थी ।" भगवान ने प्यार से सिर पर हाथ फिराते हुए कहा, "ऐसे डरना नहीं जो सेवा मिले बराबर करना" । थोड़ी देर में इजाजत मिलने पर बाहर आई । चतुर्थी उत्सव बाद मैं जयपुर गई ।

[६६]

कोमलचित कृपाल रघुराई

भगवान के पास थोड़े दिनों बाद मैं एक भाई के साथ उज्जैन गई । उनको जरूरी काम होने से पिताजी ने मेरे साथ भेजे थे । दो ही दिन के लिए गई थी इसलिए रसोई का सामान नहीं ले गई थी । वहाँ पहुँचते ही भगवान ने बुलाया, पूजन के बाद पूछा, "रमा, तुम भोजन का क्या करोगी ?" मैंने बताया, "भगवान सिर्फ दो दिन के लिए आई हूँ इसलिए रसोई का सामान साथ नहीं लाई । बाजार से केले आदि मँगवा लूँगी तो कहा, "अच्छा" । उसके बाद भोजन के लिए पधारे तब मैं अपने कमरे में चली गई । केले, टमाटर, मूली, दही, खजूर मंगवाकर भोजन कर लिया । करीब ग्यारह बजे भगवान के पास जाने पर वातावरण उग्र देखा । मेरे पर गुस्सा करके बोले, "चली जाव यहाँ से, मुझे परेशान करती हो ?" मुझे तो खबर न थी कि क्या हुआ ? जिससे क्या बोलूँ ?

और दुःख लगना भी सहज था । सोचा, मेरा क्या अपराध हुआ ? मैं कमरे में चली गई ।

थोड़ी देर बाद भगवान महाकालेश्वर के दर्शन को पधार रहे थे तब मैं साथ गई तो रास्ते में तिरस्कार करते हुए देखे । दुःख बढ़ गया कि गलती का कारण मालूम होवे तो क्षमा भी मांग लूँ । ऐसा व्यवहार सहन न होने से रो पड़ी । मन्दिर में भगवान के पास सब लोगों के साथ बैठी तो फिर गुस्से से कहा, "रोती हो जैसे मैंने तुम्हारे बाप को मार डाला है ।" ऐसे शब्द सहन न होने से आँखें भर आईं । उठकर एक दीवार के पीछे चली गई । मैंने लिखकर भेजा, "भगवान इतना तिरस्कार क्यों करते हो समझ नहीं पाती, यदि आपकी इच्छा न हो तो आगे से नहीं आऊँगी । प्रत्युत्तर में लिखकर दिया,

सदा मेरे मे विश्वास रखो
मैं कभी तुम्हारा तिरस्कार न करूंगा
मैं जल्दी आकर जो कहूंगा वह दुख सारे मिटने
मे सहायक होंगे
रमा खूब सोचो जीवन तुम्हारा मेरे
साथ है रणछोड़

"सदा मेरे में विश्वास रखो मैं कभी तुम्हारा तिरस्कार न करूँगा मैं जल्दी आकर जो कहूँगा वह दुःख सारे मिटने में सहायक होंगे रमा खूब सोचो जीवन तुम्हारा मेरे साथ है ।

रणछोड़दास

भगवान ने मेरे पास आकर कहा, "मेरे कहने का गलत अर्थ न करो मैं तुम्हें नहीं कहता हूँ । तुम ऐसा क्यों सोचती हो ? बिना कारण मैं तुम्हारा तिरस्कार क्यों करूँगा ? इतना तो सोचो, मैंने तुम्हें जो कंठी दी है वह पूर्वजन्म का प्रतीक है । मुझमें विश्वास रखो, मैं कभी तुम्हारे

साथ ऐसा नहीं करूँगा ।" तब तो मैं रो रही थी इसलिए कुछ बोल न सकी पर चिट्ठी लिखकर दी कि, "भगवान, आप किसी भी कारण से मुझे डाँटो यह ठीक है, आपकी नाराजगी सहन न होने से रोना भी आ ही जाता है परन्तु इतना कड़क क्यों बोलते हो कि बाप को मार डाला है । जवाब में लिखकर दिया,

"मैं अत्यन्त दुःखी हूँ, मेरे कहने का गलत अर्थ न लगाओ, मैंने अपनी भूल समझकर मुझे मेरे बाप को मारने की स्मृति आ गई । मेरे विरह में मेरे बाप का देहावसान हुआ था तुम गलत न समझो रमा मैं तुम्हारा हूँ, रहूँगा और स्यायत् था भी ।"

थोड़े समय बाद समझ में आया कि यह भगवान की पद्धति थी, कहते थे किसी को, सुनाते थे किसी को । भगवानने मेरे लिए एक भगौनी और प्रायमस अपने सामान में से मांगे थे इसी कारण वातावरण इतना उग्र बना था और फिर उनकी शांति के लिए यह सारी लीला थी । मैंने भगवान से कहा, "मेरे लिये आपने क्यों मांगा ? तो इतनी झंझट हुई ना ? मैंने तो नहीं कहा था ।" तो बोले, "देखो हरेक सामान पर 'पू० गुरुदेव' लिखा रहता है तो मेरे सामान पर मेरा इतना भी हक नहीं है ।" मैंने कहा, "भगवान, मुझे तो कितने उपवास करने की आदत है तो दो दिन कुछ भी खाकर मैं नहीं चला सकती हूँ ? मेरे कारण आपको कितना कष्ट होता है ?" तब कहा, "ठीक है रमा, तुम तो चला सकती हो परन्तु मेरा भी तो कोई फर्ज है या नहीं ? और एक पिता के दस बालकों में से सब भोजन पा रहे हो और एक कैसे भी चला ले तो क्या सहन होता है ? खैर ! तुम्हारे लिए शाम तक मैं व्यवस्था कर दूँगा ।" ऐसे व्यवहार से भगवान को बहुत दुःख हुआ था, आखिर शाम को फूलचन्दजी के घर से सिगड़ी, कोयले और भगौनी आदि मंगवा कर कहा, "खिचड़ी बनाकर खा लेना ।"

इस घटना से एक बार भगवान के पास घटी हुई घटना याद आई । कोई भाई ने भगवान को मूल्यवान शाल भेंट की होगी । थोड़े समय के बाद वे दर्शन को आये तब उस शाल के लिये पूछते हुए कहा, "मेरी शाल कहाँ है ? वह मैंने आपके लिए दी थी" तब उत्तर दिया था, "अरे वाह, मैं तुम्हारा गधा हूं क्या ? जो भार ढोता फिरूं ? एक

बार एक चीज तुमने मुझे दे दी वह मेरी हो गई ना ? फिर तो उस पर मेरा अधिकार है, जो चाहे सो करूँ, यह तो ऐसी बात हुई कि एक जगह एक सेठजी के बगीचे में एक बाबाजी ठहरे थे। सेठजी हमेशा विवेक बताते हुए कहते रहते थे, बाबाजी यह सब आपका ही है। बाबाजी कुछ बोलते नहीं थे। समय बीतने पर एक दिन सुबह सेठजी के आने से पहले उन्होंने बगीचे के माली से कहा, बगीचे में जितने पेड़, पौधे हैं सब काट डालो। माली चौंक गया। बाबाजी ने कहा, सोचते क्या हो ? बगीचा मेरा है मैं कहता हूँ ना ? काट दो। माली को बात माननी पड़ी, काम शुरू किया इतने में सेठजी आ गये और माली को डाँटने लगे। बाबाजी की आज्ञा है यह सुनते ही सेठजी अकुलाकर बाबाजी के पास पहुँचे और पूछा, आपने ऐसी आज्ञा क्यों दी ? उन्होंने कहा, बगीचा मेरा है जो चाहे सो करूँ। तो भाई यह तो ऐसी बात हुई कि सब चीजें आपकी हैं पर इसका उपयोग करने का आपका अधिकार नहीं है यही हुआ ना ?"

इन दिनों में श्री लालबहादुर शास्त्रीजी का निधन हुआ था, उसके लिये भी भगवान ने पहले से इशारा किया था। जब श्री जवाहरलाल नेहरू का निधन हुआ था उस वक्त बोले थे, "पहले पीछे लाल था अब आगे लाल आयगा" और थोड़े ही समय में श्री लाल बहादुर शास्त्रीजी प्रधानमन्त्री बने थे।

दो दिन के बाद मैं जयपुर चली गई। पहुँच का पत्र लिखने पर थोड़े दिनों में उसका प्रत्युत्तर मिला :–

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिया रमा सादर आसीस,

तुमारा पत्र मिला संतोष, स्वास्थ जैसा तुमने देखा था वैसा ही है तुम चिन्ता न करना।

सबको आसीस

रणछोड़दास का आसीस

थोड़े दिनों बाद फिर से पत्र आया :–

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिय मेरी रमा आसीस,

रमा स्वास्थ साधारण है उल्टी बराबर होती है और श्वास है। मेरे साथ में पार्वती है और प्रेमनारायण। मैं बिस्तर पर पड़ा रहता हूँ और सब ठीक है।

रमा मेरी चिन्ता न करना। लोन का क्या हुआ मुझे लिखना सबको आसीस कहना रमा तुम १६ को आओगी बम्बई ?

दमु का मोटर एक्सीडेन्ट हुआ है वह बम्बई है

सबको आसीस

रणछोड़दास का आसीस

[६७]

अति कृपाल रघुनायक

भगवान का ता० २८ का लिखा हुआ पत्र मिलने के बाद तीन दिन में दूसरा पत्र आया :–

श्री रामचन्द्राय नमः

सांगोद
ता० २-१-६६

प्रिय रमा सादर आसीस,

मेरा स्वास्थ साधारण है चिन्ता करना नहीं यहाँ दो दिन ठहरना है रमा क्या लिखूं ? सबको आसीस कहना मैं १४ को बम्बई जा रहा हूँ और १६-१७-१८ वहाँ रुकूंगा।

तुम मेरी चिन्ता न करना भजन वही जीवन का सार है रमा।

रणछोड़दास का आसीस

मैं ग्यारह जनवरी को बम्बई पहुँच गई कारण १२ जनवरी को मेरा दीक्षा दिन होने से दर्शन, पूजन की इच्छा थी । भगवान बम्बई में खार में बिराजते थे लेकिन जाहिर नहीं किया था । १२ ता. रात को जाहिर में दर्शन मिलने पर पूजन किया, फिर तो भगवान सायन में ही थे और मैं भी सायन में मनहरभाई के घर थी । दूसरे दिन सुबह मुझे बुखार होने से दर्शन को न जा सकी । मनहरभाई दर्शन को गये तब भगवान ने मेरे लिये पूछा, मनहरभाई ने बुखार की खबर दी । उस वक्त भगवान के आदेश से मैं किसी प्रकार की दवाई नहीं लेती थी कारण एक बार मुझे कहा था, "कभी कोई अंग्रेजी दवाई लेना नहीं, भविष्य में जरूरत पड़े तो देशी दवाई का उपयोग करना ।" मनहरभाई ने मेरा दवाई न लेने का कारण भी भगवान को बताया तो उन्हीं को कहा कि, "जाव आठ ऐस्प्रो ले आव" और दूसरे गुरुभाई को गाड़ी लेकर मुझे लेने के लिये भेजा । बुखार के कारण अधिक सर्दी लगने से स्नान नहीं किया था । शॉल ओढ़कर दर्शन को गई । मुझे बगल के कमरे में बैठने को कहा । थोड़ी देर में ऐस्प्रो आ जाने पर कमरे में आकर कहा, "देखो, अब तो मैं भी दवाई लेता हूँ, फिर तुम्हें क्या हरकत है ? ऐस्प्रो की एक गोली अपनी जबान पर रखकर कहा, "लो ये तो प्रसाद है, अब ले लो", दूसरी सात गोली देते हुए कहा, "हर दो घंटे बाद एक-एक गोली ले लेना ।" इससे पहले कभी दवाई नहीं ली थी । आज्ञानुसार इतनी गोलियाँ लेने के बाद बुखार तो गया पर बहुत अधिक कमजोरी बढ़ गई । भगवान तीन-चार दिन बाद बम्बई से दहाणु पधारे । मुझे जयपुर जाना था परंतु तबियत के कारण मनहरभाई-भाभी ने जाने नहीं दिया । भगवान ने जयपुर पत्र लिखा परंतु मैं तो बम्बई में ही थी ।

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिय रमा सादर आसीस

तू सकुशल पहुँच गई होगी ।

स्वास्थ ठीक नहीं है । मैं आज ही बैंगलोर जा रहा हूँ । मेरी चिन्ता करना नहीं । भजन करना, ता. ३१-१ को उदयपुर पहुँचूँगा । सबको आसीस ।

रणछोड़दास का आसीस

एक सप्ताह बाद जयपुर जानेवाली थी, इतने में शाम को चार बजे मनहरभाई के यहाँ एक गुरुभाई का फोन आया, आज शाम को ही बापू पधारनेवाले हैं और आज ही रात को आठ बजे फंटियर मेल से उदयपुर जानेवाले हैं। मनहरभाई ने यह बात मुझे बताते हुए कहा, "रमाबहन आप भी भगवान के साथ ही चले जाना।" मैं तैयार हो गई। टिकिट के लिये तलाश करने पर मालूम हुआ कि फंटियर मेल में फर्स्ट क्लास और सेकन्ड क्लास ही होता है। उस समय इतने पैसे खर्च करने की सुविधा मेरे पास नहीं थी। आगे मालूम हुआ कि उसमें एक डिब्बा अटेन्डेन्ट्स का होता है और फर्स्ट क्लास की एक टिकिट के साथ एक टिकिट अटेन्डेन्ट्स की मिलती है। भगवान की कुल दो टिकिट फर्स्ट क्लास की थी और उसमें से एक नौकर साथ में था और दूसरी टिकिट पर मेरे लिये अटेन्डेन्ट्स की दूसरी टिकिट मिल गई। शाम को भगवान के दर्शन के लिये नेपयन्सी रोड गये। मुझे देखकर आश्चर्य से पूछा, "अरे तुम जयपुर नहीं गई ? मैंने तो तुम्हें जयपुर पत्र लिखा है।" मेरे बदले मनहरभाई ने जवाब दिया, "भगवान, तबियत के कारण हमने रोक लिया था, आज आपके साथ ही जाने वाली हैं।" मेरे साथ शक्तिबहन भी आने वाली थी, इसलिये भगवान ने उनसे कहा, "लाव शक्ति तुम्हारी टिकिट बताव" उनकी टिकिट सेकन्ड क्लास की थी, बाद में मेरी टिकिट भी देखी, कुछ बोले नहीं।

बम्बई सेन्ट्रल स्टेशन पहुँचने पर काफी भीड़ थी। भगवान की बोगी इन्जिन के पास और अटेन्डेन्ट्स की सबसे आखरी में थी। भगवान ने दो-तीन भाइयों से कहा, "देखो रमा को अच्छी तरह बिठा देना।" भगवान की कृपा से खिड़की के पास जगह मिल गई थी। मेरे पास भगवान का नौकर प्रेम नारायण बैठा। यह बोगी कभी देखी न थी और अटेन्डेन्ट्स याने क्या ? यह भी मालूम न था। उस बोगी में खूब भीड़ थी और शराब, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू की खूब बास आती थी, कारण सब आदमी लोग और वह भी सब अटेन्डेन्ट्स।

सुबह छः बजे रतलाम पहुँचे। दरवाजा खुल सके ऐसा न था, बीच में सब सामान भरा हुआ था। इसलिये हम खिड़की में से सामान लेकर नीचे उतरे। बहुत थोड़ी देर ट्रेन रुकने के कारण भगवान ने चिंता व्यक्त करते हुए दो व्यक्तियों को देखने भेजा, हम सामान लेकर भगवान के

पास जा ही रहे थे । वहाँ पहुँचने पर एकदम गुस्से से बोले, "क्यों सोये रहना था ना ? इतनी देर क्यों लगी ?" फिर कहा, "चलो, अब शक्ति किस डिब्बे में है बताओ, उसे नहीं मिलने जाऊँगा तो वह नाराज हो जायगी ।" थोड़े आगे जाकर बंडी की जेब में से सौ रुपये निकालकर मुझे देते हुए कहा, "देखो, तुम भी मेरे साथ फर्स्ट क्लास में बैठना । टी.टी. टिकिट देखने आयेगा तब वह अपनी टिकिट बनवायगी । उसके साथ तुम भी बनवा लेना । तुम्हें मालूम है ? रात भर मुझे नींद नहीं आई, मैं तुम्हें देख रहा था, मुझे मालूम है तुम सोई नहीं हो ।" इतना कहकर वापिस लौटे । शक्ति बहन को मिलने जाने का एक बहाना था ।

वहाँ से सब साथ में छोटी लाइन में उदयपुर की गाडी के लिये गये । वहाँ पर भगवान एक बेंच पर बैठ गये । हम तीनों बहनों में से एक भगवान के पास बैठे और हम दो भगवान की आज्ञा से गाड़ी आई या नहीं यह देखने कुली के साथ गये । प्लेटफार्म पर टी.टी. ने टिकिट देखने के लिये माँगी । साथ वाले बहन ने दो टिकिट फर्स्ट की बताते हुए कहा, "एक मेरी है, दूसरे पेसेंजर वहाँ बैठे हैं ।" मेरी टिकिट देखकर टी.टी. ने कहा, "तुम सरवेन्ट हो ? यह सुनकर मुझे चोट लगी, मैंने कहा, "नहीं", कारण अटेन्डेन्ट्स याने सरवेन्ट मालूम न था, सरवेन्ट याने मालूम था । यह सुनकर उसने गुस्से से कहा, "तो तुम फ्रंटीयर से कैसे आये ? रेलवे के साथ धोखा करते हो ? यह तुम्हारी टिकिट तो सरवेन्ट की है ।" मैं घबरा गई । उसी क्षण भगवान जल्दी से वहाँ आ पहुँचे और कड़क स्वर में बोले, "तुम कौन हो पूछनेवाले ?" मुझे कहा, "चलो रमा ।" भगवान के साथ में जो बहन थी उन्होंने टी.टी. को शांति से कहा, "देखो, यह अंग्रेजी नहीं जानती है । सरवेन्ट का खास कोई बिल्ला होता है ? यह हमारे गुरुदेव हैं, हम सब उनके सेवक हैं, सेवक याने सरवेन्ट । क्या राजा महाराजा के सरवेन्ट ऐसे नहीं होते ?" इतना कहकर निकल गये ।

दूसरी ट्रेन में बैठने के लिये जाने पर भगवान ने देखा, इस प्रसंग से मुझे दुःख लगा था । मुझे एक ओर बुलाकर कहा, "देखो टी. टी. भी पहचान गया हो, नौकर ऐसे थोड़े होते हैं ? तुम नौकर नहीं हो समझी ।" भगवान की शरणागत वत्सलता देखकर मेरी आँखें भर आईं ।

सेवक पर ममता अति प्रीति……

अब तो भगवान के साथ ही थी । उदयपुर पहुँचे, वहाँ एक गुरुबहन की बेटी की शादी थी । एक दिन बहुत फल और मिठाई के पैकेट आये थे वह देखकर भगवान ने कहा, "यह सबका निपटारा तो करो ।" इतना कहकर सबको फल अमनियाँ करने बिठाकर, बड़ा भगौना मँगवाया, उसमें भगवान ने स्वयं बरफी, पेड़े का चूरा किया और दूध, शक्कर, इलायची डालकर सबको दोना भर-भर के प्रसाद दिया । थोड़े दिनों बाद उदयपुर से भगवान के साथ द्वारिका गये । वहाँ से वापिस लौटते डाकोर होकर आदेशानुसार जयपुर आई । थोड़े दिनों में पत्र आया :–

श्री रामचन्द्राय नमः

प्रिय रमा सादर आसीस

तुम सकुशल पहुँच गई होगी मेरा स्वास्थ साधारण है ।

मैं १८ तक हैदराबाद ठहरूँगा तुमको मैंने खूब कष्ट दिया है अस्तु तुम खूब भजन करना ऐसा मेरा आग्रह है सबको आसीस

पंद्रह दिन बाद दूसरा पत्र आया :–

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिय मेरी रमा सादर आसीस

मेरा स्वास्थ ठीक-ठीक है मैं एकांत में हूँ आराम करता हूँ गुना से ३० मील पर हूँ ।

आज होली है········

प्रेम की कसौटी है रमा शीघ्र मिलूंगा ।

सबको आसीस

रणछोड़दास का आसीस

इन दिनों में भगवान एकांत में थे इस कारण पते के बिना पत्र नहीं लिख पाती थी । हमेशा पत्र की राह देखती रहती थी । १९ मार्च को फिर पत्र आया :–

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिय मेरी रमु सादर आसीस

मेरा स्वास्थ साधारण है। मैं नौमी को अवश्य कुन्ड जाऊँगा। तुम्हें मेरे साथ रहने का समय आ गया है। मेरे पत्र देने में देरी हुई पर क्या करूँ स्वास्थ ठीक नहीं रहता।

सबको आसीस कहना

रणछोड़दास का आसीस

ता० २१ के दिन दूसरा पत्र आया :–

· श्योपुर

प्रिय रमा सादर आसीस

मेरे स्वास्थ का ठिकाना नहीं, कभी ठीक लगता है कभी फिर वैसा ही। मैं तुम्हारी स्मृति से खूब विचार में पड़ जाता हूँ तुम बराबर भजन करोगी और व्यर्थ की झंझट से मन को बचाओगी ऐसी आज्ञा करता हूँ।

सबको आसीस कहना

रणछोड़दास का आसीस

[६८]

हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा

भगवान के पत्र द्वारा रामनौमी का प्रोग्राम मालूम होने पर चित्रकूट गई। वहाँ का उत्सव पूरा होने के बाद जयपुर लौट आई। बीच में भगवान पुष्कर पधारे थे लेकिन भगवान के पत्र से मालूम हुआ कि वहाँ का वातावरण कुछ ठीक नहीं होने के कारण मुझे नहीं बुलाई थी। घर पर रहकर अपना नित्य नियम करती रही। भगवान के आदेशानुसार हर गुरुवार को गलताजी जाती थी और पिताजी से संतों और भक्तों के अनुभव या निज जीवन के भगवद् प्रसंगों का सत्संग करती थी। कभी

पिताजी नाभाजी रचित भक्तमाल में से कोई प्रसंग कहते थे । मैंने वह पुस्तक पढ़ी नहीं है परन्तु जहाँ तक याद है परम पूज्य श्री पतितपावनजी भगवान जयपुर कब और क्यों पधारे उसका वर्णन भक्तमाल के आधार पर और भगवान ने स्वमुख से भी यही कहा है । १९६० में भगवान जयपुर पधारे तब जो लिखकर दिया था वह मेरे पास नहीं है लेकिन उसके अनुसार श्री पतितपावनजी भगवान पाँच सौ साल पहले जयपुर में बिराजते थे यह प्रमाण मिलता है ।

श्री पतितपावनजी भगवान पहले कश्मीर में विराजते थे । पाँच सौ साल पहले का इतिहास कहता है जयपुर के राजा पृथ्वीराज थे जो गुरुभक्त थे । नाथ संप्रदाय के साधु नाथजी राजाजी के गुरु पद पर विराजमान थे । नित्य सुबह राजा अपने मंत्री के साथ गलताजी में नाथजी के दर्शन, पूजन हेतु जाते थे उसके बाद ही राजकार्य सम्हालते थे । नाथजी रिद्धि-सिद्धि की शक्तियों से भरपूर थे लेकिन काम, क्रोध और लोभ तीनों में से जीवात्मा का प्रबल शत्रु लोभ माना जाता है कारण,

काम, बात, कफ लोभ अपारा.......

गोस्वामीजी ने लोभ को अपार कहा है जिसका अन्त नहीं है । नाथजी ने सोचा, आज मैं राजगुरु तो हूँ परन्तु रानी मुझे गुरु नहीं मानती है तब तक अधूरा । इसलिये रानी को कोई चमत्कार दिखाकर अपने प्रति मोड़ने के लिये प्रपंच किया ।

रानी श्रीकृष्ण की परम भक्त थी । बाल स्वरूप की सेवा-पूजा में खूब प्रेम-भाव से निरंतर लगी रहती थी । कई बार राजा उन्हें अपने गुरुदेव के दर्शन हेतु आने के लिये कहते थे परन्तु रानी अपनी निष्ठा में स्थिर थी । अन्त में नाथजी ने अपनी शक्ति से रानी के इष्ट बाल स्वरूप भगवान को महल में से अदृश्य कर दिया और वह स्वरूप कुए में पधरा दिया । रानी ने अपने भावानुसार रात्रि में भगवान को शयन करा दिया था । सुबह उठकर भगवान के दर्शन न मिलने पर दुःखी हो गई । राजमहल में तलाश होने लगी । कड़ा पहरा होने पर रानीवास में कोई जा नहीं सकता था । सबको बहुत ही आश्चर्य लगा, आखिर तलाश करके हार गये । सुबह नित्य नियमानुसार राजाजी ने गुरुदेव के पास जाकर यह घटना बताई । नाथजी अनजान बनकर सब पूछने लगे ।

श्री पतितपावनजी भगवान

श्री कृष्णदासजी (पयाहारी बाबाजी) जयपुर गलताजी



नित्यं शुद्धं निराभासं, निराकारं निरंजनम्
नित्यं बोधं चिदानंद, गुरु ब्रह्म नमाम्यहम्
जय जयपुरवासी, प्रभु जय जयपुरवासी
सत्य अनंत अनादि, अखंड अविनाशी····जय जयपुरवासी

एक भूल को छिपाने के लिये अनेक भूल होती है, एक असत्य के पीछे अनेक असत्य का आचरण करना पड़ता है उसी प्रकार उनके जीवन में घटना घटी । उन्होंने राजाजी से कहा, "रानीजी किस प्रकार से पूजा-पाठ आदि करती है ? यदि एक बार मेरे पास आकर मुझे सब बतावें तो कोई उपाय हो सकता है ।" राजाजी की गुरुभक्ति प्रबल होने से उन्हें नाथजी के शब्दों पर पूर्ण विश्वास था । उन्होंने महल में जाकर एक बार गुरुजी के पास आने के लिये रानीजी को बहुत समझाया परन्तु रानी अपनी निष्ठा से डिगी नहीं । उन्होंने कहा, "मेरी जो भी भूल हुई होगी उससे यदि नाराज होकर लाला चला गया है तो समय पूरा होने पर वह अपने आप आ जायेगा, भले प्राण निकल जाय पर दर्शन बिना अन्न, जल नहीं लूंगी", यह है शरणागत भक्त के लक्षण, अपने इष्ट के प्रति निष्ठा की परिपक्वता । समर्थ की शरणागति के बाद भक्त कभी भी साधारण शक्तियों के आगे-पीछे नहीं घूमता है । रानीजी एक ही स्थान पर बैठकर प्रेमभाव से अपने लाला को मनाती रही, इस तरह से तीन दिन बीतने पर श्री पतितपावनजी भगवान भगवद् आदेश से कश्मीर से जयपुर पधारे ।

जयपुर गलताजी में जिस पहाड़ के शिखर पर नाथजी रहते थे उसी पहाड़ की आधी ऊँचाई पर अपनी धूणी जलाकर पतितपावनजी भगवान बिराजमान हुए । नाथजी अपनी शक्ति द्वारा उन्हें पहचान गये जिससे हठपूर्वक उन्हें वहाँ से हटाने के लिये पीछे पड़ गये । भगवानने नाथजी को बहुत समझाया पर वे न माने तब धूणी का अग्नि अपने वस्त्र में लेकर पहाड़ से कहा, "चलो भाई, अपने उधर बैठते हैं ।" इतने शब्द तो काफी थे, तुरन्त पहाड़ अलग हो गया । आज भी वही दृश्य दिखाई देता है । देखने से प्रतीत होता है कि एक पहाड़ चिरकर दो हिस्से हो गये हैं ।

श्री पतितपावनजी भगवान ने अपनी योगशक्ति से लाला की मूर्ति वापिस महल में प्रतिष्ठित कर दी । रानीजी यह सब घटना से अनजान थी । वे तो सुबह लाला को पाकर अतिशय आनंदित हो गई क्योंकि वह तो यही सोच रही थी कि मेरा लाला मुझसे रुठकर चला गया था और अब राजी होकर स्वेच्छा से लौट आया । इसी प्रेमभाव में डूबी हुई थी । इस ओर गलताजी का नक्शा पलटने पर नाथजी को चिन्ता हुई कि

राजा को मालूम होने पर परिणाम क्या होगा ? दूसरी ओर अपनी शक्ति बताने के लिये मानो पतितपावनजी भगवान के सामने स्पर्धा में उतरे । उसी दिन शाम को श्रीनाथजी शेर का रूप धारण करके भगवान के पास गये लेकिन उनसे यह कपट भी छिपा न था । उन्होंने अपना वस्त्र बिछाते हुए आदर के साथ बैठने को कहा । शेर की भाषा में नाथजी ने कहा, "भूख लगी है", भगवान ने स्वहस्त से अपनी एक जांघ काटकर देते हुए पूछा, "अभी भी भूख है ?" उनके हाँ कहने पर दूसरी जांघ काटकर दे दी । फिर पूछने पर हाँ कही तब भगवान ने कहा, "ठीक है अब तुम शेर नहीं गधे के लायक हो ।" इन शब्दों से नाथजी की सारी शक्ति जलकर खाक हो गई और गधे की देह प्राप्त हुई जिससे साधारण प्राणी की तरह घूमने लगे । राजा सुबह दर्शन को आये । गलताजी का नक्शा पल्टा हुआ देखकर अनुयायियों से पूछा, "लेकिन वे तो सारी बात जानते ही न थे जिससे इतना ही कहा, कोई संत आये हैं उनके पास कल शाम को गुरुदेव गये हैं और वहाँ से अभी तक लौटे नहीं हैं, उनके साथ कुछ खटपट हुई है । राजा अपने मंत्री के साथ भगवान के पास गये और प्रेम-भाव से प्रणाम करके पूरी घटना जानने के पश्चात् अपने गुरुदेव की भूल वह मेरी भूल है कहकर क्षमायाचना की और अपने गुरुदेव के दर्शन कराने के लिये बहुत प्रार्थना के साथ विनती की । भगवान ने कहा, "देखो वहाँ बाहर गधे घूम रहे हैं उसमें तुम्हारे गुरुजी भी होंगे" यह सुनकर राजा काँप उठे और रोने लगे, "मैं किस तरह से पहचानूंगा ?" नाथ सम्प्रदाय में कान में कुण्डल पहनने की पद्धति होने से भगवान ने कहा, "जिस गधे के कान फटे हुए होंगे वही तुम्हारे गुरुजी होंगे ।" इसी निशानी से पहचान कर गुरुजी को गधे की देह में राजा भगवान के पास ले आये और खूब आर्तभाव से प्रार्थना करते हुए कहा, "इस स्वरूप में मैं किस तरह से गुरु भक्ति कर सकता हूँ ? कृपा करके इन्हें मानव देह प्रदान कीजिये ।" राजा की अपने गुरुदेव के प्रति परम प्रेम भक्ति देखकर भगवान ने करुणा करके उन्हें मानव देह प्रदान करते हुए कहा, "अब इनमें कोई शक्ति न रहेगी ।" थोड़े समय के लिए भगवान वहाँ पर विराजकर कश्मीर लौट गये । आज भी कुलू की गुफा में है – ऐसा कहा जाता है ।

गलताजी में इस प्रकार का चित्र आज भी है । जब भगवान कश्मीर पधार रहे थे तब राजाजी ने बहुत विनती की थी कि हमें आपकी सेवा का कुछ अवसर दीजिये । तब भगवान ने कहा, "मुझे तो कुछ नहीं चाहिये" फिर भी राजाजी ने अपने भावानुसार कहा, "मेरी पीढ़ियों तक यह धूणी चालू रहेगी ।" ऐसा कहा जाता है कि उस समय में रोज सवा मन लकड़ियाँ धूणी में डाली जाती थीं परन्तु कालांतर में आज वहाँ के व्यवस्थापक द्वारा एक कंडा चेताकर रोज भस्म के अन्दर रखा जाता है इसलिए अखण्ड अग्नि चालू है जिससे आज भी उसे "अखण्ड धूणी" कहा जाता है । भाविकजन आज भी वह भस्म ले जाते हैं कारण भगवान ने स्वमुख से कहा है, "यह भवरोग की औषधि है ।"

गलताजी में गुरु परम्परा का चित्र भी रखा गया है । सीतारामजी से लेकर श्री रामानन्द सम्प्रदाय की गुरु परम्परा में जगद्गुरु श्री रामानंदाचार्यजी के शिष्य श्री अनंतानंदाचार्यजी को बताये गये हैं । उनके शिष्य श्री कृष्णदासजी महाराज को प्रकाशित किये हैं । परन्तु वे नित्य दूध ही पाते थे जिससे उन्हें "पयाहारी बाबाजी" भी कहते हैं और मेरे भगवान सदैव "पतितपावन भगवान" या "मेरे श्री चरण" संबोधन करते रहे हैं कारण मर्यादा के लिए सद्गुरुदेव का नाम नहीं लिया जाता है ।

श्री पतितपावनजी भगवान के तीन शिष्य थे, श्री अग्रदासजी, किलजी महाराज और हमारे भगवान उस चित्र में विराजमान हैं । श्री अग्रदासजो और कीलजी महाराज ने रेवासा और गलताजी की गादी स्वीकार की और भगवान परिभ्रमण में निकल गये । इससे विशेष जानकारी मेरे पास नहीं है । वैसे तो गलताजी का इतिहास इससे विशेष भी है । वहाँ पर गंगाजी की धारा नित्य प्रवाहित है जिससे बड़ा कुंड भरा हुआ है, अनेक भाविकजन जहाँ स्नान-पान करते हैं । इसके अलावा गालव ऋषि का भी इतिहास है और उनके नाम से स्थान का नाम गलताजी रखा गया है । उन्होंने एक समय गंगाजी से आहूति देकर यज्ञ किया था, ऐसा सुना है ।

श्री गुरु पूर्णिमा गलताजी में मनाई गई । तब भगवान श्री पतितपावनजी भगवान की आरती बना रहे थे, परंतु यह अधूरी है ।

जय जयपुरवासी, प्रभु जय जयपुरवासी,
सत्य अनंत अनादि, अखंड अविनासी····जय जयपुरवासी

भगवान ने श्री पतितपावनजी भगवान के लिये कहा था कि राजुला गाँव के नागर ब्राह्मण का शरीर था । आज जयपुर में कुछ मारवाड़ी लोग जो पतितपावनजी भगवान को मानते हैं वे उन्हें दायमा ब्राह्मण से पहचानते हैं । भगवान का प्रागट्य दिन माघ शुक्ल षष्ठी है । वहाँ के लोग दूसरी तिथि मानते हैं । उस विषय में भगवान ने कहा है, "वह तिथि गलत है" और आगे बताया कि मैंने गलताजी में चक्की पीसने का और कामधेनु फिराने का काम भी किया है ।" भगवान के एक गुरुबहन थे जिनका नाम कावेरी बहन था, उन्हें मजाक में कभी मारते थे जिससे एक बार कावेरी बहन ने पतितपावनजी भगवान को शिकायत की थी जब से श्री पतितपावनजी भगवान ने, भगवान को नियम दिया था, "बहनों को स्पर्श नहीं करना ।"

[६९]

तुम्हरि कृपा तुमहिं रघुनंदन

भगवान का पत्र मिला । बहुत लम्बे समय से खबर न थी कि भगवान कहाँ विराजते हैं ।

श्री रामचंद्राय नमः

ता. २८-४-६६

प्रिय रमा सादर आसीस

स्वास्थ ठीक नहीं है पर करना क्या कल द्वारिका जाने का हूँ, वहीं से कच्छ जाना है ।

तुम दुःखी न होना, स्वास्थ का ध्यान तो रखता हूँ, पर ठीक नहीं होता । सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

हमेशा कोई न कोई प्रोग्राम के कारण स्वास्थ के बारे में भगवान कभी नहीं सोचते थे । प्राणी मात्र को सुख पहुँचाने की भावना से रात-दिन देखे बिना सतत गतिशील, क्रियाशील जीवन था और कहते थे, "मेरे रक्त की एक-एक बूंद अंत समय तक किसी के काम आवे, वह मानव ही क्या जो दूसरों के सुख का साधन न बने ।" कई बार तो इतनी नरम तबियत हो जाती थी कि देखा नहीं जाता था, तब एक ही प्रार्थना करती थी कि, "भगवान, हमारी खुशी के लिये भी आप थोड़ा तो नियमित जीवन रखकर आराम करो ।" विशाल शिष्य समुदाय में एक न एक कार्यक्रम चलता ही रहता था । भले सेवा विधि नहीं जानती थी और ना ही साथ रह सकती थी, फिर भी लाखों के पालनहार के लिये चिंता स्वाभाविक थी । उसमें भी कभी लंबे समय तक कोई खबर न मिलने पर अनेक कल्पनाओं से मन अधिक व्यथित हो जाता था । शिष्य समुदाय से दूर जयपुर एक ओर हो जाने से भगवान के पत्र द्वारा हो खबर मिलती थी, अन्य किसी से बहुत कम सम्पर्क था । पंद्रह दिन के बाद वीरपुर से लिखा हुआ भगवान का पत्र मिला ।

श्री रामचंद्राय नमः

वीरपुर
ता. २३.५.६६

प्रिय रमा सादर आसीस

पत्र लिखने की इच्छा बनी रहती है पर शरीर स्वस्थ न होने से देरी हो ही जाती है ।

मैं कच्छ आठ दिन रह आया । आराम का पूरा ध्यान रखा था उन सबने वीरपुर १५ दिवस रहने का सोचता हूँ स्वास्थ ठीक नहीं दिन प्रतिदिन गिरता जाता है और सबके साथ कार्यक्रम आराम का बाधक है ।

रमा भजन करना और खूब प्रेम से भगवान पर भरोसा रखना सबको आसीस कहना । धीरु को लड़की ध्यान में रखना ।

रणछोड़दास का आसीस

यह पत्र मिलने पर स्वास्थ के बारे में विशेष चिंता के साथ दुःख हुआ । परन्तु राजकोट से पत्र द्वारा मालूम हुआ कि भगवान वीरपुर वाडी में एकांत में आराम के लिये विराज रहे हैं, रोज किसी से नहीं मिलते हैं । कुछ सेवकगण पास में रहते हैं और हर रविवार सुबह कुछ समय के लिये दर्शन देते हैं । वीरपुर जाने की इच्छा होने पर भी यह बात जानकर सोचने लगी, जाऊँगी तो कहाँ रहूँगी और भगवान के आराम में विक्षेप होगा, इसी विचार से रुक गई । थोड़े दिनों बाद फिर मालूम हुआ कि अब भगवान वीरपुर छोड़नेवाले हैं और वह अंतिम रविवार मिलने का था जिससे वीरपुर के लिये रवाना हुई । मैं तीन दिन जल्दी पहुँच गई कारण मैंने सोचा शायद प्रोग्राम बदल जाय और भगवान वहाँ से जल्दी निकल जायेंगे तो इतनी दूर से जाने पर दर्शन नहीं होंगे । यदि रविवार को ही मिलेंगे तो दो दिन वहाँ की धर्मशाला में मैं रह लूंगी ।

वीरपुर पहुँचकर पहले बाडी पर गई, जहाँ पर भगवान ठहरे थे । फूलमाला साथ में थी वह दरवाजे पर चढ़ाकर प्रणाम करने की इच्छा थी उस कारण वहां पहुँचकर सड़क पर तांगे में से उतरकर फूलमाला का पेकेट खोलते-खोलते दरवाजे तक पहुँची तब दरवाजे के भीतर व्यवस्थापक भाई खड़े थे, उनके चेहरे पर कुभाव दिखाई दे रहा था । उनको लगता था कि शायद मैं अंदर जाने का प्रयत्न करूँगी, हालाँकि भगवान को आराम पहुँचाने की भावना से यह योग्य कड़क व्यवस्था थी । मैं दरवाजे पर हार चढ़ाकर, प्रणाम करके वापिस लौटी, वे आश्चर्य से देखते रहे । मुझे पहचानते थे लेकिन उनकी निगाह में आदरभाव न देखकर मैंने भी कुछ पूछा नहीं । इतने में तो एक गाड़ी आई, जो भाई-बहनों से भरी हुई थी । वे सब दर्शन के लिये अंदर जाने वाले थे परंतु मेरे सामने अंदर जावें तो मुझे भी आने को कहना पड़े उस संकोच के कारण इधर-उधर मुँह फेर के गाड़ी में बैठे रहे, 'जय भगवान' कहने के लिये भी लज्जित हो रहे थे । गाड़ी दरवाजे के बाहर रोककर मेरे जाने की प्रतीक्षा में थे । मैं समझ गई थी कारण व्यवस्थापकों द्वारा यह पक्षपात तो चलता ही था और आज भी है । इस तरह से कई गुरु भाई-बहन भगवान जयपुर पधारते थे तब और वैसे भी घर पर आते थे, रुकते थे, क्योंकि आदर-प्यार देखते थे परंतु वो हो सब व्यक्ति उनके गाँव या

शहर में जाने पर इस तरह से मुँह फेर लेते थे मानो पहचान ही नहीं है। तब विचार उठना सहज था कि मानवता क्या ? लोग कैसे स्वार्थी होते हैं। लेकिन आश्चर्य भी देखा, तांगे में बैठकर सड़क पर थोड़े दूर पहुँची इतने में गाड़ी खाली होने पर ड्राइवर दौड़ता हुआ तांगे के पीछे आकर कहने लगा, "बहन, मेरे लायक कोई काम हो तो जरूर कहना कारण एक महीने पहले वह अपने मालिक के साथ जयपुर घर आया था। यह देखकर आँखें भर आईं, हृदय द्रवित हो उठा कि धन्य है तुम्हारी मानवता को। अनुभूति से प्रतीत होता है कि समाज में अधिकतर जो बड़े माने जाते हैं उनकी अपेक्षा जिसे लोग छोटे या निम्न कहते हैं उनका हृदय विशाल होता है या उसी में मानवता समाई दिखती है।

धर्मशाला पहुँचने पर स्वतंत्र कमरा देने के लिये मना कर दिया। बड़े हॉल में समूह में भाइयों के बीच रहना मुश्किल था। स्नानादि से निपटने पर पू० श्री जलाराम बापा के मंदिर से प्रसाद लेने के लिये बुलाने को फोन आया। उस दिन मेरा उपवास था, वैसे मंदिर में प्रणाम करने जानेवाली थी। दूसरी बार फोन आया तब व्यवस्था के लिये पूछा गया और कहा, शाम को हम सब सुंदरकांड करने जाते हैं तब आप भगवान के दर्शन के लिये आ सकते हैं और अभी आपके भाई साहब बाडी पर जायेंगे तब आपके आने की खबर भगवान को देंगे। मैंने स्वतंत्र कमरे के लिये इच्छा बताई उसकी व्यवस्था करवा दी। मैंने कहा, "मेरे कारण भगवान के आराम में विक्षेप हो यह मैं नहीं चाहती, मुझे खबर है कि रविवार को ही दर्शन देते हैं फिर भी मैं थोड़ी जल्दी आई हूँ उसका कारण यही है कि किसी कारणवशात् भगवान वीरपुर से जल्दी निकल जायेंगे तो ? मुझे सिर्फ भगवान के प्रोग्राम के खबर देते रहियेगा कि जल्दी तो जानेवाले नहीं है ना ? मैं यहाँ धर्मशाला में ही दो दिन बिता लूंगी।"

दोपहर में भगवान के पास यह खबर पहुँचने पर उसी वक्त मुझे लेने के लिये गाड़ी भेजी और अपने ही पास अन्य बहनों के साथ रहने के लिये कहा। बाडी में अलग-अलग जगह भोजन बनाना भगवान को उचित न लगने से सेवा करनेवाली बहनों से कहा होगा, "मेरी रसोई बनने के बाद वहीं पर रमा अपना भोजन बना लेगी, उसको रसोई में आने देना।" पहले दिन तो उपवास होने से यह प्रश्न ही न था। इस

व्यवस्था से मैं अनजान थी । रसोई का सामान मेरे साथ में ही था परंतु रात को एक बहन द्वारा मुझे मालूम हुआ कि भगवान की रसोई में मुझे आने देने के लिए बहन का विरोध है और विरोध करने का कारण बहुत विचित्र था । कभी कोई व्यक्ति ने मेरे पास दूसरे के स्वाभाव के विषय में चर्चा की होगी, तब मैंने जो अपना अभिप्राय बताया हो उस बात को ऐसी उलटकर उनके कान भरे गये कि जिसकी कल्पना भी नहीं थी । इस तरह से भगवान के अगल-बगल में रहनेवाले सभी व्यक्तियों को मेरे प्रति ईर्ष्या के कारण वह बहन किसी न किसी ढंग से मेरे विरुद्ध उकसाती रहती थी । वे चाहते थे कि मुझे कोई आने न दे । यह अनुभव तो अब मानो सहज बन गया था कि एक दूसरों की अनुपस्थिति में अनेक विरोधी बातें मुझसे कहते रहते और भगवान के पास समय-समय पर मेरे विरुद्ध होकर वे सब एक हो जाते थे । यह भी मीठा-मीठा बोलनेवाले व्यक्ति की पहचान के लिये और सबसे सावधान होकर विवेकपूर्वक संबंध रखने का सीखने के लिये प्रभु कृपा का ही एक सोपान था । छल, कपट या चालाकी, चतुराई भगवद् कृपा से जानती नहीं इसलिये बार-बार ऐसे प्रसंगों के भोग बनती थी । वैसे मुख्यतया तो भगवान ने मुझे बुलाया, यह सह न सके इसलिये कुछ न कुछ बहाने से परेशान करना चाहते थे । दूसरे दिन "उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे" उस तरह मेरे विरुद्ध भगवान के पास जाकर मेरी शिकायत की । भगवान ने मुझे बुलाकर कहा, "अभी की अभी राजकोट चली जाव", भगवान की रीति मैं समझ न सकी जिससे दुःखी हो गई क्योंकि "रीत जगत से न्यारी...."

इसी प्रकार की एक घटना पिताजी से मैंने सुनी थी । राजकोट में पू. श्री जादवजीभाई धीरे-धीरे अधिक समय आश्रम में ही बिताते थे । उस वक्त कुछ व्यक्तियों ने उनका विरोध करके भगवान के पास शिकायत की थी तब भगवान ने उन्हें थप्पड़ मारकर कहा था, "चले जाव, यहाँ आना नहीं ।" समय बीतने पर वही विरोधियों ने जादवजीभाई को वापिस आश्रम में बुलाने के लिये भगवान को विनती की । बिना कारण जिन्हें निकाल दिया था, भगवान ने उन्हें वापिस बुलाया तब खूब सहज और सरलता से वे लौट आये । उनकी कक्षा पर तो मेरे जैसी अवगुनों की खान कैसे पहुँच सकती है ? परंतु इस प्रसंग में कुछ ऐसा ही था ।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजजी को भी एक बार कहना पड़ा कि—

"माँगी के खाई हौ, मस्जिद में सोई हौ" तब समाज ने उनका कितना और कैसा-कैसा विरोध किया होगा, यह स्पष्ट होता है, फिर आज तो कलियुग आगे बढ़ चुका है ।

भगवान दूसरे दिन राजकोट पधारे तब दर्शन को गई । भीड़ के बीच में से मैं आगे जाकर अकेली खड़ी थी तब जामनगर जाते वक्त मेरे पास गाड़ी रोककर कहा, "तुम जामनगर आ जाव ।"

[७०]

तुम कृपाल सब संशय हरेऊ

भगवान के आदेशानुसार जामनगर गई, वहाँ खूब भीड़ थी, किसी के घर पधारे थे । मैं नीचे सीढ़ी में ही बैठी थी । शायद साहस करके उनके घर जाती भी तो मेरे प्रति उनकी तिरस्कृत दृष्टि देखकर मुझे विशेष दुःख होता, इससे अच्छा था नीचे बैठे रहना ।

चाहे कोई कैसे भी श्रीमंत हो तो मुझे क्या ? हमेशा भगवान भी इस बात को सहारा देते थे । उसी कारण खुद भी मुझे नहीं बुलाते थे । परन्तु जीवात्मा कोई भी शक्ति के नशे में डूब जाता है तब मदांध होकर किसी का अपमान, तिरस्कार या कटाक्ष करने में हिचकता नहीं है और वह भूल जाता है कि मेरे भी यह दिन हमेशा रहने वाले नहीं हैं । भगवान के पास आने वाले कई श्रीमंतों और गरीबों की स्थिति पल्टा खाते देखी है और यह तो सबके लिए निश्चित ही है कि जहाँ रात है वहाँ दिन भी है । सुख-दुःख जुड़े हुए ही है । इसीलिये गुजराती में कहा जाता है, "शुं तवंगर, शुं कुबेरो, गर्व सहुनो तूटशे, आज तो फूटी छे प्याली काल कुंजो फूटशे" अर्थात् कुबेर जैसे अमीरों का भी गर्व टूटा है और अभी तो प्याली जितना परिणाम मिला है कल सुराई जितना मिलेगा याने थोड़ा दुःख आने पर हो सकता है कल ज्यादा सहना पड़े । इसलिये श्रीमंताई के

नशे में गरीबों को सताने के वक्त सोचना चाहिये । गरीब याने केवल धन से ही नहीं जो स्वभाव से नरम है । वैसे किसी चीज के अभाव में ही किसी को कोई गरीब मानता है तो ऐसे धनवालों के पास सत्य, नीति, प्रेमभाव, करुणा, नम्रता आदि दैवी संपत्ति कहाँ है ? तो फिर ऐसे दैवी संपत्ति वाले के सामने आसुरी संपत्ति वाले ही गरीब हैं ना ? वैसे "गरीब" शब्द तो संत का लक्षण है न कि अमीरी, जभी तो कबीरदासजी ने कहा है,

दया, गरीबी, बंदगी, समता शील निधान;
ये ते लक्षण संतके, कह कबीर तुं जान ।

ऐसे प्रसंग पर भगवान के शब्द सुनने को मिलते थे, "देखो गरीब को न सताव, गरीब क्या करेगा ? रो देगा लेकिन उसका मालिक सुनेगा तो तुम्हें जड़ मूल से खोदेगा ।" इसीलिये गोस्वामीजी ने भी कहा है,

तुलसी हाय गरीब की, कबहूँ न खाली जाय;
मुये ढोर के चाम से, लोहा भस्म हो जाय ।

भगवान की परम कृपा से ऐसी घटना घटने पर सीखने को मिलता है कि कभी भी किसी जीव को हल्का मानकर तन, मन या वचन से उन्हें दुःख पहुँचे ऐसा बर्ताव कभी नहीं करना, यह भी एक प्रकार की हिंसा ही है और—

परहित सरिस धर्म नहि भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई

इसीलिये जीवन बनाने के लिये दुःख आवश्यक है कारण उसमें से निकले बिना दूसरों के दुःखों को समझना कठिन है और इसी कारण कहा जाता है कि आलू उबले बिना मीठे नहीं लगते । भगवद् शरण में पहुँचने पर सभी बातें प्रयोगात्मक ढंग से सीखने को मिलती हैं । ऐसी घटनाओं के विषय में मैंने एक बार भगवान से कहा, "भगवान, वो ही व्यक्ति जयपुर आते हैं तब आप मुझे उनका पूरा ध्यान रखने के लिए कहते हैं, उनके अनुकूल व्यवस्था हो सके जहाँ तक करना ऐसी सूचना भी आप देते हैं, तब आपकी आज्ञानुसार मैं आपकी सेवा में से समय निकालकर यथाशक्ति उनका विशेष ध्यान रखने का प्रयत्न करती हूँ । आप तो जानते हैं कि घर में मुझे और किसी की मदद नहीं मिलती और

जब मैं आपके साथ उनके घर आती हूँ तब ये लोग मेरे साथ बोलते भी नहीं । इस कारण विचार आता है कि, क्या आप श्रीमंतों का ही ध्यान रखते हैं ? मैं हर प्रकार से गरीब हूँ इसलिए मेरा नहीं क्योंकि उनके यहाँ आप भी तो कुछ नहीं बोलते हो ।" यह सुनकर कहा था, "देखो रमा, ऐसी बात नहीं है मैं सब जानता हूँ, दुःख भी होता है पर तुम मेरी हो इसलिए अपने यहाँ आये हुए अतिथि का शक्ति भर स्वागत करना अपना धर्म है वह मैं तुम्हें सिखाता हूँ और दूसरों के यहाँ अपने व्यक्ति के लिये ध्यान रखने को तो मैं उन्हें कैसे कह सकता हूँ ?" यह सुनकर बहुत संतोष हुआ । भगवान की प्रेमाल, आत्मीयता भरी बानी सुनकर गद्‌गद्‌ित हो गई । यह आत्मीयता ही जीवन का आधार बनी रहती है ।

जामनगर से मोटर द्वारा भगवान वापिस वीरपुर पधारनेवाले थे । मुझे राजकोट से जयपुर जाने का आदेश दिया था । मेरा सामान भी राजकोट में था । हम तीन बहनें रात की गाड़ी से निकलकर जल्दी सुबह राजकोट पहुँचे । तांगे में निवास-स्थान पर जाते समय एक भाई द्वारा मालूम हुआ कि भगवान आश्रम में विराज रहे हैं इस कारण हम सीधे आश्रम गये । भगवान के द्वार बन्द थे, स्नान करके दरवाजे के पास बैठी थी । एक दूसरों की सिफारिश से पीछे वाले दरवाजे से अंदर जाना चालू था वह मालूम न था । सात बजे दरवाजा खुलने से दर्शन करने पर नाराजगी मालूम हुई, कारण तो बहुत देर में ज्ञात हुआ कि भगवान ने मुझे बुलाने को मेरे निवास-स्थान पर एक भाई को भेजे थे लेकिन यह बात मुझे मालूम न थी कारण हम स्टेशन से सीधे ही आश्रम पहुँच गये थे और मैं वहाँ जाकर बाहर बैठ गई थी, जिससे भगवान को लगा मेरे बुलाने पर भी पास में क्यों न आई ? क्योंकि मेरे लिए ही राजकोट आश्रम में ठहरे थे । इस बात से भी मैं अनजान थी । वीरपुर जाने के लिए गाड़ी में बैठते समय कड़क आवाज से कहा, "मन माने तब जयपुर चली जाना" ऐसा व्यवहार देखकर और भी दुःख बढ़ गया, सोचने लगी क्या कारण है कि इस बार मैं वीरपुर आई तब से भगवान की प्रसन्नता देखने को नहीं मिल रही है । मानो मेरा ही अन्तःकरण कहता था बिना बुलाये आई हूँ, इसलिए ? खैर, अब जयपुर चली जाऊँगी और बिना बुलाये कभी नहीं आऊँगी । मैं जिनके यहाँ ठहरी थी उन्होंने मुझे दुःखी देखकर आग्रह से रोक लिया और कहा, "दो दिन में

भगवान वापिस यहाँ पधारने वाले हैं बाद में आप जाना ।" दो दिन के बाद भगवान पधारे । दर्शन के लिए जाने में डर लगता था । सुबह दस बजे से आश्रम में आ गये थे, दोपहर में एक बजे भोजन लेते समय एक बहन से पूछा, "रमा, चली गई ?" उन्होंने सारी बात बताई तब मुझे बुलाकर कमरे में तीन-चार व्यक्ति थे उनके सामने कहा, "अच्छा हुआ नहीं गई, अब यहाँ से मेरे साथ सीधे उड़ीसा चलना । देखो रमा, मैं जानता हूँ कि वीरपुर में मैंने तेरे साथ अन्याय किया है लेकिन कभी-कभी जज को भी झूठा न्याय देना पड़ता है और जो अपना हो उसी के साथ तो अन्याय कर सकते हैं तुम दुःख न लगाओ, सब भूल जाव । देखो, मैं उड़ीसा जाने के लिए यहाँ से बम्बई जाऊँगा और बाद में वहाँ से उड़ीसा तुम ऐसा करो यहाँ से नागपुर चली जाव मैं बम्बई से निकलकर तुम्हें नागपुर से मेरे साथ ले लूंगा ।"

भगवान के आदेशानुसार मैं राजकोट से नागपुर बड़े भैया के घर गई ।

[७१]

भक्तवत्सल प्रभु कृपानिधाना

भगवान बम्बई पधारे । थोड़े दिनों बाद वहाँ से पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

प्रिय रमा तथा धीरू

सादर आशीर्वाद

मैं तत्काल ही उड़ीसा जाने की कोशिश करता हूँ तुम सीधी उड़ीसा जाने का प्रयत्न करना क्योंकि मेरे साथ कृष्णा है और गाड़ी में जगह नहीं और मैं तुमारा वहाँ प्रबन्ध कर दूंगा वहाँ से गोंदिया रायपुर होता हुआ राजनान गाँव जाऊँगा और वहाँ से

कालीहुण्डी जाऊँगा। मेरे तार की प्रतीक्षा करना। मैं अब निकलता हूँ। नागपुर के जितने भी स्वयंसेवक हों वे तैयार रहे।

यह पत्र मिलने पर अब तार की प्रतीक्षा थी, उसी दिन शाम को तार मिला, भगवान नागपुर पधारने वाले थे। दूसरे ही दिन नागपुर पधारे और मुझे उसी दिन ट्रेन से जाडसूगडा जाने के लिये कहा। भगवान मोटर द्वारा गोंदिया पधारे। दूसरे दिन जल्दी सुबह जाडसूगडा पहुँचकर भगवान के दिये हुए पते पर गई, भगवान भी वहाँ पधारे। वहाँ एक दिन रुककर सब साथ में उड़ीसा के वीरमित्रपुर गाँव गये। वहाँ पर भारी दुष्काल होने से सोरडा गाँव में प्रथम केम्प चालू किया। अभी तो थोड़े स्वयंसेवक आये थे। आदिवासी क्षेत्र और वाहन व्यवहार की व्यवस्था न होने से वहाँ तक उन लोगों को मदद पहुँचाने के लिये कोई नहीं जा सकते थे। हमेशा भगवान ऐसे ही स्थान पसन्द करते थे और कहते थे, "भले हमें कठिनाई हो लेकिन जहाँ कोई नहीं जायेंगे वहाँ हम जायेंगे", हम चार-पाँच बहनें थीं। कभी-कभी भगवान के साथ हम भी सोरडा जाते थे। वैसे हमारा रहने का भगवान के पास विरमित्रपुर में ही था। तब रोज दोपहर में जब भगवान आराम करते थे तब उनके पास बैठकर नवाह्न पाठ मन ही मन करती थी। कोई बहन मुझे इस तरह से पाठ-पूजा करते देखकर कटाक्ष से 'रामायणी' कहती थी और अपने अहंकार से भगवद् सेवा और सान्निध्य से एकदम हटाना चाहती थी लेकिन भगवान ऐसा नहीं होने देते थे। एक दिन दोपहर में भगवान जागे तब पास में कोई न होने से बंडी पहनाने को इशारा करने से मैं पहना रही थी इतने में थोड़ी खांसी आने पर दूसरी बहन आ पहुँची, उनकी नाराजगी देखकर भगवान ने मेरे हाथ पर थप्पड़ मारते हुए कहा, "हटो यहाँ से चली जाव।" ऐसा करने का कारण मुझे मालूम न था। इससे पहले भी मैं यह देखती थी कि भगवान मुझे कोई काम बताते नहीं और उसके सामने मुझे दूर रखते हैं परन्तु इस बारे में बहुत सोचा नहीं। उस दिन का व्यवहार देखकर भगवान को चिट्ठी लिखी, "भगवान, क्षमा माँगती हूँ, जो कुछ मेरी गलती हो उसके लिये; परन्तु मेरी गलती मुझे समझ में नहीं आती कृपया आप बतायेंगे तो अच्छा रहेगा कि मैं दूसरी बार ऐसी कोई क्रिया न करूँ जिससे आपकी नाराजगी सहनी पड़े।"

भगवान बाहर बरामदे में बिराजते थे । चिट्ठी पढ़कर थोड़ी देर बाद कमरे में जाने से पहले सामने खुले चौक में मुझे बुलाकर कहा, "देखो रमा, दुःख न लगाना, तुम नहीं जानती मेरा तुमारे पर तेसठ की साल का लिखा हुआ पत्र एक व्यक्ति ने उसको भेजा जिसको तुमारे लिये शुरू से ईर्ष्या है । उसमें बुद्धि तो बहुत है परन्तु ऐसी उल्टी बुद्धि चलाती है, खप्पर में भरा हुआ दूध क्या काम का ? ऐसी बात है । अभी मैं बम्बई गया था जभी की यह बात है । मैंने पूछा, "भगवान वह पत्र कहाँ है ?" तो कहा, "मैंने फाड़ दिया परन्तु अब तुमको बहुत सहन करना पड़ेगा क्योंकि तुमारे लिये दिन प्रतिदिन ईर्ष्या बढ़ती जा रही है।" यह सुनकर मुझे १९६३ में भगवान के आये हुए पत्रों की बात याद आई कारण उसी वक्त एक पत्र में लिखा है, "तुम्हें मेरे पत्र मिले हैं या नहीं, यहाँ सब पत्र खोल डालते हैं, देखो इनकी नीति......."

मैंने कहा, "भगवान, भले मैं सहन कर लूंगी परन्तु हमेशा यह अन्याय नहीं ?" भगवान ने दुःखी होकर कहा, "क्या करूँ ? रमा मेरे लिये सहन कर लो मैं सिर्फ आत्महत्या से डरता हूँ और कोई बात नहीं है, बिना कारण किसी के जीवन में तुम निमित्त न बन जाव यही सोचता हूँ ।" मैंने कहा, "भले भगवान ।" अब जीवन के दिन बदलने लगे, जहाँ तक हो सके रोज कोई न कोई कारण से नाराजगी का भोग बनना पड़ता था । हो सके जितनी दूर रहकर मेरे पाठ-पूजा आदि नियम में व्यस्त रहने का प्रयत्न करती थी ।

रोज एक बार तो भगवान अवश्य पूछते थे, "भोजन किया ? क्या बनाया है ?" हम जब जो बनाते वह बताते थे, उसमें एक दिन हमने विचार किया, आज सिर्फ खिचड़ी ही बनानी है । बाद में दर्शन के लिये जाने पर पूछा, "आज क्या बनाओगे ?" मैं और शारदा बहन एक दूसरे के सामने देखकर हँसने लगे । इतने में एक चावल का दाना देते हुए कहा, "लो खिचड़ी बनाओगे ना ? उसमें यह डाल देना ।" रोज तो नक्की किये बिना कुछ भी बना लेते थे ।

प्रसंगोपात् एक दिन सबको हलवे की प्रसादी दे रहे थे । मेरा एकादशी का व्रत होने से कहा, "तुम्हारी तो एकादशी है ना ? तो तुम प्रसाद नहीं लेना ।" अन्य जिसको उपवास न था उन्हें प्रसाद दिया । थोड़ी देर

के बाद बुलाकर थोड़ा प्रसाद देते हुए कहा, "अरे लो भई, एकादशी है तो क्या हुआ ? प्रसाद में अन्न बुद्धि नहीं होती है परंतु प्रसाद, प्रसाद के ही रूप में लिया जाय तो ।" फिर कभी कोई बहनों को गुरुवार का उपवास होता था तब कभी ऐसा प्रसाद देते जो व्रत करनेवाली बहनें न खा सकती हों तो उन्हें नहीं देते थे और मेरे सामने देखकर कहते थे, "लो रमा, तुम्हारा तो गुरुवार नहीं है ना ?" भगवान जानते थे कि मैं गुरुवार का व्रत नहीं रखती हूँ फिर भी मुझे कभी वह व्रत रखने को नहीं कहा और कुछ व्यक्तियों को सामने से गुरुवार करने के लिये कहते भी थे । मुझे तो पहले से ही कभी यह व्रत करने का विचार आया ही नहीं था । उसमें भी १९६० में मैं चंदुबहन के साथ दो महीना रही तब उन्होंने भी कहा था, "रमु तु गुरुवार करना नहीं, कारण पहले मैं करती थी, तब एक दिन भगवान ने मुझे कहा था, चंदु, तुम गुरुवार क्यों करती हो ? मालूम है यह कौन करता है ? जिसके गुरु मर गये हों, तब से मैं तो कभी भी यह व्रत नहीं करती हूँ ।" चंदुबहन से यह बात सुनने के बाद मुझे कोई यह व्रत करने को कहे तो भी में तैयार नहीं हूँ, कारण उनकी बात पर मुझे पूरा विश्वास था । वे कभी झूठ नहीं बोलते थे और मेरे लिये उन्हें बहुत प्यार था । तब मैं बहुत छोटी थी और सब व्यक्तियों से परिचित भी नहीं थी । वे मुझे जिस व्यक्ति से सावधान करते हुए जो शब्द कहते थे वह सब पूर्णरूप से सही निकला और उस व्यक्ति का बहुत ही कड़वा अनुभव हुआ । वे मेरे सच्चे हितैषी थे लेकिन दुर्भाग्य से उनका साथ छूट गया.... । वे मेरे साथ होते तो मुझे इतना सहना न पड़ता ।

यहाँ भी एक दिन भगवान ने किसी का पागलपन लिया होगा जिससे दोपहर में हम दो-तीन व्यक्ति बैठे थे तब थोड़ी देर पागलपन की लीला की थी । हमारे पर तकिये फेंक कर कुछ अंट-संट बोल रहे थे । किसी के कल्याण के लिये उनकी लंबी बीमारी बहुत थोड़े समय में भोग लेते थे ।

卐

[७२]

कौतुकनिधि कृपाल भगवाना

भगवान ने एक दिन प्रसंगोपात् एक भाई के प्रश्नोत्तर में कहा, "देखो, दीक्षा दो प्रकार की होती है, विरक्त दीक्षा और गृहस्थ दीक्षा अलग-अलग होती है।" इसके अनुसंधान में मैंने पूछा, "भगवान इसमें से मेरी कौन-सी दीक्षा है ? क्योंकि गृहस्थ की तरह गृहकार्य भी पूरा सम्हालना पड़ता है और वैसे देखा जाय तो जीवन विरक्त है, मैं तो बीच में रह गई।"

प्रत्युत्तर में लिख दिया,

"तुम्हारी अव्यक्त दीक्षा है, तुम बीच में नहीं पर शेष में रही।"

एक दिन एक भाई अपने जीवन में आई हुई मुसीबत से हारकर भगवान के पास अपना दुःख व्यक्त कर रहे थे तब उन्हें समझाते हुए कहा, "देखो, एक से दिन नहीं रहते, सूर्यास्त होता है तो कभी न कभी सूर्योदय भी होता है" यह सुनकर मैंने लिखकर दिया, "भगवान, अब तो मेरे लिए भी आपकी प्रसन्नता का सूर्यास्त होने लगा है ना ? तो सूर्योदय कब होगा ?" प्रत्युत्तर में कहा, "चाहे कोई कुछ भी करे तुमारा सूर्य अस्त होने का प्रश्न ही नहीं है तो फिर उदय होने का सवाल ही नहीं उठता।"

वहाँ पर कलकत्ता वाले श्री किशनभाई सोनपाल और उनकी धर्मपत्नी शारदा बहन भी थे। वे मुझे अपनी बेटी मानकर खूब प्रेमभाव रखते थे। मैं उनके साथ रहती थी। भगवान के पास ही रहने का था। नीचे जगह न होने से एक बहन के साथ छत पर जाने की सीढ़ी पर हम

रहते थे । सावन के महीने में वहाँ पर भगवान के आदेश से कुछ नियम व्रत के साथ रहने का था । राऊरकेला से चालीस-पचास मील की दूरी पर अन्य केम्प भी खोले गये थे । मनहरभाई और धीरूभाई चांदीपोस में रहते थे । वहाँ पर बड़े काले बिच्छु निकलते थे, जो लोहे की बाल्टी को काटते थे तो बाल्टी काली पड़ जाती थी । भगवान ने कहा था, "यदि वे ठोस पत्थर में डंक मारते हैं तो पत्थर भस्म हो जाता है उसी का नाम "शृंखला भस्म" । वहाँ पर खूब घोर जंगल था । धीरूभाई का स्वभाव साहसी होने से कई बार ऐसे बिच्छु को हाथ से पकड़कर फेंक देते थे । भगवान को यह बात मालूम होने पर खुश होते थे । उस साल गुरु पूर्णिमा का उत्सव चांदीपोस में ही मनाया गया ।

हम पांच-छः बहनें भगवान के पास थीं अन्य बहनें गाँव में धर्मशाला में रहती थी । एक बार अचानक शाम को जगन्नाथपुरी जाने का प्रोग्राम हुआ । तीन गाड़ियों द्वारा हम थोड़े लोग भगवान के साथ गये । वहाँ जाने का मुख्य हेतु तो भगवान ही जाने कारण विश्व विधाता के अनेक कारण हो सकते हैं । वहाँ पर गरीबों और साधुओं के लिए भंडारा किया, दो दिन में राउरकेला वापिस लौटे ।

उस वक्त एक बहन टेपरिकोर्डर लाई थी तब टेपरिकोर्डर प्रथम बार देखने से आश्चर्य होता था । भगवान ने कहा, "इसमें स्वाध्याय उतार दो मैं रोज सुनूँगा ।" भगवान के पास नित्य प्रति प्रार्थना में जो स्वाध्याय गाया जाता है वह गाने के लिए उन्होंने मुझे कहा । प्रथम तो धीरे-धीरे गाया था बाद में उन बहन के कहने से थोड़ी टेप शेष रहने के कारण जल्दी-जल्दी गाकर सब पूरा किया । उन्होंने उसी दिन शाम को भगवान के पास सुनने के लिए वह चालू कर दिया । सुनकर भगवान ने कहा, "है तो अच्छा पर ये क्या घास काटा है ? भले थोड़ा ही गाव परन्तु शांतिपूर्वक गाया हुआ होना चाहिये जिसके सुनने से मन प्रसन्न हो जाय ।" बाद में आदेशानुसार बताये गये स्तोत्र दूसरे दिन टेप किये, उसे नित्य सुबह छः बजे सावन मास में भगवान सुनते थे । सावन मास में नियमानुसार सब कोई सुबह आठ बजे तक मौन रखते थे । रोज सुबह स्वाध्याय और शाम को कई बार सुन्दरकांड भी करवाते थे । भगवान के पास रहकर कभी किसी को पत्र लिखने का या व्यक्ति विशेष

के लिये भोजन बना देने का काम आदेशानुसार करती थी । शेष समय अपने नित्य नियम में व्यस्त रहती थी और कोई सेवा में मैं न थी ।

शारदा बहन ने वहाँ पर ग्यारह दिन के लिये राम अर्चा करवाई थी । वे सुबह से शाम तक पूजा में बैठते थे और रोज शाम को भोजन पाते थे । इसके अलावा रोज पूजा में नैवेद्य के लिये एक किलो बेसन के लड्डू बनाने के रहते थे । यह सेवा मैंने सहर्ष स्वीकार की थी । इसलिए शाम का भोजन आदि तैयार रखती थी, उनका नौकर मुझे मदद करता था । इस कार्य की पूर्णाहुति के समय वे बेटी के नाते मुझे साड़ी देने लगे । बहुत आग्रह करने पर भी मेरे न लेने से वे दुःखी हो गये । बाद में जब भगवान का पूजन करने गये तब भगवान से यह बात कहकर वे रोने लगे । भगवान ने मुझे बुलाकर कहा, "रमा, तुमने शारदा को बहुत दुःखी कर दिया । देखो कभी किसी से माँगना नहीं और कोई प्रेम से दे तो उसको दुःख न लगे इसलिये ले लेना क्योंकि अपने तो साधु है ना ? देखो साधु का जीवन ऐसे ही चलता है ।" राऊरकेला में केम्प समय दौरान एक बार सरकार की ओर से कुछ सूचनाओं का पत्र आया । उसमें कुछ नियम लिखे हुए थे, जिसका राहत कार्य दौरान पालन करना जरूरी था । जहाँ-जहाँ पर केम्प लगे थे वहाँ पर यह सूचनायें भेजनी जरूरी थी जैसे जूठे पत्तल-दोना व्यवस्थित कोई खड्डे में डाल देना, रसोई की जगह गंदगी न हो इसलिये डी. डी. टी. आदि छिड़कना वगैरा । भगवान को स्वयं भी उन नियमों का पालन करना जरूरी लगने से मुझसे कहा, "रमा, इसकी चार-पाँच कॉपी बड़े अक्षरों में बना दो ।" उसी दिन यह पहुँचाने की भावना से यह काम जल्दी-जल्दी करने का था, उस कारण अन्य एक बहन को भी एक-दो कॉपी लिखने के लिये कहा । कॉपियाँ तैयार होने पर सही करने के लिये माँगी और अक्षर देखकर बोले, "यह देखो और यह देखो," इतना सुनते ही उन बहन को इतना गुस्सा आया कि भगवान के हाथ से अपने हस्ताक्षर की कॉपी खींचकर फाड़ दी । यह देखकर कहा, "अरे ! इतना भी क्या गुस्सा ? सत्य बात कहने में क्या है ? मैं इतना भी नहीं बोल सकता हूँ ? देखो तो ईर्ष्या ?" भगवान के ऐसे शब्द सुनने पर अनेक विचारों से मन घिर जाता था और भगवान की कही हुई घटना याद आती है कि श्री राम-कृष्णदेव परमहंस के प्रिय पात्र राखाल नामक शिष्य ने इतने महान संत

के सान्निध्य में रहने पर भी ईर्ष्यावशात् विवेकानन्दजी जैसे परम पुरुष को भी एक बार जहर देने में हिचकिचाहट नहीं की थी ।

एक दिन भगवान की रसोई बनाने वाली बहन ने भगवान को भोजन कराने की काँच की प्लेट राऊरकेला में रहने वाले पपरेंदा निवासी शंभू भैया के घर भगवान पधारे तब भगवान के भोजन के लिये साथ में दी होगी, यह बात वे भूल गये ग्रौर मैं सीढ़ी में रहती थी इस कारण उनके कमरे की ग्रलमारी में मेरे कपड़े लेने-रखने कभी जाती थी जिससे थोड़े दिनों में प्लेट याद ग्राने पर उनको मुझ पर शंका हुई । मुझे पूछने पर मैंने कहा, "मैंने तो देखी भी नहीं है" परन्तु ना कहने पर भी माने नहीं, ग्रपनी बात को पकड़कर बैठे थे कि तुमने ही ली है । एक ग्रोर से यह चोरी का ही ग्राक्षेप था, बहुत दुःख लगा । मेरे रोने पर भगवान को यह बात मालूम पड़ने से मुझे बुलाकर सब लोगों के बीच में कहा, "देखो रमा, एक गल्प सुनाऊँ ? एक बाबाजी थे । उन्होंने एक कुत्ता पाला था । बाबाजी ने सोचा मैं इतना महान हूँ, सब कुछ कर सकता हूँ तो यह कुत्ते की पूंछ भी एक दिन जरूर सीधी कर दूँगा । उसके लिये उपाय ढूंढकर एक लकड़ी की भूंगली बनवाई ग्रौर कुत्ते की पूंछ उसमें पिरो दी । बाबाजी ने धैर्य से काम लेते हुए कुत्ते की पूंछ बारह साल तक भूंगली में पिरो के रखी । इतने समय के बाद विश्वास से यह सोचते हुए भूंगली निकाल दी कि ग्रब तो पूंछ सीधी हो ही गई होगी परन्तु जब देखा तो वह टेढ़ी ही थी बस समझ गई ना ? ऐसा ही है इसलिये तुम दुःख न लगाना ।"

खलहु करहि भल पाय सूसंगू, मिटहिं न मलिन सुभाव ग्रभंगू

थोड़े दिनों बाद वह प्लेट शंभू भैया दे गये फिर तो,

सहसा करि पाछे पछिताई.......

सावन के महीने में थोड़े दिन के लिये भगवान बम्बई पधारने वाले थे, बीच में नागपुर बड़े भैया के मकान का उद्घाटन करने के लिये मैं भी नागपुर तक साथ गई । भगवान नागपुर से पहले भंडारा स्टेशन उतर गये । मैं दूसरे डिब्बे में थो इसलिये चिट्ठी लिखकर भेजी ।

प्रिय रमा,

मैं भंडारा उतर रहा हूँ और चार बजे नागपुर पहुँचूंगा तू जाकर बम्बई फोन लगवा देना धीरु से

नं० – २४५७१०

(१) जयराम भाई का स्वास्थ कैसा है ?

कुमुद आ रही है, मैं आ रहा हूँ ।

भगवान शाम को नागपुर पधारे, बड़े भैया के मकान का नाम "शांति निकेतन" रखा और रात रुककर दूसरे दिन सुबह नागपुर से बम्बई के लिये रवाना हुए । दो-चार दिन में ही बम्बई से वापिस नागपुर पधारे । मैं भगवान के साथ राऊरकेला वापिस गई ।

बारिश के दिन थे । एक दिन खूब बद्दल छाये हुए थे । मैं ऊपर छत में माला जप रही थी, अचानक कोई बुलाने आया । नीचे जाने पर मालूम हुआ भगवान चांदीपोस पधार रहे थे । सबके साथ गाड़ी के पास मैं भी खड़ी थी । गाड़ी में भगवान, ड्राइवर और एक भाई भी थे । गाड़ी चलने के क्षण पर कहा, "चलो रमा, बैठ जाव ।" खूब आश्चर्य लगा, कारण यह तो सदैव के लिये अशक्य ही था कि मुझे अकेली को भगवान अपने साथ सबके सामने ले जा सके । आज तक ऐसा तो कभी हुआ नहीं और भविष्य में भी नहीं । गाड़ी में भगवान बहुत ही प्रसन्न थे ।

चांदीपोस भोजन मैदान में गाड़ी पहुँची । सब स्वयंसेवक आनंदित हो गये । सब कोई अपने काम से दौड़े-दौड़े आकर प्रणाम करने लगे । भगवान ने सबको कुशल समाचार पूछकर खुश किया । साथ में आये हुए भाई को कोई कार्य से वहाँ उतारे और केम्प में ही एक गली में थोड़ी आगे गाड़ी लेने को कहा । बारिश के कारण खूब अंधेरा हो गया था । थोड़ी-थोड़ी बारिश हो रही थी इसलिये गाड़ी के काँच बंद थे । भगवान ने कहा, "रमा, काँच खोल के हाथ बाहर निकालो" और आकाश की तरफ हाथ ऊपर करने को कहा, कोई चीज को रोकने की मुद्रा इशारे से बताई । मुझे संकोच हो रहा था, थोड़ी देर तो बैठी रही । फिर से कहा, "अरे, मेरा कहना नहीं मानती हो ? उसमें शरमाने की क्या बात है ? तुम्हें तो मैं कहूँ ऐसे करना है ना ? आखिर आदेशानुसार करने से

खुश होकर बोले, "बस अब चिन्ता नहीं है चलो", इतना कहकर केम्प के मैदान में गाड़ी लौटाई और उन भाई को साथ में लेकर राऊरकेला के लिये निकल गये । इस विषय में मैंने कभी कुछ पूछा नहीं ।

एक दिन दोपहर को भगवान ने बुलाकर पूछा, "क्या कर रही थी ? मैं एक बहन से बात कर रही थी, यह बताने पर पूछा, "क्या बात कर रही थी ?" भगवान, वे मुझे कहते थे तुम्हें मालूम है, अपने में सबसे बड़ा कौन है । मैंने बड़ी बहन का नाम बताया तो उन्होंने कहा नहीं । तुम्हें मालूम है आध्यात्मिकता में उम्र से बड़ा हो वह बड़ा नहीं माना जाता, जिसको पहले दीक्षा मिली हो वह बड़ा माना जाता है । मैंने कहा, अच्छा यह बात मुझे मालूम नहीं थी तो उन्होंने कहा, इस हिसाब से मैं बड़ी हूँ, मुझे १९५० में दीक्षा मिली है, उसके बाद सब आये हैं ।" मैंने कहा, "ठीक है, आप बड़े हो ।" यह सुनकर भगवान ने कहा, "अरे ! तुम कहती ना कि इस हिसाब से गिना जाय तो तुमसे बड़ी मैं हूँ क्योंकि तुमको तो मैं जन्म से ही दीक्षा दे चुका हूँ ।" मैं कुछ बोली नहीं परंतु यह शब्द सुनकर १९४३ में भगवान बरसडा आये थे वह घटना याद आई । यह आनंद जरूर हुआ कि वाह ! जन्म से ही भगवान की कृपा दृष्टि मेरे पर है ।

अनेक प्रसंगों की अनुभूति करते हुए दिन बीतते जा रहे थे । एक दिन अनंतपुर जाने का प्रोग्राम हुआ । भगवान के साथ मैं और एक बहन गये, कारण मुझे वहाँ से जयपुर जाना था । राऊरकेला से निकलते वक्त तो हम दूसरी गाड़ी में थे, आगे चलकर भगवान ने अपनी गाड़ी में ले लिये । नागपुर बड़े भैया के घर थोड़ी देर के लिये गये । वहाँ से आगे इटारसी पहुँचे, बीच में दो जगह रात रुकना हुआ । इटारसी से आगे नर्मदाजी पार होकर नर्मदाजी के किनारे भोजन बनाया, इटारसी से थोड़े भाई भी साथ में आये थे, सबको भोजन कराया और भोजन के बाद भगवान ने विश्राम लिया तब, भगवान के वस्त्र मैले होने से नर्मदाजी में वस्त्र धोने की सेवा मिली । वहाँ से आगे भोपाल गये । वहाँ पर एक बहन को बुलाया था जिससे हमें वहाँ आने के लिये मना किया, हम दूसरी गाड़ी में बैठे रहे । दो घंटे में भगवान लौट आये । वहाँ से रुठियाई पहुँचे और रात रुके । सुबह भगवान वहाँ से अनंतपुर पधारे हम दोनों बहनों को पुष्कर और जयपुर भेजा थोड़े दिनों बाद भगवान

पुष्कर पधारे तब मुझे मालूम न होने से मैं नहीं गई थी जिससे भगवान का पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

पुष्कर

प्रिय रमा सादर आसीस

तुम आई नहीं क्यों नाराज हो ? अच्छा ! पर क्या करूँ ? स्वास्थ ठीक नहीं है मैं कल शाम को कोलायत जा रहा हूँ और साथ में कुमुद आती है वहाँ से जयपुर होकर जाना ही पड़ेगा । कारण तुम नहीं आई, अच्छा बाबा हम ही आ जाते हैं ठीक है ना ? तुम तो तुम ही हो, सोचा होगा कि न चलूं तो उनको जयपुर आना ही पड़ेगा ठीक है ना ?

रणछोड़दास का आसीस

भगवान जयपुर पधारने वाले थे यह खबर होने से सब तैयारी की थी । फूलमाला खोलकर दरवाजे के कुंडे पर लटका कर रखी थी । भगवान पधारे हैं यह सुनते ही फूलमाला लेकर सामने गई, घर की आधी सीढ़ी पर भगवान आ गये थे । वहाँ फूलमाला पहनाने पर बोले, "अरे भाई, लाव हमारी हार हम स्वीकार करते हैं ।" रात रुककर दूसरे दिन सुबह आगे के लिये रवाना हुए । राऊरकेला पहुँचकर भगवान का पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

राऊरकेला
ता० ९-१०-६६

प्रिय रमा, सादर आशीर्वाद

हम सुखपूर्वक यहाँ पहुँच गये हैं मेरा स्वास्थ नरम ही है यहाँ का कार्य १६-१० को पूर्ण होने का है और १७ को मैं बाँसरा जा रहा हूँ वहाँ से १ तारीख को मुंगेर जाने का विचार है फिर मारवाड़ की तरफ सूखी हवा में रहने का सोचा है चतुर्थी को ही मैं पुष्कर बहुत कम समय के लिये पहुँचूंगा । सबको आसीस कहना

रणछोड़दास



[७३]

को कृपाल रघुवीर सम

भगवान का दो दिन में दूसरा पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

प्रिय रमा सादर आशीर्वाद

तुमारी शाल मेरे साथ आ गई है चौथ के दिन शाल आ जायगी मेरी तबियत खराब है इसलिये पत्र नहीं लिख सका हूँ सबको आसीस कहना ।

रणछोड़

दो दिन में फिर से दूसरा पत्र आया ।

श्री रामचन्द्राय नमः

राऊरकेला
ता० १६-१०-६६

प्रिय रमा सादर आशीर्वाद

मेरा स्वास्थ बहुत खराब है इसलिये मैं हाथ से पत्र लिख सकने में बहुत ही अशक्त हूँ तो नहीं लिख पाया हूँ रमा, मैं १८ को निकलूंगा २० को बांसरा पहुँचूंगा । १ को मुंगेर और चतुर्थी को पुष्कर निश्चित । दीवाली को कहाँ होऊँगा यह नक्की नहीं है ।

सबको आशीर्वाद

रणछोड़दास

भगवान जयपुर से राऊरकेला जाने के लिये रवाना हुए उसके बाद आदेशानुसार मैं बांसरा के पते पर पत्र लिखती थी ।

श्री रामचन्द्राय नमः

बांसरा
२४-१०-६६

प्रिय रमा सा. आ.

तेरे दोनों पत्र एक साथ ही मिले कुसुंडा का मिला नहीं स्वास्थ ठीक नहीं केवल उल्टी बंद है और मरडा कभी बंद कभी चालू रहता है। दीवाली नक्की नहीं नक्की होने पर तार से खबर दूंगा चतुर्थी को पुष्कर पहुँचूंगा देख जरूर आना और दीवाली कोटा की हुई तो आना।

सबको आ० कहना ज्यादा लिख नहीं सकता।

रणछोड़दास

थोड़े दिनों में पिताजी के नाम पत्र आया जिसमें दीवाली, अन्नकूट जयपुर में मनायेंगे ऐसा लिखा था। यथाशक्ति खुशी के साथ तन, मन, धन से तैयारी में लग गये। थोड़े दिनों बाद जैसे खबर दी थी उस समय से एक दिन पहले सीधे गलताजी पधारे। पिताजी तो एक सप्ताह से गलताजी में ही रहते थे कारण गुफा और भगवान के कमरे में पुताई आदि काम कराने का था। भगवान के पधारने पर उन्होंने घर आकर खबर दिये। तुरन्त ट्रक में सब सामान भरकर गलताजी गये। दीवाली, अन्नकूट का उत्सव होने के कारण घर में से रसोई का सारा सामान ले जाना था। एक ट्रक भर के सामान था। गलताजी घर से थोड़ी दूरी पर है, जिससे पहुँचने में थोड़ा विलम्ब हुआ। सुबह करीब ग्यारह बजे भगवान पधारे थे, मैं शाम को करीब चार बजे पहुँची। सब सामान एक कमरे में पहुँचाया। भोजन के बाद भगवान ने आकर मुझसे पूछा, "क्या-क्या तैयारी की है ?" सब चीजें बताने के बाद मैंने पूछा, "भगवान, यह तीन दिन तो मुझे आपकी सेवा मिलेगी ना ? यह सुनकर गुस्से में बोले, "तुम्हें कुछ विचार है ? ऐसे मुझे यहाँ तीन दिन निकालने भारी हो जायेंगे यह तुम्हें मालूम है ? तुम सबके साथ मिलकर अन्नकूट की सामग्री बनाना।" थोड़ी देर तो मैं चुप रही, दु:ख होना भी सहज था। फिर मैंने कहा, "ठीक है भगवान, अब आगे से कभी सेवा की इच्छा

नहीं करूँगी । आप कई बार कहते रहे हो कि तू सेवा नहीं करती है, कहाँ रहती है ? सेवा की इच्छा बलवती बनाओ वगैरा । यदि आपको सेवा की माँग से दुःख होता हो तो वह सेवा क्या काम की ? वैसे भी माँ से काम बनता नहीं है तो उन्हें भी मुझसे असंतोष रहता है और इतने मेहमानों से घर पर भी काम रहेगा ही तो मैं रोज यहाँ आती-जाती रहूँगी, यहाँ आऊँगी तब सामग्री में मदद करूँगी और घर पर घर के काम में । बाहर गाँव में तो मुझे सेवा का अवकाश मिलना कठिन है, मेरे पास इतनी सुविधा भी तो नहीं होती है तो इच्छा करना भी व्यर्थ है । ठीक है अभी मैं घर जाती हूँ ।"

भगवान कई बार कहते थे,

सहज मिला वो दूध बराबर, माँग लिया सो पानी;
खिंच लिया सो रक्त बराबर, बना समज जिय जानी ।

मुझे घर जाने नहीं दी, बाद में क्या हुआ भगवान जाने ! साथ में आई हुई बहनों ने अपना सामान हटा लिया और प्रभु-कृपा से मुझे सेवा मिली । ये दिन खुशी में कहाँ निकल गये मालूम न पड़ा । दीवाली की रात को ढाई बजे होंगे, भगवान नींद से जाग गये और कहा, "देखो, कोई आया ।" मैंने कहा, "कोई नहीं है", फिर कहा, "देखो कोई आया", मैं समझी नहीं । सुबह चार बजे दातुन करने के बाद कहा, "रात को शेर आया था, जरूर कोई प्राणी को उठा गया है, आवाज आ रही थी । जाव, तुम ऊपर भगवान को प्रणाम तो करके आव ।" ऊपर गुफा में दर्शन के लिये जाने पर टोर्च से देखा तो नीचे से ऊपर तक पूरे रास्ते में खून टपका हुआ दिखाई दिया । यह देखकर सोचा, शायद यह देखने के लिये ही मुझे ऊपर भेजा होगा । भगवान ने कहा वह ठीक ही था, जरूर शेर आकर किसी प्राणी को उठा गया दिखता था । गलताजी में भगवान की गुफा की ओर से कई बार शेर के आने-जाने की बात सुनी थी ।

जयपुर में उत्सव पूरा होने के बाद भैयादूज के दिन भगवान पुष्कर पधारे । मुझे भी साथ चलने को कहा, परन्तु इतना सारा सामान घर पर पहुँचाने की जिम्मेदारी थी । भगवान जब पधार रहे थे तब जयपुर घर का सामान भी एक ओर पड़ा था वह देखकर पूछा, "यह सामान किसका है ?" मैंने कहा, मेरा है । तब बोले, तुम्हारा है ? मेरे हाँ कहने

पर कहा, "तुम्हारा है ?" हाँ कहने पर तीसरी बार पूछा, "अच्छा तुम्हारा है ?" मैं समझ नहीं पाती थी कि क्या कहना चाहते हैं ? तो कहा, "अच्छा, अभी भी हमारा और तुम्हारा अलग-अलग है ?" कितनी प्यार भरी एकता थी इन शब्दों में ? यह सुनकर भाव-विभोर होकर गद्गद् हो गई । मैं तीज के दिन रात को पुष्कर पहुँची । वहाँ पर खूब मेहमान आये थे और कहीं रहने के लिये जगह न होने से मैं तीजा-बाई आश्रम के बरामदे में अकेली रही थी । अन्य सब बहनें एक कमरे में थीं । वे सब एक दूसरों की सिखावन से मेरे साथ नहीं बोलती थीं । जैसे टोकरी में रखे हुए आम में से एक फल यदि सड़ जाता है तो उसको न निकालने पर वह सारे आम को खराब कर देता है अर्थात् "जूठे का झुंड बन जाता है, सत्य अकेला पड़ जाता है ।" वे सब एक-दूसरों की अनुपस्थिति में परस्पर एक-दूसरे के प्रति इतना अभाव दिखाते थे कि अकल्पनीय बातें करके एक-दूसरों के नाम, कैकेई, मंथरा आदि रखते थे और फिर मेरे सामने सब एक हो जाते थे । ऐसा मायाजाल देखकर चकित हो उठती थी । धीरे-धीरे कई अनुभवों के बाद भगवान की असीम कृपा से यह कुसंग छूट गया । उस दिन भगवान ने बुलाकर पूछा, "रमा, भोजन किया ? क्या बनाया ?" मैंने अपनी अनुकूलता से आलू-पौहे बनाकर रखे थे । अभी भोजन नहीं लिया था जिससे भगवान से पूछा, "आप लेंगे ?" प्रत्युत्तर में लिख दिया, "अरे वाह ! मैं तो चाहता हूँ बटेटा-पौंआ ।" मेरी खुशी के लिये थोड़ा स्वीकार किया ।

चतुर्थी जन्मदिन निमित्त उत्सव होने के कारण बहुत भीड़ थी । व्यक्तिगत पूजन के लिये बुलाया, बहुत ही प्रसन्न थे । पंचमी के दिन वहाँ से भगवान कोटा होकर उज्जैन पधारने वाले थे । अजमेर गुजराती समाज में थोड़ी देर रुकने वाले थे । इसलिये सब भाई-बहन वहाँ पहुँच गये थे । मैं अभी पुष्कर में ही थी । सबके जाने के बाद मुझे अपने साथ गाड़ी में अजमेर ले गये । मैं सोचती थी कि जयपुर में भगवान की अनिच्छा से सेवा के लिये माँग की थी तो नाराज होंगे जिससे अब जयपुर नहीं आयेंगे तो ? उसके प्रत्युत्तर में अजमेर से आगे जाते समय कहा, "देखो रमा, अब माफामाफी हो गई है ना ? फिर अब ऐसे विचार नहीं करना, सब भूल जाना, मुझे तो कुछ याद नहीं है ।" मैं अजमेर से जयपुर जाकर अपने नित्य कार्य में लग गई । थोड़े दिनों बाद उज्जैन से पत्र आया ।

श्री रामचंद्राय नमः

ता. २६.११.६६
उज्जैन

प्रिय रमा, तुम्हारा पत्र मिला

मेरा स्वास्थ बराबर नहीं कारण विश्राम का अभाव और सुन तो जैसा स्वास्थ पुष्कर था वैसा ही अब है ।

रमा मेरी प्रबल इच्छा है कि विश्राम लूं, पर एक न एक कारण आ ही जाता है ।

मैं यहाँ से कल इन्दौर होकर पूना जा रहा हूँ, वहाँ से तिरुपती जाने का विचार है, तू मेरी चिन्ता न करना, मुझे तेरी वेदना मालूम है और शीघ्र ही उसका निकाल होगा, सबको आसीस ।

रणछोड़दास

थोड़े दिनों बाद पिताजी को कारणवशात् बम्बई जाना पड़ा । उन दिनों भगवान भी बम्बई में ही विराजते थे जिससे उन्हें दर्शन का लाभ मिला, लेकिन बातचीत करने का मौका न मिलने से भगवान बम्बई से पूना पधारे तब पिताजी को वहाँ बुलाया था । मुझे बुखार आता था, यह बात पिताजी से सुनकर भगवान ने पत्र लिखवाया ।

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिय रमा,

सादर आशीर्वाद

तेरे स्वास्थ की चिंता है तार दिया है ।

मेरा स्वास्थ वैसा ही है, चित्त प्रसन्न है, चिंता करना नहीं, राजकोट से छः भाई खार आये थे, उनकी प्रतिज्ञा है कि एकांत में आराम कीजिये वरना हम अनशन करेंगे ।

मैं एकांत में आराम के लिये दक्षिण जा रहा हूँ, जहाँ भी ठंडी कम होगी वहाँ डेढ़ महीना रहूँगा । अनुकूल स्थान देखेंगे, हाल में स्थान निश्चित नहीं है, मथुरादासभाई सब इन्तजाम करके चले जायेंगे ।

पुरुषोत्तमभाई बम्बई में मिले थे, उनको पूना बुलाया है तो आ गये हैं, अभी बातचीत कुछ नहीं हुई है, होने पर मैं तुझको लिखूंगा ।

मारवाड़ में ठंड़ी बहुत होने के कारण मैं उस तरफ नहीं आया हूँ।

रणछोड़दास का आसीस

हाल तो जयपुर में गृहकार्य और यथाशक्ति नित्य नियम में समय निकलता था । कभी स्वप्न दर्शन मिलने पर भी संतोष होता था । भगवान का प्रोग्राम मालूम न होने से पत्र भी नहीं लिख सकती थी । केवल प्रतीक्षा में ही दिन बिताने थे, लेकिन बहुत दिनों तक कोई खबर न मिलने से तबियत के लिये चिंता बढ़ जाती थी और मन व्यथित हो जाने से भजन में भी मन नहीं लगता था । करीब एक महीने के बाद पत्र मिला ।

श्री रामम्

१४.१.६७

वेलुर

रमा सादर आसीस

अस्वस्थ हूँ, रमा खूब स्वास्थ खराब रहा है, अब कुछ अच्छा है । यहाँ पर ज्यादा ठहरना होगा या नहीं, डाक बंगले में हूँ ।

पत्र देरी से दे रहा हूँ सो दरगुजर करना । खूब याद आती है, पर क्या करना, तुम चिंता न करना हो ।

सबको आसीस

रणछोड़दास

यह पत्र मिलने पर तबियत के लिये विशेष चिंता होने लगी हालाँकि जब भी गाँव का नाम और रहने का स्थल बताते थे तब बुलाने का इशारा रहता था परंतु इतनी समझ नहीं थी । बहुत दूर होने से कैसे जा सकती हूँ । ऐसे विचारों से इच्छा होने पर भी मन मारकर रह जाती थी और जल्दी से जल्दी कब दर्शन मिलेंगे उसके लिये प्रभु प्रार्थना करती रहती थी ।

भगवान ने प्रार्थना की पद्धति भी बताई थी । रोज रात को सोने से पहले नित्य प्रार्थना करनी चाहिये क्योंकि प्रार्थना में बहुत बड़ा बल है ।

हे प्रभु ! करुणामय भगवान, आज के दिवस पर्यंत जो कुछ असत्य या अयोग्य कर्म हुआ हो उसके लिये क्षमा माँगती हूँ मुझे ऐसी बुद्धि और शक्ति दो कि अब भविष्य में कोई भी ऐसे कर्म मुझसे न होने पावे । बुद्धिदाता तो तू ही है । प्रभु, तू ही हमारी रक्षा करना और ऐसे कर्मों से सदैव दूर रखना ।"

पूरे दिन की अपनी दिनचर्या के लिये आन्तर्दर्शन करना चाहिये । कोई अच्छा कर्म किया हो तो वह नम्र भाव से भगवद् चरणों में अर्पण करने से अहंकार से बच सकते हैं ।

"हे प्रभु ! आज यह जो कुछ सतकर्म करने का निमित्त मैं बनी हूँ वह तेरी ही कृपा का फल है जो मैं तुझे अर्पण करती हूँ सदैव ऐसे ही सत्कार्य के निमित्त बनाना । जीव के लिये तेरी कृपा के बिना यह असंभव है ।"

इसी प्रकार से रोज सुबह भी उठते ही प्रभु प्रार्थना करनी चाहिये ।

"हे दयालु, दीनबंधु ! आज शुभ मंगल प्रभात में तूने मुझे जगाया है, पूरे दिन तू ही सद्बुद्धि देकर मुझे सत्कार्य मे निमित्त बनाना और तेरे ही चरणों में मेरा प्रेम बना रहे और तेरा ही स्मरण रहे ।"

भगवान कहते थे, "रोज प्रातः और रात्रि को ऐसे प्रार्थना करोगे तो अवश्य जीवन बदल जायेगा क्योंकि अपने रोजिंदे जीवन में कोई भी अयोग्य कार्य करने का प्रसंग आयेगा तो रुक जाओगे कारण फिर रात की प्रार्थना में हिसाब भी देना पड़ेगा ।" इस तरह से नित्य आत्मचिंतन करने के लिये कहते थे । इसके अलावा नौग्रह की युति के समय जो प्रार्थना बताई थी वह भी रोज करने को कहा था ।

कभी-कभी मैं साथ रहने की इच्छा रखती थी तब भगवान मुझे जयपुर भेजते समय कहते थे, "एकांत में जाता हूँ" उस समय मैं कहती थी, "भगवान, मेरे से ही एकांत में ना ?" कारण बाद में मालूम होता था कि कोई ना कोई तो साथ में था ही । उत्तर देते थे, "रमा, तुम्हें जयपुर भेजता हूँ तो मुझे चिन्ता नहीं रहती क्योंकि तुमारा जीवन ठीक

लाइन पर चल रहा है और उसे घर भेजने में डर रहता है ।" तब एक बार मैंने कहा था, "यदि आपके साथ रहने को मिले तो मैं भी लाइन से बाहर हो जाऊँ?" उस वक्त लाइन से बाहर हो जाने का अर्थ मालूम न था । यही समझ थी कि लाइन से बाहर होना याने बताये हुए नियम भजन नहीं करना । मेरे शब्द सुनकर गुस्से से कहा, "क्या बोलती हो, तुम्हें कुछ समझ है ? रमा, तुमसे ऐसी आशा नहीं रखी थी" यह सुनकर भगवान की ओर देखकर एकदम घबरा गई, सोचा मैं कुछ अयोग्य बोली हूँ । पन्द्रह दिन के बाद फिर से पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

काठपड़ी

१-२-६७

प्रिय रमु सादर आसीस,

स्वास्थ साधारण है राहत कार्य के लिये बिहार जाने का विचार है और थोड़े दिन में निकल जाऊँगा सबको आसीस

रणछोड़दास

पन्द्रह दिन में फिर दूसरा पत्र आया :–

१५-२-६७

रमा. सा. आ.

मेरा स्वास्थ ठीक-ठीक है

भगवान का आज प्रागट्य दिवस है प्रणाम करना । मैं बिहार जा रहा हूँ वहाँ जाकर पत्र लिखूंगा निराश न होना सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास



[७४]
कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा

भगवान राहत कार्य के लिये बिहार पधारे कारण इन दिनों में वहाँ पर भारी दुष्काल होने से राहत कार्य चालू करना था । वहाँ से पत्र आया :–

श्री सद्गुरु परमात्मने नमः

रंका
७-३-६७

प्रिय रमा

सादर आशीर्वाद

मेरा स्वास्थ ठीक नहीं है मैं कल यहाँ पहुँचा हूँ यहाँ पर नेत्रयज्ञ २८ से शुरू है राहत कार्य भी यहाँ होगा १६ से, आज मैं अहमदाबाद जा रहा हूँ २५ को यहाँ आ जाऊँगा ।

यहाँ का पता –
श्री मानव राहत मंडल बिहार
पोस्ट रंका जि. पलामु,
वाया गढ़वा रोड बिहार
सबको आसीस

रणछोड़दास

यह पत्र पढ़ने पर जल्दी बिहार जाने के लिये मन तड़प रहा था परन्तु बम्बई से मनहरभाई का पत्र आने पर मालूम हुआ कि वहाँ पानी की बहुत कमी है जिससे जरूरी स्वयंसेवकों को भगवान के बुलाने पर ही जाने का है और जयपुर से काफी दूर होने के कारण यह भी विचार आता था कि इतनी दूर बिना बुलाये जाने से नाराज होंगे तो ? इसलिये बुलाने की राह देख रही थी । पिताजी को कारणवशात् बम्बई

जाना पड़ा उस कारण मैं अकेली ही गलताजी जाती थी । मैंने सुना था कि संध्या समय पर गलताजी गुफा में शेर आता है यह बात सत्य है या नहीं वह भी एक बार देखने की इच्छा थी इसलिये दोपहर में गलताजी जाने के लिये घर से देर से निकली और शाम को अंधेरा होने तक गुफा में बैठी रही परन्तु मुझे तो शेर दिखा नहीं ....

बहुत देर हो गई थी, घर जा रही थी तब मेरे पीछे-पीछे दो लड़के आने लगे उनका अयोग्य व्यवहार देखकर मैंने सोचा, मेरे पीछे आकर घर देख लेंगे तो ! उस कारण गलताजी से सीधी गोविन्दजी के मन्दिर दर्शन को गई । जयपुर रहने गये तब से उस मन्दिर का नाम सुना था परन्तु कभी देखा नहीं था । इसकी विशेषता जानने को मिली थी कि कोई भी व्यक्ति जो कुछ इच्छा लेकर वहाँ जाते हैं वह पूरी होती है इसलिए मैंने भी गोविन्दजी से प्रार्थना की, "ऐसी कृपा करो कि मेरे भगवान मुझे जल्दी अपने पास बुलावें ।" आरती का समय होने से बहुत भीड़ थी । वहाँ से निकलकर जल्दी-जल्दी घर पहुँचकर देखा तो वह दोनों लड़के मेरे पीछे ही थे । इससे डर लगा कि इन लोगों ने घर देख लिया यह ठीक नहीं है, वैसे मुझे तो हर गुरुवार को गलताजी जाने के सिवा घर की सीढ़ी उतरने का भी कारण नहीं था । उस दिन रात को नींद नहीं आई बस एक ही इच्छा थी कि जल्दी से भगवान के पास जाने को मिले ।

दूसरे दिन पिताजी बम्बई से आ गये और मेरा बिहार जाने का पिताजी की सम्मति से नक्की हुआ । जयपुर से देहली होकर देहरी आन सोन से गढ़वा रोड तीसरे दिन रात को साढ़े तीन बजे पहुँची । प्रतीक्षालय में नित्य कार्य से निपटकर सुबह पांच बजे की बस से रंका गई, जहाँ पर राहत कार्य का केम्प चल रहा था । बिना बुलाये जाने से नाराजगी का डर था परन्तु पिताजी ने कहा था रहने की सुविधा और भगवान की आज्ञा हो तो रुकना वरना दर्शन करके चली आना ।

सुबह सात बजे रंका पहुँची । केम्प में पहुँचते ही दरवाजे के सामने के हॉल में प्रार्थना हो रही थी, सबके साथ भगवान भी विराज रहे थे । प्रणाम करने के लिये जाने को भी डर लगता था कि सबके सामने गुस्से से पूछेंगे, क्यों आई तो ? लेकिन दूर से मुझे देखकर प्रसन्नता से मुस्कुराये

जिससे श्रीचरणों तक पहुँचने में बल मिला । प्रणाम करने पर कहा, "अरे ! तुम आ गई ? मेरा पत्र तुमको नहीं मिला लगता है ?" मेरे ना कहने पर पूछा, "किस तरह से आई ?" सब बात सुनकर बोले, "बराबर वो ही रास्ता है ।" प्रार्थना पूरी होने पर मेरा सामान हॉल में अपने कमरे के पास के कोने में रखवाया । दो दिन से उपवास थे । दोपहर में करीब दो बजे मुझे पूजन के लिये बुलाया । इससे पहले जैसी तबियत देखी थी उसके मुताबिक स्वास्थ काफी नरम लगा । मुझसे पूछा, "रसोई का सामान साथ में लाई हो ना ?" मेरे हाँ कहने पर आगे कहा, "देखो, यहाँ लम्बे समय रहना है तो अभी तुमारे पास जो नाश्ता है उससे चला लो । शाम को तुमारे लिए रसोई घर बनवा दूंगा, तुम अपनी रसोई वहाँ बना लेना और सोना यहीं पर हॉल में मेरे कमरे के पास ।" मैंने कहा, "भगवान, आपने मुझे पत्र में आने के लिये ना लिखी है ?" तो कहा, "अरे नहीं मैं दो दिन के बाद अनंतपुर जा रहा हूँ, वहाँ तुझे बुलाया था । वहाँ से मेरे साथ ले आता, पर खैर ! अब तो तुम आ गई ।" मैं भगवान के लिये घर में ही बनाये हुए पेड़ा, सुखड़ी और बेसन के लड्डू ले गई थी, वह देने पर कहा, यह डिब्बा अभी अपने पास रखो, दो दिन बाद मैं बाहर जाऊँगा तब तुमसे मांगूंगा ।" बिहार राहत कार्य दौरान भगवान ने मिठाई न खाने का नियम लिया था, अभी यह बात मुझे मालूम न थी । दो दिन के बाद बाहर जाते समय मुझसे मांग कर वह मिठाई ले गये ।

शाम को पाँच बजे हॉल से बाहर के बरामदे में एक कोने में मेरे लिये तालपत्री से रसोईघर बंधवाने के लिये बैठे थे । अपनी निगाहों के सामने यह काम करवाया कारण जानते थे कि बाद में कोई मेरी सुनेगा नहीं । सामने से धूप आ रही थी इसलिए एक माजी बार-बार भगवान को अन्दर पधारने के लिए आग्रह करते रहे पर सुनते ही नहीं थे और काम पूरा होने के बाद ही वहाँ से उठे । वह माजी धीरे-धीरे आग्रह में से दुराग्रह करने लगे तब कड़क स्वर से कहा, "तुम्हें धूप लगती है तो तुम जाव, मेरे लिये जो इतनी दूर से आई है उसके लिये क्या मेरा इतना भी कर्त्तव्य नहीं कि रसोईघर बंधवा दूँ ?" मेरे लिये मिट्टी के तेल का डिब्बा आदि कोठार में से मंगवा दिया । दूसरे दिन से वहीं पर मैं अपनी रसोई बना लेती थी और मैं अपनी पूजा में भगवान

को भोग लगाकर भोजन कर लेती थी । उन लोगों की दृष्टि में मैं और हमारा परिवार निम्न और निकम्मे माने जाते थे कारण हमारी आर्थिक स्थिति साधारण थी । जिस तरह से मुझे कोई जवाब नहीं देता था और मेरा आगमन रुचिकर नहीं लगता था वैसे ही मेरे पिताजी के साथ भी शुरू से श्रीमंत शिष्यों द्वारा व्यवहार होता था । मेरा सबसे बड़ा अवगुण यही था कि मैं धनहीन पिता की धनहीन पुत्री थी ।

धर्मक्षेत्र में भी हर क्षेत्र की भाँति साधारण जन-समुदाय धन को ही प्राधान्यता देते हैं, तब सत्य, नीति, प्रमाणिकता यह तो उनकी दृष्टि में गौण बन जाता है लेकिन भगवान के सगुण स्वरूप की हाजरी में वे स्वयं चाहते थे फिर अन्य व्यक्ति क्या कर सकते थे ? पूर्ण रूप से भगवान ही ध्यान रखते थे । उसी दिनों में वह माजी के परिवार की कोई बेटी का संबंध कहीं न होने से मेरे भाई के लिये भगवान के पास खूब आग्रह किया परंतु भगवान ने हमसे कहा था, "इस परिवार में तुम लोगों का काम नहीं है ।" और हमारी ओर से स्वयं भगवान ही जवाब दे देते थे । समग्र परिवार के प्रति भगवान की ऐसी ही कृपा दृष्टि सदा रही है क्योंकि भगवान तो सत्य, नीति, प्रमाणिकता, श्रद्धा, भाव, भक्ति और अंतःकरण की शुद्धि चाहते हैं और वैसे भी "प्रणतपाल कुटुंब रघुराई" तो है ही ! !

भगवान के आदेशानुसार राहत कार्य में कभी परोसने के लिये और शाम को आलू अमनियाँ करने तो कभी वार्ड में जाती थी कारण नेत्रयज्ञ भी चल रहा था । बाह्य दृष्टि तो डाक्टर भी अपनी कुशलता से प्रदान कर सकते हैं लेकिन आंतर दृष्टि प्रभु कृपा के बिना कदापि संभवित नहीं और जीवात्मा के लिये बाह्य अंधापन से अंतःकरण का अंधापन अधिक भयानक है । कई जीवात्मा मोहांध, अज्ञांध, मदांध, क्रोधांध, कामांध लोभांध है ही जो सारे मानस रोग हैं जैसे रावण बीस आँखें होते हुये भी अंधा ही था, जभी तो अंगदजी ने कहा :– बीसहु लोचन अंध······· आज शारीरिक रोग के लिये हम सब चिंतित रहते हैं लेकिन इस भयावने मानस रोग से बचने के लिये भगवान का अनुग्रह ही चाहिये और वह अनुग्रह प्राप्त करने के लिये जीवात्मा की शक्ति कहाँ ? इसीलिये तो :–

तुम्हरी कृपा पाव कोई कोई·······

कृपा पात्र बनने के लिये निर्मल मति से शुद्ध आचरण के साथ नाम स्मरण ही मात्र साधन है कारण बिनु हरि भजन न जाहि कलेशा…….. नेत्रयज्ञ तो करीब पूरा होनेवाला था । जनरल दवाखाना और सिलाई कार्य के साथ भाइयों के लिये ड्राइविंग सिखाने का काम भी चल रहा था । साथ-साथ गौशाला का कार्य भी चल रहा था । तब माँ-पिताजी जयपुर से आ गये थे और पिताजी गौशाला सम्हालते थे । १६६६ की साल में मुँगेर में संत सम्मेलन के समय गौवध बंद कराने के आंदोलन प्रसंग में भी भगवान ने कहा था, "यदि गौवध बंद कराना चाहते हो तो हरेक हिंदू को जिसके पास सुविधा है उन्हें अवश्य गौ पालन करना ही चाहिये । सबको यथाशक्ति सहयोग भी देना चाहिये । गैया दूध दे या न दे फिर भी वह अपनी माता है । क्या माँ वृद्ध होने पर उन्हें बेच दोगे ?" गौ पालन के लिये पूर्ण लक्ष्य देकर योग्य व्यक्तियों से यह कार्य करवाते रहते थे । मैं अधिकतर भगवान के पास ही रहती थी, उनकी निजी सेवा मिलना तो मुश्किल था परंतु कभी किसी को पत्र लिखना हो या कभी एकाध व्यक्ति का भोजन बनाने के लिये कहते थे । वहाँ पर एक वृद्ध दादाजी तन, मन, धन से अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहने लगे, "भगवान, मैं क्या सेवा कर सकता हूँ ? आप मुझे कुछ बताइये ।" उनसे कहा, "खूब राम राम करो, जिसने राम नाम लिया उसने खूब काम किया ।"

सखा परम परमारथ एहु, मन क्रम बचन रामपद नेहू

एक गृहस्थ अपने कौटुंबिक मिल्कत के हिस्से में अन्याय होने की बात भगवान से कहने लगे तब कहा, "हमारे हरियानी अच्छे रहे कोई झंझट ही नहीं, पीछे कुछ छोड़ा ही नहीं, सब अपना-अपना कमावें और अपना-अपना खावें ।"

कभी छोटी-सी भी अपनी निजी सेवा बताते थे उस वक्त विरोध हो जाता था और परिणाम में मेरे प्रति नाराजगी दिखानी पड़ती थी । करीब रोज कुछ बहनों के व्यक्तिगत पूजन के बाद अंत में मुझे बुलाकर भोजन क्या बनाया ? आदि पूछते थे । एक दिन मैंने दलिया और भाजी बनाई थी । रोज सुबह दस से बाहर बजे तक सबकी पूजा का कार्यक्रम चलने पर मैं अपनी रसोई बनाकर भोजन कर लेती थी । उस दिन

दलिया में नमक ज्यादा हो गया था । बारह बजे पूजा समाप्ति के बाद रोज की भाँति बुलाकर पूछा, "आज क्या बनाया है ?" मैंने कहा, "दलिया", मुस्कुराकर कहा, "नमक ज्यादा हो गया था क्यों ?" मैंने कहा, "भगवान, आपको कैसे मालूम हुआ ?" तो कहा, "रोज तुम भोग लगाती हो ना ? फिर मुझे मालूम नहीं पड़ेगा ?" प्रत्यक्ष में तो मैं भोजन नहीं करा सकती थी परन्तु भगवान करुणा करके मेरा प्रेम भाव अवश्य स्वीकारते थे ।

आनन रहित सकल रस भोगी...............

इस अलौकिकता की अनेक बार अनुभूति करने पर भी जीव स्वभाव से भूल जाती थी ।

[७५]

प्रणवौं सोई कृपाल रघुनाथा

भगवान ने राहत कार्य के लिये चावल खरीदने के लिये राजकोट के व्यापारी भाइयों को उड़ीसा और आंध्र में भेजा । उन्हें वहाँ चावल न मिलने से निराश होकर वापिस आये, उस दिन भगवान की तबियत नरम हो गई । खूब खाँसी और उल्टी होने से सब कार्यकर घबरा गये, भगवान से विनती करने लगे, "आप बम्बई पधार कर आराम कीजिये, आपके आशीर्वाद से यह कार्य चलता रहेगा ।" तब कहा, "मेरी बीमारी चावल है, चावल मिल जाने पर मैं ठीक हो जाऊँगा ।" यह सुनकर कार्यकर अधिक सोच में डूब गये । कार्यकरों की मीटिंग हुई । अपने को जल्दी और अधिक प्रमाण में किस प्रकार से चावल मिले उस हेतु से श्रीमती इन्दिरा गांधी को पत्र लिखने का विचार किया । इसके लिये भगवान की आज्ञा लेने गये तो कहा, "लिखो ।" आज्ञा मिली है समझ कर, सोचकर पत्र लिखा गया । बाद में भगवान के पास सही कराने के लिये आये तब पत्र हाथ में लेकर थोड़े क्षणों के बाद पत्र

फाड़ दिया ! सब स्तब्ध होकर देखते रह गये । तब भगवान बोले, "देखो, कभी किसी से माँगना अपने सिद्धान्त के विरुद्ध है और यदि मांगे बिना रहा ही नहीं जाता है तो हजार हाथ वाले से माँगो, जो हजार हाथ से इतना उठाकर देगा कि तुम दो हाथ से सम्हाल भी नहीं सकोगे । माँग-माँग के इनसे क्या माँगते हो ? इतना विश्वास रखो कि यदि तुम सच्चे मन से निःस्वार्थ सेवा कर रहे हो तो कभी भी रुकावट नहीं आ सकती । जाव, आंध्र चले जाव, वहाँ से जरूर चावल मिल जायेंगे । खरीद करने वाले भाइयों को आंध्र भेजकर इधर गोदाम तैयार करने को कहा और सूचना दी, "ऐसा पक्का काम करना कि एक दाना भी बिगड़ने न पावे ।" इस विषय में बहुत ही व्यवस्थित रहे । ऐसे प्रसंग पर कहा, "देश में अनाज की कमी नहीं है परन्तु उसको सम्हालने की व्यवस्था नहीं है । कितना अनाज चूहे खा जाते हैं, कितना भीग जाता है, कितना सड़ जाता है और कितना अनाज अपनी सीमाओं से बाहर चला जाता है । आज तो ऐसा है सबको स्वार्थ लगा है । हर कोई अपनी रिश्वत लेते जाते हैं और जाने देते हैं । कागजों में सही कर देते हैं, हमने लिया सो तुम भी लेना इन गधों को जाने देना, ऐसी दशा है देश में । ऐसे देशद्रोहियों को तो कड़ी सजा होनी चाहिये ।

देश के लिये सदैव खूब चिंतित रहते हैं । एक बार किसी ने भगवान से कहा, "गुरुजी, आप इतने शक्तिमान हो और इतना देशप्रेम है तो फिर आप ही प्रधानमंत्री क्यों नहीं बन जाते ? तब कहा, अरे बाबा ! मुझे नरक में क्यों डालते हो ?"

गोदाम तैयार हो जाने पर कुछ प्रमाण में चावल भी आ गये । पूरा गोदाम भर गया । रोज सौ बोरी चावल का उपयोग होता था, उस हिसाब से सात महीने तक यह चावल पूरे पड़ने वाले नहीं थे लेकिन उतने समय तक बिल्कुल कमी के बिना बराबर कार्य चलता रहा और अंत में केम्प की समाप्ति होने पर बहुत चावल एकदम सस्ते भाव से राशन में बांट दिये गये । एक दिन स्वास्थ नरम था तब बहुत खांसी होते हुए भी भगवान ने यह काव्य रचना की थी :

मृत्यु ने यम से जाकर यही पुकारा
कर दिया बनाने बंद तुम्हारा द्वारा

खाँसी से निशदिन वो तो लड़ता रहता
उल्टी की यातना खुशी-खुशी वह सहता
पर बुखार भेजा वह भी उससे हारा……कर……

निज जीवन से करता है मनमानी
रह गये हाड़ मज्जा की नहीं निशानी
बैठा है लेकर मानो अमर ईजारा……कर……

यम ने हँसकर मृत्यु को समझाया
यह है कीट बिचारा, यह तो प्रभु की माया
जट पकड़कर लाना, जब प्रभु का हो इशारा
कर दिया बनाने, बंद तुम्हारा द्वारा

परमात्मा के परम अनुग्रह से यह कार्य खूब अच्छी तरह चल रहा था। अधिकतर रोज सुबह प्रार्थना के बाद या शाम को, प्रसंगानुसार भगवान थोड़े समय के लिये भी प्रवचन देते थे। जिसमें से कोई-कोई प्रसंग याद है जो इस प्रकार है;

एक बार कोई पदाधिकारी भगवान के दर्शन को आये जिन्होंने कहा, "बाबाजी, मुझे कुछ चमत्कार बताइये, मैंने सुना है आप बहुत बड़े चमत्कारी महात्मा हैं।" "अरे भाई, मैं कुछ चमत्कार जानता नहीं हूँ, यह सब व्यर्थ की बातें हैं।" उन्होंने बहुत आग्रह किया और कहा, "बाबाजी, आपके चमत्कार से तो इतना बड़ा कार्य चल रहा है, आप कृपा करके मुझे कुछ बताइये।" "अच्छा, चमत्कार देखना चाहते हो तो सुनो, तुम इतने बड़े पदाधिकारी, इतने पढ़े-लिखे हो और मैं तो कुछ पढ़ा भी नहीं हूँ, बस ऐसी बीमार हालत में पड़ा रहता हूँ फिर भी तुम्हारे जैसे बड़े व्यक्ति यहाँ आकर नीचे बैठ जाते हो और सिर झुकाते हो इससे बड़ा चमत्कार कौन-सा हो सकता है ?

कदम में पाक आरफ के, है सिर झुकते शहेनशाही
तो सिदक दिल से करो खिदमत, तुम इस असली अमीरों की

एक दिन भगवान से एक भाई कोई साधु के बारे में बता रहे थे कि भगवान वे बहुत चमत्कारी है, किसी को सोने की अंगूठी तो किसी को चूड़ी जैसी चीजें अपनी शक्ति से सबके सामने हाथ में से निकालकर

देते हैं और कई बार सबके समक्ष खूब प्रमाण में कुमकुम बिखेरते हैं ।" यह सुनकर कहा, "मैं ऐसे चमत्कारों में मानता नहीं हूँ, यह सब खोखलापन है, यदि ऐसी सब चीजें दे सकते हैं तो अभी यहाँ अनाज की बहुत जरूरत है, यहाँ आकर अनाज का ढेर लगा दें तो मैं मानूं । इसमें पड़ना नहीं, यह सब जादूगरों के खेल जैसा होता है ।"

इतने बड़े कार्य में यदि एक पाई का भी हिसाब नहीं मिलता तो भगवान से छिपा नहीं रहता था । समूह में स्पष्ट कह देते थे, "देखो, जो शक्तिमान है उन्हें बराबर योगदान देना ही चाहिये । धन की तीन गति होती हैं, दान, भोग, और नाश इसलिये गंगा बह रही है तब जितना पी सको पी लो, यह अवसर बार-बार नहीं आता । मानसजी के आधार पर,

येन केन विधि दिन्हेऊ दान करे कल्याण

और **पंछी पानी पीने से, घटे ना सरिता नीर;**
धर्म किये धन ना घटे, सहाय करे रघुवीर ।
पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम;
दोनों हाथ उलेचिये, यही सयानो काम ।

वैसे भी धन शुद्धि के लिये अपनी आय का दसवाँ हिस्सा निकालना ही चाहिये । देखो, यह धर्मादा का पैसा है कोई एक पाई भी इधर-उधर करेगा तो परिणाम भोगना पड़ेगा और यह समझना कि तुम गरीबों का खून चूस रहे हो क्योंकि इन पैसों से अनाज आता है और उस अनाज से गरीबों का खून बनता है । किसी को लगता होगा कि गुरुजी तो कमरे में पड़े हैं उन्हें क्या मालूम ? परंतु यह न भूलना कि मैं रहता इधर हूँ, देखता उधर हूँ । कई बार अचानक समष्टि रसोईघर में जाकर चावल का दाना दबाकर देखते थे, थोड़े भी कच्चे मालूम होने पर कड़काई से कह देते थे, "क्या तुम ऐसा खाते हो ? यह न समझना कि तुम इन पर उपकार करने आये हो उल्टे ये लोग आप लोगों पर उपकार करते हैं कि तुम्हें अपने ऋण से मुक्त कर रहे हैं ।" अपने देशबंधु और विश्वबंधुत्व की बातें तो करते हैं, लेकिन यह सोचा है कि घर में यदि भाई भूखा बैठा हो तो अपने गले से नीचे भोजन का ग्रास उतर सकता है ? यदि नहीं तो फिर अपने इतने भाई-बहिन भूखे बैठे हों तब आप लोग पेटभर भोजन कैसे कर सकते हो ?

हरेक क्षेत्र में हरेक कार्यकर्ता को अपने कार्य में सावधान रखते थे। बिहार में उस वक्त इस विपत्ति का लाभ उठाकर बहुत बड़े प्रमाण में धर्मांतर कराने का काम जोर-शोर से चल रहा था। भगवान की महत्ती कृपा से इस राहत कार्य से काफी हिंदू समाज धर्मांतर से बच गया। "जहाँ कोई नहीं जायगा वहाँ हम जायेंगे" इस सिद्धांत के मुताबिक पलामु जिले के रंका गाँव में कार्य चल रहा था जहाँ पानी के लिये बहुत मुसीबत थी। सोलह मील दूर से टैंकरों द्वारा रात-दिन पानी पहुँचाया जाता था। रात भर दाल-चावल बनते रहते और सुबह दस बजे से पंगत चालू हो जाती थी जो दोपहर में तीन से चार बजे तक भोजन चलता रहता था और रोज पैंतीस-चालीस हजार लोग भोजन पाते थे। रंका से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर चिनिया, बरवारी आदि गाँवों में ट्रक में भोजन भेजा जाता था। अधिकतर सब सामान की खरीदी डाल्टनगंज से की जाती थी। शुरू में सरकारी अधिकारियों द्वारा विरोध भी हुआ। उनका कहना था इस तरह से प्रजा आलसी हो जायेगी, इसके प्रत्युत्तर में भगवान ने कहा, "देखिये, अभी तो इन लोगों के शरीर काम करने लायक हैं नहीं फिर भी भोजन देकर काम करने की शक्ति हम देते हैं और इन लोगों को काम देना आपका कर्त्तव्य हो जाता है। इन लोगों से सड़क बनवाइये, चाहे तालाब, कुएँ खुदवाइये, जो भी आपको उचित लगे काम करवा सकते हैं और यह तो बताइये कि आपने यहाँ का भोजन चखकर देखा है ? ऐसा भोजन पाने के लिये दो-चार मील से पैदल चलकर कौन आयेगा, यह विचार किया ? हम इनको मिठाई तो बाँटते नहीं हैं, जिसके पास कुछ नहीं है वो ही तो यहाँ आते हैं। एक बार अच्छी वर्षा हो जाने पर उनको काम मिलते ही ये लोग अपने आप आने बन्द हो जायेंगे।

भगवान के साथ चर्चा-विचारणा कार्य का निरीक्षण करके खुशी व्यक्त करते हुए संतोष के साथ वे लोग चले जाते थे। अखबारों में या अन्य किसी प्रकार से भी जाहिरात करने में भगवान का विरोध था। हमेशा कहते थे, "काम करो, ढोंढों नहीं।" परन्तु यहाँ इतने बड़े प्रमाण में और लम्बे समय तक कार्य चलने से मिनिस्टर आदि लोगों के आने से अखबारों में जाहिरात हो ही जाती थी यह बिल्कुल पसन्द नहीं था। इससे समाज में कहानेवाले बड़े लोगों की भीड़ बढ़ने लगी तबसे मानों

भगवान अपनी लीला समेटना चाहते हों ऐसा प्रतीत होने लगा कारण,

बहुरि राम अस मन अनुमाना, होइहिं भीर सबहिं मोहि जाना

प्रसंगोपात् जब कभी भाविकजन अपनी परिस्थिति अनुसार बड़ी फूलमालायें लाकर चढ़ाते थे तब कहते थे, "देखो, आप लोगों का भाव बराबर है लेकिन भाव से चढ़ाया हुआ एक पुष्प भी बहुत होता है। सोचो, यदि इतने रुपये जिसको जरूरत है ऐसे व्यक्ति को देकर किसी भी प्रकार से मदद करो तो कितना अच्छा होवे। मध्यम वर्ग की दशा अधिक दयनीय होती है, न किसी से माँग सकते हैं और व्यवहार भी पूर्ण रूप से सम्हालने पड़ते हैं। किसी बच्चों की पढ़ाई रुकती हो, किसी की बीमारी में दवाई की जरूरत हो या किसी विधवा के घर में अनाज या कपड़ों की जरूरत होवे वहाँ गुपचुप पहुँचा देना चाहिये। यदि समाज का हरेक व्यक्ति अपनी शक्ति अनुसार अपना कर्त्तव्य समझकर एक-दूसरों के प्रति प्रेम-भाव रखकर सहायता देता रहे तो गरीबी कहाँ रहेगी? मध्यम वर्ग को गुपचुप मदद करनी ही चाहिये। इसमें मान-कीर्ति सब नहीं मिलेगा परन्तु अन्तर के आशीर्वाद अवश्य मिलते हैं और यही मानव का कर्त्तव्य है।"

आज कई बार निज अनुभूति के पश्चात् स्पष्ट समझ पाई हूँ कि बड़े-बड़े मन्दिर, स्थान, आश्रम और इन बड़े नामों के सब काम भी बड़े होते हैं। जहाँ हजारों और लाखों रुपये की बातें होती हों, वहाँ कोई प्रेम-भाव से अपनी शक्ति से भी ज्यादा सौ-दो सौ रुपये की यदि भेंट रखता है तो उसकी क्या गिनती? और सदुपयोग भी कितना होता होगा भगवान जाने! इससे अच्छा है कि भगवान ने जो रास्ता बताया है, उसी प्रकार उस छोटी-सी रकम से यदि कोई एक व्यक्ति को भी मदद रूप हो सके तो उनके आशीर्वाद मिलते हैं और भगवान के कृपा पात्र बन सकते हैं। बड़े स्थानों में तो आज ऐसी हालत होती जा रही है कि मानो लोभवृत्ति से धन जमा करना ही उद्देश्य हो गया है और मानवता मर चुकी है, धार्मिक सिद्धान्तों का नाश हो चुका है। आज के समाज में अधिकतर प्रसिद्धि के लिये दान या परमार्थ कार्य दिखाई देता है। यदि गहराई से झांका जाय तो, उनकी धार्मिक या सांसारिक परिवार की कोई निजी व्यक्ति आर्थिक स्थिति से कमजोर होवे तो उनके प्रति हमदर्दी या प्रेम-भाव के बदले घृणा और तिरस्कार की भावना रखी जाती है। इसीलिये

ऐसे व्यक्ति को प्रेम-भावपूर्वक मदद पहुँचाना अति आवश्यक है। संस्थाओं में धनराशि का अपने विचारधारा के अनुकूल सदुपयोग होते नहीं देखने पर अश्रद्धा हो सकती है इससे अच्छा है कि समाज का हरेक व्यक्ति यदि अपने परिवार, पड़ौसी, अगल-बगल का समाज और इससे आगे अपने गाँव या नगर को इस प्रकार से नीतिपूर्वक अपनी-अपनी श्रद्धा शक्ति अनुसार मदद पहुँचाता रहे तो फिर गरीबी का प्रश्न नहीं रहता और साधु संतों का बोझ भी हल्का हो सकता है। उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करके यह कार्य करते रहना चाहिये क्योंकि साधु संतों का जीवन अपनी साधना के लिये होता है यही साधु सन्तों की सही सेवा है।

कभी कोई व्यक्ति यहाँ की प्रजा को आध्यात्मिक मार्ग पर मोड़ देने के लिये सूचन करते थे तब भगवान कहते थे, "अरे भाई, पहले पेट का तो करो पीछे ठेठ का। इनके पेट को भोजन नहीं मिलेगा तब तक भजन का विचार करना व्यर्थ है।"

एक बार इन्कम टैक्स ऑफिसर आये थे, उन्होंने इतने बड़े प्रमाण में कार्य चलता हुआ देखकर हिसाब माँगा और इतनी बड़ी रकम कहाँ से आती है, इस विषय में पूछताछ की तब भगवान ने कहा, "देखो भाई, हमारा-तुम्हारा एक-सा ही तो धंधा है।" वे समझे नहीं चौंक गये। भगवान ने कहा, "आप कायदे-कानून से इन्कम टैक्स लेते हो और मैं प्रेम से लेता हूँ, जिसके पास जितनी सुविधा होती है प्रेम से दे जाते हैं।"



[७६]

जयति जयति जय कृपानिधाना

भगवान की उम्र के बारे में भी कई लोग मुझे पूछते हैं परन्तु मैं छोटी थी जब से पिताजी से और बाद में भगवान के स्वमुख से भी प्रसंगोपात् अलग-अलग बातें सुनती रहती थी। सही उम्र तो किसी को भी मालूम नहीं है और मैं भी इस विषय में अनजान हूँ, हालांकि मेरे भावानुकूल मुझे यह जानने की इच्छा भी नहीं है कारण मैं उन्हें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही मानती हूँ, वैसे तो हर कोई **"गुरुर्साक्षात् परब्रह्म"** बोलते हैं लेकिन परब्रह्म माननेवाले बहुत कम होते हैं। वाणी को आचरणयुक्त या शब्दों को क्रियात्मक बनाये बिना अनुभूति संभव नहीं। मेरे लिये मेरे भगवान का स्वरूप यही है –

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी, सत चेतन घन आनंद राशी
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी, सकल जीव जग दीन दुखारी

एक बार पिताजी ने कहा था कि १९५० में चाँदीवली आश्रम में रात्रि के समय भगवान की सेवा करते वक्त एक भाई ने प्रश्न किया था, "बापू, आपकी उम्र कितनी ?" तब भगवान ने कहा था, "साधु की उम्र जानकर क्या करोगे ?" थोड़े समय बाद एक गुरुभाई ने सब गुरु भाई-बहनों से अपने-अपने अनुभव माँगकर छपवाने की दृष्टि से भगवान से आज्ञा माँगते हुए कहा, "आपकी जन्म-तारीख देंगे तो इन अनुभवों को छपवाने में अच्छा रहेगा।" तब कहा था, "देखो, सत्य लिखेंगे तो दुनिया मानेगी नहीं और झूठ लिखना अपना काम नहीं, इसलिये यह सब छोड़ो।"

१९६० में भगवान गलताजी पधारे, तब मौन होने से जो लिखकर दिया था "सन् १५३६ में मुझे यहाँ दिव्य दर्शन हुआ था" और १९६२ में पपरेंदा में विष्णु महायज्ञ के समय प्रसंगोपात् बोले थे, "पहले तो साल में ऐसे एक-दो यज्ञ बराबर करता था, अब तो देशकाल,

परिस्थिति बदल गई और शरीर भी चलता नहीं, इसलिये नहीं कर पाता हूँ और आज तक ऐसे एक हजार यज्ञ कर डाले होंगे ।" यह सुनकर मनहरभाई ने हिसाब लगाते हुए पूछा था, "भगवान, तो फिर आपकी उम्र कितनी ?" तब बात बदल दी थी । उसके अलावा मेरे प्रथम पूजन के प्रसंग में भी, "अकबर को मैंने देखा है", यह बात सुनकर मनहरभाई हिसाब लगाकर उम्र के विषय में पूछने लगे थे तब भी बात टाल दी थी । इस प्रकार उम्र के विषय में जो-जो व्यक्ति प्रबल इच्छा रखते हैं, वे पाँच सौ साल से अधिक उम्र बताते हैं । समाज में अधिकतर सबको यह जानने की उत्सुकता रहती है । बिहार में एक दिन एक अनजान व्यक्ति ने आकर पूछा था, "बाबाजी, आपकी उम्र कितनी ?" तब कहा था, "७५ साल ।" यह सुनकर आश्चर्य होता था । साथ में रहकर ऐसी अलग-अलग बातें सुनने से भ्रम हो जाना स्वाभाविक है । रामावतार में वसिष्ठजी जैसे महान व्यक्तित्व भी बोल गये हैं—

देखि देखि आचरण तुम्हारा, होत मोह मम हृदय अपारा

तो फिर आज साधारण जीवात्मा मोहाधीन होकर भ्रमित हो जाय तो क्या आश्चर्य ? कारण,

उमा दारुयोशित की नाँई, सबही नचावत राम गोसांई
उमा रामगुण गूढ, पंडित मुनि पावहीं विरति
पावहिं मोह विमूढ, जे हरि विमुख न धर्मरति

कई बार भगवान कहते थे, "मेरा एक शब्द भी अनर्गल नहीं होता है" तो यहाँ "७५ साल" किस संदर्भ या भावार्थ में कहा होगा वह तो भगवान ही जाने ! उनके मर्म को कौन जान सकता है ? क्योंकि,

जगपेखन तुम देखनहारे, विधि हरि शंभु नचावनहारे
तेऊ न जानहि मर्म तुम्हारा, और तुमहि को जाननिहारा
सो जानै जेहि देहु जनाई, जानत तुमहि तुम्है होय जाई
तुम्हरि कृपा तुमहि रघुनंदन, जानत भक्त भक्त उरचंदन

सच है उन्हीं की कृपा के बिना उन्हें समझना सर्वथा असंभव है । मैंने एक प्राकृत घटना सुनी है, उसको समझने के लिये भी केवल शब्दों

का आधार छोड़कर भावार्थ को देखना पड़ता है :—जैसे एक बार भावनगर नरेश वेष बदलकर अपनी प्रजा का सुख-दुःख देखने के लिये निकले थे । एक खेत में करीब ७५ साल का किसान खेती कर रहा था । उन्हें देखकर राजा को विचार आया कि मेरे शासन में मेरी प्रजा इतनी उम्र हो जाने पर भी निवृत्त नहीं हो पाती है ? इस विचार से उनकी परिस्थिति जानने के लिये वे उनके पास गये और किसान को अपना परिचय देते हुए पूछा, "दादाजी, आपकी उम्र कितनी है ?" उन्होंने कहा, "पंद्रह साल ।" राजाजी चौंक उठे क्योंकि किसान को देखते हुए किसी भी प्रकार से इतनी उम्र मानना शक्य था ही नहीं । राजाजी ने कहा, "मेरी मजाक उड़ाते हो ? इतने साल कैसे हो सकते हैं ?" तब किसान ने कहा, "नहीं अन्नदाता, आप हमारे मालिक हो, मैं आपके सामने झूठ नहीं बोलता हूँ । देखो, मैं आपको बताता हूँ । आज से पंद्रह साल पहले दोपहर में मैं भोजन कर रहा था, तब अचानक इस खेत में एक संत पधारे थे, जिन्होंने भोजन स्वीकार किया था और उनकी कृपा दृष्टि से मेरा जीवन परिवर्तन हो गया । मानो तब से ही मेरा जन्म हुआ है, इसलिये मेरी उम्र १५ साल है, वैसे तो ७५ साल है लेकिन ऐसे संत कृपा से जीवन में जब जागृति आती है तभी जीवात्मा का नया जन्म होता है, पहले की उम्र तो सब पानी में गई ।"

१६७० में भगवान का स्वास्थ नरम था, तब पूना में बाबूभाई घेलाणी नाम के डॉक्टर भगवान के पास थे, वे सिर्फ अपना डॉक्टरी फर्ज न देखते हुए भगवान के प्रति सेवाभाव भी रखते थे । उन्होंने भी उम्र के लिये पूछा था तब कहा था, "५६ साल" । इतनी उम्र तो किसी प्रकार से मानना संभव ही न था, इसलिये उन्होंने कहा, "बाबाजी, सच कहो ना । इतनी उम्र तो कैसे हो सकती है ? क्या आप झूठ बोलते हो ?" तब प्रत्युत्तर दिया था, "देखो बाबूभाई, मैं कभी झूठ नहीं बोलता हूँ, ५६ जरूर है, परंतु उसके पहले, एक, दो, तीन, चार, पाँच कितना लगाना, तुम जानो ।" इस बात के अनुसंधान में कुछ लोग ५५६ मानते हैं । बाबूभाई का सेवाभाव और शरणागति देखकर भगवान ने उन्हें कहा, "जो चाहिये माँगो ।" प्रथम तो बाबूभाई ने कहा, "कुछ नहीं चाहिये ।" तब एक बहन ने कहा, "उनके यहाँ संतान नहीं है ।" यह सुनकर भगवान ने कहा, "इसीलिये तो कहता हूँ, एक नारियल लाव ।

लड़का देना तो हमारे लिये बायें हाथ का खेल है ।" भगवान का प्रसादी रूप पुत्र उनके यहाँ पर है जिसका नाम आशिष है ।

एक दिन सुबह की प्रार्थना पूरी होने पर कोई अनजान व्यक्ति ने आकर प्रश्न किया, "बाबाजी, आप तो महान ज्ञानी हैं", तब प्रत्युत्तर दिया, "अरे बाबा, मैं कुछ पढ़ा-लिखा हूँ नहीं, मैं कुछ जानता नहीं हूँ, सिर्फ दो किताब पढ़ा हूँ ।" मैंने अपने भावानुकूल चिट्ठी लिखी, "भगवान, आप दो किताब भी क्यों पढ़े ?" वह भी जरूरत नहीं थी क्योंकि,

जा कि सहज श्वास श्रुतिचारी, सो हरि पढ यह कौतुक भारी

चिट्ठी पढ़कर मेरे सामने देखकर इस बात को स्वीकार करते हुए मंद-मंद मुस्काये । ऐसे प्रसंगों पर चिट्ठी देने पर कई लोगों को अच्छा नहीं लगता था । परंतु समय पर न लिखने से फिर योग्य जवाब नहीं मिलता । इसलिये ऐसी बातों में किसी की परवा नहीं करती थी ।

इस साल श्री रामनवमी, श्री हनुमान जयंती और गुरु पूर्णिमा के उत्सव बिहार में ही मनाये गये । वहाँ के लोगों के मतानुसार हम जहाँ लाल बंगले में ठहरे थे । वह मैदान साँप-बिच्छु का घर माना जाता था । स्वयंसेवक भाइयों द्वारा जब यह बात भगवान के पास आई तब कहा, "निश्चिंत रहो, किसी को कुछ न होगा, साँप-बिच्छु के मुंह-सी दिये गये हैं ।" सही में सात महीने तक किसी को भी साँप-बिच्छु से कोई हानि नहीं हुई ।

जयपुर से माँ-पिताजी आये तब मेरे जयपुर से निकल जाने के बाद भगवान का जो पत्र पहुँचा था वह मुझे दिया । हालाँकि अब तो यह सारी बात मुझे मालूम थी, फिर भी भगवान के हस्ताक्षर पढ़ने से खूब आनंद हुआ ।

श्री रामचंद्राय नमः

प्रिय रमु सादर आसीस,

शरीर ठीक नहीं, तु पहली गाड़ी से चली आ

तु अनंतपुर आजा, मैं तुझे लेने आता हूँ ता. ५ को

तु अनंतपुर आजा अच्छा, सबको आसीस

जब तक मैं अनंतपुर न आऊँ तब तक तु अनंतपुर नहीं छोड़ना, अच्छा ।

रणछोड़दास

अनंतपुर बुलाने के दो-तीन कारण थे। एक तो भगवान स्वयं अनंतपुर आनेवाले थे, दूसरा जयपुर से बिहार बहुत दूर होने से अनंतपुर से अपने साथ गाड़ी में ले जाने वाले थे और तीसरा भगवान जानते थे कि मैं घर से निकलूं तब परिस्थितिवशात् कभी-कभी रसोई का सामान घर से नहीं ले सकती थी और बिहार में तो अधिक समय रुकना था। जिससे अनंतपुर से मेरे लिये जरूरी सामान ले सकते थे।

[६६]

कृपासिंधु प्रणतारति हरणा

भगवान हनुमान जयंती का उत्सव मनाकर उसी दिन भुसावल गोरधनभाई की शादी में जाने के लिए रवाना हुए। दो-तीन बहनें साथ में जाने वाली थीं, मुझे साथ में जाने की कल्पना भी न थी। निकलते समय साथ में ले गये। दो गाड़ियाँ थीं, अधिकतर तो मुझे दूसरी गाड़ी में ही बैठने का होता है लेकिन उस वक्त भगवान बारी-बारी से दोनों गाड़ी में बैंठते थे। हमारी गाड़ी में आने पर हमें खूब आनन्द कराते थे। हम कुल चार बहनें साथ में थीं। रास्ते में कहीं रुकने पर यदि कुएँ में से पानी वगैरा लाने का काम रहता था तो मैं तैयार हो जाती थी कारण उससे भी सेवा का संतोष मिलता था एक जगह ऐसी ही घटना घटी। कुएँ से पानी लाना था भगवान से क्षण भर भी दूर जाना किसी को पसंद नहीं और मुझे नजदीक की सेवा तो मिलती नहीं थी जिससे ऐसी सेवा के लिए भी लालायित रहती थी। मैं पानी भरने जा रही थी तब बुला-कर कहा, "क्यों ? तुम फालतू हो क्या ? बैठो यहाँ, ड्राइवर को भेजो वह पानी ले आयेगा।" भगवान सबको समान मानते थे इसलिए ऐसा नहीं सह सकते थे। भूसावल यात्रा के समय करीब रोज बोलते थे, "मैं यहाँ हूँ पर मेरा चित्त बिहार में है, जल्दी पहुँचना है कितनी बड़ी जवाबदारी है।" गोरधनभाई की शादी धूमधाम से मनाकर हम वापिस बिहार लौटे। केम्प में सबको मालूम होने पर सब स्वयंसेवक भाई-बहन

अपना-अपना काम छोड़कर दौड़ आये और सब भाव-विभोर बन गये कारण पीछे से तीन अद्भूत घटनायें घटी थी ।

बांदा जिले में सरैया गाँव के रहने वाले आनन्दी भैया समष्टि रसोईघर में रात-दिन सेवा करते थे । एक दिन चावल से भरा भारी भगौना भट्टी पर से उतारते समय उनका पैर फिसलने से वे भट्टी में गिर गये । वह भट्ठी करीब बीस फीट लम्बी, पाँच से छः फीट गहरी और दो फीट चौड़ी थी जिसमें बड़े-बड़े पेड़ जैसी लकड़ियाँ चौबीस घण्टे जलती रहती थीं । यह देखकर सब कार्यकरों की चीख निकल गई, परन्तु आश्चर्य ! निमिष मात्र में तो वे बाहर निकल गये, शरीर का एक रोंगटा भी जला नहीं । कितनी अद्भुत कृपा ! ! !

कझा को रोक देती है, दुआ रोशन झमीरों की
भला मंजूर है अपना, तो कर खिदमत फकीरों की

वहाँ पर ऐसी चार भट्टियाँ थीं जिसमें सात महीने तक अखंड अग्नि चालू थी । रातभर दो भट्टी पर चावल और दो पर दाल बनती रहती थी । एक भट्ठी पर एक साथ चार से पाँच भगौने चढ़ाये जाते थे । खास मोटी चद्दर के बड़े पित्तल के भगौने बनवाये थे । एक भगौने में एक बोरी चावल समाता था । भगौने के चारों ओर बड़े कड़े लगाये गये थे जिसमें लम्बी लकड़ी पिरोकर चार छः भाई आमने-सामने से उठाकर पास में बने हुए बड़े कुंड में उड़ेलते थे । दाल में ही आलू और प्याज डाले जाते थे । खूब गरमी के कारण स्वयंसेवक भाइयों को भी लू से बचने के लिए प्याज खाने की छुट्टी दी थी । दाल भी उसी में उड़ेलकर बड़े-बड़े साधनों द्वारा दाल-चावल मिलाये जाते थे । इतना भारी काम चित्रकूट आश्रम के साधु एवं बांदा जिले के भगवान के प्यारे मजबूत किसान लोग सम्हालते थे । स्वयंसेवक भाई लोग यह मिलाये हुए दाल-चावल की बाल्टियाँ ठेले में रखकर मैदान तक पहुँचाते थे जहाँ पर परोसने के लिए भाई-बहन खड़े रहते थे । शुरू में वहाँ की अवर्णनीय गरीबी के कारण लोग अधीर बनकर एक-एक बाल्टी दाल-चावल खा जाते थे परन्तु अधिक कमजोरी के कारण इतना पचा नहीं सकते थे जिससे थोड़े प्रमाण में मृत्यु भी हो गई । बाद में नाप से ही भोजन दिया जाता था और धीरे-धीरे बढ़ाते गये । सात महीने तक

प्रभु कृपा से यह कार्य यंत्रवत् चलता रहा। हरेक का अनुभव था कि कितने ही थके हुए क्यों न हो फिर भी नित्य सुबह वो ही स्फूर्ति और शक्ति भगवद् दर्शन से प्राप्त होती थी। भगवान की कृपा दृष्टि मिलने पर सबकी थकान उतर जाती थी।

रामकृपा करि चितये जबहीं, भये विगतश्रम बानर तबहीं

सच है भगवान की शक्ति से ही यह कार्य संभवित था यह स्पष्ट अनुभूति थी। जैसे आनन्दी भैया भट्टी में से भगवद् कृपा से ही बाहर निकल पाये, उसी तरह जंगल होने से केम्प में चार-पाँच लोमड़ी घुस गई थीं और करीब सत्रह व्यक्ति को काटा था। प्रभु कृपा से ही सब विरुज हो गये थे।

उस मैदान में तीन-चार खाली कुएँ थे, करीब पैंतीस फीट गहरे थे। राजकोट से एक छबील नाम का लड़का आया था वह करीब सत्रह साल का था। एक दिन रात को वह अपने कार्य समाप्ति के बाद अपने निवास-स्थान पर जा रहा था तब वह उस कौने में गया जहाँ पर एक कुआ था लेकिन अंधेरे के कारण उसको ध्यान न रहने से वह कुएँ में गिर गया। वहाँ के कुएं खुले खड्डे की तरह थे किसी को भी कठेरा न था इसलिए भगवान ने सबके चारों ओर तार बंधवा दिये थे लेकिन यह एक कुआं एक ओर दूर होने से रह गया था। किसी ने उस लड़के को उस ओर जाते हुए देखा था। जिससे पेट्रोमेक्स आदि लेकर सब वहाँ गये और उसको बाहर निकाला तब देखा तो उसे बिल्कुल भी चोट नहीं आई थी। जब उसको निकाला जा रहा था तब भी अन्दर से निडरता से आवाज लगा रहा था, रस्सी फेंको, मैं अपने हाथ-पैर स्वयं बाँध लूंगा फिर आप लोग मुझे खींच लेना और बाहर निकलने पर भी पूर्णतया स्वस्थ था। भगवान की असीम कृपा से बिहार के सात महीने में किसी को थोड़ा-सा भी नुकसान नहीं हुआ था। ऐसा लगता था कि यह सब घटनायें सबकी जागृति के लिये ही घटी थीं कारण दर्शन करते वक्त कोई-कोई भाई बोलते थे, "भगवान, जरूर हमारे में से किसी को अहंकार हुआ होगा कि यह कार्य हम चला रहे हैं परन्तु हम समझ गये हैं कि हमारी शक्ति कितनी ? आपकी कृपा के बिना यह सब संभवित नहीं है, अब आप केम्प छोड़कर कहीं जाना

नहीं ।" भगवान ने भी सबको प्यार, दुलार से समझाया जिससे वापिस नये उत्साह से सब अपने-अपने कार्य में लग गये । ऐसे विविध प्रकार से प्रभु कृपा का दर्शन मिलता रहता था ।

१९६६ से मेरे प्रति धीरे-धीरे विरोध बढ़ता ही जा रहा था । एक बार भी भगवान प्रेम से बुलाते थे तो विरोधी व्यक्ति सह नहीं पाते थे जिससे कई बार बिना कारण उनकी खुशी के लिये मुझे डाँट देते थे । कभी बहुत दुःख लगने पर मैं डाँटने का कारण पूछती थी तो कहते थे, "देखो रमा, साधु का कर्त्तव्य है सबको खुश रखना, यदि इस तरह से भी कोई खुश रहता है तो क्या बुरा है ? मैं कहती थी, भगवान, आप ऐसा करेंगे तो विरोधी ज्यादा खुश होंगे और मानसजी के आधार पर सही है कि,

यद्यपि मित्र प्रभु पितु गुरुगेहा, जाईय बिनु बोले न संदेहा
तदपि विरोध मान जहँ कोई, तहाँ गये कल्याण न होई

तो इस हिसाब से मुझे आपके पास नहीं आना चाहिये । भगवान ने कहा, "पागल न बनो, मैं थोड़ा ही तुम्हारा विरोध करता हूँ ?" तब मैंने कहा, "भगवान ठीक है लेकिन धन, बुद्धि और सेवा की कुशलता से रहित मैं निर्बल हूँ, उसमें यदि आप ऐसे करेंगे, वह भी परहित के लिये । मैं तो सहन कर लूंगी लेकिन लोग यही समझेंगे कि आपको मेरे से नफरत है और मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध आपके पास आती हूँ तो श्रीचरणों तक मुझ निर्बल को कोई आने भी नहीं देंगे । यदि मेरा कोई दोष हो तो आप मुझे थप्पड़ भी मार देंगे तो मैं कुछ न कहूँगी लेकिन बिना कारण ऐसा क्यों ?" तो कहा, "रमा, सब करना पड़ता है, कोई कैसे नहीं आने देंगे मैं बुला लूंगा ।" ऐसे समझाने पर बल तो मिलता था परन्तु ऐसे व्यवहार का प्रमाण बढ़ जाने पर असह्य हो जाता था । इसलिये मैंने कहा, "भगवान, इससे अच्छा है मैं जयपुर चली जाऊँ, ऐसे यहाँ रहने से क्या फायदा ? मैं जानती हूँ जयपुर जाकर मन आपके ही पास रहेगा तो रो लूंगी परन्तु आपको तो शान्ति रहेगी ।" मेरा आग्रह बढ़ने पर कहा, "थोड़े दिन रुको मैं उस तरफ जाऊँगा तब मेरे साथ चलना ।"

रोज दोपहर में करीब बारह बजे व्यक्तिगत पूजन के बाद मुझे बुलाते थे तब भी विरोधी को अन्दर खबर न हो उसकी सावधानी रखते थे । मैं कभी भी बाजार तो जाती न थी, सीजन के अनुकूल जामुन, आम आदि फल, पूजा करने वाले रख जाते थे, रोज मुझे बुलाकर कुछ न कुछ देते समय भी कोई रूमाल या कपड़े में छिपाकर ले जाने को कहते थे । भगवान का प्यार देखकर आँखें भर आती थीं । सब तरह से उन्हें इतना सम्हालना पड़ता था, मुझे कहते थे, "रमा, मैं इन लोगों के बीच तुम्हें कभी आगे आने नहीं दूंगा, बाहर से दूर ही रखूंगा पर भीतर से नहीं समझी ?"

सावन मास में सबको कल्पवास करने के लिये कहा था । प्रातः चार बजे उठकर सुबह आठ बजे तक मौन, नित्य प्रार्थना में हाजिर रहना, अपने-अपने नियमानुसार जाप, पाठ और सौंपी गई सेवा की फर्ज निभाना, रोज शाम को श्री शिवमहिम्न स्तोत्र का पाठ, दोपहर में एक बार भोजन, शाम को हो सके तो दूध के सिवा कुछ नहीं लेना वगैर नियम दिये थे । रक्षाबन्धन या जन्माष्टमी जैसे बड़े दिनों में यदि कोई बिना भाव के देखा-देखी से राखी बाँधने या पूजा करने जाते तो भगवान कहते थे, "देखो तो चला है गाडरीया प्रवाह, न भाव है न भक्ति, मुफ्त के चंदन घिस मेरे नन्दन । तुम लोगों का तो ऐसा है कि दिखाकर खा जाना और धोकर पी जाना (सामग्री भेंट करके प्रसाद लेना और चरण धोकर के चरणामृत पी जाना) भगवान तो भाव के भूखे हैं ।

सावन महीने में धीरुभाई की सगाई बिहार में ही भगवान ने करवाई । जिस लड़की के बारे में '६५ की साल में ब्लेकआउट की रात को जब घर पर आये थे तब मुझसे कहा था उसी के साथ सगाई पक्की हुई । भगवान ने तो तीन साल पहले से अपने मन में जो नक्की किया था वह प्रसंग अब जाहिर किया । एक बहन के पास नाक में पहनने का खोटा नग था वैसा मैंने भी मंगवाया था । एक दिन पूजन करने गई तब वह साथ लेकर गई कारण ।

प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं…… …

इस भाव से भगवान को दिखाना था इसलिये भगवान के पूजन के लिये जो जनेऊ थी उसमें अटकाकर ले गई थी । पूजन के समय सब

सामग्री के साथ जनेऊ भी रख दी और वह नाक में पहनने का नग लेना भूल गई । भगवान ने गुपचुप वह लेकर अपनी बंडी की जेब में रख दिया । मैं कभी-कभी पूजन के समय आरती, फूलमाला या सामग्री देना भूल जाती थी तब सामने से याद कराते थे । पूजा करके जाते वक्त मेरा नग याद आ जाने से वापिस लौटकर ढूंढने लगी । यह सब भगवान देख रहे थे । न मिलने से मेरे चेहरे पर घबराहट देखकर हँसते हुए पूछा, "क्या ढूंढ़ती हो ?" मैं समझ गई कि भगवान ने ही लिया है । मुझे देते हुये कहा, "लाव, मैं पहनाता हूँ ।" वैसे तो यह सच्चा हीरा नहीं है लेकिन आज अधिकतर सब पूछते हैं, यह सच्चा हीरा है क्या ? कितने का लिया ? तब क्या कहूँ क्योंकि मेरे लिये तो यह अमूल्य है ।

एक दिन भगवान के द्वार बंद थे जिससे मेरी रसोई में बैठकर पू० श्री डोंगरेजी महाराज का भागवत पढ़ रही थी । तब हमारे गाँव से सेवा के लिये आये हुए चार-पाँच भाई मेरे पास आये । उनमें से एक को काम करते-करते हाथ में कुछ लग जाने से खून बह रहा था, उस पर मिट्टी के तेल की पट्टी बांधना चाहते थे । वे रसोईघर से बाहर बैठे थे । पट्टी बांधने के बाद गाँव के वातावरण के बारे में मुझसे बातचीत कर रहे थे, उस वक्त अचानक भगवान पधारे । क्षण भर देखकर चले गये । मैं उसी वक्त भगवान के पास गई और चिट्ठी लिखकर आने का कारण पूछा तो कहा, "मुझे ऐसा लगा तुम कोई भाइयों से बात कर रही हो इसलिये देखने आया था । थोड़े समय पहले जब कच्छप न्याय समझाया था, मानो वह चरितार्थ करके दिखाया ।

थोड़े दिनों बाद जयपुर की ओर जाने का प्रोग्राम बन रहा था तब मुझे चिट्ठी भेजी ।

परम प्रिय मेरी रमु सादर आसीस जयपुर १७ दोपहर को निकलने की सोचता हूँ तुम मेरे परामर्श को खूब लंबी दृष्टि से विचारोगी ऐसा विश्वास है । जयपुर साथ तुमको चलना है तो मैं सोचता हूँ कि यदि वापिस साथ ही आना है तो उतना महत्त्व का नहीं लगता मुझे ।

यदि जयपुर कुछ दिन रहकर पीछे जानकी कुण्ड आवो तो ? या जयपुर न चलो तो ?

इनको यदि समझो और मन से संतोष हो तो ही हो मेरी रमु

रमा तुम्हारा जवाब आने पर मेरा प्रोग्राम बनेगा

मैंने कहा, "भगवान, आपके साथ आने का कोई आग्रह नहीं है मैं तो वैसे भी जानेवाली थी और वापिस आने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है इसलिये आप कहेंगे तब मैं चली जाऊँगी ।"

[७८]

मोपर कृपा कीन्ह बहु भाँति

भगवान के साथ थोड़े दिनों में ही जयपुर जाना हुआ । रंका से निकलते समय दो गाड़ियाँ थीं, उसमें से मैं दूसरी गाड़ी में थी । पिताजी सहित और भी अन्य पाँच व्यक्ति साथ में थे । रेला में थोड़ी देर रुके वहाँ से एकाध मील आगे जाने पर मुझे अपनी गाड़ी में बुला लिया लेकिन थोड़े आगे जाने पर एक गाड़ी खराब हो जाने से वापिस लौटे और रेला में ही रात रुके । दूसरे दिन जल्दी सुबह रेला से निकलकर गंगाजी के दर्शन करते हुए बनारस होकर मिर्जापुर पहुँचे । मिर्जापुर नदी में खूब पानी होने से पुल पर से गाड़ी पार होने पर एक गाड़ी खराब हो गई । उसको स्टेशन वेगन गाड़ी के साथ बांधकर धीरे-धीरे चलाते हुए रात को देर से सतना पहुँचे ।

भोजन लेकर भगवान आराम कर रहे थे । सब वस्त्र मैले होने से कुएँ पर धोये । वहाँ से सुबह ट्रेन द्वारा भगवान भोपाल पधारे और एक गाड़ी सतना में ही रिपेयर करने को दी । दूसरी गाड़ी में हम सब जयपुर के लिये रवाना हुए । मथुरा के पास कोसी नदी का पुल टूट गया था और खूब वर्षा के कारण बाढ़ आई थी । इसलिये हमने भी मथुरा में गाड़ी छोड़ दी कारण आगे मोटर रोड बंद था । हम लोग मथुरा से भरतपुर ट्रेन में और भरतपुर से आगे ट्रेन बंद होने से बस द्वारा रात को जयपुर पहुँचे । मुझे तो वापिस जाना नहीं था इसलिये मेरा सब सामान

व्यवस्थित किया और रात में भगवान को साथ में देने के लिये नाश्ता तैयार कर टिफिन भर दिया कारण सुबह भगवान पधारने वाले थे और दो ही घंटे रुकूंगा ऐसा कहा था । सुबह छः बजे भगवान पधारे । घर पर ऊपर आने के लिये ना कहने पर स्नान के लिये गरम पानी बरनी में भरकर साथ में दिया और भोजन के लिये पूछने पर कहा, "गलताजी में भोजन करूँगा तुम टिफीन बनाकर ले आव ।" नौ बजे टिफिन लेकर गलताजी पहुँची । बिहार से साथ में निकले हुए पाँच व्यक्ति भी गलताजी में भगवान के पास बैठे थे । टिफिन देखकर सबको जाने के लिये कहा और भोजन करते समय मुझसे पूछा, "रमा, तुम्हें एक मीठी बात कहूं या कड़वी ?" मैंने कहा, "जो भी चाहो ।" तब कहा, "तुम्हें मेरे साथ वापिस बिहार चलने का है और आज का दिन और रात यहाँ रूकूँगा ।"

ऊपर से ऐसा दमाम कि पास आने न दे
भीतर से ऐसी सम्हाल कि दूर जाने न दे

रात में बनाया हुआ नास्ता सबको बाँट दिया । घर से रसोई का सारा सामान मँगवाया । शाम का भोजन बनाकर रात को फिर से दूसरा नाश्ता बनाया । जल्दी सुबह भी भोजन लिया और कहा, "घर से सामान लेकर तुम स्टेशन पहुँचो मैं सीधा स्टेशन आता हूँ ।" साथ वाली बहनों का सामान भी लेना था । पहाड़ चढ़कर घर पहुँची और वापिस जाने की तैयारी की । ट्रेन के समय पर स्टेशन पहुँची, साथ में छोटा भाई प्रमोद भी आने को तैयार हुआ । भगवान फर्स्ट क्लास में थे और हम सब थर्ड क्लास में थे । भरतपुर स्टेशन पर भगवान ने शाम का भोजन लिया, रात को मथुरा पहुँचे । आठ दिन से भगवान ने मैला स्वेटर पहना था, धोने का विचार तो था परन्तु सामान में दूसरा स्वेटर न होने से पहनने के लिये क्या दूंगी यह चिंता थी । मथुरा में कहा, "तुम क्या सेवा करोगी ? देखो तो, आठ दिन से मेरा स्वेटर तक नहीं धोया है ।" मैंने जब कारण बताया तो कहा, "ऐसा हो नहीं सकता है कि दूसरा स्वेटर न रखा हो । लाव, मेरा थैला इधर लाव, मैं खुद देखता हूँ ।" लेकिन दूसरा था ही नहीं तो मिलता कहाँ से ? इसलिये कहा, "रमा, सच है मैं व्यर्थ में ही तुम पर गुस्सा करता हूँ । वे लोग हमेशा रखते हैं अब की बार क्यों नहीं रखा यह आश्चर्य है", न रखने का कारण तो मैं जानती थी कि मेरे हाथ में सेवा आने पर द्वेष के कारण पूरा सामान नहीं रखते थे परन्तु

भगवान से क्या छिपा रह सकता है ? मैं कुछ बोली नहीं, जो कहा सो सुन लिया । मेरे से द्वेष के कारण भगवान को कष्ट होता है यह भी विचार नहीं था फिर इसे सेवा कहे या........ जब तो मेरे पास भी आज के जितनी आर्थिक सुविधा न थी वरना चाहिये जितने नये स्वेटर खरीद कर ले आती ।

दूसरे दिन वहाँ से गढवा रोड जाने के लिये ट्रेन द्वारा रवाना हुए । भगवान ने प्रमोद को ड्राइवर के साथ मोटर में आने के लिये कहा कारण मथुरा में गाड़ी पड़ी थी । अन्य व्यक्तियों को वहाँ से विदाय दी । हम दो बहनें भगवान के साथ फर्स्ट क्लास में थे, रात को मुगलसराय स्टेशन उतरना था । साथ में जो बहन थी वह ऊपर की सीट में सो गई थी । रात को करीब दस बजने पर मुझे भी सोने के लिये कहा लेकिन अभी भगवान सोये नहीं थे, चश्मा निकालना, उढ़ाना आदि काम बाकी था और एक बार सो जाऊं तो पूरे एक सप्ताह की रात-दिन की थकान होने से उठ सकूं या नहीं यह संदेह था उसी डर से नहीं सो रही थी । परन्तु बार-बार सोने के लिये कह रहे थे जिसे सामने की सीट पर खिड़की के सहारे आँख बंद करके बैठी थी । थोड़ी देर में आकर धीरे से एक थप्पड़ मारते हुए कहा, सोती क्यों नहीं हो ?" लेटते ही नींद आ गई, लेकिन रात को जगी तब बड़ा स्टेशन देखकर कुली को पूछने पर मालूम हुआ कि मुगलसराय आ गया । किसी के पास घड़ी तो थी नहीं जिससे समय का भी ख्याल न रहा । तीन मिनट के कम समय के लिये गाड़ी रुकने वाली थी । सब गहरी नींद में सो रहे थे । अनिच्छा से भी भगवान को उठाने पड़ े। सब सामान लेकर उतरते ही ट्रेन चल दी । भगवान ने रात को प्रतीक्षालय में आराम किया ।

सुबह आठ बजे गढवा रोड की ट्रेन मिलने वाली थी । भगवान ने व्हील चेयर मँगवाने के लिये मना कर दिया । छोटा-छोटा सामान ज्यादा था, एक ही कुली करने का और खुद भी थोड़ा सामान उठायेंगे ऐसा आग्रह रखा । धीरे-धीरे पुल चढ़कर ट्रेन पर पहुँचे । रास्ते में सूखा नास्ता और फल लिये । शाम को गढवा रोड पहुँच गये, वहाँ गाड़ी तैयार थी जिससे रंका पहुँच गये । रास्ते में जितना आनंद कराया उतना ही रंका पहुँचकर मानों कोई पहचान भी नहीं है ऐसा बर्ताव करना पड़ता था । कई बार कहते थे मेरा एक भी शब्द या क्रिया अनर्गल नहीं

होते हैं उसी हिसाब से हर प्रकार का बर्ताव मेरे परम हित के लिये ही था । "शरणागत को कभी चिंता न करनी चाहिये क्योंकि भगवान हित-चिंतक हैं ।" हालांकि उस वक्त तो दुःख-सुख की भावनाओं का अनुभव होता था । लेकिन जीवन बनाने के लिये विविध प्रकार से प्रसंग खड़े करते हैं । साधक को अच्छा-बुरा लगने की परवा नहीं करते कारण परिणाम शुभ होता है । इस प्रकार से कई साधकों के जीवन को सुदृढ़ बनाया है और आज भी कोई न कोई स्वरूप में मेरे भगवान ही संभाल रहे हैं इसमें किंचित भी संदेह नहीं है ।

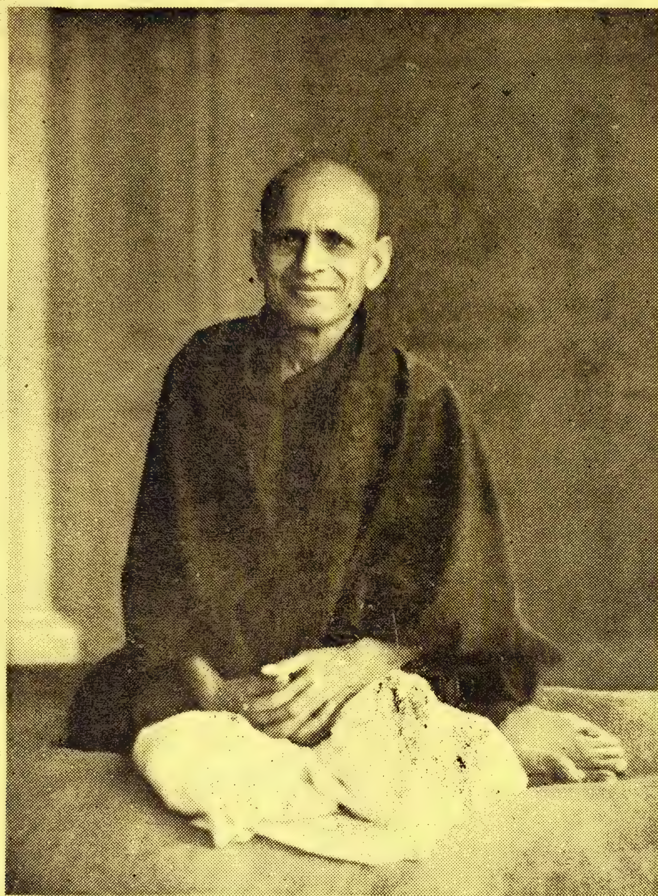
[७९]

कृपादृष्टि करी वृष्टि प्रभु

भगवान की महती कृपा से इस साल बिहार में इतनी बारिश हुई कि कई सालों से ऐसी बारिश न हुई थी । खेत में अच्छी प्रकार से फसल पकने से धीरे-धीरे भोजन के लिये कम लोग आने लगे, जिससे अब राहत कार्य की पूर्णाहूति १८ अक्टूबर को करने की सूचना दी गई । तब गोदाम सम्हालनेवाले भाई आकर कहने लगे, "भगवान, अभी तो इतने सारे चावल पड़े हैं, उसका क्या करेंगे ?" तब कहा, "चलो, मैं चलता हूँ ।" गोदाम में जाकर सहज भाव से हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए बोले, "हे अन्नपूर्णा देवी, आपने हमारी खूब लाज रखी, अब आप भरतपुर पधारो ।" क्योंकि कोसी नदी में बाढ़ आने से अब भरतपुर, मथुरा में राहत कार्य चालू करना था । जयपुर जाने का हेतु भी क्या होगा वह तो भगवान जाने, लेकिन मथुरा, भरतपुर के अगल-बगल के गाँवों की दशा दयनीय थी । मेरो समझ से तो उस समय वहाँ की दशा देखने के लिये ही गये थे, ऐसा लगता था । जयपुर श्री पतितपावनजी भगवान के दर्शन हेतु जाना तो था ही ।

राहत कार्य के लिये अमेरिकन केर कंपनी की ओर से बहुत-सारा दूध का पाउडर आया था । केम्प की समाप्ति में कहा, "अपने पास

नील सरोरुह नीलमणि, नील नीरधर श्याम
लाजहिं तन शोभा निरखि, कोटि कोटि शतकाम



मानवता क्या है! और दानवता तो देखी

नाथ एक बर मांगहु, राम कृपा करि देहु
जन्म जन्म प्रभु पदकमल, कबहुं घटे जनि नेहु

चावल, शक्कर है ही तो इस पावडर का उपयोग कर डालो, खीर बनाकर इन लोगों को खिलाई जाय तो सब खुश हो जायेंगे और दूध का पाउडर भी ठिकाने लगेगा ।

कोई भी नई चीज बनाते वक्त पहले थोड़ी मात्रा में बनवाकर देखते थे, बाद में ही योग्य लगने पर गरीबों को दी जाती थी । कई बार अलग प्रकार के चावल आने पर वह भी पहले थोड़े प्रमाण में हमसे बनवाकर देखते थे । उसी प्रकार उस दिन मुझसे प्रायमस और भगौनी मँगवाकर अपने ही कमरे में अपने सामने मेरे से खीर बनवाई । कौन-सी चीज कितने प्रमाण में लेने की यह बताते रहे और खीर तैयार होने पर, अभी तो प्रायमस पर उबल रही थी तब चमच से हिलाते हुए कहा, "लो रमा, तुमने बनाई है तो सबसे पहले तुम ही चखकर देखो, "कैसी बनी है ?" मैं कटोरी लाने के लिये जाने लगी तब पूछा, "कहाँ जाती हो ?" प्रत्युत्तर सुनकर कहा, "हाथ में ही ले लो, कटोरी की क्या जरूरत है ?" इतना कहते हुए बड़ा चमचा भर के मेरे हाथ में खीर दी । हाथ में लेते हुए डर तो लग रहा था लेकिन ना कैसे कहूँ ? इसलिये साहस तो किया लेकिन जलन होना भी सहज था । सामने हॉल में थोड़े भाई-बहन बैठे हुए थे, सबके बीच में फेंक भी नहीं सकती और गरम-गरम खाने पर जीभ भी जल जाय, जिससे हाथ में ही सहन करती रही । परंतु ऐसा क्यों किया, यह समझ न पाई । दो दिन में यह घटना भूल भी गई ।

अब तो राशन में चावल बेचने का काम चालू हो गया । भगवान ने स्वयं एक नियमावली लिखकर मुझे देते हुए कहा, "बड़े अक्षरों में इसकी थोड़ी कॉपियाँ बना दो और उसको गत्ते पर चिपका दो । हर केन्द्र पर यह नियमावली टाँगी जायगी ।" करीब पाँच-छः जगह चावल बाँटे जा रहे थे । सब कलाओं से परिपूर्ण भगवान के लिये क्या आश्चर्य ? व्यापारी ढंग से नियमावली लिख दी :—

मानव राहत मण्डल की सस्ते अनाज वितरण की नियमावली

(१) १ सेर के बदले में एक रुपया लिया जावेगा ।

(२) प्रत्येक कुटुम्ब को प्रतिदिन दो सेर से ज्यादा न दिया जायेगा ।

(३) सेर के माप बनाकर माप द्वारा दिया जायेगा । यदि वजन में शंका हो तो काँटा जो वहाँ तैयार होगा स्वतः तोल ले ।

(४) वितरण स्थान से हटने के पश्चात् वध घट की जवाबदारी ग्राहक की होगी ।

(५) अनाज बहुत शांतिपूर्वक लेने का नियम पर ज्यादा ध्यान देना चाहिये ।

(६) वितरण समय प्रातः ८ से १२ बजे तक शाम को ३ से ६ बजे तक ।

रोज रात को भाई लोग चावल के हिसाब की पेटी भगवान को सौंप देते थे । छोटा भाई प्रमोद भी यह कार्य के लिये जाता था । हिसाब करने का काम अधिकतर रात को एक-दो बजे किया जाता था कारण भगवान बिराजते हों तब तक कोई जावे नहीं जिससे दस बजे सो जाते थे । दरवाजे और बिजली बंद होने पर सब चले जाते थे, बाद में रात को हम दो-तीन बहनों को उठाकर यह काम करवाते थे । रुपयों की नोट, रेजगी सब व्यवस्थित ढंग से अलग करवाकर, गिनती करवाकर अलग-अलग बाँध देते थे । छोटी-छोटी हरेक बातों में पूर्ण व्यवस्थितता के लिये बहुत ध्यान देते थे ।

गरीबों को जो कपड़े बाँटे जाते थे उसमें भी नये-पुराने, जनाना, मर्दाना और छोटे बच्चों के कपड़े छंटवाकर नियम से दिये जाते थे । अब तो राहत कार्य का अंतिम दिन आ गया । भगवान सुबह आठ बजे रंका से रवाना हुए तब सूचना देकर गये कि, "मैं आठ दिन के बाद आ रहा हूँ, आज शाम तक सब लोग रेला चले जाना, अब यहाँ से दिशा-बंधन उठ जाता है जिससे उत्पात हो सकता है ।" शाम तक हम थोड़े भाई-बहन वहाँ पर थे, वे सब ट्रक में बैठकर रेला पहुँच गये । सिलाई मशीनें जो पड़ी थीं उसके लिये कहा था, "जो लड़कियाँ सीख गई हैं, उनको भेंट दे देना ।" पहले तो वहाँ की बालिकायें आलसवशात् सीखने नहीं आती थीं जिससे जाहिर किया था कि हर मास जो लड़की पूरे दिन हाजिर रहेगी उसको हर मास एक साड़ी दी जायेगी । इस वजह से सिलाई कक्षा में काफी भीड़ रहती थी ।

रेला में अब सब मिलकर करीब बीस भाई और हम पाँच-सात बहनें थीं। अन्य सब स्वयंसेवक भाई-बहनों को भगवान ने बिदा दे दी थी। उसमें से कई लोग तो सीधे चित्रकूट पहुँच गये थे, कारण एक सप्ताह में हम सब भगवान के साथ चित्रकूट जानेवाले थे। दीवाली, अन्नकूट और चतुर्थी का महोत्सव चित्रकूट में ही मनाना था। हम बहनें तो अपना भोजन खुद बना लेते थे लेकिन इतने भाइयों के बीच में एक ही रसोइया होने से उसको मदद करने रसोइघर में हम जाते थे। आठ दिन के बाद भगवान का तार आया, "कल सुबह पाँच बजे आ रहा हूँ।" भाइयों ने हँसते हुए कहा, "यहाँ से चित्रकूट जाते समय आप सब तपस्वियों को तो जरूरत नहीं पड़ेगी लेकिन हमारे लिये तो कुछ नाश्ता बना लो।" उन लोगों की बात भी ठीक थी, कारण पाँच-छः गाड़ियाँ जानेवाली थीं और हमें फुरसत भी थी। उस दिन सुबह दो पीपे भरकर नमकीन सेव बनाई और शाम को सक्करपारे बना रहे थे उस वक्त एक छोटे कमरे में हम चार-पाँच बहनें थीं, मैं तल रही थी। प्रायमस के प्रमाण में कड़ाई बहुत बड़ी थी। तलते वक्त कड़ाई पर झारा रखने में मेरा ध्यान न रहने से, कड़ाई का संतुलन बिगड़ने से मेरे पैरों पर गिरी। दोनों पैरों पर सारा घी और सक्करपारे गिरने से एकदम लाल-लाल हो गये परंतु जलन बिल्कुल भी न थी, मानो कुछ हुआ ही नहीं। घुटनों तक घी के छींटे उड़े थे, यह देखकर सब लोग घबरा गये और पूछने लगे, "आपको कुछ नहीं होता है ?" लेकिन कुछ होता होवे तो छिपाना असंभव था। जबरदस्ती कमरे पर भेज दी और बर्नोल मंगवाकर लगा दिया, पानी न लगाने के लिये सबने सूचना दी। लेकिन यह तो प्रभु कृपा से :—

गोपद सिंधु अनल शितलाई..............

जल्दी सुबह तीन बजे जग गई तब सब लोग सो रहे थे। निवास-स्थान पर कुआँ था उसमें से पानी निकालने पर, उसकी आवाज से सब उठ जायेंगे यह सोचकर थोड़ी दूरी पर गोदाम था वहाँ स्नान करने चली गई कारण वहाँ नल और बाथरूम की सुविधा थी। घी और बर्नोल की सारी चिकनाई साबुन से रगड़-रगड़कर धो डाली। इस ओर चार बजे सब लोग उठ गये। मुझे न देखकर दो भाई हाथ में टोर्च

लेकर ढूँढ़ने निकले । मैं लौट रही थी तब सामने मिले और डांटते हुए कहने लगे, "कुछ विचार है ? आधी रात में आप इतनी दूर नहाने गये यहाँ कितने शराबी घूमते हैं कोई मिल जावे तो ?" परन्तु कई सालों से मैं अकेली नहीं हूँ यह पूर्ण प्रतीति से अब इस प्रकार भय का विचार भी नहीं आता था और कोई मिला भी नहीं था जिससे मैंने हँसते हुए इतना ही कहा कि "भाई अभी तक आप लोगों के सिवा तो मुझे कोई नहीं मिला है ।" आज भी भगवान की कृपा से उन्हीं के सहारे उतनी ही निर्भयता से घूम-फिर सकती हूँ ।

जाको राखे साईयाँ मार सके न कोय ?

अन्य कोई इस विषय में जो कुछ भी सोचते हों, मानते हों, उन्हें मुबारक हो, अब उसकी परवा नहीं है ।

निवास-स्थान पहुँचने पर एक के बाद एक सब आकर मेरे पैरों को कुतूहलता से देखते हुए पूछने लगे, "पानी तो नहीं लगाया ? फफोले तो नहीं पड़े ?" परन्तु ना तो फफोला और ना ही कोई जलन का दाग दिखाई देता था । तब एकदम याद आया कि थोड़े दिन पहले भगवान ने इसी कारण जान-बूझकर हाथ में गरम-गरम खीर देकर हाथ जलाया होगा ! ! इस प्रकार से शूली का मार सूई से भुगता देते थे ।

मैं जयपुर से वापिस बिहार जाने वाली नहीं थी लेकिन इसीलिए अपने साथ वापिस बिहार ले गये होंगे ।

सकल अमानुष कर्म तुम्हारे.......



[८०]

जानति कृपासिंधु प्रभुताई

भगवान सुबह पधारे और फिर रेला से हम सब लोग भगवान के साथ चित्रकूट पहुँचे । खूब धूमधाम से दीवाली, चतुर्थी का महोत्सव मनाया । चतुर्थी के महोत्सव पर आये हुए मेहमानों में दो-तीन कांग्रेस के भाई थे उनको इंगित करते हुए भगवान ने कहा, "क्या कांग्रेस और क्या देश सेवा ? अब तो खाली नाम रह गया है । देश सेवा के लिए कितना त्याग और बलिदान चाहिए उसके लिए देख लो हमारे हरियानी को । अभी तो कोई खाल मस्त, कोई माल मस्त तो कोई ख्याल मस्त है ।"

भगवान के साथ चित्रकूट से निकलकर मैं मथुरा गई । वहाँ राहत कार्य चालू किया था । कपड़े, कम्बल, अनाज आदि वितरण के लिए भाई लोग मथुरा के आस-पास के बाढ़ पीड़ित स्थानों में जाते थे । थोड़े दिन भगवान मथुरा में रुके उसके बाद आज्ञानुसार मैं जयपुर गई । कुछ दिनों बाद पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

११-१२-६७

प्रिय रमा सादर आशीष

तुम पढ़कर नाराज तो होगी । पत्र देरी से लिख रहा हूँ । रमा स्वास्थ जैसा तुम छोड़कर गई हो वैसा ही है । बीच में बम्बई हो आया था ।

अच्छा सुनो रमा देवी तुम्हारी बोली रोज प्रातः छः बजे सुनता हूँ रोज ही रोज तुम्हारा टेपरिकार्ड नित्य सुनता हूँ और खूब याद आती है ।

रमा सुनो मेरे साथ कुमुद है और खूब सेवा करती है तुम मेरी चिन्ता न करना । हरियाणी को तथा सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

थोड़े दिनों में फिर पत्र आया –

श्री रामचन्द्राय नमः

गुजरी १७-१२-६७

प्रिय रमा, सादर आसीस

मेरा स्वास्थ वैसा ही है जैसा तुमने देखा था कुछ भी सुधारा नहीं है मैं यहाँ से २२ को चले जाने वाला हूँ और कोई स्थान नक्की नहीं है मैं जयपुर आने की सोच रहा हूँ कुमुद मेरे साथ है आराम लेता हूँ पर रोज रात को सात साड़े सात बजे उल्टी अवश्य हो जाती है यह क्रम आठ दिन से चालू हुआ है यह भी जीवन का संघर्ष अंग बन गया है रमा तुम्हारी याद बहुत आती है पर रोज प्रातः छः बजे तुम्हारी आवाज सुनता हूँ रोज हो रोज सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

पता न होने से प्रत्युत्तर नहीं दे सकती थी । स्वास्थ ठीक न होने की खबर मिलने पर चिंता बढ़ जाती थी परंतु प्रभु प्रार्थना के सिवा कोई उपाय भी तो न था । नित्य पत्र की प्रतीक्षा में ही दिन बिताती थी । थोड़े दिनों में धारवाड के बंकापुर गाँव से पत्र आया :—

प्रिय रमा,

सादर आशीर्वाद

आज मैं यहाँ पहुँचा हूँ ।

स्वास्थ वैसा ही है, आराम लेता हूँ, चिन्ता नहीं करना । तेरी आवाज रोज सुबह मैं सुनता हूँ, रमा रोज तुझे याद करता हूँ ।

रणछोड़दास

पत्र पढ़ने पर मन ही मन कहती थी, भगवान आप तो टेपरिकोर्डर से तो क्या वैसे भी रोज मेरी आवाज सुन सकते हो परंतु मैं तो किसी भी प्रकार से आपकी आवाज नहीं सुन पाती हूँ, उसका क्या ? यह भी प्रार्थना में ही कहने का रहता था । कभी बहुत अधिक व्याकुलता से रोती हुई सोती थी तब स्वप्न दर्शन अवश्य मिलते थे ।

बंकापुर से लिखा हुआ पत्र मिला :—

श्री रामचंद्राय नमः

देखो तारीख है
९-१-६८

प्रिय रमा मेरे सब पत्र मिल गये होंगे ।

स्वास्थ साधारण है कोई खास फायदा नहीं, तुम्हारी याद तो रोज आती है पर तुम्हारा स्वाध्याय रोज सुनकर संतोष व आनंद आता है देखो तुम धीरज रखकर भजन करना । व्यर्थ जीवन न खोना, हाल तो मैं इधर ही रहूँगा । थोड़ी सरदी कम होने पर पीछे विचार करूँगा उज्जैन का । सबको आसीस कहना ।

रणछोड़दास का आसीस

भगवान के विरह में व्याकुलता से रोती रहती थी, तब लगता था कि सब लोग कितने सुखी हैं, मैंने तो अपने ही हाथों दुःख मोल लिया है । कई बार पत्र न आने पर और कई बार पत्र मिलने पर भगवान की याद में आँखें भर जाती थीं । नींद तो कैसे आती ? ऐसे प्रसंग पर कबीरदासजी का दोहा याद आता है,

सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे;
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे ।

इस मार्ग पर चलनेवाले की यही दशा है । कइ बार मीराबाई के भजन गाती रहती थी

हे रि मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दर्द न जाने कोई....

बात भी ठीक है, अनुभूति के बिना इस दर्द को कौन समझ सकता है ? कई बार बहुत लंबे समय तक पत्र न मिलने पर व्यथित होकर मेरा यह प्रिय भजन गाती थी, आज भी गाती हूँ—

जो तुम तोड़ो रामा, मैं नाही तोड़ूं रे
तोरी प्रीत तोड़ी रामा, कौन संग जोड़ूं····

इस तरह से रात-दिन समान बन जाते थे । विरह वेदना कम हो न हो इतने में फिर से पत्र मिलने पर भगवद् याद और भी तीव्र बन जाती थी ।

येहि कुरोग कर औषध नाहीं····

और

भई मति कीट भृंग की नांई····

श्री रामचंद्राय नमः

१५.१.६८

प्रिय रमा सादर आसीस,

देखो छः बजने में सात मिनिट शेष हैं और हम आप साहब को पत्र लिख रहे हैं और आप साहब रिकार्ड पर प्रार्थना कर रहे हैं", "दशरथ सुतो नीति नि····" आज ५ बजे वह चली गई बम्बई कौन ? कुमुद भई कुमुद ।

अच्छाजी सुनो खूब याद आती है, पर तुम्हारी आवाज रोज सुनता हूँ ।

स्वास्थ बराबर नहीं रहता, यहाँ सूखी हवा है, ठंडी कम है, इससे कुछ आराम है ।

हम आप साहब से सख्त नाराज हैं, पत्र से आपको आर्डर देते हैं कि आप साहब हमसे नाराज न होना । नियम बराबर करना । कुसंग का सेवन करना नहीं, आखिर परिणाम दुःख ही रहता है ।

भगवत् भजन सुख की खानी है ।

सबको आसीस

अच्छा थैंक्यु

रणछोड़दास का आसीस

बीच में बहुत समय तक भगवान कहाँ विराज रहे हैं वह खबर न थी और कोई पत्र भी न मिलने से स्वास्थ नरम होने के कारण चितातुर होकर पत्र की आशा में सतत याद बनी रहती थी । बहुत अधिक राह देखने के बाद पत्र मिला :–

बालाघाट

परम प्रिय रमा सादर आसीस

मेरे अस्तव्यस्त रहने के कारण पत्र में देरी हुई । मेरा स्वास्थ ठीक है और अब इन्दौर जा रहा हूँ । ११ मार्च को धार में नेत्रयज्ञ प्रारंभ होगा और रोगियों के प्रचार अर्थ जाना पड़ेगा ।

मेरा स्वास्थ धीरे-धीरे सुधर रहा है सबको आसीस कहना

रणछोड़दास

दिन प्रतिदिन भगवान का स्वास्थ नरम होता जाता था । स्वास्थ कब अच्छा होगा यही विचार बना रहता था । मथुरा से अलग होते वक्त कहा था, "मैं एकांत में आराम के लिये जा रहा हूँ" इसीलिये बिना बुलाये जाने के लिये मन डरता था। आराम में विक्षेप होने के विचार से जाने का मुल्तवी रखा था । थोड़े दिनों में मानपुर से पत्र आया :–

मानपुर

प्रिय रमा सादर आसीस

पत्र मिले स्वास्थ जैसा देखा वैसा ही है विचार स्तब्ध है जीवन शांत है तुम चिन्ता न करना भजन करना ।

सबको आसीस



[८१]

भक्तवत्सल कृपाल रघुराई

भगवान नेत्रयज्ञ के लिये धार पधारे। धीरूभाई की शादी का दिन पक्का करने के लिये पिताजी धार गये थे। मैंने पिताजी के साथ पत्र भेजा था। धार से लौटने पर पिताजी ने कहा, "भगवान ने तुम्हें धार बुलाया है।" शादी का प्रसंग होने के कारण घर में रंग आदि का काम चल रहा था उसकी जिम्मेदारी और भगवान के पास इतना अधिक द्वेष भाव बढ़ गया था कि वहाँ जाकर भी भगवान की प्रसन्नता के बदले नाराजगी सहनी पड़े, इन सब कारणों से मैं धार नहीं गई। परिणाम में भगवान को बहुत दु:ख लगा कारण शुरू में ही लिखकर पूछा था, "बुलाऊँगा तब आओगी ना ?" प्रथम बार ऐसा हुआ कि बुलाने पर भी मैं नहीं गई। धार नेत्रयज्ञ में ही "सद्गुरु सेवा संघ" ट्रस्ट की स्थापना हुई। मानो अब थोड़े समय में भगवान अपनी लीला समेटना चाहते थे इसीलिये सबको कुछ ना कुछ जिम्मेदारियाँ सौंपते जा रहे थे। वहाँ से भगवान उज्जैन कुम्भ मेला में पधारने वाले थे। वहाँ अधिक दिन रहने के कारण कभी-कभी देवास में श्री अरविन्द मफतलाल के बंगले में आराम के लिये चले जाते थे।

धीरूभाई की शादी वैशाख शुक्ल तीज के दिन रखी गई। रामनवमी के उत्सव में भी मैं नहीं गई थी जिससे नाराज होकर अब तो भगवान ने पत्र लिखना भी बंद कर दिया लेकिन क्या करती ? धर्म संकट था, गृहकार्य छोड़कर जाने पर माँ की नाराजगी सहनी पड़ती। शादी के निमित्त से उज्जैन जाने का था, जब भी जाने के लिये मेरी इच्छा नहीं थी कारण घर की जिम्मेदारी के अलावा दो बहनों ने अपने भाई की शादी के निमित्त मुझे साड़ी दी थी और आज मैं इस प्रसंग पर उन्हें साड़ी न दूं तो मुझे अच्छा नहीं लगता और मेरे पास सुविधा न होने से मजबूर थी इसलिये सोचा था कि शादी में जाना ही नहीं कि यह प्रश्न उठे। वहाँ जाकर भी भगवान की कोई सेवा तो मिलती नहीं थी।

जरा-सी बुलाने पर भी विरोध खड़ा हो जाता था जिससे मुझे ही नाराजगी सहनी पड़ती थी उससे उत्तम था कि नहीं जाना ।

परिवार के सदस्य मेरे इस विचार को नहीं समझ पाये जिससे जबरदस्ती जाना पड़ा । कैसे भी सुविधा करके दोनों बहनों के लिये साड़ी खरीदी कारण वे लोग इस विषय में कब किस ढंग से सुना दें कह नहीं सकती, ऐसे अनुभव हो चुके थे । कभी संजोगवशात् एकाध बार भोजन कराकर भी अट-शंट सुना देते थे तब बहुत ही अखर जाता था । जयपुर से सबके साथ उज्जैन गई । एक दिन नाराजगी दिखाकर भगवान बोले भी नहीं परन्तु आखिर तो दयालु हैं, कितने भी अपराध करने वाले पापी व्यक्ति भी एक बार सन्मुख हो जायें तो अपना लेते थे, यह तो उनका सहज स्वभाव है –

जन अवगुण प्रभु मान न काऊ, दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ।

धीरूभाई वगैरा नागपुर से आये । शादी के दिन सुबह भगबान ने हाथ में आयना लेकर रामानंदी तिलक लगाया और बोले, "चलो, आज हाथी मंगवाओ मुझे धीरू की शादी में जाना है ।" बैंड-बाजे भी मंगवाये और शादी की सारी विधियाँ अपने ही हाथों संपन्न करवाईं । यज्ञ वेदी का धुआँ सहन न होने पर भी हाथ में अक्षत लेकर बराबर खड़े रहे । स्वयं भगवान ने ही हस्तमिलाप करवाया । भगवान की पूर्ण कृपा रही ।

कुंभ मेले में भंडारा चल ही रहा था, अनेक साधु-संत भोजन पाते थे । कुछ दिन साधु-संतों की सवारियाँ निकलती थीं जिस कारण बहुत भीड़ रहती थी । हरेक की प्रसन्नता के लिये भगवान हो सके जितनी व्यवस्था करते रहते थे । नरम स्वास्थ होने पर भी सबको सुख पहुँचाने की भावना से राजकोट एक बहन की शादी के प्रसंग में पधारने वाले थे । मोटर द्वारा उज्जैन से राजकोट तक जाकर वापिस लौटना ऐसे स्वास्थ के लिये बहुत कष्टदाई था लेकिन अपने शरणागत के सुख के लिये भगवान सब कुछ करने को तैयार हो जाते थे । धीरूभाई की शादी का प्रसंग पूरा होने पर सब जयपुर चले गये थे । मैं भगवद् आज्ञा से उज्जैन रुक गई थी । राजकोट से वापिस लौटने पर भगवान बहुत प्रसन्न थे । उज्जैन से अनंतपुर पधारने वाले थे तब मुझे साथ ले जाने वाले थे, लेकिन

उस वक्त भी वो ही व्यक्ति जो कायम झगड़ा करती रही उसी के द्वारा ईर्ष्या के कारण बहुत अधिक विरोध हो गया । उसी व्यक्ति ने जब चिट्ठी लिखकर दी तब समूह में वह जाहिर में पढ़कर भगवान बोले, "जब देखो तब यही विरोध, यही बात, रमा को ले जा रहे हो, उसको ले जा रहे हो, इसको ले जा रहे हो ।" इतना बोलने पर चिट्ठी लिखने वाली बहन गुस्से के साथ बड़बड़ाती हुई चली गई । भगवान आगे कुछ बोले नहीं और मेरा साथ जाने का प्रोग्राम बंद रहा । दुःख होना सहज था क्योंकि दिन प्रतिदिन जैसे-जैसे भगवान नरम बनते गये और उन्हें कष्ट न हो उस भाव से मैं त्याग करती रही वैसे-वैसे वातावरण अधिक तंग बनता गया । भगवान निकल गये, मुझे जो जरूरी काम था वह भी बातचीत न हो सकी । एक तो परिस्थितिवशात् मैं भगवान के पास बार-बार जा नहीं सकती थी जिससे हमेशा यही विरोध करनेवाले व्यक्ति के प्रति गुस्सा आना भी सहज था परन्तु क्या कर सकती थी ? अन्त में सोचा मुझे ही इस मार्ग से हट जाना चाहिये, उस विचार से रो रही थी तब वो ही व्यक्ति आकर समझाने-बुझाने लगे मानो मेरे प्रति बहुत प्यार है और मुझे मालूम न हो इस तरह से छिपे ढंग से भगवान के नाम पर जयपुर तार भेजकर पिताजी को बुलाकर मुझे जयपुर ले जाने के लिये कहा । पिताजी को भी मेरे विरुद्ध समझाते रहे, उस बात से भी मैं अनजान थी । आखिर मैं अपने पिताजी के साथ जयपुर चली गई । भगवान राजकोट पधार रहे थे तब मैंने चिट्ठी दी थी जिसका उत्तर मिला :

श्री रामचंद्राय नमः

राजकोट
५-५-६८

प्रिय रमा सादर आशीर्वाद

तुम्हारा पत्र मिला कुछ समझ में आया नहीं मैं बहुत जल्दी मिलना चाहता हूँ और तुम अपना दिया हुआ वचन अवश्य ही पालन करती रहोगी । चाहे जो हो वचन का पालन करना, धीरज रखना, घबराना नहीं अच्छा मैं जल्दी ही मिलूंगा ।

रणछोड़दास का आसीस

यह पत्र दिन बिताने के लिये सहारा बन गया । भगवान कब मिलेंगे यही प्रतीक्षा में थी इतने में एक पोस्टकार्ड मिला जिसमें अपने पास बुलाने के लिये इशारा था लेकिन मैं समझ नहीं पाई जिससे गई नहीं । उज्जैन से अनंतपुर पधारे तब प्रबल इच्छा होने पर भी साथ नहीं ले जा सके, इस कारण अनंतपुर जाते हुए गुना से आगे आरोन गाँव से पोस्टकार्ड लिखा था :–

प्रिय रमा, सादर आसीस

स्वास्थ ठीक नहीं आरोन (गुना के पास) में हूँ डाक बंगले में मेरे पत्र सब पहुँचे होंगे । धीरज रखना और क्या सबको आसीस । लिखने को बनता नहीं ।

रणछोड़दास का आसीस

सीधे ढंग से बुलाने के लिये नहीं लिख पाते थे कारण श्री पतित पावनजी भगवान की शपथ देकर वचनबद्ध किये थे । इस पत्र से भी मालूम होता है कि और भी पत्र लिखे होंगे लेकिन मुझे तो इससे पहले एक ही पत्र मिला था । बीच में से पत्र ले लेने की घटना तो बहुत सहज बन गई थी ।

[८२]

प्रगटेऊ प्रभु कौतुकी कृपाला

भगवान शरणागत के परम हित के लिए कितने ही कठोर प्रसंग भी जीवन में ला सकते हैं इसलिए ऐसी घटनाओं के निमित्त जीवात्माओं का कोई दोष नहीं है । आज तक जीवन में जब-जब असह्य घटनायें घटी हैं तब हमेशा परिणाम मंगलमय रहा है लेकिन भगवान के पीठबल बिना ऐसे धर्म युद्ध का सामना करना बहुत ही मुश्किल है । जीवात्मा की शक्ति कितनी ? इस कलिकाल में अवश्य हार जाते हैं । अर्जुन भी

श्रीकृष्ण भगवान की सहाय बिना कौरवों के सामने टिकने में असमर्थ था तो फिर साधारण जीवात्मा का क्या ?

बिहार से जयपुर पहुँचने पर घर का वातावरण बदल चुका था । पढ़ने में होशियार भाई थोड़े अलग ढंग से तैयार हो रहा था जिस कारण एक साल परीक्षा में असफल रहा और वह अपनी मनमानी इच्छाओं की पूर्ति के लिये थोड़े असत्य आचरण की ओर मोड़ ले रहा था । कॉलेज के वातावरण का रंग चढ़ने लगा था । संग दोष के कारण अंडे, आमलेट खाना और वह धीरे-धीरे घर में लाना चालू कर दिया था । उसे समझाने पर प्रत्युत्तर मिलता था इसके अलावा मुझे ताकत कहाँ से मिलेगी ? भगवान से सुना है, "जितनी ताकत अंडे में है इतनी ही दूध में है और उससे दस गुनी ताकत उड़द की दाल में एवं सौ गुनी ताकत रबड़ी में है ।" अब उसे कितना ही समझाने पर कोई बात मानने को वह तैयार न था तब पिताजी से कहना पड़ता था जिससे मैं उसकी इच्छा पूर्ति में उसको बाधा रूप लगती थी । चाहे कितने ही त्याग भाव से सबके हित के लिए कार्य करने पर भी परिणाम उल्टा दिख रहा था । माँ को धन सम्पत्ति के विषय में पूर्ण असंतोष था वह अब इस भाई द्वारा थोड़े समय में पूर्ण संतोष मिलने की आशा में माँ भी उसका पक्ष लेकर मेरे प्रति अभाव दिखाने लगी थी और मानो मेरी हाजरी उन्हें भी अखर रही थी । कैसा भी बर्ताव मेरे प्रति देखने पर भी वे लालचवशात् स्वार्थ के पर्दे में सत्य का पक्ष नहीं ले पाती थी । वैसे भी उन्हें मुझ से असंतोष था ही कि उनकी इच्छानुसार मैंने नौकरी नहीं की और कभी भी भगवान के बुलाने पर गृहकार्य छोड़कर भगवान के पास चली जाती थी । भगवान जब इन्दौर पधारे तब मुझे खबर मिलने से इन्दौर आने के लिए मैंने पुछवाया तब प्रत्युत्तर मिला :–

इन्दौर

प्रिय रमा

सादर आसीस

शरीर गल चुका है और बेचैनी रहती है । भोग तो भोगना ही पड़ता है न । सबको आसीस यहाँ तारीख ७ तक हूँ आराम लेता हूँ कोई से मिलता नहीं हूँ ।

रणछोड़दास

यह पत्र पढ़कर भगवान के पास जाना योग्य न लगा कारण भगवान न मिले तो जाना व्यर्थ था ।

घर में ऐसी घटनायें घटने पर वापिस नौकरी करने की इच्छा बढ़ती थी । सोचती थी मैं अपना खर्चा निकाल सकूंगी और किराये पर अलग मकान लेकर मेरा जीवन भजन में व्यतीत करूँगी । आज तक भगवान जो कुछ कहते थे, लिखते थे वह सभी शब्दों की क्रियात्मक अनुभूति होने लगी लेकिन नौकरी के विषय में भगवान की सम्मति मिलना मुश्किल था । उनके पास रहने के लिए मेरी पात्रता थी नहीं । अन्य कोई आश्रम में रहने जाने के लिए भगवान का अभिप्राय ठीक न था तो अब करना क्या ? इन विचारों से मन घिरा रहता था ।

बिहार में भगवान ने "रामधाम ट्रस्ट – पुष्कर" की स्थापना की थी और उस समय मुझे बुलाकर जो कुछ कहा था वे शब्द इस समय कान में गूंजने लगे ।

"देखो रमा, अब रामधाम ट्रस्ट बन गया है, तुम पुष्कर रहने जाव तो सावधान रहना । तुम वहाँ के लोगों के स्वभाव से अपरिचित हो । कभी भी रामकुटि में जाना नहीं और किसी काम से जाव तो वहाँ का पानी भी पीना नहीं वरना मीठा-मीठा बोलकर और प्रसाद वगैरह देकर वो तुम्हें फंसा लेगी, धीरे-धीरे थोड़ा काम बतायेगी, तुम संकोचवश मना नहीं कर सकोगी । ऐसे करते-करते तुम्हें गुलाम बनाकर रखेगी । तुम भोली हो फंस जाओगी और तुमारी दशा कस्तूरी माँ जैसी हो जायेगी (कस्तूरी माँ, एक वृद्ध, विधवा माजो थे जिनकी आर्थिक परि-स्थिति कमजोर थी । वे भी राजकोट के ही रहने वाले थे । कई सालों से पुष्कर में आकर रहते थे । उनकी आर्थिक परिस्थिति का लाभ उठा-कर उनकी शक्ति से बाहर मनमाना काम लेते थे और कोई भी कार्य या कहीं भी आना-जाना उनसे पूछे बिना वे नहीं कर पाते थे । रामधाम ट्रस्ट की ओर से उन्हें मासिक सौ रुपये की मदद की जाती थी । उस विषय में भी कितने शब्द-बाण मारे जाते थे । कैसे भी अपमान करके मानसिक पीड़ा पहुँचाते थे ।) तुम पहले से कड़क रहना, कुछ काम बतावे तो कह देना मेरा नियम बाकी है । तुमसे हो सके जितना राम-राम करना नहीं तो कमरा बंद करके पड़ी रहना । तुम उसका

काम नहीं करोगी तो ज्यादा से ज्यादा वह तुम्हारी बदनामी करेगी और फिर भी भविष्य में अनुकूल न पड़े तो पुष्कर छोड़ देना । डुकरिया पुराण में पड़ना नहीं और उससे भी सावधान रहना, जरूर पूरता काम का संबंध रखना वरना उसका स्वभाव ऐसा है जिधर मिलेगा उधर ढल जायेगी, सत्यासत्य का विचार नहीं कर पायेगी ।"

१९६६ में भगवान जब पुष्कर पधारे थे तब जिस जमीन का नाम रामधाम रखा था वहाँ काम चालू हो चुका था । वह देखने के लिये मुझे भेजते समय भगवान ने कहा था, "रमा, जाव, देखकर आव, तुम्हारे रहने के लिये ब्लॉक बन रहा है ।" आज्ञानुसार देखकर तो आई, नींव डल रही थी, उसमें मुझे क्या मालूम पड़ता ? वापिस लौटने पर कहा, "देखकर आई ? तुम वहाँ रहना", कारण भगवान तो भविष्य जानते थे । उस वक्त मैं कुछ बोली नहीं, लेकिन सोच रही थी इस जंगल में मैं थोड़ी रहने आऊँगी ?

बिहार में भी एक दिन कहा था, "देखो रमा, अब तुम पुष्कर रहने चली जाना, अब घर में रहना ठीक नहीं है ।" यह सुनकर मेरी अल्प बुद्धि अनुसार मैं समझ नहीं पाई कि ऐसा क्यों कह रहे हैं ? मैंने कहा, "भगवान, माँ काम नहीं कर पाती है, उनकी सेवा के लिये एक भाभी जयपुर आ जाय, बाद में मैं पुष्कर रहने जाऊँगी ।" तब कहा था, "ठीक है, तुम्हारी मरजी ।" उसके बाद धीरुभाई की शादी हुई और उनकी नौकरी नागपुर में होने से वे भाभी भी नागपुर रहने गये । तीसरे नंबर की भाभी के विषय में मैं अनजान थी, परंतु भगवान तो जानते थे कि कौन आयेगा और कहाँ रहेगा ? जब जब शरणागत जीवात्मा साक्षात् परमात्मा स्वरूप सद्गुरुदेव के आदेशानुसार न चलकर अपनी बुद्धि के बल पर चलता है तब अवश्य ठोकरें खानी पड़ती हैं । इसीलिये मानो अब भगवान ने ही यह प्रसंग खड़ा किया था कि सीधे ढंग से नहीं तो अब ठोकर खाकर घर छोड़ना ही पड़ेगा ।

भगवान ने जैसा कहा था वैसे किसी भी प्रकार से अब घर छोड़ने के दिन आ गये थे । थोड़ी कठोर कृपा करके भी घर छुड़वाया । बार-बार घर में से "जाव" शब्द सुनने को मिलता था जिसमें पिताजी के अलावा सबकी संमति दिखाई देती थी जिससे घर से निकल गई । भगवान

ने एक ओर से अपने पास आने के लिये मना किया था, इसलिये अब कहाँ जाऊँ, समझ में नहीं आता था। भगवान के भरोसे जयपुर से बनारस जाने के लिये निकल गई। वहाँ पर एक जगह दो दिन रुककर आगे कानपुर जाने के लिये रवाना हुई। हालांकि कानपुर जाना नहीं था परंतु जबरदस्ती किसी के आग्रहवशात् उस गाड़ी में बैठना पड़ा। महिलाओं के डिब्बे में मैं बैठी थी। गाड़ी चलने पर आँखें बंद करके गहरे विचारों में डूबी हुई थी, कहाँ जाऊँ ? कुछ सूझता नहीं था, इतने में भगवान की आवाज सुनाई दी, "मैं कहता हूँ नागपुर चली जाव।" आँख खोलने पर देखा तो भगवान स्वयं खड़े थे। बहुत ही आश्चर्य ! ! ! सोच रही थी चालू गाड़ी में बहनों के डिब्बे में भगवान कैसे आये ? इतने में दूसरी बार कहा, "मेरा कहना मानो, नागपुर चली जाव", मैंने कहा, "भगवान, इस तरह से मैं वहाँ नहीं जाऊँगी" कारण मेरे पास कपड़े आदि कुछ भी सामान नहीं था। पहने हुए कपड़े भी एकदम पुराने थे। मैं इस हालत में कैसे जाऊँ ? यह सुनकर कहा, "मैं तुम्हें नागपुर से बहुत जल्दी बुला लेता हूँ, तुम वहाँ चली जाव।" भगवान कहाँ से आये, कहाँ चले गये, कुछ समझ नहीं पाई।

आखिर इलाहाबाद उतर गई। वहाँ से पूरे पैसे न होने के कारण पैसेंजर गाड़ी से निकलकर दो दिन में नागपुर पहुँची। मुझे देखकर सबको आश्चर्य हुआ, मैं भी सबको देखकर रोने लगी। उन्होंने जयपुर खबर दिये और तीन-चार दिन में भगवान का तार आया जिसमें भोपाल आने का आदेश था।



[८३]

कृपा वारिधर राम खरारी

भगवान के बुलाने पर नागपुर से आवश्यक कपड़े, बिस्तर लेकर सुबह आठ बजे भोपाल के लिये रवाना हुई । रात को आठ बजे वहाँ पहुँची । साथ में नाश्ता तो था लेकिन चरणामृत लिये बिना नियमानुसार पानी भी नहीं पीना था । भोपाल पहुँचने पर मालूम हुआ कि अभी थोड़ी ही देर पहले तीन-चार दिन के लिये भगवान विदिशा पधारे हैं । यह सुनकर निराश हो गई और साथ में भगवान के लिये लाये हुए आम वहाँ रसोई में दे दिये । पासवाले कमरे में जहाँ बहनें थीं, उनके साथ मैंने अपना सामान रख दिया । मैं पहुँची तब मेरी नजरों के सामने ही दूसरी गाड़ी भगवान को चाबी पहुँचाने जा रही थी लेकिन विरोधी व्यक्ति चाहते थे कि मुझे मालूम न हो । गाड़ी गई बाद में मालूम हुआ तब दुःख में दुःख और भी बढ़ गया लेकिन किसी को दोष देना व्यर्थ था । अपने प्रारब्ध का विचार करते हुए रोती हुई बैठकर मन ही मन भगवान से लड़ रही थी, "हे अन्तर्यामी प्रभु ! आपने मुझे भोपाल बुलाया तो क्या नहीं जानते थे कि मैं आ रही हूँ, फिर भी चले गये ? और तीन-चार दिन के बाद दर्शन होंगे ? खैर ! जितना भोगने का होगा भोगना ही पड़ेगा । भगवद् दर्शन आसान नहीं हैं, भले तीन-चार दिन के उपवास बाद मिलना परन्तु भगवान आपकी कैसी अटपटी लीला है । अनजान होकर चले गये तो फिर ट्रेन में भी क्यों प्रगट हुए ?" इस तरह से भगवान के साथ प्यार भरा झगड़ा चल रहा था कारण हृदय की पुकार या दर्द और कौन समझ सकता है ? वैसे भी दुनियावालों को कुछ कहने का क्या अर्थ ? कारण अधिकतर लोग खुश होते हैं । इसीलिये गुजराती में कहा है,

दर्द ने गाया विना रोया करो, जीवन मां जे थाय ते जोया करो
दर्द को गाये बिना रोते रहो, जीवन में जो होता है वह देखते रहो ।

इसी कारण मन ही मन जो कुछ कहना था भगवान से कह रही थी । जीवात्मा के सच्चे हितकारी संत और भगवंत के सिवा दुनिया में और कौन है ? रोते-रोते रात को करीब डेढ़ बजा होगा, सब सो रहे थे, बाहर जोरदार बारिश हो रही थी । गाड़ी का होर्न बजने की खूब आवाज आ रही थी, यह सुनकर दौड़कर बाहर तो गई लेकिन मुख्य द्वार बंद था और चाबी चौकीदार के पास थी । चौकीदार कहाँ सोये हैं मालूम न था जिससे अपाहिज होकर एक ओर खड़ी थी । मन कहता था कि अवश्य भगवान ही पधारे हैं इतने में तो चौकीदार आ गया । दरवाजा खुलने पर गाड़ी अन्दर आई । हँसते हुए भगवान बोले, "क्यों आ गई ? चल अन्दर ।" इतने में सब लोग उठकर आ गये । एक बहन ने पूछा, "भगवान, इतने जल्दी वापिस कैसे लौट आये ?" मेरे सामने देखकर हँसते हुए बोले, अरे ! क्या करूँ, बहुत बरसात हुई, इतना पानी बरसा कि मेरी गाड़ी में पानी आ गया और मुझे वापिस लौटना पड़ा ।"

अति कोमल रघुवीर सुभाऊ, यद्यपि अखिल लोककर राऊ

मैंने भगवान से शब्दों में नहीं लेकिन जो कहना था कह दिया और भगवान भी मेरे मनोभाव को समझ गये । भगवान जब बोले, "इतनी बरसात हुई कि गाड़ी में पानी भर गया" तब मन ही मन मैंने कहा, "जी हाँ, यह आँखों की वर्षा का पानी आप तक पहुँचा तो सही" । इसीलिये किसी ने कहा है,

नजरने नजर से मुलाकात कर ली
रहे दोनों खामोश और बात कर ली

थोड़ी देर के बाद कहा, "अरे ! मुझे बहुत भूख लगी है कुछ खाने को है क्या ?" सेवा करनेवाली बहन ने कहा, "कुछ नहीं है ।" तब पूछा, "अच्छा, कुछ सब्जी है ?" परवल है सुनकर कहा, "लाव मैं परवल काटता हूँ, तुम आटा बनाव" । सबसे कहा, "जाव, अब सो जाव, सुबह मिलूंगा" और मुझे कहा, "जाव, नहाकर आव" । करीब तीन बजे थे । रसोई का दरवाजा थोड़ा खुला था, सामने से मुझे आती हुई देखकर कहा, "आ जाव रमा, अन्दर आ जाव" । मैं जो आम लाई थी वह एक

थाली में देखकर बोले, "इतने सारे आम कौन लाया ?" उस बहन ने कहा, "रमा लाई है" तब प्रेम से बोले, "तो-तो जरूर खाऊँगा, दो आम धोकर दो" । अपने ही हाथ से आम सुधार कर भोजन करते-करते सबके कुशल समाचार पूछे और भोजन के बाद पूजा स्वीकार की तब अंदर कमरे में कोई था नहीं जिससे कहा, "देखो रमा, मुझे मालूम है दिन भर तुमने कुछ खाया नहीं है इसलिये भोजन बनवाया, है, अब तुम इतना खा लेना, मैं सुबह बात करूँगा ।" इतना कहकर अपनी प्लेट में से सब्जी-रोटी और सुधारे हुए आम एक थाली में मुझे देकर सोने चले गये । मैं भी भोजन करके सो गई । सुबह आठ बजे दर्शन के लिये जाने पर पूछा, "रात को भोजन किया था ?" "हाँ" सुनकर कहा, "अच्छा तो हम थेंक्यू कह देते हैं ।" थोड़ी देर के बाद सबको बाहर भेजकर मुझसे सब बात पूछी, सारे हाल जानकर व्यथित होकर कहा,

ममत्व का त्याग ही त्याग है, मैं न मिटे तू न मिले

भगवान ने एक पत्र पिताजी को लिखा, उसमें से थोड़ा-बहुत याद है –

"रमा यहाँ आ गई है, इसके विचार उदार हैं पर मन खिन्न है, तुम चिन्ता न करना ।

पारवती जिन निरमयऊ, सोई करिहहिं कल्यान ।
उनका भगवान कल्याण करे ।"

एक पत्र मेरे से भाई के नाम लिखवाया । पहले मुझसे पूछा, "मैं कहूँ ऐसा करोगी ? मैं एक पत्र लिखाऊँ वैसा लिखोगी ?" मैंने कहा, "जरूर भगवान ।" तब लिखवाया, "तुमने मेरा बहुत भारी उपकार किया है इसे मैं कभी नहीं भूलूंगी" आदि ।

उसके बाद मुझसे पूछा, "भोजन का क्या करोगी ?" मैंने कहा, "भगवान, इस तरह से घूमती हुई आई हूँ इसलिये रसोई का सामान नहीं लाई हूँ लेकिन मेरे साथ पराठा, सेव और मिठाई है, दही-छाछ या दूध के साथ भोजन कर लूंगी, एक-दो दिन में जयपुर से प्रमोद के साथ मेरा सामान आ जायगा ।" तब कहा, "ऐसा नहीं, ठहरो, मैं व्यवस्था

करता हूँ ।" मुझे उज्जैन को घटना याद आ गई इसलिये मैंने कहा, "भगवान, क्षमा करो, मेरे लिये आप किसी से कुछ माँगना नहीं ।" तो बोले, "ठहरो तो सही ।" सेवा करने वाली बहन को बुलाकर पूछा, "यहाँ पर तो सब रसोई का सामान है फिर मेरे साथ रहने वाला सामान कहाँ है ?" वे समझ गये थे कि मेरे लिये पूछ रहे होंगे जिससे उत्तर दिया, "मुझे मालूम नहीं है" यह सुनकर नाराजगी से कहा, ठीक है तुम जाव ।" मैंने कहा, "भगवान, आपसे ना कहा था फिर भी आपने क्यों माँगा ?" तब बोले, "रमा, मैं सब जानता हूँ फिर भी सबको देखना चाहता हूँ, खैर ! तुम अपना चला लो । देखो मेहमान आ रहे हैं, रसोइया एक ही है इसलिये रसोईघर में थोड़ी मदद करना ।

दूसरे दिन सुबह सबके लिये समूह भोजन में भगवान की आज्ञा से आमरस बनाने का था कारण बहुत सारे आम आये थे । लेकिन रस निकालने की पद्धति देखने पर खाने की रुचि नहीं होती थी ! खैर मुझे तो समूह में भोजन लेना ही नहीं था इसलिये यह सवाल ही न था । दोपहर में भगवान के द्वार बंद थे । रात भर का जागरण और मानसिक थकान होने से मैं सो गई थी तब भगवान बाहर पधारे होंगे और समूह भोजन में बचा हुआ आम रस मँगवाकर सब स्वयंपाकी बहनों को बड़ी कटोरी भर-भर के प्रसाद दिया होगा । लेकिन जिसने आम रस निकालते हुए देखा था वे तो धर्मसंकट में पड़ गये, ना ही खा सकते थे और ना ही फेंक सकते थे कारण प्रसाद भगवान के वरद्हस्त से दिया गया था । मैं शाम को उठी तब यह बात मालूम हुई । एक ओर से ग्लानि हुई, भगवान का सान्निध्य नहीं पा सकी और दूसरी ओर से खुशी हुई कि चलो ऐसा रस पीने से बच गई ।

संध्या समय पर भगवान कहीं बाहर पधारे थे वहाँ से वापिस लौटे तब कमरा बंद करते हुए कहा, "सबको कल मिलूंगा ।" मैं अपना फर्ज निभाने रसोईघर में मदद करने चली गई । थोड़ी देर के बाद रसोईघर में से तीन बहनों को भगवान ने बुलाया जो सामूहिक भोजन बनाने में कुशल थीं । दूसरे दिन गुरु पूर्णिमा का महोत्सव होने से रसोई के बारे में उन बहनों को सूचना देनी थी । उन लोगों से भगवान ने पूछा होगा, "आप सबको रस मिला ना ? कोई बाकी तो नही रह गया ?" तब एक ने कहा, "भगवान रमा बहन रह गई" यह सुनकर मुझे बुलाया ।

तब प्रमोद भी ग्रा गया था, वह भी मेरे साथ दर्शन के लिये भीतर ग्राया तब उससे कहा, "तुम ग्रा गये ? ग्रच्छा हुग्रा पर ग्रब चले जाव क्योंकि ग्रभी किसी को मिलता नहीं हूँ ।" बाद में मुझसे कहा, "देखो, उस टोकरी में से ग्रच्छे-ग्रच्छे देखकर चार ग्राम लाव ।" किसके लिये मँगवा रहे थे यह मुझे मालूम न था जिससे ग्रच्छे-ग्रच्छे देखकर चार ग्राम देने पर कहा, "इनको ठीक से धोकर लाव ।" उन तीनों बहनों को एक-एक ग्राम घोलने दिया ग्रौर चौथा ग्राम स्वयं घोलने लगे ग्रौर मुझसे कहा, "जाव तुम मेरी रसोई में से एक तपेली, थोड़ी शक्कर, एक कप दूध ग्रौर थोड़ा इलायची, केसर लेकर ग्राव ।" ग्रपने हाथ से तपेली में रस निकाला, सब चीज मिलाकर चम्मच से हिलाते हुए कहा, "लो ग्रब ये तुम ले जाव, तुम ग्रौर प्रमोद मिलकर पी जाना ।" मानों सर्वज्ञ भगवान सामूहिक रस पीने की मेरी ग्रनिच्छा जान गये थे इसीलिये ग्रपने ही कर-कमलों से रस तैयार करके प्रसाद दिया ।

दूसरे दिन सुबह गुरु पूर्णिमा का उत्सव था, काफी भीड़ थी। भगवान के पास गई तब बात चल रही थी । एक भाई से कह रहे थे, "हनुमंत-लालजी की एक मूर्ति बनवानी है, ग्रनन्तपुर में एक मन्दिर बनवायेंगे ग्रौर प्रतिष्ठा करेंगे ।" उस भाई ने पूछा, "भले भगवान, कितनी ऊँची मूर्ति बनवानी है ?" मेरे सामने देखते हुए कहा, "यह रमा को देख लो, इसके जितनी ऊँची मूर्ति बनवायेंगे ।"

पूर्णिमा के दूसरे दिन ग्रागे जाने के लिये भगवान के साथ मोटर द्वारा रवाना हुए । बीच में नरसिंहगढ़ डाक बंगले में रात रुके, उस वक्त मुझे बुलाकर जबरदस्ती दूसरे चार हजार रुपये दिये ग्रौर बैंक में रख देने के लिये कहा । वहाँ से भगवान जयपुर पधारे । मुझे घर पर भेजा कारण साथ में ग्राये हुए सबका भोजन गलताजी में बनाना था इसलिये थोड़े बर्तन वगैरा सामान घर से लाना था । गलताजी में सबके लिये भोजन बनाया गया । माँ, पिताजी भी दर्शन के लिये ग्राये थे, उनसे कहा, "ग्रब रमा यहाँ से मेरे साथ पुष्कर जायेगी, ग्रब जयपुर नहीं रहेगी ।" पिताजी ने कहा, "भले भगवान ।" भगवान ने थोड़े कठोर शब्द भी कहे । छोटे भाई प्रमोद को ग्रागे पढ़ने के लिये पूछने पर कहा, "सुविधा न हो तो लोन लेकर भी उसको पढ़ाना चाहिये ।" मुझे कहा, ठीक है रमा, मैं ग्राज ग्रभी पुष्कर जाता हूँ, तुम कल ग्रा जाना, मैं राह देखूंगा ।"

अन्य देव कृपा करे, देते स्वर्ग निवास
सद्गुरु कृपा कटाक्ष से, छूटे सकल आवास

अब तो प्रभु शरणागति के सिवा कोई आधार रहा ही नहीं

अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह
जिसको ठुकराती दुनिया, कोई उसको गले लगाय
जिसको बहकाती दुनिया, कोई उसको राह बताय
वह कौन निजात्म हमारा है, वह ईश्वर प्राण पियारा है
हरि ॐ हरि ॐ श्री रामाय नमः जिसको·············· (१)

जिसका जीवन नित सूना, वहाँ जीवन ज्योति जलाई
जिसने झेला दुःख दूना, उसकी सब विपद मिटाई
वह कौन जगत आधारा है, वह ईश्वर प्राण पियारा है
हरि ॐ हरि ॐ श्री रामाय नमः जिसको················ (२)

जिसे भीख न कोई देता, उसके भर दिये भंडारे
जिसको न दिखाई देता, उसे स्वयं ही पार उतारे
वह ऐसा आत्म सहारा है, वह पियारा राम पियारा है
हरि ॐ हरि ॐ श्री रामाय नमः जिसको················ (३)

नैया जिसकी बिन बांधी, उसकी पतवार संभाली
सुखी बगियाँ जीवन की, बन गया उसी का माली
वह ऐसा जग रखवारा है, वो ईश्वर राम पियारा है
हरि ॐ हरि ॐ श्री रामाय नमः जिसको················ (४)

कहीं बीच सभा में उसने, दुखिया की लाज बचाई
किसी प्रेम दिवाने भगत की, सब हुंडी उसी ने चुकाई
वह कौन साँवरा प्यारा है ? वह ईश्वर राम हमारा है
हरि ॐ हरि ॐ श्री रामाय नमः जिसको················ (५)

नहीं देखा जब नयनों से, उसने आँखें दी खोली
अब तोड़ी जगत से डोरी, फिर प्राणेश्वर से जोड़ी
वह कौन हितैषी हमारा है, वह ईश्वर राम पियारा है
हरि ॐ हरि ॐ श्री रामाय नमः जिसको·············· (६)

जिनी-जिनी चदरिया ओढे, बैरागी था एक आया
दुनिया है एक तमाशा, और सत्य नाम समझाया
वो कौन-सा ज्ञान ऊजारा है, वो ईश्वर राम पियारा है
हरि ॐ हरि ॐ श्री रामाय नमः जिसको............... (७)

जो है प्राणेश्वर सबका, जो है सृष्टि का रचैया
उसे राम रहीम कहे कोई, और साँई कृष्ण कन्हैया
ओ प्रीतम अपरंपारा है, उन चरणन का ही सहारा है
हरि ॐ हरि ॐ श्री रामाय नमः जिसको............... (८)

[८४]

जासु कृपा छुटे मदमोहा

भगवान उसी दिन पुष्कर के लिये रवाना हुए । मैंने कहा था, "अपना सामान लेकर कल आऊँगी" तब कहा था, "तुम्हें क्या चाहिये ? कुछ लेने की जरूरत नहीं है जीवन में जब जो चाहिये मिल जायेगा ।" तब पिताजी ने कहा था, "भले भगवान, वह कल अपना सामान लेकर आ जायेगी ।" लेकिन घर जाने पर पिताजी का व्यवहार मेरे प्रति एकदम बदला हुआ दिखाई दिया । माँ को भगवान के शब्द से दुःख लगा था । मैं दूसरे दिन पुष्कर जाने के लिये निकल गई । सच है ममता छोड़ना बहुत ही कठिन है । भगवान की अहैतुक कृपा से ही अहंता और ममता का नाश हो सकता है ।

संत पू. श्री मोटा के शब्दों में देखा जाय तो, लौकिक दृष्टि से कहलाने वाले स्वजनों ने ठुकराकर तिरस्कार भी किया है । विरोध के साथ ना जाने क्या-क्या मानकर बैठे हैं फिर भी प्रभु कृपा से उनके प्रति सद्भाव कम न होते हुए जरूर पड़ने पर उपयोगी होने के लिये हमेशा तैयार रही हूँ । किसी ने थोड़ा भी उपकार किया हो उसका थोड़ा भी ऋण रहने पर वह चुकाने के लिये प्रभु कृपा से तन, मन, धन और वचन से

प्रयत्न चालू है । जीवन में जो बात आचरण में नहीं है ऐसा अपनाने के लिये कभी अन्य से कहा नहीं है ।

ऐसी विविध टक्करों से ही तो जीवन बनता है । जिसके जीवन में ऐसी मुसीबतें आई नहीं हैं उस जीवन में आत्मबल बढ़ने की संभावना कैसे उद्भवीत् हो सकती है ? कैसी भी विषम परिस्थिति में मेरी मानसिक स्थिति पूर्ण रूप से समझ वाली, शान्ति वाली और धैर्य धारण करने वाली रह सके उस प्रकार की शिक्षा हेतु ईश्वर कृपा करके ऐसे संयोग मेरे लिये उपस्थित करते रहे हैं । जहाँ मेरी भूल हो वहाँ लाखों बार क्षमा माँगने में संकोच का अनुभव नहीं होता है परन्तु यदि कोई जीवात्मा अपनी प्रकृति के अनुकूल अंतिम सीमा तक झुकाना या घसीटना चाहे तो वहाँ कभी नहीं झुक सकती हूँ । ध्येय के विषय में और आदर्श के प्रति पूर्ण रूप से दृढ़ रहती हूँ । अधिकतर अपने ही लोग नीचे गिराने का प्रयत्न करते हैं । जभी तो संतों ने गुजराती में कहा है –

अमाराना अनुभव छे, तमारा पण दगो देशे

अपनों के अनुभव हैं तुम्हारे भी धोखा देंगे । कारण अपनों के प्रति अधिक ममत्व होता है । ऐसे प्रसंगों की कृपा जागृति लाती है जभी तो उनके प्रति रहे हुए राग, ममता, आसक्ति, मोह जो कुछ भी साधक के मन में रहता है, वह उनकी प्रकृति के दर्शन होने पर कपूर की भांति उड़ जाते हैं, कारण

मोह सकल व्याधिनकर मूला····

ध्येय के प्रति वज्र से भी कठोर दृढ़ता बनती जाती है । जीवन में कारुण्य, उदारता, विशालता, प्रेम आदि को स्थान है, लेकिन इसका सदुपयोग केवल अपने ध्येय के प्रति है न कि असत्य और प्रकृति के निम्न स्तरों को अपनाने के लिये । ऐसा जीवन अन्य लोगों को उल्टा लगेगा, घातक लगेगा । ऐसा होगा ही तो भी अपने ध्येय के लिये योग्य प्रेम-भाव युक्त अडिग बर्ताव से सामनेवाले को जीवन की सच्ची समझ और उच्च स्तर का दर्शन कराने का सौभाग्य प्रभु कृपा से हो सकता है ।

घर छोड़ते समय भगवान के शब्दों की यथार्थ प्रतीति हुई, "स्वजन संबंध जन्म से होता है, अनित्य है और यह ऋणानुबंध पर निर्भर है । जन्म से पहले होता है वह आत्म-संबंध है, वही नित्य है ।"

पुष्कर पहुँची तब सड़क पर बस में से उतरते ही भगवान के दर्शन हुए । सामान देखकर बोले, "यही तुम्हारा सामान है ? खैर, चिंता नहीं करना ।" हालांकि मुझे उसमें कुछ भी कभी महसूस नहीं हो रही थी, इसलिये आश्चर्य हुआ कि इसमें क्या नहीं है ? क्योंकि सामान में मेरे कपड़ों का एक छोटा बैग, मेरे लायक छोटा बिस्तर और भगवान का दिया हुआ एक प्रायमस का डिब्बा और बर्तनों की बाल्टी थी । मेरी दृष्टि में मेरे लायक इतना सामान काफी था । मेरे साथ भगवान भी रामधाम में पधारे तब तो एक कमरे में हम तीन-चार व्यक्ति थे । दूसरे दिन भगवान ने मुझे बुलाकर पूछा, "क्यों वह तुमसे बोला कुछ ?" मुझसे ना सुनकर आगे पूछा, "भोपाल से लिखा वह पत्र उसको मिल गया होगा ना ? मैंने कहा, "मालूम नहीं" तब बोले, "जाने दो वह पत्थर है क्यों पिघलेगा ?" मैंने कहा, "भगवान, आपके शब्दों से माँ को बहुत दुःख हुआ है", तब कहा, "अच्छा हुआ, इसीलिये कहा है, तुम पुरुषोत्तमभाई को एक पत्र लिखो कि मुझसे मिल जावे ।" आदेशानुसार मैंने पत्र लिखा, पत्र जयपुर पहुँचने पर दूसरे दिन शाम को पिताजी आ गये ।

रात को कुछ बोले नहीं परंतु सुबह मुझे खूब डाँटा । उन्होंने सोचा मैंने बुलाया है, इसलिये कहने लगे, माँ-पिता को परेशान करती है, मुझे यहाँ आने का खर्चा कराया वगैरा....तब तो यह सुनकर अति दुःख हुआ, जो पिताजी खूब प्रेम भाव के साथ मेरे प्रति कुछ अन्य ही भाव रखते थे और उनका जीवन भी पूर्ण रूप से त्याग, सत्य और नीति के मार्ग पर आदर्श, उत्तम विचारों की ओर मुड़ा हुआ है, मेरे प्रति उनका व्यवहार एक नया ही मोड़ ले रहा था, लेकिन मानसजी में स्वयं शिवजी बोले हैं,

बोले बिहंसी महेश तब, ज्ञानी मूढ न कोय
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि क्षण होय

यह बात निज अनुभूति से समझ में आई । सुबह भगवान के पास दर्शन के लिये जाने पर अकेली बुलाकर पूछा, "क्यों, पिताजी ने क्या कहा ?" मैंने कहा, "कुछ नहीं", इतना बोलते आँखें भर आईं । यह देखकर बोले, "मुझसे छिपाती हो ? बताती क्यों नहीं ?" जयपुर से पुष्कर तक आने का खर्च करवाया वगैरा बात सुनकर कहा, "अच्छा ठीक है, वह मेरी पेटी लाव ।" चाबी देकर मुझसे पेटी खुलवाई, उसमें से एक लिफाफा निकलवाकर पेटी रखवा दी । उस लिफाफे में एक हजार रुपये थे, वह मुझे देते हुए कहा, "पुरुषोत्तमभाई को बुला दो और मैं कहूँ तब यह पैसे उनको दे देना ।" पिताजी को बुलाकर पूछा, "प्रमोद के लिये लोन का क्या हुआ ?" पिताजी ने कहा, "मैंने अभी तलाश नहीं की है ।" यह सुनकर बोले, "अच्छा देखो, अब तलाश करना नहीं ।" मेरे सामने देखकर कहा, "रमा, हजार रुपया पिताजी को दे दो" और पिताजी को कहा, "देखो, यह लोन है, इसका ब्याज देने का नहीं है, प्रमोद की पढ़ाई में लगाना और जब वह कमाने लगे तब अनंत-पुरवाले को लौटा देना ।" यह सुनकर पिताजी खुश हो गये । आगे पूछा, "अब तुम्हारा प्रोग्राम क्या है ?" पिताजी ने कहा, "जैसा आप कहें" तो बोले, "देखो, मुझे तो अब काम है नहीं, मैंने तो इसीलिये बुलाये थे, अब चाहो तब आप चले जाना ।" इस प्रकार से मुझे पिताजी ने डाँटा । यह प्रथम तो मैंने कहा भी न था, फिर भी उनसे क्या छिपा रह सकता है ? उसी वक्त मुझे बुलाकर सब बात पूछकर मेरे बारे में एक शब्द भी पिताजी से कहे बिना उन्हें भेज दिये । मेरी सारी व्यवस्था करवाकर पुष्कर रहने के लिये आदेश देकर थोड़े दिनों बाद भगवान पुष्कर से उज्जैन, इंदौर, देवास पधारे । वहाँ से भगवान ने जयपुर के पते पर पत्र लिखा था और थोड़े समय बाद मुझे बुलाने के लिये जयपुर के पते पर एक तार दिया था जो पिताजी ने मुझे पुष्कर भेजा । पत्र में लिखा था :–

श्री राम

प्रिय रमा सा. आ.

मेरा स्वास्थ जैसा था वैसा ही है, यहाँ २१ तक हूँ । चिंता करना नहीं, भजन करना, सबको आसीस ।

रणछोड़दास का आसीस



[८५]

कृपासिंधु परिहरिय की सोई

भगवान का तार मिलने पर मैं बरोडा के लिये रवाना हुई क्योंकि बुला रहे थे। जल्दी सुबह बरोडा पहुँची तब द्वार बंद थे। आठ बजे दर्शन होने पर प्रणाम करते वक्त सबको बाहर भेजकर कहा, "तुम भले आई, पर मेरी एक भी चीज को हाथ नहीं लगाना, यदि यह बात मंजूर हो तो ही रुकना नहीं तो अभी की अभी वापिस चली जाना।" यह शब्द सुनकर बहुत ही आश्चर्य हुआ, कहाँ तो आज तक के मृदु शब्द और कहाँ आज के यह परम कठोर शब्द !! लेकिन वापिस जाकर भी कहाँ जाती ?

मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता, जाऊँ कहाँ तजि पद जल जाता

इसलिये इस शर्त को स्वीकार किया। अब तो जितना बड़ा कमरा हो उसमें भगवान से सामने की दीवार का सहारा लेकर बैठ जाती थी कारण पास बैठने से किसी चीज को हाथ लग जाय तो ? दूसरे दिन वहाँ से भगवान नवसारी पधारे। साथ में हम चार बहनें और भाई लोग थे।

शाम को नवसारी पहुँचे। नर्मदा, तापी नदी में बाढ़ आने से राहत कार्य शुरू किया था। एक कमरे में हम चारों बहनों को ठहरने का था, उसमें से दो बहनें तो रात को ही भगवान के कमरे के भीतरवाले कमरे में रहने चली गई थीं। अब हम दो बहनें थीं, जिसमें से एक बहन दूसरे दिन नेत्रयज्ञ की तैयारी के लिये पिछोर चली गई। इतने समय की आत्मीयता को कुचलकर मानो अब पराये की तरह रहने का था। वहाँ बहुत प्रमाण में मच्छर होने से हाथ से हवा करने का एक पंखा मँगवा लिया था, दर्शन के लिये जाने पर साथ में पंखा ले जाती थी। उसी दिन सुबह भोजन के बाद मुझे बुलाकर कहा, "देखो, मेरी रसोई बन जाने के बाद उसी जगह सामान पड़ा होगा, उससे तुम अपना भोजन

बना लेना ।" थोड़ी देर के बाद मुझसे पीने का पानी माँगा, तब मैंने कहा, "भगवान, मुझे तो कोई चीज को हाथ नहीं लगाने का है ना ? कैसे दूँ ?" भगवान ने हँसते हुए कहा, "अरे ! ऐसा कुछ नहीं है, लेकिन झगड़े से डरता हूँ, इसीलिये तुम्हारे साथ कठोर व्यवहार रखता हूँ ।" पानी पीने के बाद थोड़ी देर बातें कीं । चश्मा निकालकर मुझे बैठने के लिये कहा और भगवान सो गये । सुबह करीब ग्यारह बजे से मैं अंदर थी, अंदर की बहनों को बाहर भेजे थे और भगवान ढाई बजे उठे । कुल्ला करके पानी पीया और चश्मा पहनकर समय पूछने के बाद दरवाजा खोलने को कहा । यह सब विरोधी व्यक्ति को असह्य था । वह उनके चेहरे पर से दिखाई देता था । उसी दिन रात को भगवान नौ बजे से तकिये के सहारे बैठे-बैठे उल्टे सो रहे थे । मैं खड़ी रहकर हाथ के पंखे से मच्छर उड़ाती थी, कमरे में हम तीनों बहनें थीं । रात को बारह बजे भगवान जागे और दो-तीन बार दूसरी बहन को बुलाने पर भी उत्तर न मिलने से मुझे कहा, "तुम चली जाव यहाँ से ।" मैं परिणाम जानती थी वैसा ही हुआ । दूसरे दिन से रोज रात को नौ बजने पर मुझसे कहते थे, "जाव सो जाव ।" भगवान जाग रहे हो फिर भी मेरे लिये रोज नौ बजे का समय निश्चित हो चुका था । बीच में दो-तीन दिन के लिये बम्बई पधारे, तब मुझे वहीं रहने के लिये कह गये थे जिससे मैं अकेली वहाँ थी । पीछे से कमरे की सफाई व्यवस्थित ढंग से करने की सेवा मिलने पर भी संतोष हुआ, उसमें भी आनंद मिलता था । यही भावना नित्य रहती है कि :—

नीच टहल गृह की सब करिहौं, पद पंकज बिलोकी भव तरिहौं ।

श्री हनुमानजी जैसे महान व्यक्तित्त्व को भी त्रेतायुग में राम राज्य में चतुराईपूर्वक सेवा में से हटाये गये थे तो फिर आज कलियुग में मेरी क्या गिनती ? परन्तु परम कृपालु प्रभु किसी के नहीं हैं और सबके हैं । जैसे हनुमानजी को चुटकी बजाने की सेवा मिल गई थी वैसे मुझे मच्छर उड़ाने की सेवा मिल जाती थी ।

राम सदा सेवक रुचि राखी........

हम लोग करीब एक महीना नवसारी में रुके थे । भाई लोग रोज सर्वे करने जाते थे और शाम को लौटकर अगल-बगल के गाँवों की

असह्य दुर्दशा की बातें बताते थे । वह सब घटनायें सुनकर हृदय द्रवित हो जाता था । मैं भगवान के पास ही रहती थी, अन्य कोई सेवा की जिम्मेदारी न होने से बर्तनों के सेट जो बाँटे जाते थे वह बाल्टियों में जमाती थी कई पुराने कपड़ों की बोरियाँ आई थीं जिसमें से भगवान के आदेशानुसार अच्छे और पुराने, जनाना और मर्दाना एवम् बच्चों के कपड़े व्यवस्थित ढंग से छाँटने का काम करती थी । दरजी बुलाया था जिससे कुछ कपड़े ठीक करवाते रहते थे और कुछ मिलिट्री के गरम कपड़े आये थे जिसमें से मर्दों के लिये बंडियाँ बनवाई थीं । सब कपड़े धोबी से धुलवाकर नये कपड़ों के साथ गाँवों में बाँटने के लिये भेजे जाते थे । हरेक गाँव में से पंचायत को पूछकर योग्य जानकारी प्राप्त करके किसानों को बैल की जोड़ी और अन्य खेती के उपयोगी साधन तथा कुछ मध्यम-वर्ग जो माँग भी नहीं सकते और जिन्हें पूर्ण रूप से जरूरत होती थी उनके घर में दरवाजे में से गुपचुप हजार-दो हजार जैसी योग्य रकम पहुँचाई जाती थी । लोगों में मानवता और एक-दूसरों के प्रति हमदर्दी की भावना सुनकर सब गद्‌गदित हो जाते थे स्वयंसेवक भाई जब घर-घर हालत पूछने जाते थे तब सब कोई अपने से अधिक खराब हालत वाले व्यक्तियों को प्रथम मदद पहुँचाने के लिये सामने चलकर कहते थे । ऐसी मानवता की बातें सुनकर गद्‌गद् होना सहज है ।

कभी कोई भाई बाहर गाँव जा रहे हों तो साथ में देने के लिये भगवान के आदेश से नाश्ता बना देती थी तो कभी किसी को पत्र लिखवाते थे । शेष समय में यथाशक्ति नियम और पंखे की सेवा करती थी । इसी प्रकार से समय बीतता जा रहा था ।

थोड़े दिन बाद मुझे सेवा मिली । तीन दिन भगवान का भोजन बनाने का, स्नानादि आदि की व्यवस्था करने की सेवा का सद्‌भाग्य प्राप्त हुआ । लेकिन हो सके जितना जल्दी मुझे कैसे हटाई जाए उसके लिये पूर्ण प्रयास करते थे । यह सब भगवान बराबर देखते रहते थे । परिणाम में आन्तरिक प्रेम बढ़ता रहता था । कोई शरीर से कितने ही दूर क्यों न हटावे लेकिन मन से दूर करना कदापि संभवित नहीं है । नवसारी से निकलकर बरोडा पहुँचे, वहाँ से दाहोद, गोधरा होकर भगवान इन्दौर पधारे । रास्ते में भी भगवान मुझे किस तरह से डांटें उसके लिये पूर्ण

रूप से प्रयत्न होते रहते थे और अन्त में रुलाकर ही संतोष मानते थे । इस प्रकार से भगवान के साथ रहने में बहुत ही सहना पड़ता था ।

रास्ते में दो दिन से भोजन नहीं किया था, भगवान से यह छिपा नहीं था । भगवान कारण भी जानते थे इसलिये इन्दौर पहुँच कर मुझे अपनी रसोई में खिचड़ी बनाने को कहा, लेकिन उन लोगों का बर्ताव देखकर रसोई में जाने को मन नहीं मानता था फिर भी भगवान को दु:ख न पहुँचे, इसी कारण कोई भी एक चीज बनाकर अपने कमरे में भोजन कर लेती थी । वहाँ से भगवान देवास पधारे । वहाँ भी हम तीन ही बहनें थीं, मेरे प्रति बर्ताव ऐसा ही था। वहाँ से पिछोर नेत्रयज्ञ में गये। नेत्रयज्ञ का काम चालू होने पर मैं वार्ड में काम करने चली जाती थी । कभी थोड़ी देर भी पास में बैठी हुई देखते या भगवान के माँगने पर कोई चीज देते देखते तो उसी वक्त विरोध कर देते थे । इसलिये मैंने भगवान के पास जाना, बैठना बिल्कुल कम कर दिया था । वार्ड में भी इतना ही पक्षपात और असत्य का आचरण देखने को मिलता था । ऐसी घटनायें बार-बार होती थीं तब कई बार भगवान बोलते थे,

कोई लठधारी, कोई मठधारी, खोपड़ी, खोपड़ी की गति न्यारी

मुझे अंगत भी कहते थे, "जग की रोकड़ जग को दे दो अपना माल बचाओ बाबा ।" जिससे एक ओर बैठकर, "राम-राम" करना ही सही सार है यह भावना दृढ़ होती गई ।

कर्म धर्म आचार तप, करना चाहो करोड़
बिना भक्ति नहि भवतरे, यह अनुभव रणछोड़

दीवाली, अन्नकूट के महोत्सव वहीं पर मनाये गये इसलिये फिर तो अन्नकूट की सामग्री बनाने में व्यस्त रहने लगी ।

पिछोर में एक दिन भगवान के पास दो-चार व्यक्ति अपनी समझ और बुद्धि के अनुसार भगवान की तबीयत के विषय में चिंता व्यक्त करते हुए चर्चा कर रहे थे कि बम्बई जाकर अच्छे डाक्टरों से स्वास्थ्य की जाँच करवाई जाय, तब कहा, "अरे, मुझे एक बार एकांत में चले जाने दो फिर देखो शरीर तांबे जैसा हो जायेगा ।" जीव स्वभाव से धीरे-धीरे उन लोगों का आग्रह बढ़ता रहा, अन्त में आग्रह में से दुराग्रह होने लगा

और बम्बई ले जाने का निश्चित हुआ । दो-तीन घंटे की चर्चा के बाद भगवान ने ऊब कर कहा, "अब मुझे कुछ नहीं कहना है, यह शरीर तुम लोगों को सौंपता हूँ, चाहे जो इसकी दुर्दशा करो ।"

यह प्रसंग देखकर पिताजी ने कही हुई घटना याद आई । बहुत समय पहले भगवान के पेट में गांठ थी जिसके ऑपरेशन के लिये भी बहुत आग्रह किया गया था लेकिन भगवान तैयार नहीं हुए थे तब परि-भ्रमण के समय शायद भोपाल स्टेशन पर स्वास्थ नरम हो जाने से कोई अनजान व्यक्ति अस्पताल में ले गया था और बेहोश करके पेट का ऑपरेशन कर गांठ निकाल दी गई थी । जब होश में आये तब अपने को अस्पताल में देखकर उसी वक्त पेट पर टाँके लगे हुए थे फिर भी वहाँ से निकल गये थे ।

नवसारी में एक दिन पूछा, "रमा, तुम्हारी कंठी कहाँ गई ? कारण जो सोने की कंठी पहनती थी वह टूट जाने से गले में डोरे की कंठी थी । मैंने कहा, "भगवान, टूट गई है" तब बोले, "ठीक है ।" वह प्रसंग यहाँ पर पिछोर में याद आने से टूटी हुई कंठी मुझसे ले ली थी उसमें भगवान के स्वरूप का पेन्डल था उसको निकालकर एक बहन को देते हुए कहा, "एक अच्छी सोने की कंठी बनवाकर यह फोटो उसमें लगवा देना" टूटी हुई कंठी अपने पास रख ली । दीक्षा के वक्त खप्टीहा गाँव में जो सोने की कंठी दी थी जिसके लिये कहा था, "यह तुम्हारे पूर्व जन्म की है" वह टूटी हुई होने से भगवान की आज्ञा से उसी सोने में १९५६ में दी हुई डोरे की कंठी के मणि डलवाये थे और पूर्व की कंठी के मणि एक डोरे में पिरोकर मेरे पास रखे हैं । इस तरह से यह दूसरी बार की कंठी भी अपने पास रख ली है । तब मैंने कहा, "ठीक है भगवान, दूसरे जन्म में फिर से यह वापिस मुझे दोगे ना ?"

दीवाली के दिन पूजन करने गई तब मेरे लिये हाथ में पहनने को प्लास्टिक के कड़े जो मँगवाये थे वे भगवान के चरणों में रख दिये कारण हर चीज भगवान को अर्पण करके ही पहनती थी, तब वह कड़े हाथ में लेकर पूछा, "रमा, यह क्या है ?" मेरे पहनने के लिये मँगवाये हैं । यह बताने पर कहा, "अच्छा, अभी रख दो इनको सोने में बनवा लेना ।"

मैं सोचने लगी, मेरे पास सोना तो है नहीं परन्तु आदेशानुसार वह दीवाली में पहननेवाली थी फिर भी न पहनकर रख दिये ।

पिछोर नेत्रयज्ञ समाप्त करके सब साथ में चित्रकूट गये । वहाँ से चतुर्थो महोत्सव बाद भगवान बम्बई पधारे और मुझे अनंतपुर जाने का आदेश होने से मैं वहाँ गई । वहाँ डेढ़ महीना रही थी उन दिनों में यथा-शक्ति अपना नियम, भजन करती रहती थी । कभी अधिक मेहमान आ जाने पर उनके भोजन का काम सम्हाल लेती थी । डेढ़ महीने बाद जयपुर से पत्र आया, माँ की तबीयत ठीक न होने से जयपुर बुला रहे थे । बम्बई से भगवान की आज्ञा मिलने पर मैं जयपुर गई । अनंतपुर में भगवान के स्वास्थ के बारे में खबर मिलने पर मैंने भगवान को पुछवाया था कि मैं आऊँ ? तब प्रत्युत्तर आया ।

प्रिय मेरी रमु सादर आसीस

मेरा स्वास्थ सुधारा पर है ।

रमा आने का आग्रह हाल में न रखो तो अच्छा है मेरा स्वास्थ सुधरने दो पीछे बुलाऊँगा, स्वास्थ धीरे-धीरे सुधारा पर है यदि तुम तो सब आने का आग्रह रखोगे तो...............

सबको आशीर्वाद

रणछोड़दास

माँ को कोई खास बीमारी नहीं थी । जयपुर पहुँचकर दो-चार दिन बाद माँ ने मुझे अपनी सोने की दो चूड़ी देते हुए कहा, "बेटी की शादी करने पर कितना देना पड़ता है मैंने तुम्हें कुछ भी नहीं दिया है तो यह चूड़ी आज मैं तुम्हें दे रही हूँ । तुम्हें जो बनवाना हो बनवा लो ।" उसी वक्त भगवान के शब्द याद आये, "यह कड़े सोने में बनवा लेना ।"



[८६]

नाथ कृपा मम गत संदेहा

भगवान के आदेशानुसार थोड़े दिन जयपुर रहकर १६६६ की जनवरी में विदिशा नेत्रयज्ञ में गई । वहाँ पर केम्प और भगवान का निवास-स्थान थोड़ी दूर था । मुझे भगवान के पास ही रहने का था । अनुकूलता से थोड़ी देर वार्ड में भोजन परोसने आदि काम के लिये जाती थी । भगवान का स्वास्थ बहुत ही नरम था ।

एक दिन सुबह दस-बारह व्यक्तियों का व्यक्तिगत पूजन चालू हुआ तब मैं अपने लिये भोजन बनाने को चली गई । थोड़ी देर में एक बहन बुलाने आई । भगवान के पास जाकर देखा तो बहुत ही उग्र वातावरण था । सबके पूजन का कार्यक्रम बंद रहा और भगवान बोल रहे थे, "हाँ इसकी तो एक के बाद एक उपाधि ही है, बोलो क्या कहती हो ?" यह सब देखकर मैं घबरा गई कारण समझ नहीं पा रही थी । कमरे में दो बहनें थीं उन्हें प्यार से बाहर भेजा और उन लोगों को सुनाई दे इस तरह से बड़ी आवाज में बोलने लगे, "हाँ, मार डालो मुझे, बंद करो दरवाजा" । बंद करते हुए मेरे हाथ काँप रहे थे, इतना गुस्सा दिखाई दे रहा था, लगता था शायद आज थप्पड़ भी मार देंगे, लेकिन दरवाजा बंद होने पर अलग ही स्वरूप के दर्शन हुए । हँसकर कहा, "क्यों बहुत घबरा गई ?" तकिये के नीचे से कंठी निकालते हुए प्यार से पास में बुलाकर कहा, लो यह तुम्हारी कंठी आ गई है, अभी पहनना नहीं, छिपाकर रख देना ।" मैंने कहा, "भगवान, इसके लिये इतना नाटक करना पड़ा ?" तो कहा, "क्या करूँ ? देखो, सावधान रहना मैं कहूँ तब पहनना ।"

थोड़े दिनों बाद जोड़िया जाने का प्रोग्राम बनने लगा कारण वहाँ पर एक भाई अस्पताल बनवाना चाहते थे जिसका मुहूर्त भगवान के वरद् हस्त से करवाने को उनकी इच्छा थी । उनका बहुत अधिक आग्रह

होने से इस कार्य के लिये भगवान वचनबद्ध थे जिससे जाने की तैयारी की । केम्प में मालूम होने पर कुछ भाई लोगों ने आकर कहा, "चाहे कुछ भी हो हम ऐसे स्वास्थ में आपको जाने नहीं देंगे ।" इस चर्चा से पहले रास्ते के लिये पूड़ी-साग बनाने को भगवान ने मुझे भेज दी थी । पीछे से बहुत देर तक चर्चा चली और अन्त में प्रोग्राम बंद रहा । भगवान ने एक बहन के साथ कहलवाया, "पुड़ी न बनी हो तो मत बनाओ" लेकिन मेरा काम तो पूरा हो गया था । भगवान के पास जाने पर कहा, "रमा, अब मैं नहीं जाता हूँ, तुमसे व्यर्थ में मेहनत करवाई । अब पूड़ी बन गई है तो ढक कर रख दो ।" करीब एकाध घंटे के बाद पुड़ी मंगवाकर कहा, "देखो रमा, यह तो महाप्रसाद है, तुम अपने पास रखो, रोज सुबह नाश्ता करना और धीरू को भी देना ।" वहाँ पर धीरूभाई भी आये थे, उस वक्त वे ब्रुक बॉण्ड कंपनी में नौकरी करते थे । अपने सादे जीवन के लिये खर्ची रखकर बाकी पूरी तनखा पिताजी को घर खर्च के लिये जयपुर भेज देते थे । अब उनकी शादी हो चुकी थी जिससे उनका खर्च बढ़ना स्वाभाविक था जिससे भगवान ने कहा, "धीरू चिंता नहीं करना" –

धीरे धीरे धिरिया, धीरे सब कुछ होय
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आवे फल होय

धीरू भाई खूब मेहनत करने वाले और सत्य का पालन करके नीति, प्रमाणिकता से कमाने में मानते हैं जिससे एक बार कहा,

धीरू धीरज के रखे, हाथी मन भर खाय
चींटी तो दिन भर फिरे, कण का एक अघाय

केम्प पूरा होने को एक सप्ताह शेष था तब रोज मुझे कहते थे, "रमा, तुम यहाँ से पुष्कर चली जाव ।" जिससे मैं पूछती थी, "भगवान, अनन्तपुर होकर जाऊँ ?" कारण मेरा सारा सामान अनन्तपुर में था । तब कहते थे, "सामान किसी से मंगवा लो ।" लेकिन किससे मँगवाती ? इस तरह से चार-पाँच दिन बीत गये । अन्य दो बहनों को पुष्कर भेज दी थी इसलिये भगवान के कमरे के बाहर के बरामदे में मैं अकेली ही रहती थी । एक दिन रात को आठ बजे अचानक तैयार हो गये

ग्रौर कहा, "बस, मुझे जाना है ।" सबने बहुत पूछा, "कहाँ जाना है ? ग्राप किसी को साथ में ले जाव" लेकिन एक ही जवाब था, "कहाँ जाना है मुझे स्वयं मालूम नहीं है, जी चाहेगा वहाँ उतर जाऊँगा ग्रौर साथ में कोई नहीं ।" जाने की तैयारी हुई, कमरा छोटा था । एक बहन कपड़े, बिस्तर बाँधने लगी ग्रौर दूसरी बहन रसोई का सामान तैयार कर रही थी ।

भगवान के जाने पर केम्प सूना हो जाता था ग्रौर किसी का भी मन नहीं लगता था, जाने के नाम पर सब उदास हो गये । मेरी भी ग्राँखें भर ग्राई, ग्रब क्या करूँगी ? ग्रनंतपुर सामान लेने के लिये मुझे जाना ही पड़ेगा, बाद में ही पुष्कर जा सकूँगी । सोचती हुई कमरे से बाहर बैठी थी, इतने में कहा, "ए रमा, इधर ग्राव, चलो ये फल की टोकरी भर दो ।" ग्रधिकतर सब सेब थे । थोड़े ही क्षणों में टोकरी भरकर बाहर जाने लगी । मैं मूर्ख यह नहीं समझ पाई कि इस बहाने ग्रपने पास बिठाना चाहते हैं । मुझे जाते हुए देखकर कहा, "ग्ररे इधर ग्राव, तुम्हें कुछ नहीं ग्राता है, ऐसे कहीं फल भरे जाते हैं ? देखो मैं सिखाता हूँ ।" इतना कहकर फल की टोकरी खाली कर दी ग्रौर कहा, "देखो, वह ग्रखबार लाव", उसके छोटे-छोटे टुकड़े करवाकर कहा, "यह एक-एक फल को एक-एक कागज में लपेटकर रखो ।"

सामान तैयार हो गया । भगवान चल भी नहीं पाते थे, ऐसी ग्रभी की लीला थी । सुरेश ने भगवान को गोदी में उठाकर गाड़ी में बिठाया । केम्प में से सब भाई-बहन काम छोड़कर ग्राये थे । सबको ग्रच्छा नहीं लगता था जिससे निस्तेज होकर खड़े थे । भगवान रवाना हुए ग्रौर वातावरण उदास बन गया । सब ग्रपने-ग्रपने कार्य के लिये ग्रौर निवास-स्थान पर चले गये । भगवान का कमरा भी ग्रंदर रहनेवाली बहनों ने बंद किया । ग्रागे के बरामदे में मैं ग्रकेली सो रही थी, विचारों से मन घिरा हुग्रा था । भगवान का कमरा बंद रहने पर भी संतोष रहता था कि भगवान यहाँ हाजिर हैं । थोड़ी देर के बाद गाड़ी की ग्रावाज ग्राने पर दरवाजा खोलने के लिये उठी । सोचती थी सुरेश से पूछती हूँ कि भगवान किस ग्रोर पधारे ? परंतु दरवाजा खोलने पर देखा तो ग्राश्चर्य ! भगवान स्वयं एकदम स्वस्थ होकर खड़े थे । खूब ग्राश्चर्य से

देखती रही । धीमी ग्रावाज से कहा, "तुम रोई ना ? तो ग्रपसगुन हुग्रा, गाड़ी चली गई ।" इतने में दोनों कमरे के दरवाजे खुलने पर भगवान भीतर जाकर सो गये ।

भगवान सुबह देर से जागे । ग्रभी केम्प में किसी को मालूम न होने से दर्शन के लिये कोई नहीं ग्राया था । ग्राठ बजे सब ग्रपने-ग्रपने काम पर जाने से पहले भगवान के कमरे में प्रणाम करने के लिये ग्राने लगे । भगवान को देखकर सबको बहुत ही ग्राश्चर्य हुग्रा । उस वक्त मुझे धीरे से कहा, "जाव तुम ग्रपना सामान बांधो ।" जाने के लिये पीठ फेरने पर बोलने लगे, "देखो तो सही, कहती है मुझे ले चलो, ले चलो, नहीं तो मरने जाऊँगी ।" जाते-जाते यह शब्द सुनते ही इतना ग्राघात लगा कि ग्ररे, यह क्या ? कारण मैं तो कुछ बोली भी न थी ग्रौर भगवान ऐसा गलत क्यों कह रहे हैं ? कई लोग हाजिर होने से सोचा ठीक है, पहले जाकर सामान बांधने को कहा है तो साबुन में डुबोये हुए कपड़े धो लेती हूँ, बाद में चिट्ठी लिखूंगी । लेकिन इतना समय मिलना मुश्किल रहा । ग्रभी तो कपड़े धो रही थी, इतने में दो-तीन व्यक्ति बुलाने ग्राये, "चलो जल्दी, गुरुदेव गाड़ी में बैठ गये हैं, ग्रापको बुला रहे हैं, ग्रापका सामान जल्दी दो ।" ग्रभी सामान तो बाँधा भी न था । वैसे ही सब लपेटकर दे दिया ग्रौर गीले कपड़े ऐसे ही गाड़ी में रखवा दिये ।

गाड़ी के पास बहुत भीड़ थी, सुरेश चला रहा था । सुरेश के पास ग्रागे भगवान बैठे थे । पीछे मैं ग्रौर एक ग्रन्य बहन थी । भगवान एकदम गुस्से में बोल रहे थे, "हाँ चली है दोनों सेवा करने, ग्राधे रास्ते में मुझे मार डालेगी ।" ग्रौर कायम सेवा करनेवाली बहनों को कह रहे थे, "चिंता नहीं करना हूँ, बहुत जल्दी बुला लूंगा, तुम्हारे सिवाय कौन सेवा कर सकता है ?" वगैरा । साथ वाली बहन को तो कोई ग्रसर न हुग्रा, कारण वे इस लीला को समझती थी परंतु सबके बीच में यह देखकर मैं तो बहुत ही दुःखी हो गई थी । जब-जब भगवान की ऐसी ग्रटपटी लीला देखती थी तब दुविधा में पड़ जाती थी कि सचमुच भगवान को मेरे प्रति प्यार है या ग्रभाव । जिससे भगवान को लिखकर देती थी कि ऐसे प्रसंगों से मैं समझ नहीं पाती कि सत्य क्या है ? तब

एक बार लिखकर दिया था, "रमु, अविश्वास की औषधि विश्व में नहीं है, तुम्हें दु:खी देखकर खूब विचार तो आता है पर क्या करूँ ?" तब मैंने जवाब लिखा था, "भगवान, आपकी विचित्र लीला मैं नहीं समझ पाती हूँ. आपकी लीला तो मुझे कर देती है लाल-पीला ।" प्रत्युत्तर में लिखकर दिया, "लीला है तो क्या नाराज रहना ? यह सब मानते हो तो यह क्यों नहीं मानते कि मैं तुम्हारा हूँ ।"

सोच रही थी आगे जाकर गाड़ी में से उतरकर ट्रेन से चली जाऊँगी, इस तरह से भगवान को दु:खी करके साथ जाने से क्या फायदा ? गाड़ी विदिशा गाँव में सुरेश के घर पर रुक गई । वहाँ पर दूसरी गाड़ी में वे बहनें आ पहुँची थीं । उन्हें देखकर भगवान ने कड़क आवाज से कहा, "उतरना नहीं और मेरे पीछे आना नहीं ।" उन बहनों को अच्छे शब्दों से आदर दिया । इतनी देर में मैंने चिट्ठी लिखकर रखी थी । साथवाली बहन ने कहा, "कुछ लिखो मत, तुम क्यों दु:ख मानती हो ? यह तो सब लीला है, अभी देखना विदिशा छोड़ेंगे तब कैसे प्रसन्न होंगे ।" उनकी बात मेरी समझ में आई नहीं जिससे मैंने तो चिट्ठी लिखकर तैयार रखी । थोड़ी देर में भगवान पधारे, सबको अच्छी प्रकार से बिदा देकर आगे के लिये रवाना हुए ।

विदिशा से करीब दो मोल की दूरी पर पहुँचे होंगे । चिट्ठी देने की सोच रही थी इतने में तो कहा, "सुरेश, देखो तो गाड़ी गरम हो गई है ।" गाड़ी रोककर सुरेश गाड़ी का बोनेट खोलने जा रहा था तब कहा, "अरे, मुझे शौच जाना है कोई उठाव तो सही ।" यह सुनकर सुरेश वापिस लौटा तब कहा, "अरे, तुम अपना काम करो ना ?" साथवाली बहन उठाने गयी तब कहा, "अरे बाबा, तुम अपने को तो सम्हालो, खुद भी गिरोगी और मुझे भी गिराओगी ।" अब तो मैं ही बाकी थी । आज तक कभी उठाया नहीं था इसलिए डरती थी तब सामने से कहा, "ए रमा, चलो उठाव मुझे ।" उठाकर देखा तो बिल्कुल भी वजन महसूस नहीं हुआ, आराम से उठा सकी और सड़क से थोड़ी दूर बिठाकर आई । थोड़ी देर बाद वापिस लेने को गई । लौटकर एक पेड़ के नीचे भगवान विराजे, हाथ-पैर धोकर कहा, "लाव, कुछ खाने को दो मुझे भूख लगी है ।" साथ में जो नाश्ता था वह देने पर बोले, "रमा, यह तो रोटी

खाती नहीं है, उसका खाना तो उसके साथ होगा ही पर तुम क्या खाओगी ?" मैं कुछ बोली नहीं पर विचार आया कि मुझे कहाँ खबर थी कि मुझे आपके साथ चलना होगा तो मेरे लिये कुछ नाश्ता बना लेती । इतने में कहा, "तुम खाखरा खाना, मेरे पास बहुत रखा है" तब मैंने कहा, "भगवान, खाखरा तो ठीक है पर आप बिना कारण आकरे न हो यही बहुत है ।" हँसते-हँसते कहा, "रमा, मैं कभी तुमारे पर आकरा हुआ नहीं हूँ और होऊँगा भी नहीं ।" मैंने कहा, "वाह भगवान, तो फिर यह सब क्या था ?" खूब प्रसन्नता से बोले, "अरे, यह तो सब करना पड़ता है ।" सुरेश से कहा, "वह फल का टोकरा लाव तो" वह खोलते-खोलते बोले, "देखो तो, रमा को खुद को खाना था इसलिए कितना सम्हाल-सम्हाल कर रखा है ।" मैंने कहा, "भगवान, आपने मुझ से यह फल भरवाये तब मुझे तो ऐसी कल्पना भी न थी" तो कहा, "अच्छा बाबा, तुमको नहीं थी मुझे तो थी ।" अब समाधान हो जाने पर चिट्ठी देने का कोई अर्थ न था ।

भगवान ने प्रसन्नता से भोजन लिया, हमको भी खिलाया और वहाँ से आगे की यात्रा शुरू हुई । गाड़ी में बहुत ही प्रसन्न थे । थोड़ी देर में उस बहन से पूछा, "अरे बताव, अपन कहाँ जा रहे हैं ?" उन्होंने कहा, "अनंतपुर ।" यह सुनकर बोले, "तुमको कैसे मालूम हुआ ?" "ऐसे ही कारण आप जब देखो तब अनंतपुर ज्यादा जाते हो ।" तो कहा, "ऐसा क्यों ?" जवाब मिला, "आपको वे लोग अधिक प्रिय हैं इसलिए ।" तो कहा, "ये बात तो ठीक है परन्तु अभी अपन क्यों जा रहे हैं ?" "भगवान, आपके जाने के अनेक कारण हो सकते हैं हमें क्या मालूम ? तो कहा, "रमा, तुम बताव ।" "भगवान, मुझे तो कुछ मालूम नहीं ।" तब कहा, "तुमारा सामान लाने का है ना इसलिए ।" अनंतपुर में दो दिन ठहरे । मुझसे कहा, "रमा, यहाँ से दाल, चावल, आटा, शक्कर, घी, सब तुम अपने लिए ले लो, पुष्कर में तुम्हें बाहर से न लाना पड़े ।" क्योंकि पुष्कर में करीब बीस दिन ठहरना था ।

प्रभु तेरी लीला अटपटी, झटपट लखे न कोई
जो कोई झटपट लखे, तो चटपट दर्शन होई



[८७]

कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी

भगवान के साथ अनंतपुर से निकलकर झालावाड़ डाक बंगले में रात रुके । सुबह वहाँ से निकलकर दूसरी रात कोटा के पास देवली में रुककर तीसरे दिन सुबह पुष्कर पहुँचे । रास्ते में मुझसे कहा, "देखो, वहाँ जाकर तुम उन लोगों से पूछ लेना, यदि वे लोग कहें तो तुम मेरे पास ही रहना ।" कई बार कृपा करके सेवा का अमूल्य लाभ देना चाहते थे वरना मुझे कौन साथ रहने देता ? पुष्कर पहुँचकर राम कुटी वालों की अनिच्छा देखकर मैं रामधाम में ही रही और भगवान राम कुटी में विराजते थे । दूसरे दिन मुझे बुलाकर कहा, "तुम्हारी नई कंठी कहाँ है ?" कमरे में है बताने पर कहा, "जाव लेकर आव, मैं पहना देता हूँ ।" लेने गई इतने में दरवाजा बंद हो गया परन्तु मेरे पहुँचते ही आवाज सुनाई दी, "देखो, रमा आ गई है दरवाजा खोल दो ।" अकेली बुलाकर कंठी पहनाते हुए कहा, "देख रमा, थोड़े दिन में वह आयेगी और सबसे पहले तुमसे यही पूछेगी, यह कंठी कब बनवाई ? तुम इतना ही कहना जयपुर से पिताजी आये, वे ले आये ।"

एक सप्ताह बाद सच ऐसा ही हुआ लेकिन मुझे तो पढ़ाये हुए तोते की भाँति ही बोलना था जिससे विघ्न में से पार हो गई । उस वक्त भी कहा था कि, "रमा, अभी भी तुम पुष्कर में रहने आ जाव, किसी का कुछ सुनना नहीं, किसी से कुछ कहना नहीं । अपने काम से काम लेना राम का नाम ।" मेरे नाम पर बनाये गये ब्लॉक में एक भाई रहते थे, उनसे बात-बात में कहा, "अरे देखो, अपने यह रामधाम का नाम बदल डाले तो ? इसका नाम माईवाड़ा रखते हैं, इसमें सब माताएँ ही रहेंगी ।" लेकिन तब संयोगवशात् पुष्कर मैं रहना न हुआ । एक दिन भगवान ने मेरे पास श्री रामभाई पर पत्र लिखवाया जिसमें यह शब्द भी थे, "बचा हुआ पैसा मेरे शरीर परिवर्तन के पश्चात् किसी

भी शुभ कार्य में वापरने का तुम्हें अधिकार है ।" ये शब्द लिखते हुए धक्का तो लगा था लेकिन अविनाशी भाव से पूर्ण विश्वास था, फिर भी मानो शरीर त्याग करने की यह पूर्व योजना लग रही थी, इसीलिये धीरे-धीरे सब कार्य ट्रस्ट बनाकर सौंपते जा रहे थे ।

उस वक्त करीब बीस दिन भगवान पुष्कर में रुके । बाद में वहाँ से देहली की ओर जाने का प्रोग्राम जाहिर हुआ । जल्दी सुबह पाँच बजे दर्शन को गई, छः बजे भगवान निकलने वाले थे । एक के बाद एक निजी बातें चल रही थीं, इसलिये दरवाजा बंद था । निकलते वक्त एक मिनिट मुझे बुलाकर पूछा, "रमा, अजमेर-जयपुर के बीच में डाक बंगला कहाँ आयेगा ?" मैंने कहा, "भगवान, पक्का मालूम नहीं है लेकिन किशनगढ़ और दूदू, दो में से एक जगह तो होगा ही ।" तो कहा, "दूदू में है, मैं वहाँ तुझे मिलूंगा, मैं अभी निकलता हूँ । मेरे निकलते ही तुम बस से निकलकर आ जाव, वहाँ मैं तुम्हारी राह देखूंगा ।" ऐसे कई बार चाहते हुए भी अपने साथ गाड़ी में नहीं ले जा सकते थे । मैं तुरंत निकल गई । पुष्कर से अजमेर बस बदलने के कारण समय तो लगता ही है ।

दूदू पहुँचकर डाक बंगले में गई तो देखा एक पेड़ के नीचे भगवान की गाड़ी खड़ी थी । गाड़ी के दरवाजे खुले रखकर आराम कर रहे थे । बम्बई के दो भाई पुष्कर से ही टेक्सी लेकर आये थे, वे भी वहाँ खड़े थे, वहाँ से जल्दी आगे जाने के लिये भगवान को आग्रह कर रहे थे । उन्हें क्या मालूम कि मेरी राह देख रहे थे । मुझे देखकर वे लोग चकित हो उठे । मेरा सामान अपनी गाड़ी में रखवाकर भगवान ने अपनी गाड़ी के तीन भाइयों में से दो जनों को उन लोगों की गाड़ी में भेजा और मुझे अपनी गाड़ी में बिठाया । जयपुर पहुँचकर दूसरी गाड़ी को गलताजी जाने के लिये कहा और भगवान घर पर पधारे । उस दिन गुरुवार होने से पिताजी गलताजी जाने के लिये तैयार ही थे । उन्हें साथ में लेकर कहा, "रमा, पतितपावनजी भगवान को भोग लगाने के लिये एक सेर दूध ले लो ।" इलायची, शक्कर, केसर डालकर गरम करवाया । रास्ते में से फूलमालायें और अलवरी मावा जिसका हमेशा भोग लगाते थे, वह लेकर गलताजी पहुँचे । दूसरीवाली गाड़ी भी हमारे साथ ही पहुँची । भगवान ने कहा, "मैं ऊपर गुफा में नहीं आ सकूंगा, तुम सब लोग दर्शन

करके आव ।" वहाँ एक पेड़ के नीचे बिराजे, सबसे पहले मैं दर्शन करके वापिस लौटी । श्री पतितपावनजी भगवान को भोग लगाये हुये दूध और मावा की प्रसादी तथा अखंड धूणी की भस्म भगवान को दी । भगवान ने कहा, "बहुत जल्दी आ गई ? अच्छा देखो, अब तो सबके सामने तुम से बिदा लेता हूं परंतु मैं यहाँ से देहली रोड पर बीस मील दूर शाहपुरा रुकूंगा, शाम को गाड़ी भेजूंगा, तुम वहाँ आ जाना ।" थोड़ी देर में सब आ गये, सबके सामने यही कहा, "अच्छा रमा, मैं जाता हूँ, मेरी चिंता नहीं करना, भजन करना और मुझे पत्र देते रहना ।" क्षण भर तो मैं भी भ्रम में पड़ गई कि अभी बोल रहे हैं यह सत्य है कि पहले बोल रहे थे वह सत्य ? सच यह कृष्ण लीला नहीं तो और क्या ? बड़े-बड़े भ्रम में पड़ जाते हैं । एक ही शरीर से प्रथम संपूर्ण मर्यादा पुरुषोत्तम रामलीला का दर्शन कराया, बाद में संपूर्ण कृष्ण लीला का ।

माँ, गाँव गई थी । इतने दिनों से घर बंद था, सब बाहर भोजन करते थे, इसलिये घर में रसोई का सामान तैयार न था । घर की सफाई करके कपड़े धोते वक्त शाम होनेवाली थी, इतने में भगवान स्वयं पधारे । बम्बईवाले दोनों भाई तो जयपुर से हवाई जहाज द्वारा चले गये थे । भगवान के साथ गाड़ी में ड्राइवर, वैष्णवदासजी महाराज और राजकोट के दो भाई थे । भगवान ने कहा, "अब यहीं रुकूंगा, आगे नहीं जाना है ।" एक ओर तो बहुत खुशी हुई, दूसरी ओर पहले से खबर न होने के कारण कुछ भी तैयारी न थी जिससे एकदम घबरा गई । सब काम अकेले ही करना था, इसलिये भगवान की सेवा में से फुरसत मिलना मुश्किल था । साथ में आये हुए भाइयों का ध्यान नहीं रख पाती थी । उन लोगों को भी घर के सदस्यों के साथ बाहर ही भोजन के लिये भेजना पड़ता था । दो दिन भगवान घर पर ठहरे तब स्वास्थ बहुत ही बिगड़ा । हमेशा भगवान की सेवा से वंचित रहने के कारण कोई भी दवाई के विषय में अनजान थी । डॉक्टर को बुलाया, उनके कहने से दवाई और ग्रेप्टीन बिस्कुट देना चालू किया, ऑक्सीजन भी मँगवाया । नरम स्वास्थ के कारण तीसरे दिन भी रुक गये । उस दिन इंदौर और पुष्कर से दो-तीन भाई आये तब मुझे कहा, "अब सब लोगों को मालूम पड़ जायेगा इसलिए तुमारे घर पर नहीं मेरे लिए जयपुर में

ही दूसरा मकान ढूंढो वहाँ रहूँगा।" उसी वक्त एक मकान ढूंढ़कर वहाँ सब सामान पहुँचाया। दो दिन एक रात वहाँ ठहरकर कहा, "अब मुझे यहाँ से पुष्कर जाना है रमा, तुम कल पुष्कर आ जाना मैं अभी जा रहा हूँ।"

[८८]

सुनु सर्वज्ञ कृपासुखसिंधो

भगवान की आज्ञानुसार दूसरे दिन मैं पुष्कर गई, वहाँ से चार-पाँच दिन बाद भगवान बम्बई पधारे। मैं जयपुर वापिस लौटी। पुष्कर से जाते समय कहा था, "देखो, थोड़े दिनों में मैं तुम्हें बुलाऊंगा।"

थोड़े दिनों में पत्र आया :–

प्रिय रमा, सादर आशीर्वाद

तुमारा पत्र मिला किसी तरह की चिंता न करो। व्यवस्था हो सकी तो मैं बुला लूँगा, मेरी तबियत जैसी थी वैसी ही है मैं ८ तारीख के पश्चात् नासिक की तरफ जाऊँगा १२५, तुम अपने पास रखना मैं जब जरूरत समझूंगा मंगवा लूंगा।

जयंत ने मेरी बहुत सेवा की है उसको आशीर्वाद कहना। सभी को, प्रमोद को आशीर्वाद कहना।

पू. श्री की आज्ञा से

दो दिन में वापिस दूसरा पत्र मिला :–

बम्बई

८-३-६९

रमा,

मेरी तबियत ठीक नहीं है मैं तीन महीने के लिए देवलाली जा रहा हूँ सबको आशीर्वाद कहना।

रणछोड़दास

मेरे पास पता न होने से प्रत्युत्तर नहीं दे सकती थी। दो दिन के बाद पत्र मिलने पर उसमें से पता मिला।

१०-३-६६

प्रिय रमा

सादर आशीर्वाद

मैं यहाँ कुशल आ गया हूँ यहाँ पर रहने की व्यवस्था ठीक हो गई है, यहाँ पर सब अनुकूलता है हमारी चिंता करना नहीं।

सबको आशीर्वाद

पू. गुरुदेव की आज्ञा से
सुरेश का प्रणाम

Add.
Co-operative Housing Society
Bungalow No. 19
Devalali
Maharashtra

देवलाली से सुरेश द्वारा हर दो-तीन दिन में भगवान पत्र लिखवाते रहते थे। जब नरम स्वास्थ की खबर मिलती थी तब जल्दी से जल्दी पहुँचने की इच्छा रहती थी फिर भी आज्ञा के बिना जाने के लिए अनेक विचारों के साथ मन डरता रहता था।

प्रिय रमा, सादर आशीर्वाद

पैसा है वह हनुमानजी की मूर्ति में दे देना जयंत के लिए हम सब तैयारी कर रहे हैं यह लोन है, वह चार-पाँच जगह से मिलेगी लेकिन मिल जायेगी जरूर। मेरी तबियत रात से खराब हो गई है २४ घण्टे गैस बना रहता है मेरी चिंता करना नहीं यहाँ एकांत है पानी की थोड़ी कमी है, सबको आशीर्वाद।

पू. श्री की आज्ञा से
सुरेश का प्रणाम

करीब रोज या दूसरे दिन भगवान के पत्र मिलते रहते थे। श्री हनुमंतलालजी की मूर्ति जयपुर में बनने दी थी उसकी सूचना के लिए यह पत्र था।

देवलाली
१२-३-६९

प्रिय रमा

सादर आशीर्वाद

एक पत्र दिया है मिला होगा मेरी तबियत वैसी ही है जैसी जयपुर में थी मूर्ति अगर अच्छी होवे तो ही लेना यहाँ पर पड़े हैं।

पूज्य गुरुदेव की आज्ञा से
सुरेश उपाध्याय का प्रणाम

देवलाली में जितना समय ठहरे नियमित सुरेश के लिखे पत्र मिलते रहे। मैंने देवलाली आने के लिए पूछा था उसके प्रत्युत्तर में अनिच्छा मालूम होने पर मैं देवलाली नहीं गई। एक पत्र से रामनवमी बम्बई की होगी, यह भी खबर दिये थे। उसके बाद सूचित किया था कि मैंने तार दिया है, तुम्हें बुलाने के लिये। वह तार मुझे न मिलने से रामनवमी उत्सव पर भी बम्बई नहीं गई थी। रामनवमी के बाद नासिक से पोस्ट किया गया अन्य व्यक्ति के पास लिखाया हुआ पत्र मिला। उसके बाद ता. २१.४.६९ को बम्बई से लिखा हुआ पत्र मिला :—

प्रिय रमा,

सादर आसीस

मेरा स्वास्थ ठीक नहीं है, मैं पत्र नहीं लिख सकता, अस्पताल में हूँ, सबको आसीस।

परम पू. गुरुदेव की आज्ञा से

इस पत्र से अस्पताल में होने की खबर मिलने से बिना बुलाये भी मैं बम्बई गई। मेरे पहुँचने तक भगवान बम्बई से निकल गये थे और निकलते वक्त जयपुर पत्र लिखा होगा, वह मेरे निकलने के बाद जयपुर पहुँचा था। मुझे बम्बई में मालूम हुआ कि अस्पताल में से भगवान अचानक निकलकर इन्दौर की ओर गये हैं। वहाँ से अनंतपुर अस्पताल बनवाने के लिये ली हुई जमीन का भूमि पूजन होने से पधारनेवाले थे। मैं बम्बई से इन्दौर जाती तो वहाँ भगवान से मुलाकात मुश्किल थी,

इसलिये सीधी अनंतपुर के लिये रवाना हुई । भगवान ने इन्दौर से भी एक पत्र जयपुर लिखा था, वह जयपुर पहुँचने पर मुझे मिला ।

रमा रमण विजयते

रमा, सादर आसीस

देख तो आज इन्दौर आया हूँ, स्वास्थ वैसा ही है । कमजोरी ज्यादा बढ़ती जाती है ।

रमा अब कुछ अच्छा लगता नहीं है, हरि हर है बस रमा, क्या कहूँ मानसिक व्यथा की बात, सबको आसीस ।

अनंतपुर भूमिपूजन के लिये बम्बई से अमुक भाई-बहन आये थे । रसोईया भोपाल से आया था । वह गुजराती रसोई नहीं जानता था । इसलिये रसोईघर में मदद करने की आज्ञा थी । मेहमानों के लिये पाँच किलो चूरमा के लड्डू बनाने थे और पूजन की सामग्री के लिये बेसन के लड्डू भी बनाने थे । भूमि पूजन की विधि हो जाने पर मेहमानों को बिदाई देने के बाद दो दिन भगवान वहाँ रुके तब कहा, "लाव मेरे पत्र वगैरा जो यहाँ पड़े हैं उसको निकालकर बताव कारण अब शायद अनंतपुर आना न होगा ।" एक बोरी भर के पत्र थे, वे सब फाड़ देने की हमें सूचना दी । अब हम चार बहनें और थोड़े भाई थे । भगवान वहाँ से कहाँ पधारे, यह खबर न थी । मैं आदेशानुसार जयपुर गई । वहाँ से अनंतपुर पत्र लिखा था, प्रत्युत्तर में सुरेश से लिखाया हुआ भगवान का पत्र आया :—

प्रिय रमा,

सादर आसीस

मेरी तबियत ठीक नहीं है, शरीर दिन पर दिन निर्बल होता जा रहा है, ऐसी दशा में कुछ कार्य करने की इच्छा नहीं होती है, अस्तु मैं एक जगह पड़ा रहना चाहता हूँ, मेरी चिंता नहीं करना । जब तक मैं एक जगह न रहूँ तब तक मेरा पता तुम्हें कैसे दूँ ? तुम्हारा पत्र मिल गया ।

रणछोड़दास का आसीस

मैं जयपुर में ही थी, भगवान कहाँ हैं यह पता न था । गुरु पूर्णिमा कहाँ होगी यह भी जानकारी न थी । भगवान का एक पत्र आया था जिसमें गाँव का नाम न था लेकिन पत्र के शब्दों से लग रहा था कि स्वास्थ अधिक नरम है, कारण इतना ही लिखा था :—

प्रिय रमा सा. आ.

स्वास्थ ठीक नहीं, लिख सकता नहीं हूँ

रणछोड़दास

यह पत्र मिलने पर बहुत चिंता बढ़ गई । कुछ दिनों बाद भगवान का यह अंतिम पत्र आया जो काँपते हुए हाथ से लिखा गया है, यह अक्षरों से भी प्रतीत होता था :—

श्री राम

हाथ कंपता है पत्र लिखने में शरीर खराब है, क्या लिखूं, तबियत अच्छी नहीं है, आसीस

रणछोड़दास

अब तो भजन और प्रभु प्रार्थना के सिवा मेरे पास कोई उपाय न था । गुरु पूर्णिमा के महोत्सव के बाद बम्बई से मनहरभाई के पत्र द्वारा मालूम हुआ कि भगवान बेंगलौर में थे । इन दिनों में राजस्थान के बाड़मेर जिले में दुष्काल होने से राहत कार्य शुरू होनेवाला था जिससे आशा थी भगवान जयपुर पधारेंगे । या तो जयपुर के अगल-बगल में दर्शन का लाभ मिलेगा । लेकिन बहुत दिनों तक कोई खबर न मिलने से धैर्य खत्म होता जा रहा था कारण आखरी पत्र भी अस्वस्थता से लिखा गया था । पते के बिना कहाँ तलाश करूँ ? उदासीनता में समय निकालना मुश्किल था, रोती रहती थी । पिताजी भी अपने पूजा समय में भगवान से प्रार्थना करते रहते थे कि जल्दी दर्शन दो । करीब ढाई महीने निकल गये तब पिताजी को प्रेरणा हुई, "पन्द्रह दिन के बाद मिलूंगा ।" यह खबर मिलने पर बल मिला । बाद में तो वह पन्द्रह दिन गिनकर बिता रही थी । अनेक प्रकार की कल्पना होती थी कि मुझे अपने पास बुलायेंगे या राहत कार्य के निमित्त जयपुर पधारेंगे ? प्रतीक्षा में दिन बिता रही थी ।



[८६]

बिनु हरिकृपा सो होई नहीं

भगवान की प्रतीक्षा में पन्द्रह दिन पूरे होने पर सुबह नौ बजे पिताजी मेरे पास रसोईघर में अखबार लेकर आये और पढ़कर सुनाया कि भगवान बेंगलौर में विराज रहे हैं, स्वास्थ अधिक नरम है और बम्बई से डॉक्टर पहुँच गये हैं लेकिन अभी तक सुधार नहीं है । यह सुनते ही मैंने पूछा, "पिताजी मैं बेंगलौर जाऊँ ?" पिताजी ने कहा, "ऐसे समय पर जरूर जाना चाहिये, बुलाने की राह नहीं देखनी चाहिये ।" मैंने कहा, "पिताजी, मुझे वहाँ कोई आने नहीं देंगे तो ? या भगवान नाराज होंगे तो ? और वहाँ क्या सुविधा है यह भी तो मालूम नहीं है । इतनी दूर जाकर ऐसा कुछ होगा तो ? वहाँ तो अपनी कोई पहचान भी नहीं है फिर क्या करूँगी ?" पिताजी ने कहा, "एक बार जाकर तो आव, दर्शन हो सके और रहने की सुविधा होवे तो रहना वरना लौट आना ।"

मैंने कहा, "पिताजी, आप पूजा में बैठे तब भगवान से पूछ लीजिये ना ?" सुबह ग्यारह बजे पूजा में से उठकर पिताजी ने कहा, "भगवान की प्रेरणा मिली है, रमा को बोलो, चिंता न करो, भले तुम आ जाव ।" उस वक्त अन्य कोई विचार के सिवा जल्दी से जल्दी भगवान के पास पहुँचने के लिए मन तड़प रहा था । मैंने कहा, "पिताजी, मैं हवाई-जहाज से जाऊँ ?" उन्होंने संमति दी । हवाई जहाज की टिकिट के लिए कितने पैसे चाहिए ? अन्दर कैसे बैठने का होता है वगैरा सब बातों से मैं अनजान थी । पैसे कितने लगेंगे उसका तो पिताजी को भी ख्याल न था । पिताजी इस विषय में सारी जानकारी प्राप्त करने के लिए गये । आकर बताया शाम को सात बजे का समय है जो रात को दस बजे बम्बई पहुँचायेगा और बम्बई से बेंगलौर जाने के लिए हवाई-जहाज बदलना पड़ता है । उस वक्त बम्बई से बेंगलौर रोज हवाई-जहाज नहीं जाता था, एक दिन छोड़कर एक दिन जाता था । यह सब बात जानकर

प्रथम तो मुझे पैसे का विचार आया कारण मेरे पास जो सुविधा हो उसी से मुझे जाने का था। जयपुर से बम्बई की टिकिट दो सौ रुपया थी और यदि बम्बई से बेंगलौर भी हवाई-जहाज से ही जाऊँ तो दो सौ पच्चीस रुपये और भी टिकिट के लगने वाले थे।

परन्तु भगवद् कृपा का सदैव सहारा होने से पैसे की सुविधा भी मेरे पास थी। तीन सौ रुपये बैंक में ब्याज के इकट्ठे हुए थे और भगवान ने जो कड़े सोने में बनवाने को कहा था वह तैयार हो गये थे वह मेरी सहेली ले गई थी जिसकी कीमत पाँच सौ रुपये मुझे दे गई थी जिससे पैसे की चिंता न थी। टिकिट बम्बई की ही मंगवाई कारण अब भगवान बेंगलौर में होंगे या बम्बई आ गये होंगे यह खबर न थी और बम्बई पहुँचने पर दूसरे दिन बेंगलौर हवाई-जहाज न जाता हो तो ट्रेन से जाने की इच्छा थी। रात को दस बजे बम्बई पहुँचकर मनहरभाई के घर सायन तक अकेले टैक्सी में जाने के लिए पिताजी ने मना किया था। पार्ला में मामा के लड़के का घर नजदीक होने से उन्हें तार दिया था, वे लेने के लिए आने वाले थे फिर भी पिताजी ने कहा, कोई कारण-वशात् वे न आयें तो हवाई अड्डे पर प्रतीक्षालय में ही रात रुक जाना।

जयपुर से प्रथम बार अकेली हवाई-जहाज द्वारा बम्बई जाने को रवाना हुई। हवाई-जहाज की सीढ़ी चढ़ते वक्त एक भाई का व्यवहार अयोग्य लगा जिससे मन में थोड़ा डर था कि वे मेरे पास न बैंठे तो अच्छा है। परन्तु भगवान सदैव साथ होने से बराबर सम्हालते रहे। करीब पचास साल की उम्र वाली एक बहन मेरे पास आकर बैठी। मैं अनजान होने से उन्होंने मुझे सब बताया हवाई-जहाज की उड़ान पर। उन्होंने विष्णु सहस्र नाम का पाठ चालू किया, मैं माला फेर रही थी। मेरी रुचि अनुसार उनका यह व्यवहार देखकर मैं बहुत खुश हो गई। रास्ते में भी वे हर प्रकार से मेरा ख्याल रखती थीं। बम्बई पहुँचने पर उन्होंने मुझ से पूछा, "बहन, आपको कोई लेने आया है?" मेरे ना कहने पर वे कहने लगीं "आपके पास पता हो तो दीजिये हम आपको पहुँचा देंगे।" उनको दो गाड़ी लेने आई थीं, उन्होंने अपने बेटे से कहा, "इस बहन को योग्य स्थान पर पहुँचा देना और घर न मिले तो अपने घर ले आना।" वे बहुत श्रीमंत दिखाई देते थे और मरीनड्राइव पर

रहते थे । ऐसे व्यक्ति को देखने पर लगता है इनके पास धन नहीं पर लक्ष्मी है और लक्ष्मी का सदुपयोग होने से व्यक्ति भी नम्र बनता है । ऐसे जीवात्मा प्रभु के प्यारे क्यों न होंगे ? उनका हरेक व्यवहार अनुकरणीय था ।

हानि कुसंग सुसंगति लाहू····

मुझे रात को ग्यारह बजे पार्ला मामा के घर वे छोड़ गये । दूसरे दिन दोपहर में बारह बजे बेंगलौर जाने के लिये हवाई-जहाज था । मनहरभाई को फोन करने पर मालूम हुआ कि भगवान अभी बेंगलौर में ही विराज रहे हैं । हवाई अड्डे से करीब सात मील की दूरी पर बेंगलौर क्लीनिक में हैं, आपको इस पते पर टैक्सीवाला ले जायेगा । बम्बई हवाई अड्डे पर मेरे साथ कौन आवे और कौन टिकिट वगैरा का प्रबंध करा दे यह प्रश्न था । मुझे अंग्रेजी बोलना आता नहीं और एकदम अनजान थी परंतु हर जगह भगवान समय-समय पर किसी को भी निमित्त बनाकर हाजिर कर देते थे । अचानक एक गुरुभाई घर आ पहुँचे, जिन्होंने सारी व्यवस्था करने की जिम्मेदारी सम्हाली । अपनी गाड़ी लेकर पहुँचाने आये । हम लोग हवाई-जहाज की राह देखकर बैठे थे इतने में भगवद् कृपा से आगे की भी व्यवस्था हो गई । अचानक आवाज सुनाई दी, "अरे रमा बहन ! आप यहाँ कहाँ से ?" देखा तो गोरधनभाई थे, साथ में उनके बड़े भैया रमेशभाई भी थे । वे भी उसी हवाई-जहाज से बेंगलौर जा रहे थे । अब तो आगे का मार्ग और भी सरल बन गया ।

बेंगलौर पहुँचने पर उनको लेने के लिये सुरेश गाड़ी लेकर आया था, उनके साथ मैं भी भगवान के पास पहुँच गई । किसी को दर्शन नहीं मिलते थे, सब नीचे बैठे थे । स्वास्थ नरम होने से डॉक्टर किसी को आने नहीं देते थे । परंतु सुरेश भगवान की सेवा में था, इसलिये नर्स सुरेश को अपने भाइयों के साथ नहीं रोकती यह स्वाभाविक था । मैं उनके साथ में थी, इसलिये मुझे भी उनकी बहन समझकर किसी ने रोका नहीं । प्रणाम करने पर भगवान ने गद्गद् होकर पास में बुलाई और मेरा हाथ अपने सीने पर रखकर आँख बंद करके रो पड़े । मेरी भी आँखें भर आईं । यह देखकर नर्स ने मुझे बाहर भेज दिया । कारण भगवान को हृदय रोग का हमला होने से किसी को मिलने नहीं देते थे ।

मनहरभाई ने जो पता दिया था वह यह न था । उस अस्पताल से अब भगवान यहाँ लाये गये थे । जयपुर से रवाना हुई तब से अपने चरणों तक पहुँचाने में भगवान सतत साथ में रहे, उसकी अनुभूति सतत रही वरना पहुँचना मुश्किल था । भगगान के पास हम चार बहनें थीं । मैं भी उनके साथ वहाँ पर तीन दिन रही । बाद में भगवान को बम्बई ले जाने का निश्चय होने पर मैं सोच रही थी, अब हवाई-जहाज से जा सकूं इतने पैसे मेरे पास नही हैं, इसलिये ट्रेन से जाऊँगी । उस वक्त मैं भगवान के पास में ही खड़ी थी । मेरे मन की बात जानकर कहने लगे, "देखो, अबकी बार सबकी टिकिट मैं दूंगा, सब मेरे साथ चलेंगे ।" हम सब मिलकर तेरह भाई-बहन थे, इसलिये भगवान ने अपने समेत चौदह टिकिट मँगवाईं । जो भाई टिकिट लेने गये थे वे चतुराई से बारह टिकिट लाये । थोड़ी देर में भगवान के पास आकर कहा, "भगवान, बारह टिकिट ही मिली हैं", "ठीक है" कहने पर उन भाई ने सबके नाम पढ़कर सुनाये जिसमें मेरा और एक अन्य बहन का नाम न था । उनके जाने के बाद भगवान ने तुरंत ही दूसरे भाई को बुलाकर कहा, "जाव, इसी हवाई-जहाज की दूसरी दो टिकिट और लेकर आव ।" जब वे आदेशानुसार टिकिट लेकर आये तब भगवान के शब्द याद आये ।

"करनी ब्रह्म की बात और कौड़ी के लिये गुरुवर्य का घात"

मानसजी में भी कहा है,

कौड़ी लागी लोभवश, करहिं विप्रगुरुघात

भगवान के साथ बम्बई आये । बेंगलौर से निकलते वक्त एक भाई अपनी पत्नी के साथ मेरे पास आकर जबरदस्ती पाँच सौ रुपये दे गये थे, यह बात भगवान को बताने का समय ही न मिला ।

बम्बई पहुँचकर चार बहनें तो भगवान के साथ गाड़ी में नेपयन्सी रोड पहुँच गये । एक तो मैं अनजान, कहाँ जाना है, यही मालूम न था । क्या करूँगी ? यह सोच रही थी । इतने में एक भाई अपनी पत्नी के साथ मुझे भी अपनी गाड़ी में ले गये । भगवान के निवास-स्थान पर पहुँचने पर मुझे दूसरी मंजिल पर भगवान के पास जाने नहीं दिया जिससे वे भाई अपने घर ले गये । सुबह वापिस अपनी गाड़ी में भगवान के पास भेजा परंतु तब भी ऊपर जाने नहीं दिया । नीचे थोड़ी देर

बैठकर वापिस लौट आई । इस प्रकार से सुबह-शाम तीन दिन तक गई परंतु दर्शन के लिये निष्फलता । चौथे दिन एक बहन ने किसी को कहकर बाहर से फोन करवाया कि कल सुबह सात बजे रमा बहन को यहाँ पहुँचा देना, कारण बंगले का चौकीदार आठ बजे आता है । मेरे वहाँ पहुँचने पर एक बहन ने दरवाजा खोलकर मुझे ऊपर बुलाया और भगवान के कमरे में ले गयी ।

उससे पहले उन्होंने मुझे सब बातें बताते हुए कहा, "तीन दिन से भगवान बार-बार पूछ रहे हैं कि, "रमा कहाँ गई ?" परंतु ऐसी हालत में मैं उन्हें क्या कहूँ ? तीन दिन तो ऐसे ही कहकर निकाले कि, "यहीं बाहर बैठे हैं ।" परतु कल गुस्से से कहा, "तुम सब आते हो तो वह मेरे पास क्यों नहीं आती ?" फिर तो जवाब देना मुश्किल था, अच्छा हुआ ज्यादा पूछा नहीं । मुझे यहाँ से फोन करने की मनाई है, इसलिये मैं आपको खबर नहीं दे सकती थी । कल रात को वे भाई को बाहर से फोन करने को कहा था । अब आप भगवान के कमरे में जाकर गुपचुप बैठे रहना, किसी से डरना नहीं ।"

भगवान के कमरे में जाकर प्रणाम करने पर आँख खोलकर इशारे से पूछा, "कब आई ?" बाद में पलंग के पास बैठने के लिये इशारा करने से बैठ गई । थोड़ी देर में घर के मालिक को मालूम होने पर वे गुस्से के साथ भगवान के कमरे में आये लेकिन भगवान के सामने क्या कह सकते थे ?

ऊँच निवास नीच करतूति....

धीरे-धीरे उनके परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्य प्रणाम करने आये । थोड़ी देर में भगवान ने कहा, "अब सब जाव ।" यह सुनते ही सबसे पहले मैं खड़ी हो गई, कारण एक तो गृह मालिक का डर, दूसरी बात यह सोचती थी कि कुछ सेवा तो जानती नहीं और इस हालत में भगवान को दूसरी बार बोलना पड़े यह ठीक नहीं । परंतु भगवान ने उनके सामने ही कहा, "रमा, तुम कहाँ जाती हो ? बैठो, तुमारा काम है मुझे ।"

थोड़ी देर में सबके जाने के बाद हम चार बहनें थीं । भगवान ने चार-पाँच बार कहा, "सब जाव, मुझे रमा से बात करनी है", उसमें से

दो बहनें तो चली गईं और दो नहीं गईं । तब बोले, "ऐसी हालत में दो बार कहो, चार बार कहो तो भी कोई असर नहीं ?" फिर भी उन लोगों को कोई असर होनेवाला था नहीं । आखिर शाम को चार बजे सुरेश और गोरधन भैया आये तब कहा, "मुझे इन लोगों से बात करनी है ।" यह सुनकर मैं बाहर निकल गई, उसके बाद ही वे बहनें बाहर निकलीं । भगवान परम स्वतंत्र हैं जो करना चाहें सो करके ही रहेंगे । गोरधनभाई को कहकर मुझे बुलाई । वे बहन देख रही थीं लेकिन उन्हें संतोष था कि सुरेश, गोरधनभाई अंदर हैं ही । भगवान ने दरवाजा बंद करवाकर सुरेश तथा गोरधनभाई को अंदर के बाथरूम में भेजकर मेरे साथ बात की, पूछा, "तुम कहाँ रहती हो ?" तुम्हारे पास पैसे कितने हैं ? देखो, किसी बात की तकलीफ उठाना नहीं और यदि बेंगलौर से बम्बई आने की प्लेन की टिकिट के पैसे के बारे में चर्चा होवे तो उसी समय निकालकर दे देना । अभी गोरधन को बोलकर तुमको पैसे दिलाता हूँ ।" मैंने कहा, "भगवान, अभी मेरे पास बहुत पैसे हैं, कारण बेंगलौर से निकलते समय उस भाई ने बहुत आग्रह से मुझे पाँच सौ रुपये दिये हैं ।" भगवान ने कहा, "रखो तुम्हारे पास, बम्बई है, काम आयेंगे ।" इतनी बात होने के बाद सुरेश और गोरधनभाई को बुलाकर कहा, "रमा को पाँच सौ रुपये दे दो ।" बहुत मना करने पर भी जबरदस्ती पैसे देते हुए कहा, "किसी तरह की तकलीफ उठाना नहीं और रोज मेरे पास बराबर आना-जाना । जरूरत पड़ने पर टैक्सी कर लेना ।" इस प्रकार से बराबर ध्यान रखते थे ।

एक शूल मोहि बिसर न काऊ, गुरुकर कोमल शील सुभाऊ



[९०]

तुम कृपाल जापर अनुकूला

भगवान के पास रोज जाती-ग्राती थी । पंद्रह दिन बम्बई में रहे, बाद में पूना जाने का प्रोग्राम निश्चित होने पर मुझे बुलाकर पूछा, "रमा, तुम्हारा क्या प्रोग्राम है ?" मैंने कहा, "भगवान, यह ग्राधुनिक ढंग की सेवा ग्रौर ये मशीन, दवाइयाँ बगैरह मैं कुछ भी जानती नहीं हूँ ग्रौर मुझे कोई सेवा करने देंगे भी नहीं, इसलिये लगता है कि व्यर्थ में रुकना ठीक नहीं, लेकिन स्वास्थ देखते हुए छोड़कर जाने की भी इच्छा नहीं होती है । मैं सिर्फ दर्शन के हेतु से ग्राई थी, तब यह मालूम न था कि तबियत इतनी बिगड़ गई है, ग्रब ग्राप कहेंगे वैसा करूँगी ।" तो कहा, "भले तुम मेरे साथ पूना चलो परंतु तुम्हें वहाँ बहुत सहन करना पड़ेगा ।" मैंने कहा, "भगवान, ग्रापके लिये सब कुछ सहन करने को तैयार हूँ ।"

भगवान के साथ पूना पहुँचे । जीवन में पहली बार डायरी लिखना शुरू किया । पूना में हम दो बहनें सेनिटोरियम में रहती थीं । वहाँ पहुँचकर बाईस दिन की लंबी तपश्चर्या के बाद हमें दर्शन के लिये बुलाये गये । भगवान तो बुला रहे थे लेकिन भगवान के ग्राराम के हेतु यह कड़क व्यवस्था रखी गई थी । मेरे साथवाली बहन ने ग्राखिर छः दिन निर्जल उपवास किये, उस समय उनके चौथे उपवास की रात को मैं बिछाने में बैठकर प्रभु प्रार्थना कर रही थी, "हे भगवान, ग्रब यह बहन दर्शन के बिना उपवास छोड़ने को तैयार नहीं है ग्रौर व्यवस्थापक उनकी कठोरता छोड़ने को तैयार नहीं, तो परिणाम क्या होगा ? ग्राप कृपा करके बुलावें तो ही हम ग्रा सकते हैं । पुरुषार्थ की सीमा पूरी हुई ग्रब तो ग्रनुग्रह की ही राह थी ।" भगवान की ग्रावाज सुनाई दी, "परसों शाम को चार बजे बुलाऊँगा ।" फिर भी लग रहा था मेरा भ्रम तो नहीं है ? इस प्रेरणा से दर्शन के लिए दो दिन की ग्रवधि मिलने पर प्रतीक्षा के लिए बल मिला ।

दूसरे दिन रात को साढ़े ग्यारह बजे एक भाई हमारे पास आकर कह गये, "महाराजजी आप दोनों को याद करते हैं और तीन-चार बार बुलाने को कहा है लेकिन देखो अब व्यवस्थापक लोग क्या करते हैं ?" यह बाईस दिन तक वे लोग हमें आठ-आठ दिन के वादे देते रहे और जैसा कहते गये वैसा हम करते रहे । अंत में हारकर इस बहन ने उपवास करने का निर्णय लिया था ।

राम दरश हित नेम व्रत, लगे करन उपवास

हम बंगले पर बाहर के दरवाजे तक प्रणाम करने जाते थे लेकिन उपवास के कारण कमजोरी से अब इतना चलना मुश्किल था जिससे यह प्रोग्राम बंद था । छठे दिन सुबह अचानक बम्बई से एक भाई अपनी गाड़ी लेकर मिलने आये । वे हमें बंगले तक ले गये लेकिन दर्शन के लिए अभी देर थी कारण शाम को चार बजे का समय भगवान ने प्रेरणा से दिया था जिससे कोई क्यों आने देते ? हम वापिस लौट आये ।

दोपहर में करीब दो बजे दो भाई उस बहन को समझाने के लिए आये और कहा, "आपको कल बुलायेंगे उपवास छोड़ दो ।" वे बहन भी अपने निश्चय में अटल थे कि दर्शन के बाद ही पानी पीऊँगी । वे लोग चले गये, जाते-जाते कह गये, "देखते हैं भगवान की आज्ञानुसार आपको बुलायेंगे ।" आधे घण्टे में उसमें से एक भाई गाड़ी लेकर लेने के लिए आये और मुझे साथ में आने के लिये मना कर दिया जिससे वह बहन गुस्से में बोली, "आपका कहने का मतलब यही है ना जिसने उपवास किये वोही दर्शन को आ सकेंगे ? तो ठीक है वे आपकी गाड़ी में नहीं आयेंगे । पैदल चलकर वहाँ पहुँच जायेंगे और बाहर खड़े रहेंगे, भगवान कहेंगे तो ही अन्दर आयेंगे ।" मैं उन लोगों से पहले पैदल चलकर पहुँच गई । मुख्य दरवाजे से बाहर सड़क पर खड़ी थी । गाड़ी अन्दर गई थोड़ी देर में एक भाई मुझे बुलाने आये । श्रीचरणों तक पहुँचने पर ठीक शाम के चार बजे थे । तबियत बहुत नरम थी फिर भी कुशल समाचार पूछ कर कांपते हाथ से प्रसाद देकर थोड़ी देर बैठने को इशारा किया । बाद में हम लौट आये । कभी चार, कभी आठ या कभी पन्द्रह दिन के बाद दर्शन मिलते थे । तब कभी-कभी भगवान आधे एक-घण्टे के लिये बैठने को भी कहते थे । एक बार प्रणाम करके सिर उठाते समय भगवान ने

अपने कर कमल से सिर दबाते हुए कहा, "पैर पड़", दूसरी बार फिर उठते वक्त इसी तरह से कहा, "पैर पड़ ।" फिर मुझे लगा इस तरह से कितनी देर पड़ी रहूँगी ? तीसरी बार उठने पर इसी प्रकार सिर पर हाथ दबाते हुए कहा, "पैर पड़ ।" इस तरह से इतनी देर तक भगवान का वरद हस्त सिर पर रहा ।

कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ, दीनदयाल दुसह दुःख हरेऊ
प्रभु पद पंकज कपि कर शीशा, सुमिरि सो दशा मगन गौरीशा

दीवाली के दिन पूरे हुए । भगवान के प्रागट्य दिन चतुर्थी से हम लोग वहीं पर रहने चले गये, बाद में नियम से रोज आठ घण्टे की फर्ज सौंपी गई, उसी प्रकार से सेवा, सान्निध्य मिलता रहा । मुझे सुबह दस से एक बजे तक और रात के नौ से दो बजे तक सेवा मिली थी । एक रोगी की भूमिका निभाने में प्रभु की अलौकिकता थोड़ी ही नष्ट हो गई थी ? वे बराबर इसकी प्रतीति कराते रहते थे । दर्शन के हेतु से तीन-चार दिन के लिए बेंगलौर गई थी । मेरे पास चार जोड़ी से अधिक कपड़े नहीं रहते थे वे भी करीब पुराने । इस बात का भी बराबर ख्याल रखते थे । मुझे अकेली बुलाकर कहा, "सुरेश बम्बई जाता है, तुम उससे अपने लिए तीन-चार साड़ियाँ मंगवा लो । अभी तो तुम्हें मेरे पास कितना समय रहना होगा किसको मालूम ?" मैंने कहा, "भगवान, अभी पूना में से मैंने चार साड़ियाँ ली हैं", पूछा, "कितने की आई हैं ?" कुल एक सौ बीस रुपये की आई थीं यह बताने पर कहा, "अच्छा हुआ, सुरेश से पैसा ले लेना ।" मैंने कहा, "भगवान, मेरे पास है ।" दूसरे दिन भी सबके बीच में चिट्ठी लिखकर दी, "सुरेश से पैसा ले लो ।" मेरे पास भगवान के यह अंतिम हस्ताक्षर हैं । पहले जब हम बाहर दरवाजे तक ही आ सकते थे तब भी एक दिन सुरेश दरवाजे से बाहर पैसे देने आया था । दूर होते हुए भी भगवान की कृपा दृष्टि नित्य साथ थी । भगवान की ऐसी हालत में उन्हें किसी प्रकार का उद्वेग न हो इसलिए कोई भी व्यक्ति भगवान के साथ बात करे तब नर्स को हाजिर रहने के लिये सूचना दी गई थी । जब मुझे भगवान बुलाते थे तब इस प्रकार से पैसे की बातचीत करनी हो तो भगवान स्वयं नर्स को बाथरूम में भेज देते थे । वैसे नर्स को भी मेरे प्रति सद्भाव होने से वे खुद ही

चली जाती थी । नरम स्वास्थ के कारण रात को मच्छरदानी नहीं रख सकते थे और मच्छर खूब होने से जाप करते हुए खड़ी रहकर मच्छर उड़ाने की सेवा करती थी ।

कई बार मेरे साथ किसी का अयोग्य व्यवहार देखते थे तब कुछ बोल नहीं पाते लेकिन रात को मेरे फर्ज के समय बराबर वात्सल्य भाव से निर्मल प्यार-दुलार बताते थे । हर सप्ताह में करीब एक बार जरूर बोलते थे, "देखो तो, इस लड़की को मैं क्या देता हूँ परंतु मेरे लिये कितना सहन करती है ?" एक दिन किसी ने मिठाई लाकर रखी तब स्वहस्त से सबको प्रसाद देते हुए बोले, "लो भाई, यह तो हृदय को धोने का सनलाइट साबुन है, इसको खायेगा उसका कचरा सब धुल जायेगा ।" प्रसन्नता के साथ सबको प्रसाद दिया । नर्स को अपने रुमाल में प्रसाद बाँधते हुए देखकर बोले, "देखो तो माँ की ममता कैसी होती है ? वह अपने बालक के लिये ले जायेगी, तो क्या मुझे आप लोगों से ममता नहीं होगी ?" सच है, ऐसा सुना भी है कि सद्गुरु में एक हजार माँ की ममता तो क्या असंख्य माँ की ममता भरी हुई है, इसकी पूर्ण अनुभूति भी मिली है । इतना बोलते-बोलते भगवान और जितने लोग वहाँ थे सब द्रवित हो उठे । थोड़े दिनों बाद जयपुर से छोटा भाई जयंति आया था । वह एक दिन और एक रात रुका था । उसको एक व्यवस्थापक द्वारा मेरे बारे में कहा गया, "रमा बहन को समझाकर जयपुर ले जाव, वे यहाँ रहती हैं यह भगवान को पसंद नहीं है, भगवान की इच्छा से विरुद्ध वे यहाँ रह रहे हैं ।" यह बात मुझे मालूम होने पर जयपुर जाने के लिये भगवान से आज्ञा माँगी । मुझे अकेली बुलाकर पूछा, "यह किसने कहा ?" नाम बताने पर बगल के कमरे में रहती हुई बहन की ओर हाथ का इशारा करके कहा, "यह सब उसके धंधे हैं, तुम किसी की सुनना नहीं, चुपचाप पड़ी रहो ।" ईर्ष्या भाव रखनेवाली व्यक्ति व्यवस्थापकों को भी मेरे विरुद्ध उकसाती रहती थी जिससे सब कोई तिरस्कृत दृष्टि रखते थे । परंतु मुझे तो एक ही बात पर ध्यान देना है,

मुझे है काम ईश्वर से, जगत रूठे तो रूठन दे....

हरेक साधक को परम की प्राप्ति के लिये यही ख्याल रखना होगा ।

बीच में एक दिन भगवान के साथ श्राणंदी, पढरपुर भी गये थे । कभी-कभी तो भगवान कहते थे, "मुझे यहाँ से उठाकर एक बार बाहर छोड़कर श्राव", इतने थक गये थे । मेरे साथ रहनेवाली बहन ने एक बार प्रसंगोपात् भगवान से कहा, "भगवान, हम एक बार श्रापसे श्रलग हो जाते हैं, बाद में हमारी क्या दशा होती है, हम श्रापसे कैसे कहें ? हमारे साथ इतना श्रसत्य व्यवहार किया जाता है, रमा बहन को बम्बई में वहाँ के गृह मालिक तीन दिन तक ऊपर श्राने ही नहीं दे रहे थे श्रौर श्राप उनके लिये पूछते रहते थे तब हम श्रापकी ऐसी हालत में क्या खबर दे सकते थे ?" यह सुनकर भगवान की श्राँखें भर श्राईं । छः महीने पूना में रहने के बाद श्राखिर जब वापिस बम्बई जा रहे थे तब दुःखी होकर कहा, "बम्बई में मुझे उनके वहाँ नहीं ले जाना । उसके महल में या उसकी जेल में ?" पूना में भी कई बार विरोधी घटनायें घटीं । एक बार सबके व्यवहार से हारकर, भगवान ने मुझे कहा, "रमा, तुम चली जाव, तुम यहाँ चुपचाप पड़ी रहती हो तो भी यह लोग तुम्हें शांति से रहने नहीं देंगे । मैं एक-डेढ़ महीने बाद गाड़ी भेजकर तुम्हें बुला लूंगा ।" मैं जाने को तैयार भी हो गई थी लेकिन श्राज जाना, कल जाना करते दो दिन निकल गये । बाद में कहा, "श्रब नहीं जाना, कहाँ श्राती, जाती हो रह जाव ।"

[९१]

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे

भगवान के पास ता. २०-१२-६९ के रोज राजकोट से दो-चार भाई श्राये थे । उनके साथ की बातचीत में कहा, "तुम लोगों से बात करनी है, बैठो । देखो है श्रात्मश्लाघा जैसी बात है परंतु कहे बिना छुटकारा नहीं है ।" श्रर्जुन श्रौर श्रभिमन्यु के युद्ध के वक्त श्रभिमन्यु की पतिव्रता पत्नी का प्रसंग बताते हुए कहा, "इसी तरह यदि ईश्वर या गुरु के लिये यह विचार श्रावे कि श्रौर कोई इसके श्रलावा शक्ति है तो श्रद्धा में कमी श्राती है । मैं सदा साथ हूँ, काम बराबर करो, सुशीला

बहन से दीक्षा में मैंने यही माँगा है, वह बराबर नेत्रयज्ञ देखती रहेगी ।" उसके बाद पपीहे का उदाहरण देते हुए कहा कि, "वह हठ करके और कोई पानी नहीं पीता है तो स्वाति को बरसना ही पड़ता है ।" बनासकांठा और सुरेन्द्र नगर में दस लाख बालकों को सात महीने तक अनाज दिया जायेगा, उसमें बारह आना गवर्मेन्ट और चार आना अरविंदभाई मदद देंगे । गवर्मेन्ट को तो आश्चर्य है कि भारत में ऐसी सच्ची संस्था अभी है ।" यह बातें उन भाइयों ने भगवान को बताईं तब प्रत्युत्तर दिया, "इसमें एक ही बल है, तुम लोगों की नीति । जिसकी नीति पक्की है उसके लिये हमेशा सामने से रास्ता हो जाता है । यदि सेवाभावी सब लोग साल का एक महीना दे देंगे तो भी कार्य बराबर चलता रहेगा ।"

कई बार बोलते रहे, "देखो तो, मेरा दूसरा शरीर इस शरीर को देखकर हँस रहा है ।" एक दिन भगवान के पास रहने वाले राजकोट के डॉक्टर से भगवान कहने लगे, "प्रेम देखो इस लड़की में, इसने कितना सहन किया है मेरे लिये । बहुत ही कष्ट उठाया है परन्तु क्या करूँ ? मैं रख भी नहीं सकता और छोड़ भी नहीं सकता खुली बात है । यह एक महीने की थी तब इसके पास बरसड़ा पहुँच गया था । सच इसने बहुत ही सहन किया है मेरे लिये ।" सच है :

काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे·······

ता० ७-१-७० के दिन कुछ भाई लोग आये उनके साथ बात करते हुए कहा, "फरवरी अच्छी तरह निकल जाए यही भगवान से प्रार्थना है । गुजरात स्वतन्त्र होगा सेन्ट्रल गवर्मेन्ट से । बंगाल, आसाम पूर्व पाकिस्तान में मिलकर अलग हो जायेगा । चीन-रूस का विरोध होगा वह अब दिखता है, यदि चीन, भारत को ले लेगा तो पूरा विश्व युद्ध हो जायेगा । पर अमेरिका यह नहीं होने देगा हस्तक्षेप करेगा क्योंकि भारत में एक ऐसी शक्ति है । अभी जो युद्ध होगा वह संस्कृति का होगा ।" आगे कहा, "मुझे साहित्य का बहुत शोख था, डेढ़ सौ साल खूब पढ़ा हूँ । अब दाँत ढीले हो गये हैं", दाँत को गिराने के लिये 'शंखद्रवा' नामक दवाई बताते हुए कहा, "दाँत पर लगाने से दो घंटे में निकल जाता है । उसमें सूई और कौड़ी डालने से वह गल जाते हैं । सोडा और नौसागर से बनता है ।" बाद में सूरदासजी का एक पद बोले,

**✓कर ले सिंगार, चतुर अलबेली नार, प्रीतम के घर जाना होगा
मिट्टी से निकले मिट्टी में मिल जाना होगा.......**

"यह अपनी बुद्धि के लिये कहा है" इतना कहकर उसके बाद

हे मेरे प्यारे राघव इतनी तो दया करना

यह स्वरचित पद गाया :–

**हे दीनबंधु राघव, इतनी तो दया करना,
हे मेरे प्यारे राघव, इतनी तो दया करना
इतनी तो दया करना, इतनी तो दया करना –हे दीनबंधु.......
इनकी ये झंझटों में, भूल जाऊँ अगर तुझको
तो मेरे प्यारे राघव, मुझको न भूल जाना –हे दीनबंधु.......
माया से लड़ते लड़ते, हो जाऊँ मैं शिथिल जब
तो मेरी ओर आकर, माया से लड़ा करना –हे दीनबंधु.......
अब तक तो निभाया है, अब भी तू निभा लेना
जीवन की मेरी नाव प्रभु ! पार लगा देना –हे दीनबंधु.......**

आगे कहा, "यदि कोई लिखने वाला हो तो मैं महा सुद छठ के दिन लिखाऊँगा ।"

गुजरात में बनासकांठा में राधनपुर की ओर राहत कार्य चल रहा था वहाँ सुखड़ी बाँटने के लिये सोयाबीन के तेल में कुछ विटामिन पाउडर डालकर सुखड़ी बनानी थी । उसका थोड़ा नमूना मेरे से बनवाया ।

माघ शुक्ल षष्ठी पू० श्री पतितपावनजी भगवान का प्रागट्य दिन था । उस दिन सुबह चार बजे बुलाकर गद्‌गद् स्वर में कहा, "देखो तो रमा, यह जीवन में पहला दिन ऐसा है कि इस दिन पर मैं उठकर भगवान को प्रणाम भी नहीं कर सकता ।" सुबह मानसजी की स्तुति और गीताजी का बारहवाँ, पंद्रहवाँ अध्याय का स्वाध्याय करने का सूचन दिया । भगवान की इच्छा से श्री पतितपावनजी भगवान का पूजन हुआ तब पूजन में दूध और फेणी का भोग लगाया गया । भगवान की इतनी नरम तबियत में भी जब कोई व्यक्ति पास में बैठकर मर्यादा का

मुझे लगा है तुझसे नाद, भले हो जाऊँ बरबाद
शरण तेरा नहीं छोड़ुं, मैं तुझे कभी ना छोड़ुं



त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्व मम देव देव ।।

ख्याल किये बिना प्रसंगोपात बातचीत करते हुए मुक्त हास्य करते थे तब भगवान बोले,

जाके घर में दुःख है, ताहि यह न सुहाय
विषय भोग निन्द्रा हंसी, जगत वात प्रीत पाय

हरेक व्यक्ति का व्यवहार बराबर देखते रहते थे, सही में प्रेमभाव, सेवा है या सिर्फ आडम्बर ? यह उनसे छिपा नहीं था । कभी-कभी कहते थे, "सेवा तो बहुत करते हैं लेकिन अपनी मनमानी ।" कभी मनमाना व्यवहार होने पर अति दुःखी होकर गद्गदित होकर बोलते थे, "देखो मेरी दशा"

सोई सेवक प्रियतम मम सोई, मम अनुशासन माने जोई..........
आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा...............

हमेशा शील, सादगी, सरलता और मान-मर्यादा खूब प्रिय थे । कभी किसी के नित्य रंग-दोरंगी वस्त्रों को देखते थे तब एक बार मुझ से कहा, "रमा देखो, ऐसे गिरगिट की तरह रंग नहीं बदलते रहना ।" पूना में से जो साड़ियाँ ली थीं वह एकदम सफेद नहीं थीं, एकदम हल्के रंग में कोई बादामी तो कोई गुलाबी थी । वह पहनती थी तब देखकर प्रसन्नता बताते हुए कहते थे, "रमा, सिर्फ कपड़े की सफेदी को नहीं देखना, हृदय की सफेदी का ध्यान रखना ।" ऐसा नहीं था कि सफेद वस्त्र ही पहनना, लेकिन व्यर्थ की सजावट के प्रति हमेशा अरुचि बताते थे, जिससे कई बार ऐसा बोलते थे :-

असलियत छिप नहीं सकती, कभी झूठे असूलों से
खुशबू आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से

एक दिन वहाँ के व्यवस्थापकों के डर से पूरे दिन भगवान के पास मैं नहीं गई । शाम को दर्शन के लिए जाने पर कहा, "तुम दिन भर कहाँ थीं ? बिना संकोच तुम आ सकती हो, कभी भी । इतनी डरती-डरती रहती हो मुझे विक्षेप न हो जाय, दुःख न पहुँचे क्यों ? परन्तु मुझे कोई दुःख नहीं होता, यह भ्रांति निकाल दो ।"

कई बार सुबह-शाम ह्वील चेयर में बैठकर आंगन में घुमाने के लिए ले जाते थे तब कोई-कोई व्यक्ति फोटो खींचते थे कोई अपने कैमरे से

फोटो खींच रहा हो तब बीच में नहीं जाना चाहिए इसलिए एक ओर खड़ी हो जाती थी । आज तक भगवान के साथ मेरी अकेली का कोई फोटो नहीं था । एक दिन घूमते-घूमते जब रोक दिये तब भगवान ने पूछा, "क्यों ?" तो किसी ने कहा, "फोटो खींचनी है ।" यह सुनकर कहा, "अच्छा पहले रमा को बुला लो, उसका एक फोटो मेरे साथ ले लो, बाद में तुम्हें जितना फोटो लेना हो ले लेना ।" भगवान ने सामने से बुलाकर फोटो खिचवाया, यही एक याददास्त मेरे पास है । भगवान बोलते थे—

न बचपन रहा, न जवानी रही, न बुढ़ापा रह जायेगा
यादगारी के लिये फोटो फकत रह जायेगा

[९२]

कृपासिंधु के मन अतिभाये

भगवान ने पौष शुक्ल दसवीं को कहा कि अनंतपुर में श्री हनुमंत मंदिर की नींव श्री अरविंदभाई के छोटे पुत्र ऋषिकेश के हाथ कराना । देश के विषय चर्चा में कहा, "चाहे तीन रोज के लिए ही क्यों न बनें परन्तु मोरारजी प्रधानमंत्री बनेंगे जरूर ।"

पौष शुक्ल तेरस के दिन भगवान ने एक व्यक्ति को संबोधन करते हुए कहा, "आत्मश्लाघा जैसी बात है परन्तु तुम्हें ध्यान दिलाने के लिए कहता हूँ, तुम मुझे गलत समझे हो । सिर्फ सीताराम परमहंस ही तुमने मुझे समझा है ।"

पौष वदी चौदस की रात्रि को "एक बात कहूँ या नहीं ?" इतना कहकर बात चालू की, "महाराजा तेखचंद के समय में आसाम में जब तार की पद्धति चली ही थी तब एक साधु खूब बीमार हो गये । उन्होंने अपने सब शिष्यों को कहा कि अब मैं रहने वाला नहीं हूँ मेरी तिथि निश्चित है । यह सुनकर धीरे-धीरे सब शिष्य छटक गये तो ऐसा मेरा

हाल करना नहीं बाबा, मेरी तो तिथि भी मालूम नहीं है ।" यह प्रसंग कहकर किसकी किस प्रकार से कसौटी की गई होगी यह तो भगवान जाने ? क्योंकि भगवान की बानी गूढ और अति सारमय है, इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं है ।

अमावस के दिन राजकोट के रहने वाले रमणीकभाई बेडलावाले को सामने से बुलाकर कहा, "देखो, अब तुम सब अलग हो जाओगे तो मुझे चिंता है कि तुम दोनों भाई ज्यादा पढ़े हुए भी नहीं हो, करोगे क्या ? तुम्हारा गुजारा कैसे होगा ? खैर ! भगवान तुम्हारे है ही, तुम्हारे प्रारब्ध को बदल देंगे उसमें शंका नहीं है ।" थोड़ी देर बाद रमणीकभाई भगवान को उठाने गये तब एकदम झुँझलाकर बोले, "हटो, मुझे परेशान करते हो ?" इतना कहकर उनके हाथ पर दो-तीन थप्पड़ लगा दिये । थोड़ी देर बाद कहा, "अरे रमणीक, डर गये क्या ?" तब एक भाई ने कहा, "अरे ना रे भगवान, ऐसा करके आपने उनके दो-तीन जन्म के पाप काट दिये होंगे ।" बाद में बाहर घूमने निकले तब बाहर ही बिछाना करवाकर सोये तब फिर से कहा, "अरे ! मुझे इसकी चिंता थी कि यह क्या करेगा ? परन्तु अब ये अच्छे बड़े व्यापारी बन जायेंगे लेकिन देखो सट्टा कभी नहीं करना मैं इसका पक्का विरोधी हूँ ।"

अब पूना छोड़ने के दिन नजदीक आ रहे थे तब एक दिन शाम के समय कमरे में मैं और वैष्णवदासजी महाराजजी दो ही जने भगवान के पास थे । अगल-बगल में देखते हुए भगवान ने कहा, "देखो रमा, भविष्य में तुम अपने को अकेली नहीं मानना जब कोई साथ न दे तब ।

त्वमेव माता, च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या, द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम देव देव ।।

यह श्लोक बोलते हुए कहा, "मैं तुमारा सब कुछ हूँ ।"

इतना बोलते हुए भगवान की आँखों से आँसू टपक रहे थे, यह देखकर मैं भी रो पड़ी । तब तो मैं भविष्य से अनजान थी लेकिन भगवान ने जरूरत पड़ने पर यह सब चरितार्थ करके दिखाया । इसी अनुभूति के आधार पर आज समय बीत रहा है ।

पूना में छः महीने रहने के बाद फाल्गुन शुक्ल दौज के दिन बम्बई आने का निश्चय हुआ । उससे एक सप्ताह पहले एक भाई मुझे पूछने आये थे कि आपके लिए बम्बई जाने की हवाई जहाज की टिकिट लानी है या ट्रेन की ? मैंने ट्रेन की टिकिट मंगवाई थी कारण पूना से बम्बई पहुँचने तक भगवान की सेवा, सान्निध्य का लाभ मिलना तो मुश्किल था । पूना छोड़ने से पहली रात को मैं अपना फर्ज निभाने गई तब एक भाई ने मुझे बाहर बुलाकर कहा, "रमा बहन, आपको भगवान के साथ हवाई जहाज में जाने का है ।" मैंने पूछा, "क्यों ?" जवाब मिला, "मालिक की आज्ञा हो जाने के बाद क्यों प्रश्न नहीं पूछने का । आपको मेरी टिकिट से जाने का है ।" बाद में मालूम हुआ कि भगवान ने सबकी टिकिट के बारे में पूछा होगा, तब मेरी अकेली की ट्रेन की टिकिट देखकर कहा था, "मेरे पास यह भेद नहीं होगा । पाँच लड़कियों में से एक रमा ही मेरे साथ क्यों नहीं ?" इसलिए यह निर्णय लिया गया था । वैसे भी भगवान भेद-भाव के बहुत ही विरोधी रहे । हरेक प्रसंग में समत्वता पर ध्यान देते थे, हाँ भाव के मुताबिक व्यवहार भेद जरूर रहता था ।

बम्बई में जिस भाई के घर ठहरना था उन्हें बुलाकर कहा, "देखो, मैं बम्बई में तुमारा जो ब्लॉक अभी खाली पड़ा है वहाँ रहूँगा परन्तु यहाँ जितने मेरे साथ हैं वह सब मेरे पास रहेंगे ।"

शाम को बम्बई के लिए निकलना था । दोपहर में एक बजे मुझे खबर मिली कि जिस भाई ने मुझसे कहा था उनकी टिकिट में मुझे नहीं जाने का था परन्तु वैष्णवदासजी महाराजजी जो भगवान की सेवा में रहते थे उनकी टिकिट से मुझे भेज रहे थे । जिससे वे बहुत निराश हो गये थे कारण उन्होंने कभी हवाई जहाज देखा भी नहीं था और आज भगवान के साथ जाने का अमूल्य अवसर जो मिला था वह छीना जा रहा था ।

करीब दो बजे भगवान की मोटर द्वारा अन्य तीन भाइयों के साथ यह महाराजजी भगवान का सामान लेकर बम्बई के लिए रवाना होने वाले थे । एक के बाद एक सब प्रणाम करने आये तब वे उदास थे । व्यवस्थापकों ने भगवान से कहा, "भगवान, वैष्णवदासजी महाराजजी की टिकिट में रमा बहन आ रही है ।" जिससे उन्हें आपके साथ में आने

को न मिलने से वे उदास हो गये हैं। यह सुनते ही मैंने कहा, "भगवान, मैं ट्रेन से जाने के लिये तैयार हूँ, मेरे कारण किसी साधु का दिल दुःख पावे यह मुझे पसन्द नहीं है।" भगवान आँख बंद करके मौन रहे, थोड़ी देर में आँखों से आँसू टपकने लगे। बाद में स्वस्थ होकर बोले, "रमा, तुम्हें दुःख तो नहीं लगेगा ?" मैंने कहा, "ना भगवान, मैं खुशी से जाती हूँ।" सबके साथ मैंने भी प्रणाम किया, प्यार से सिर पर हाथ फिराते हुए विदाई दी। मैं भाइयों के साथ भगवान की मोटर में बम्बई के लिए रवाना हुई।

भक्त वछलता प्रभु की देखी........

[६३]

कृपानिधान प्राण ते प्यारे

भगवान के लिए वोर्डन रोड पर सूर्य अपार्टमेंट में आठवीं मंजिल पर रहने की व्यवस्था की गई थी। मैं यहाँ पर भी अनजान थी। सब सामान के साथ हम लोग आठवीं मंजिल पर गये। भाइयों को अन्दर जाने दिये, मुझे रोकते हुए कहा, "आपको दूसरी मंजिल पर रहने का है।" एक भाई मुझे दूसरी मंजिल पर पहुँचाने आये। मेरा सामान ऊपर होने से वापिस लेने गई तब एक-एक सामान बाहर लाकर मुझे दिखाया गया, सामान लेने के लिए भी अन्दर जाने नहीं दिया। सामान मिल जाने पर मैं दूसरी मंजिल पर चली गई। थोड़ी देर बाद एक भाई बुलाने आये, "चलो, भगवान का बिछोना वगैरा तैयार करना है, हमें कुछ नहीं आता है। मैं आपके साथ चलता हूँ, आपको कोई रोकेंगे नहीं।" भगवान के लिए बिस्तर और वस्त्र जमा दिये। रसोई और दवाई का सामान खोले बिना योग्य स्थान पर रखवा दिया। इतने में तो करीब साढ़े सात बजे भगवान पधारे। प्रणाम करने पर प्रसन्नता से पूछा, "बराबर आ गई ना ? रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई ना ?" बाद में साथ में आई हुई एक-दो बहनों से कहा, "अब तो जाव, अब तो पीछा छोड़ो।"

करीब ग्राठ बजे मैं नीचे चली गई । नौ बजे से मुझे मेरा फर्ज निभाने जाना ही था, उस हिसाब से ऊपर गई तब वापिस मुझे ग्राने नहीं दिया । ग्रौर कहा, "वह सब नियम ग्रब यहाँ नहीं चलेंगे, कल से भगवान कहेंगे वैसे होगा ।" मैं वापिस लौट गई । सवा नौ बजे एक भाई बुलाने ग्राये । भगवान के पास पहुँचने पर पूछा, "क्यों ग्राज देर से ?" मैं कुछ बोली नहीं परंतु यह सुनकर रोकनेवाली व्यक्ति समझ गई । फिर तो रोज सुबह दस से एक ग्रौर रात को नौ से दो बजे तक बराबर सेवा का ग्रवकाश मिलता था । थोड़े दिनों बाद मालूम हुग्रा कि मेरे पूना से निकलने के बाद किसी के कहने से बम्बई की व्यवस्था करने वाले भाई ने बम्बई फोन लगाकर कह दिया था कि ग्रानेवाली बहन को ऊपर भगवान के ब्लॉक में नहीं ग्राने देना, कारण वे तो भगवान के साथ हवाई जहाज से ग्राने का लाभ छोड़कर वहाँ पर ग्रड्डा जमाने के लिये जल्दी ग्रा रहे हैं । यह सुनकर बहुत ही ग्राश्चर्य हुग्रा कि कैसा शंकाशील मानस होता है ? मैं पूना से निकली तब वो ही भाई मीठे शब्दों में ग्राभार प्रदर्शित करते हुए बाहर तक गाड़ी में बिठाने ग्राये थे ग्रौर पीछे से किसी के बहकाने से ऐसा कपटपूर्ण व्यवहार देखकर लगता है, कुसंग क्या नहीं कर सकता ? हालांकि हर प्रकार से ऐसे लोग सभी संतों के पास होते हैं । ऐसा पू. श्री मोटा की पुस्तक में भी पढ़ने को मिलता है । उन्होंने भी एक जगह लिखा है····

२४ की साल में पू. श्री बाल योगी के सूचन से एक महात्मा के पास गया था जिनके वहाँ जिसे ग्रपने नैतिक कहते हैं, ऐसा कुछ नहीं था । कोई भी व्यक्ति कैसे भी बरतता था । झगड़े भी होते थे, मारामारी ग्रौर चोरी भी होती थी । वह सब देखने पर मुझे घृणा नहीं थी ग्रौर न ही उनकी ग्रवहेलना की थी, लेकिन यह सब समझ नहीं पाया था । ग्राज यह सब ख्याल ग्राता है । उनकी महत्ता की मुझे खबर थी जिससे ग्रन्य कुछ विचारने का प्रश्न नहीं था, फिर भी ऐसा लगता था कि ऐसे महात्माग्रों के पास भी ऐसा व्यवहार कैसे चलता होगा ? बाद में समझ में ग्राया जैसे समुद्र में छोटी-बड़ी नदियों का पानी जाता है वैसे ही संत ग्रात्मा के पास भी ग्रनेक प्रकार के लोग ग्रपनी-ग्रपनी मुरादें पुरी करने के लिये जाते हैं ।

मुझे भी आज तक के जीवन में अनेक प्रकार से अनेक जीवों के इतने अनुभव मिले हैं कि उनकी कथनी लिखी जावे तो पार नहीं पा सकते । ऐसे सब प्रसंगों के विषय में प्रभु कृपा से आज समझ मिली है कि जीवन बनाने के लिये ऐसे एक-एक मोड़ में से गुजरना अति आवश्यक लगने पर भगवान ने अपनी असीम कृपा द्वारा अनेक जीवों को निमित्त बनाकर ऐसे-ऐसे प्रसंग खड़े किये हैं और अभी भविष्य में भी करेंगे ।

बम्बई में एक महीना दस दिन ठहरे । उन दिनों में कितनी भी शारीरिक अस्वस्थता होने पर भी अपनी अलौकिक शक्ति से सम्हालते रहे । बम्बई पहुँचकर थोड़े दिनों में एक भाई ने आकर कहा, "बहन, आप मेरा एक काम करोगे ?" मैंने सोचा, कोई संदेशा भगवान तक पहुँचाना होगा । उन दिनों में भगवान से ज्यादा बात नहीं करने की डॉक्टरी सूचना थी, जिससे मैंने उन्हें कहा, "पहले आप काम बताओ बाद में ही मैं हाँ या ना का उत्तर दे सकती हूँ । बहुत पूछने पर उन्होंने कहा, "मुझे स्वप्न द्वारा भगवान का आदेश मिला है कि आपको सौ रुपये देने हैं, इसलिये आप यह ले लो ।" मैंने कहा, "आपको देने का आदेश मिला है, लेकिन मुझे लेने का आदेश नहीं मिला है ।" उन्होंने कहा, "अच्छा, अभी तो आप रख लो, भगवान से पूछ लेना, यदि ना कहें तो मुझे वापिस दे देना ।" थोड़ी देर के बाद दस बजने पर मैं भगवान के कमरे में गई, उस वक्त वहाँ कोई नहीं था जिससे वह सौ रुपये का नोट मैंने भगवान को देते हुए कहा, "वह भाई दे गये हैं" तो कहा, "रख लो, यह तुम्हारे ही हैं ।"

एक दिन भगवान ने मुझे कहा, "देखो रमा, अचानक कहीं जाना पड़े तो तुम्हारे पास पूरे पैसे रखना ।" कभी-कभी भगवान को बाहर घुमाने के लिये ले जाते थे तब मैं साथ जाती थी । वैसे समूह के लिये दर्शन बंद थे, इसलिये जब घूमने जाते थे तब कई लोगों को मालूम हो जाने पर दर्शन के लिये आ जाते थे । एक बार धीरूभाई बम्बई आये तब उन्हें भी बाहर जाते समय दर्शन का लाभ मिला था । वे एक दिन में चले गये, बाद में मुझे पूछा, "धीरू गये ?" मेरे हाँ कहने पर गोरधन भैया से कहा, "गोरधन, रमा को दो सौ रुपये दे दो जो धीरू दे गया है ।" यह सुनकर आश्चर्य हुआ, कारण धीरूभाई ने तो मेरे सामने ही

बाहर दूर से दर्शन किये थे, उसके बाद तो भगवान उन्हें मिले ही नहीं थे । परंतु किसी भी बहाने से मेरे पास पूरे पैसे रखवाते थे ।

तबियत एकदम नरम थी तब चैत्र शुक्ल चतुर्थी की रात को होर्लिक्स पीते-पीते कहा, "देखो रमा, जीवन में तुम अकेली रहो तब किसी बात की चिंता करना नहीं । दो टिक्कड़ बनाये और मस्त पड़े रहना । सुबह उठते ही छः हजार जाप कर लेना और रामायण, विनय-पत्रिका, गीताजी, उपनिषद पढ़ते रहना । विनय-पत्रिका भी साहित्य है, इस तरह से पूजा-पाठ करती रहोगी तो तुमारा दिमाग अच्छा रहेगा ।" मानो मेरे लिये यह अंतिम संदेश था ।

रामनौमी के दिन कई भाविकजन दर्शन के लिये आतुर थे । नीचे बहुत बड़ा मंडप बांधा गया था, भगवान को गोदी में लेकर वहाँ पर लाये थे । समूह में सबको दर्शन दिये । तीन दिन के बाद क्या होने वाला है यह किसी को मालूम न था लेकिन भगवान तो जानते थे । स्वेच्छा से चैत्र शुक्ल त्रयोदशी, रविवार १९ अप्रैल, १९७० में दोपहर के २-३५ मिनट पर शांतिपूर्वक सबसे विदा ली, शरीर त्याग किया । भगवान के शब्दों में कहूँ तो, "शरीर परिवर्तन किया" ।

कई बार कहते थे, "विश्व के कल्याण हेतु बहुत कार्य करना है, मुझे अकेले छोड़ दो, एक बार जाने दो, देखो शरीर अच्छा हो जायगा ।" परन्तु जीव मोहवशात् अपनी इच्छानुकूल सर्वशक्तिमान भगवान को अच्छा कर देने की इच्छा रखता है यह कितनी मूढ़ता है ? खैर । यह बुद्धि का विषय नहीं है कारण तो भगवान ही जाने ?

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी.......

पूना और बम्बई में बार-बार बोलते रहे, "देखो, शरीर पूना या बम्बई में कहीं भी छूटे लेकिन अंतिम क्रिया पुष्कर रामधाम में करना ।" श्री वैष्णवदासजी महाराजजी से कहते थे, "इतने साधुओं में तुम एक ही मेरी अंतिम सेवा में साथ रहे हो, अंतिम क्रिया तुम अपने हाथ से करना । सुरेश, गोरधनभाई और रमेशभाई से कहते थे, "तुम तीनों भाइयों में से एक न एक तो मेरे पास रहा करो, अंत में एक तो हाजिर रहना ।" और मुझे भी कहा था, "रमा, फिर तुम रामधाम में ही रहना ।"



[६४]

नरगति भगत कृपाल दिखाई

भगवान ने जब सबसे विदा ली तब मैं चौथी मंजिल पर अपने ब्लॉक में थी । रामनौमी पर अधिक मेहमान आने से हम लोग चौथी मंजिल पर आ गये थे । रेडियो द्वारा दूर-दूर तक खबर पहुँच चुकी थी तब चार बजे मुझे खबर मिली । ऊपर जाकर देखा तो लाखों के पालन-हार, सबके आधार भगवान ने सदा के लिये आँखें मूंद ली थीं । कितने ही लोग करुण शब्दों के साथ रो रहे थे । बहुत भारी भीड़ थी, वह करुण दृश्य देखा नहीं जाता था, लेकिन यह सब एक निगाह से देख रही थी, कुछ समझ में नहीं आ रहा था । नजरों के सामने देखते हुए भी यह घटना मानने को मन तैयार नहीं था जिससे रो भी नहीं सकती थी । एक बहन ने मुझे बुलाकर प्रसादी में एक चम्मच भर के होर्लिक्स दिया और कहा, "रमु, अब कभी भी अपने को यह प्रसाद नहीं मिलेगा ।" यह शब्द सुनकर रो पड़ी और जैसे दुःख ही सबको इकट्ठा करता है वैसे न बोलती हुई व्यक्ति भी गले लगकर रोने लगी । बस यह करुण घटना का वर्णन शब्दों से करने में असमर्थ हूँ। इतना ही कह सकती हूँ कि भगवान कभी किसी को ऐसे दिनों के दर्शन न करावे । दूसरे दिन सुबह भगवान के पार्थिव शरीर को हवाई जहाज से ले जाने के लिये एक पेटी में रखा गया । सोमवार दोपहर को हवाई जहाज से भगवान के आदेशानुसार जयपुर गये । सुरेश को भगवान ने कहा होगा इसलिये मुझे अपने सामान के साथ अपनी गाड़ी में हवाई अड्डे और वहाँ से हवाई जहाज में सम्हाल कर ले गया । शाम को जयपुर पहुँचने पर प्रथम गलताजी श्री पतित-पावनजी भगवान को प्रणाम करने के लिये गये । भगवान ने कहा था, "गलताजी प्रणाम कराके बाद में पुष्कर में अंतिम क्रिया करना ।" गलताजी से गुजराती समाज में ले गये । भगवान की पेटी के दोनों ओर बर्फ की दो सिल्ली रखी गई थीं जिससे हम चार बहनें उसी पर बैठे थे । रात को करीब डेढ़ बजे पुष्कर पहुँचे, वहाँ बहुत भारी भीड़

थी । अधिकतर चारों ओर से शिष्यमंडल पहुँच गये थे । मंगलवार शाम को करीब चार बजे श्री हनुमान जयंती के दिन सबकी अनुमति से बड़े दुःख के साथ अंतिम क्रिया की गई ।

यह सब भा इन्ह आँखिन आगे, तऊ न तजा तनु जीव अभागे

मंगलवार रात्रि को ही बहुत लोग चले गये थे । कलकत्ता वाले शारदाबहन और किशनभाई तथा कुसुम बहन और नरेन्द्र भाई सेठ मुझे अपने साथ अजमेर ले गये और जबरदस्ती अपने साथ भोजन के लिये बिठाई । वापिस रात को पुष्कर छोड़ गये । जयपुर से पिताजी आये थे वे भी चले गये थे, अब वहाँ मैं अकेली थी । अब तो सिर्फ रोने के सिवा कोई काम नहीं था ।

जो पै प्रिय वियोग विधि कीन्हा, तौ कस मरण न माँगे दीन्हा
निदहि आपु सराहहिं मीना, धिक् जीवन रघुवीर विहीना

श्याम बिना ब्रज सुना लागे.......

मन में एक ही विचार के साथ प्रार्थना कर रही थी, "हे प्रभु, अब कौन से सुख के लिये जीना है ?" बुधवार को तो जो थोड़े लोग थे वे भी चले गये । गुरुवार जल्दी सुबह चार बजे अन्तिम क्रिया के स्थान पर जाकर बैठी-बैठी रो रही थी और यही प्रार्थना कर रही थी –

जो प्रभु दीनदयालु कहावा, आरति हरण वेद अस गावा
तो मैं विनय करहु करजोरी, छूटे बेगि देह यह मोरी

इतने में आवाज सुनाई दी, "रमा, देखो तो सही मैं कहाँ गया हूँ ?" थोड़ी देर ऐसा लगा कि मेरे मन की कल्पना है । नीचे देखकर रो रही थी । फिर से आवाज आई, "मेरे सामने तो देखो" ऊपर देखने पर साक्षात् भगवान स्वयं खड़े थे । बिना आस्तीन की सफेद बंडी और अचला पहना था । कहा, "देखो, धैर्य रखो मैं नित्य तुम्हारे साथ हूँ । अब चाहे जितना तुम मेरे साथ रह सकती हो । इतना बोलकर अदृश्य हो गये । मानो नया चेतन दे गये,

रामभक्त नहीं रहे अकेला.......

भाविकजनों को अलग-अलग ढंग से प्रसंगोपात अनुभूति मिलती रहती है । धनुषधारी भगवान राम लीला पूर्ण करके स्वधाम पधारे, श्री कृष्ण भगवान स्वधाम पधारे, युग बीत गये फिर भी कृपा पात्र जीवात्माओं को आज भी सतत सान्निध्य की अनुभूति होती है जभी तो मीराबाई ने गाया :–

मैं ऐसे बर को क्यों बरूँ
जो आज जिये कल मर जाय
मैं तो बरूँ मेरे गिरिधर को
मेरो अमर चूडलो होय जाय....

जभी तो मीरांबाई, कबीरजी, नरसिंह मेहता, तुकारामजी, विभीषणजी और गोपियाँ वगैरे जो-जो जीवात्मायें प्रभु के साथ ब्याह चुके वे सदा के लिये सुहागन बन गये । श्री रामकृष्ण देव परमहंसजी के देह त्याग बाद श्री शारदामणि देवीजी ने भी सुहाग के चिह्न कायम रखे कारण परमात्मा स्वरूप संत के साथ अलौकिक आत्म-संबंध नित्य होता है । इसीलिये १९६२ के पत्र में पिताजी को भगवान ने लिखा होगा कि, "अ० सौ० का प्रयोग तुम्हारे पत्रों में न आना चाहिये कारण यह तो है ही कोई आज का तो नहीं........

इस घटना के बाद मन में शान्ति की अनुभूति होने लगी । बाद में नित्य नियम में अधिक व्यस्त रहती थी परन्तु........

जब चाहने वाले यहाँ जुल्म करके जाते हैं
तब यह जीवन के सब दिन भी बदल जाते हैं

अब मेरे इस प्रकार के व्यवहार से सब कोई अपनी शक्ति, मति और भूमिका अनुसार नापने लगे । सतत सान्निध्य का अनुभव मिलने पर मैं अपने मस्त रहती थी । उसके मनमाने उल्टे अर्थ होते थे और सबकी भाँति अनुकरणीय जीवन न बनाने से बहुत विरोध के साथ आक्षेप होने लगे । ईर्ष्या और द्वेषभाव तो काम कर ही रहे थे । भगवान ने अपनी हाजरी में मेरे लिये जो ब्लॉक बनवाया था उसी में मैं रहती थी । भगवान की हाजरी में जिस व्यक्ति का वहाँ रहने के लिये नाम भी नहीं सुना था वैसी दो बहनें मेरे साथ उसी ब्लॉक में रहने लगीं और

उन लोगों का उस प्रकार का व्यवहार होने लगा मानो वे लोग मुझे अपने घर में रखकर उपकार कर रहे हैं । थोड़ा-थोड़ा अयोग्य व्यवहार सहन कर लेती थी कारण दूसरी ओर से मन में परमशांति और उत्साह मिलता रहता था । उसी मस्ती के कारण बाहरी व्यवहार का असर कम होता था ।

एक दिन भगवान को भोग लगाते वक्त हाथ से पंखा करती हुई पूजा में बैठी थी तो आवाज सुनाई दी, "सब्जी में नमक है ही नहीं ।" बैंगन की सब्जी थी और मैंने तो रसोई बनाई नहीं थी । भोग लगाने के बाद धैर्य न रहने से उसी वक्त थोड़ी सब्जी चखकर देखी तो सच नमक नहीं था । रसोई में जाते ही मेरे मुँह से यह बात निकल गई । परिणाम में उसके लिये भी मन दुःख हुआ और इस घटना पर से एक बहन ने विचित्र बात बना दी । रोज सुबह दस बजे से शाम को छः बजे तक वे दोनों बहनें थोड़ी दूरी पर तीजाबाई आश्रम में चले जाते थे । उसके बदले इस घटना के बाद दूसरे दिन एक बहन पूरे दिन मेरे साथ ही रुके और मैं अपनी पूजा में भगवान के पास पाठ और जाप करने बैठी थी तब वे भी उसी कमरे में थोड़े दूर दीवार का सहारा लेकर बैठे थे । शाम को वे दूसरी बहन को कहकर रोने लगे, "आज तो मुझे भगवान की आवाज सुनाई दी कि पहले वह तुम्हारे बीच में आती थी अब यह रमा दिन भर बैठी रहती है ।" यह सुनकर मुझे बहुत ही आश्चर्य लगा ! यदि वे चाहते तो अपने पूजा स्थान पर बैठ सकते थे परन्तु जीवात्मा कितनी हद तक दंभ-कपट कर सकता है यह जानने को मिला ।

अब तो मैंने कोई भी निज अनुभव की बातें कहना बंद कर दिया फिर भी ईर्ष्या भाव से सताना चालू रहा । धीरे-धीरे छोटी-छोटी बातों में छिद्र ढूंढ़कर परेशान करने लगे । रोज सुबह वे दोनों बहनें मिलकर भोजन बनाती थीं मैं बाहर का सारा काम, तीनों के कपड़े धोना, झाड़ू-पोंछा, पानी भरना वगैरा काम सम्हालती थी । मैं चाय-कॉफी तो लेती नहीं हूँ, सुबह दस बजे भोजन में सब्जी-रोटी बनाते थे, उसी में से जो कुछ बच जाता था शाम को थोड़ा-थोड़ा खा लेते थे । वे दोनों बहनें सुबह कॉफी के साथ नाश्ता करके दस बजे भोजन में दो-तीन रोटी ही लेते थे । जब कि मैं चार-पाँच रोटी खा सकती थी जिससे सबके मुँह पर बातें करते थे, उसको तो कुछ दुःख नहीं है खूब पेट भरके खा लेती

है, हमको तो खाना भी नहीं भाता वगैरा तब तो मुझे भी लगता था मुझे धिक्कार है, इतनी भूख लगती है और ये लोग तो दुःख के कारण पेट भर खा भी नहीं सकते हैं। एक दिन हमारे बर्तन साफ करने वाली बाई देर से आई। वह वहीं तोजाबाई आश्रम में रहती थी। देर से आने का कारण पूछने पर उसने कहा, "बाजार काम से गई थी, आज मुझे बहुत देर हो गई अभी तो मेरा सारा काम पड़ा है। यहाँ से बर्तन करके दूसरी जगह जाऊँगी और वहाँ से अपने घर पहुँचने पर उन बहनों के बर्तन तैयार हो गये होंगे।" मैंने आश्चर्य से पूछा, "उन बहनों के बर्तन ?" तब उसने बताया, "हाँ, रोज वहाँ पर दोपहर में परांठे, सब्जी आदि बनाते हैं ना ? और फिर चार बजे कॉफी के साथ नाश्ता लेते हैं।" यह सुनकर बहुत ही दंग रह गई कि अरे !

झूठे लेना, झूठे देना, झूठे भोजन, झूठ चबेना

पर खैर !·······यह भी सहन करती रही। अंत में एक दिन जल्दी सुबह जिस जगह क्रिया की गई थी वहाँ पर खुले मैदान में जाप कर रही थी वहाँ आकर "मेरी जगह है" ऐसा दावा करके उठाकर एक बहन चले गये। खुला मैदान था, जगह भी बहुत थी और उनको तो बैठना भी न था परन्तु प्रथम दिन जल्दी सुबह जो अनुभूति वहाँ पर हुई थी वह मैंने बता दिया था इसलिए अब भजन में भी विघ्न शुरू किया। इसके अलावा कमरे में जहाँ मेरी पूजा थी वह एक ही कमरा था, वहाँ पर कपड़े बदलने पर अंट-संट शब्द सुनाने लगे, "भगवान के सामने मर्यादा तोड़ते हो, चारित्र्यहीन हो" ऐसा आक्षेप किया लेकिन

हरि व्यापक सर्वत्र समाना·······

इससे वे अनजान होंगे ! ! दिन प्रतिदिन सताने की चरम सीमा पर पहुँच चुके थे इसलिए वहाँ से निकल गई।

जाके प्रिय न राम वैदेही, तजिहौं ताहि कोटि बैरी सम
यद्यपि परम सनेही·······



[९५]

अब प्रभु कृपा करौं यहि भाँति

भगवान के देहविलय के बाद किसी की भी ओर से सहानुभूति के प्यार भरे दो शब्द आश्वासन के लिए भी मिलने के बदले में कैसे भी वाणी, व्यवहार सहन करने पड़ते थे । अनुभव के बिना दर्द भरे दिल को कौन समझ सकता है ?

तोड़ना टूटे हुए दिल को बुरा होता है.......

अब तो शिकायत करने के लिए भी ठौर ठिकाना नहीं रहा । कोई अपना नहीं कि जहाँ मन का बोझ हल्का किया जाय, जिससे मन को समझाने के लिए एक ही आश्वासन था –

कहाँ करे, किसे करे शिकायत अपनी
जितना तकदीर में लिखा अदा होता है
जिसका कोई नहीं उसका तो खुदा होता है.......

पुष्कर छोड़ते वक्त मेरा सामान भी उन्होंने वहाँ नहीं रखने दिया और दानवता को भी शरमाने जैसा व्यवहार किया । मैनेजिंग ट्रस्टी से मैंने कहा, "भगवान की आज्ञा से रामधाम में रहूँगी लेकिन जब मुझे अपना स्वतंत्र कमरा मिलेगा तब ।" उन्होंने कहा, "नये ब्लॉक बनने में एकाध साल निकल जायेगा इसलिए अब पुष्कर मकान तैयार न हो तब तक मुझे कहीं भी इतना समय निकालने का था । इसलिए पहले बरसड़ा माँ के पास गई । वहाँ से राजकोट होकर नागपुर, दुर्ग, बम्बई चित्रकूट आदि स्थलों में थोड़ा-थोड़ा समय रही । उस समय भी भगवद् इच्छा से ही सब अनुभव हो रहे थे और आज भी जो कुछ होता है उनकी इच्छा से ही होता है । हर समय सब अनुभव प्रभु के प्रति जीवात्मा की प्रीति बढ़ाने वाले ही होते हैं । जीवात्मा ममत्व से इधर-उधर भटकता है तब भगवान ही परम कृपा करके साधक की सर्वप्रकार

से ममता तुड़वाकर अपने चरणों की ओर खींचने के लिये ही प्रसंग खड़े करते हैं । जो जीव इस मार्ग से पूर्णतया विमुख हो उनके नाप-तोल या वाणी व्यवहार कैसे होते हैं, उसकी व्याख्या करना मेरे लिये मुश्किल है । आज के समय में जिनके जीवन में पैसा ही प्रधान है । जैसे –

पैसा मेरा परमेश्वर, पत्नी मेरी गुरु
बच्चे मेरे शालीग्राम, मैं सेवा किसकी करूँ

ऐसी विचारधारा वाले व्यक्ति से प्रेमभाव या आत्मीयता भरी मानवता की आशा रखना व्यर्थ है । वैसे भी संतों और शास्त्रों द्वारा जानने को मिला है कि अनेक भक्तों, महापुरुषों और सत्य की राह पर चलनेवाले व्यक्तियों को समाज और परिवार की ओर से कड़वे अनुभव होंगे ही; क्योंकि उनसे इन लोगों को स्वार्थपूर्ति के लिये धन मिलना मुश्किल है, फिर वह परिवार चाहे सांसारिक हो या धार्मिक । जीवन में घटनेवाली ऐसी अनेक घटनाओं को प्रभु कृपा कहो, प्रारब्ध कहो या समाज का ऐसा व्यवहार कहो, लेकिन येन-केन प्रकार से इसमें से गुजरना ही पड़ता है । महान व्यक्तित्वों के विविध अनुभव जानने को मिलते हैं तो फिर मेरी क्या गिनती ? कारण स्वार्थी समाज साधक जीवन को कभी भी नहीं समझ सकता ।

जहाँ भी मैं रहती थी, हो सकता इतना किसी को भी तन, मन या धन से थोड़ा भी भार रूप न बनने का प्रयत्न करती थी । कारण मेरे भगवान ने इसी प्रकार मुझे तैयार किया है । स्वयं भगवान भी जब किसी गृहस्थ के वहाँ जाते थे तब किसी को थोड़ा भी बोझ न पड़े उसके लिये पूरा ख्याल रखते थे । नागपुर थी तब कान की तकलीफ हो जाने से ऑपरेशन कराना पड़ा । भगवान की परम कृपा से मेरी आर्थिक व्यवस्था पूर्ण रूप से थी जिससे उस बारे में चिंता न थी । भगवान के शब्द बहुत ही याद आते थे, "कभी किसी से माँगना नहीं, तुमसे हो सके तो किसी को देना । मैं नहीं चाहता हूँ कि तुम्हारा जीवन ओशियाला बन जाय ।" आज तक तो इन शब्दों का पालन प्रभुकृपा से पूर्णरूप से हो सका है और अभी भी यही प्रार्थना है कि, "प्रभु ! जीवनपर्यंत यह निभाये रखना ।" पूर्ण भरोसा भी है कि वे निभायेंगे ही कारण :—

राम भरोसो, राम बल, राम आस विश्वास

ही जीवन है। इतना तो अभिमान है और भगवान से यही माँगती हूँ कि,

अस अभिमान जाय जनि भोरे, मैं सेवक रघुपति पति मोरे

नागपुर में अच्छी प्रकार से अनुकूलता मिलने के कारण बहुत समय से जो मेरी इच्छा थी कि १०८ मानस पाठ चार महीने में करना है, वह इच्छा प्रभु कृपा से पूरी हुई। जिन्हें इन बातों में रुचि न हो उन्हें तो यह खर्च भी अखरता है परंतु प्रभु कृपा से उसकी भी सारी व्यवस्था अपनी ही सुविधा से कर पाई थी। हमेशा इस बात का ख्याल रखकर ही चलती हूँ कि, "इतने पैर पसारिये जितनी चादर होय" जिससे कठिनाई नहीं होती है। चार महीना मानस पाठ के समय एक विशिष्ट अनुभव भगवद् कृपा से मिला।

एक दिन बगल के एक बंगले में जासवंत के श्याम गुलाबी बड़े फूल उगते थे, जो मुझे बहुत पसंद थे। शाम को घूमने जाते समय रोज मेरी निगाह उस पर पड़ती थी। रोज सुबह हमारे यहाँ उगनेवाले फूल चुन-कर भगवान को चढ़ाती थी तब अवश्य उन फूलों की याद आ जाती थी। थोड़े दिन बाद जल्दी सुबह फूल चुन रही थी तब खूब आश्चर्य भरी घटना देखी। गुच्छे वाले लाल फूल के पेड़ में एक फूल उस पेड का लगा हुआ था, मैं यह देखकर स्तब्ध हो गई। वाह! भगवान ने मेरी इच्छा इस तरह से पूरी की, यह देखकर प्रसन्नता की सीमा न रही। तब करीब पंद्रह दिन के पाठ बाकी थे। दूसरे दिन भी इसी प्रकार एक फूल मिला। मुझे तो लगा एक दिन मेरी इच्छा पूरी हुई परंतु कितनी कृपा!!! इस तरह से पाठ पूरे हुये तब तक रोज एक फूल मिलता रहा और पाठ पूरे हो जाने के बाद वह फूल उगना भी बंद हो गया।



[६६]

कीन्ही कृपा सुमिरि गुण

भगवान की परम कृपा से मेरा यह कार्य सम्पन्न हुआ । थोड़े दिनों बाद नागपुर से चित्रकूट पू. श्री डोंगरेजी महाराज की कथा सुनने गई । वहाँ से इलाहाबाद, बनारस, अयोध्याजी की यात्रा करती हुई थोड़े दिन के लिये कलकत्ता गई । बाद में चित्रकूट राम-नवमी का महोत्सव मनाकर कुछ समय दुर्ग धीरूभाई के पास रही । यहाँ पर बम्बई से मनहरभाई और उनकी बेटी उर्वशी के आग्रह भरे पत्र बम्बई बुलाने के लिये आते थे । उनके अति आग्रहवशात् मैं बम्बई गई । उस वक्त ढाई महीना वहाँ ठहरी । जिसमें से दो महीने तक वॉर्डन रोड अ० सौ० जया बहन ने अपने पास मुझे रोक लिया । भगवान के देह विलय बाद उन्होंने भगवान की हरेक चीज प्रसादी रूप में खूब प्रेम-भाव से अच्छी प्रकार से सम्हाल कर रखी है । उन चीजों की सारी व्यवस्था के लिये मार्ग-दर्शन पाने को मुझे रुकने का खूब आग्रह किया । यथामति अनुसार भगवान के सारे फोटो और सब सामान व्यवस्थित जमा देने पर उन्हें संतोष हुआ । इस कारण मनहरभाई के वहाँ न रह सकी जिससे उन्हें असंतोष रहा । परन्तु अ०सौ० शारदा बहन के आग्रह-वश होकर उनके बेटे अनिल भाई की शादी में कलकत्ता जाना पड़ा । उस वक्त मनहर भाई और उनके परिवार ने वापिस लौटने के लिये वचनबद्ध करके कलकत्ता जाने दी ।

बम्बई से हावड़ा मेल द्वारा कलकत्ता के लिये रवाना हुई । तब सब का खूब आग्रह होने पर भी बिस्तर साथ ले जाने के लिये मैंने मना कर दिया । उन्होंने मुझसे छिपा कर बिस्तर तैयार भी किया था और जबरदस्ती साथ में देने वाले थे लेकिन प्रभु इच्छा कोई अलग प्रतीति कराना चाहती थी जिससे वे लोग बिस्तर लेना ही भूल गये । सर्दी के दिन थे, साथ में पहनने के कपड़ों के अतिरिक्त कुछ न था । बम्बई से रात को साढ़े सात बजे निकलकर नौ बजे कल्याण से आगे गाड़ी पहुँचने पर

सर्दी शुरू हो गई। धीरे-धीरे सर्दी बढ़ती जा रही थी। मैंने सोचा, कहना मानी नहीं अब सर्दी के दिनों में सफर की दो रात कैसे बिताऊँगी ? लकड़ी की सीट पर सोते-सोते गाड़ी की आवाज के साथ अपने विचार के अनुरूप ताल मिल जाने से सुनाई दे रहा था, "भक्त वत्सल, भक्त वत्सल·······" बाद में तो वह जाप के रूप में चालू हो गया। इस समय पर भगवान ने कहा हुआ प्रसंग याद आया:—

एक बार एक साथ चार जने पैदल कहीं जा रहे थे। बीच में थोड़ी देर एक पेड़ के नीचे आराम के लिये बैठ गये। पेड़ के ऊपर एक चिड़िया बोल रही थी। चार में से एक फकीर था उसने कहा, "देखो, चिड़िया क्या बोल रही है ?····खुदा तेरी कुदरत, खुदा तेरी कुदरत"। दूसरा कसरतबाज था, उसने कहा, "नहीं यह तो कहती है दण्ड बैठक कसरत, दण्ड बैठक कसरत।" तीसरा सब्जी बेचने वाला था, उसने कहा, "तुम दोनों गलत हो, यह कहती है, प्याज-लहसन अदरख, प्याज-लहसन-अदरख।" चौथा ब्राह्मण था उसने कहा, "नहीं चिड़िया तो कहती है, राम-लक्ष्मण-दशरथ, राम-लक्ष्मण-दशरथ।" सच है हमेशा हर क्षेत्र में दृश्य दृष्टा की दृष्टि पर निर्भर रहता है। अपने-अपने भावानुकूल सब अर्थघटन करते हैं उसी प्रकार मुझे भी मेरे भावानुसार "भक्त वत्सल, भक्त वत्सल" सुनाई दे रहा था।

मैं बहनों की केबिन में थी। इगतपुरी पहुँचने पर एक सिंधी बहन ने कहा, "बहनजी, आपके पास बिस्तर नहीं है ? लीजिये मैं देती हूँ।" मैंने मना कर दिया। मुझे सिंधी जाति के प्रति पूर्ण रूप से पूर्वग्रह था कि वे लोग गंदे होते हैं। उसमें भी इस बहन के साथ छोटे दो बालक थे इस कारण उनका बिस्तर स्वच्छ होना संभव ही न था जिससे सर्दी सहन करना पसन्द था परन्तु उनका बिस्तर लेना नहीं। मेरे यह विचार उन्हें बताये तो नहीं थे फिर भी प्रेरणादायी भगवान मेरे साथ थे मानो वह बहन मेरे विचार समझ गई हो। इस प्रकार से उन्होंने कहा, "बहनजी, मैं अपना बिस्तर आपको नहीं दूंगी, देखिये तो सही मैं क्या देती हूँ ?" इतना कहकर उन्होंने पेटी में से दो नये कम्बल निकालकर दिये। मैं उनकी ऐसी उदारता देखकर गद्‌गद् हो गई। मैंने कहा, "बहनजी, सफर में आपके यह नये कम्बल गंदे हो जायेंगे।" वे माने नहीं और

कहा, "क्या हम इसे कभी काम में नहीं लेंगे ? और ये कभी गंदे नहीं होंगे ? आप ऐसा संकोच न करें, एक बिछा लीजिये और एक ओढ लीजिये ।" अब तो सही में "भक्तवत्सलता" के दर्शन होने के बाद "भक्तवत्सल" के जाप प्रेम-भाव के साथ बढ़ गये । कोई माने या न माने लेकिन आज भी किसी भी प्रकार से भगवान सदैव मेरे साथ हैं । जो इतनी ही सम्हाल रखते हैं । उसकी प्रतीति कराने वाला यह स्पष्ट दर्शन था ।

सुबह नागपुर स्टेशन पर भाई-भाभी और उनका बेटा अजीत स्टेशन आये थे । अजीत को मेरे साथ दुर्ग धीरूभाई के पास भेज रहे थे । वे टिफिन लाये थे जिसमें से भोजन करने के बाद भाभी का ध्यान गया और पूछा, "बिस्तर नहीं है ?" सारी बात सुनकर बड़े भैया ने अपना बिस्तर मुझे दे दिया क्योंकि वे उसी ट्रेन से भंडारा तक जा रहे थे । नागपुर से भंडारा नजदीक होने से उनके पास जो दो चद्दर और हवा भरने का तकिया था वह मुझे दे दिये । शाम को करीब पाँच बजे दुर्ग पहुँचने पर धीरूभाई, भाभी स्टेशन पर टिफिन लेकर आये थे तब धीरूभाई के लिये अमेरिका से आया हुआ स्वेटर जो नागपुर से मेरे साथ भेजा था वह उन्होंने मुझे दे दिया । दुर्ग के बाद रायपुर स्टेशन पर वे सिंधी बहन उतरने वाले थे जिससे भगवान ने दूसरी रात के लिये भी बिस्तर और स्वेटर की सुविधा कर दी । इस प्रसंग से भगवान ने कही हुई निज अनुभव की घटना याद आ रही है ।

"एक दिन सर्दी के दिनों में मैं एक जंगल में था, एक पेड़ के नीचे सो गया । सर्दी बढ़ती जा रही थी । पास में ही एक नाविक का घर था नाविक की पत्नी ने बहुत आग्रह किया, "बाबाजी, हमारे बरामदे में आप सो जाइये, आपको ओढ़ने, बिछाने को मैं देती हूँ ।" परन्तु अहम् ना कहता था कि नहीं हम तो साधु हैं, पेड़ के नीचे ही सोयेंगे । रात के साथ सर्दी भी बढ़ती जा रही थी । तितिक्षा तो थी नहीं, अब करना क्या ? सोचा, चलो वहीं पर जाकर सो जाता हूँ । नाविक का घर तो बंद था, अब ओढ़ने-बिछाने के लिये कुछ था नहीं । बाहर उस बहन का घाघरा सूख रहा था वह ओढ़ना पड़ा । जल्दी सुबह उठकर वह बहन बाहर आई । मुझे ऐसे देखकर उन्हें बहुत संकोच हुआ और क्षमा माँगने लगी । परन्तु अब क्या ? कह दिया, "भाई, हम कभी टाटाम्बर, कभी कभी व्याघाम्बर तो कभी घाघाम्बर ।"

दूसरे दिन सुबह कलकत्ता पहुँची। उस वक्त कोई कारणवशात् बंगालियों का तुफान चल रहा था और अ. सौ. शारदा बहन लग्न प्रसंग के कार्य में व्यस्त होने से उन्होंने अपने दामाद को स्टेशन भेजे थे लेकिन वे मुझे मिले नहीं। वहाँ के अशांत वातावरण के कारण वे मेरे लिये चिंतित थे लेकिन जिसके साथ साक्षात् भगवान है उन्हें कभी भी अपनी किसी प्रकार की चिंता रहती ही नहीं है। बम्बई से ट्रेन में एक भाई साथ में थे, हालाँकि कलकत्ता पहुँचने तक उनसे मेरी कोई बातचीत नहीं हुई थी। फिर भी हावड़ा पहुँचने पर उनकी पत्नी उन्हें गाड़ी लेकर लेने आई थी तब उन्होंने मुझसे पूछा, "बहन, आपको कहाँ जाना है? भवानीपुर बताने पर कहा, "मुझे भी वहीं जाना है आप मेरी गाड़ी में चलो।" फिर तो बातचीत करते मालूम हुआ कि वे किशनभाई को जानते थे जिससे सीधे घर पर छोड़ गये। घर पहुँचने पर कोई था नहीं, नौकर और रसोईया था। मैं स्नानादि से निपटकर भोजन करके सो गई थी। शारदा बहन के दामाद को मैं मिली नहीं थी जिससे उनकी चिंता बढ़ गई थी। लग्न मंडप में से दोपहर में घर आये तब मुझे देखकर गले लगा लिया और खूब खुश हो गये। थोड़ी देर के बाद अनिल भाई की शादी में देने के लिये जो भगवान का फोटो मैं लाई थी वह मैंने दिखाया। फोटो देखते ही वे आनन्द विभोर हो गये और रोते हुये बोले, "बस मेरी इच्छा पूरी हो गई, अनिल की शादी में भगवान आ गये।" बाद में उन्होंने सारी बात बताई। उसी दिन जल्दी सुबह चार बजे उन्हें स्वप्न में भगवान के दर्शन हुए थे। उन्होंने देखा था भगवान अनिल की शादी में केसरी वस्त्र धारण करके आये हैं। नींद खुलने पर वे सोच रहे थे स्वप्न में मुझे भगवान केसरी वस्त्र धारण किये क्यों दिखाई दिये? कारण भगवान तो हमेशा सफेद वस्त्र धारण करते थे। अब इस रंगीन फोटो में भगवान का केसरी वस्त्र देखकर बहुत खुश हो गये थे कि उन्हें यह प्रमाण मिल गया।

मुझे भी यह फोटो किस तरह से अचानक मिला था वह भी ताज्जुब की बात है। पहले तो मैंने अलार्म घड़ी भेंट देने के लिये खरीदी थी बाद में विचार आया कि ऐसी भेंट तो सब कोई देंगे मैं भगवान का कोई सुन्दर फोटो दूं तो अच्छा लगेगा परन्तु मनमाना फोटो कहीं नहीं मिल रहा था। बम्बई से निकलने से पहली रात को एक भाई मनहरभाई के घर

आये और एक पैकेट खोलते हुए कहा, "रमाबहन देखो, आपको एक बढ़िया चीज बताता हूँ ।" भगवान का सुन्दर रंगीन फोटो वह भी स्टील की फ्रेम में तैयार देखते ही मैंने हाथ में लेते हुए कहा, "जो भी कीमत हो आप पैसे ले लो अब यह वापिस नहीं दूंगी ।" शारदा बहन ने लग्न की हरेक विधि में यह फोटो खूब प्रेम-भाव से साथ में ही रखा था ।

कलकत्ता से लौटकर गुरुपूर्णिमा पर पुष्कर गई थी । भगवान की प्रतिमा रामधाम में पधराई गई । प्राण प्रतिष्ठा महोत्सव धूमधाम से मनाया गया । रामधाम में प्रार्थना भवन के रूप में यह समाधि मंदिर सुन्दर ढंग से तैयार हो गया । अभी रहने के लिये ब्लॉक तैयार नहीं हुए थे और दूसरी बार मेरे कान का ऑपरेशन करवाना था इसलिये मैं वापिस बम्बई गई ।

[९७]

केवल कृपा तुम्हारी प्रभु

भगवान के परम अनुग्रह से बम्बई में मनहरभाई के घर पर ठहर-कर दूसरी बार कान का ऑपरेशन करवाया तब सतत सान्निध्य की प्रतीति हुई । नागपुर में एक बार ऑपरेशन करवाने पर सफलता नहीं मिली थी । ऑपरेशन के कुछ दिनों बाद रामनवमी महोत्सव पर मैं और मनहरभाई की लड़की उर्वशी चित्रकूट गये । वहाँ से बनारस, इलाहाबाद, अयोध्या होते हुए हरिद्वार गये । वहाँ मुझे मलेरिया हो गया । पाँच दिन तक दवाई ली और डॉक्टर के कहने से भोजन लेना छोड़ दिया था फिर भी बुखार कम नहीं होता था । तब उर्वशी छोटी थी, वह घबराकर निराश हो गई । वहाँ से हम जयपुर जाना चाहते थे लेकिन इस हालत में जाना मुश्किल था । अंत में निर्णय किया, चलो भगवान का कीर्तन करते हैं सब ठीक हो जायेगा । पाँचवें दिन शाम को हम दोनों आर्तभाव से भगवान का कीर्तन करने लगे, "गुरुदेव परम कृपालु रे भज मन गुरु चरणन को ।" उनकी परम कृपा से आधे घण्टे में पाँच

दिन के बाद पहली बार बुखार उतर गया । उसी वक्त सामान बांधकर तैयार हुए और रात को आठ बजे की गाड़ी से देहली जाने के लिए निकल गये । सुबह देहली पहुँचकर प्लेटफार्म पर तबियत नरम हो गई । पहले सोचा था उर्वशी को देहली घुमा दूंगी इसलिए टिकिट देहली तक की ही थी । अब वहाँ रुकने की हिम्मत न थी और उर्वशी अनजान होने से उसको सामान के पास बिठाकर मैं जयपुर के लिए टिकिट लेने तो गई, लेकिन कमजोरी के कारण इतनी लम्बी कतार में खड़े रहने की ताकत न थी, जिससे एक कौने में दीवार के सहारे बैठ गई । अचानक एक वृद्ध दादाजी पानी का लौटा लेकर मेरे पास आकर बोले, "चल बेटा कुल्ला करके मुँह धो ले ।" मैंने उनके कहने से ऐसा ही किया बाद में वे चले गये । वह कौन थे इस बारे में कुछ सोचा ही नहीं । वापिस वहीं जाकर आँख बंद करके बैठी थी, तब एक सरदारजी ने आकर पूछा, "बहनजी, आपको कहाँ जाना है ? मैं टिकिट ला देता हूँ ।" कमजोरी के कारण कुछ भी सोचे बिना टिकिट लाने के लिए तीन सौ रुपये पर्स में थे वह पूरा पर्स उन्हें दे दिया । अभी टिकिट के लिये खिड़की खुली भी न थी और इतनी लम्बी कतार थी फिर भी थोड़ी ही देर में उन्होंने दो टिकिट के साथ हिसाब देते हुए पर्स वापिस लौटाया । अनजान व्यक्ति के रूप में मदद करने वाला भगवान के सिवा कौन हो सकता है ? किसी भी तरह से भवगद् रक्षा सतत साथ है उसकी अनुभूति किसी ना किसी तरह से मिलती रहती है । उर्वा ने मेरा ख्याल रखने के लिए कुली को मेरे पीछे भेजा होगा, जिससे कुली ने यह सारी बात उर्वा को बताई ।

हम लोग वहाँ से जयपुर गये । थोड़े दिन वहाँ आराम करके तबियत ठीक होने पर पुष्कर दर्शन के लिए गये थे तब वहाँ रहने के कमरे तैयार नहीं हुए थे । मनहरभाई तथा उनके परिवार का आग्रह था जिससे पुष्कर में कमरे तैयार न हों तब तक बम्बई में ही रहने का निश्चय किया था । उन दिनों में तेरह महीने बम्बई रुकना हुआ । तब पुष्कर रहने के लिए पूरी व्यवस्था करके १९७२ के जुलाई महीने से पुष्कर रहने गई ।

भगवान के देहविलय के बाद नेत्रयज्ञ में जाने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं होती थी । फिर भी किसी ना किसी के आग्रह से रायगढ़ा कियोंजर और दाहोद कैम्प में गई परन्तु सगुण स्वरूप के सान्निध्य के बिना सब

सूना-सूना लगता था । दाहोद कैम्प में तो कैम्प का बांध काम करने वाले भाई से पूछा, "क्यों भाई, कैसा चलता है ?" तब उन्होंने दुःख के साथ कहा, "बहन ठीक है सब, पहले बाबाजी का कैम्प था अब बाबूजी का है बस इतने में समझ जाव ।" इसके अलावा सगुण स्वरूप की अनुपस्थिति में भी साथ रहने वाली बहनों का व्यवहार मेरे प्रति ऐसा ही विचित्र था । अब तो भगवान के सिवा आत्मीयता के दर्शन कहीं भी होना मुश्किल था, जिससे मानसिक अशान्ति रहती थी इसलिए ऐसे सामूहिक कार्यक्रम में जाने के लिए उपरति होने लगी । घर पर रहकर भजन करना ही योग्य लगा । कैम्प में जाकर सेवा भाव का आकर्षण मिटने लगा । इस तरह से दो-चार साल नेत्रयज्ञ में गई परन्तु अब वो दिन कहाँ ? इसलिए अब तो जाने की इच्छा ही नहीं होती है ।

दाहोद कैम्प में से हम तीन बहनें हरिद्वार कुम्भ मेले में गयी थीं । वहाँ पर यथाशक्ति भजन-पूजन, गंगा स्नान और कुम्भ मेले में संत दर्शन का अमूल्य अवसर मिला । ऋषिकेश में गंगाजी के किनारे बिराजते हुए संत श्री मस्तरामजी बाबाजी के दर्शन का अमूल्य अवसर प्रथम बार मिला । वे बहुत ही कम बोलते थे । उनका अधिक परिचय न होने से हम दो बहनों ने एक दिन उनके बारे में हरिद्वार में चर्चा की थी । तब हम २२ दिन वहाँ ठहरे थे, इसलिये जब दूसरी बार दर्शन को गये तब हमने जो-जो चर्चा की थी, उन्होंने उसके सारे उत्तर प्रसंगोपात दे दिये, जिससे उनकी व्यापकता की प्रतीति हुई । वे भी महान विभूति थे । अब तो थोड़े समय पहले ही २२ जून, १९८७ को उन्होंने भी शरीर त्याग दिया । उनके पास आने वाले भाविकजनों के प्रति एक-सी ही करुणा दृष्टि और प्रेमभाव देखने को मिलते थे । खूब कोमल स्वभाव था लेकिन आज यह स्थान भी सूना हो गया ।

निज परिताप द्रवे नवनीता, पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता

कनखल में पू. श्री आनंदमई माँ के दर्शन का भी अमूल्य लाभ मिला । शिवरात्रि का महोत्सव होने से पूरी रात उनके सान्निध्य में रह सके ।

हरिद्वार में आठ दिन रहने के बाद एक बहन को संजोगवशात घर जाना पड़ा । बाद में हम दो ही बहनें वहाँ रुकी थीं । करीब तीन-चार

बार ऋषिकेश पू. श्री मस्तरामजी बाबाजी के दर्शन को गये थे। परंतु विचित्रता !! कितने ही संत दर्शन, गंगा स्नान या पूजापाठ करने पर भी जब परिणाम देखते हैं तो बहुत ही आश्चर्य होता है कि यह क्या ? लगता है शायद किर्ती के लिये संतों के पास जाते होंगे कि इतने-इतने संतों के हमने दर्शन किये हैं और इतने के साथ हमारा निकटतम संबंध है वरना वहाँ से तो बहुत कुछ मिलता है। आत्मचिंतन के बाद जीवन में कुछ न कुछ तो उन्नति होनी ही चाहिये। साथवाली दोनों बहनें संस्कृत के अधिक अभ्यासी होने से विद्वता की चर्चा प्रेमपूर्वक करते थे। मैं तो कुछ जानती नहीं, राम राम करती हुई एक ओर पड़ी रहती थी। लेकिन जब उन दो में से एक को उनके पिताजी की तबियत ठीक न होने के कारण तार आने से जाना पड़ा, तब इतने प्रेम से साथ रहनेवाली बहन ने उन्हें थोड़ा भी साथ देने के बदले पीछे से उनके दोषों की चर्चा करते हुए उनसे जान छूटी कहकर शांति की साँस ली, तब ऐसा लगा कि यह व्यक्ति मेरे पीछे भी ऐसे ही करते होंगे ? सच है प्रश्न उठता ही है कि, "जानकारी जीवन क्यों नहीं बनती ?" अंतःकरण से प्रत्युत्तर भी मिलता है कि उसके लिये "प्रभु कृपा" चाहिये। इस तरह अनेक जीवों के सम्पर्क में आने पर ग्रंथों के अभ्यास के बदले मानव जीवन से यह जीवंत पठन-पाठन मिलता रहता है। शरीर भले ही मनुष्य का हो लेकिन मानव बनना मुश्किल है। जभी संतों से सुना है कि,

देव बनने की जल्दी न करो, पर दानव तो न बनो
यथार्थ रूप में मानव बनो

मनोमंथन करने पर प्रश्न उठता है कि मानवता क्या ? धर्म याने क्या ? भक्ति याने क्या ? और भगवान कहाँ है ? सिर्फ मूर्ति में ही ? भारत देश मूर्ति पूजा का देश है। अपनी भारतीय संस्कृति के आधार पर मंदिर होने ही चाहिये, मूर्ति पूजा होनी ही चाहिये, जितने भी मंदिर हैं वह कम हैं क्या ? नये-नये मंदिर अपनी कीर्ति बढ़ाने की चाह में बनाते रहेंगे लेकिन चलती-फिरती मूर्तियों को ठुकरायेंगे तो मंदिर की मूर्तियां प्रसन्न होंगी ? कहते हैं, सुनते हैं और गाते भी हैं "सियराम मय सब जग जानी····परंतु आचरण ? जभी तो मेरे भगवान ने कहीं भी मंदिर नहीं बनवाये, बड़े-बड़े यज्ञ नहीं किये, उनका तो एक ही आदेश

रहा "मानव धर्म", भजन करो, भोजन कराश्रो, ईंटों का ढेर लगाने के बदले रोटी का ढेर लगाव, स्वाहा, श्राटा श्रेक हैं····सुख चाहते हो तो सुख देना सीखो श्रादि सूत्र चरितार्थ करते रहे····यह सब जानकारी के लिये सत्संग की परम श्रावश्यकता है ।

[९८]

तुम सर्वज्ञ कृपा अधिकाई

भगवान के कहे हुए शब्द प्रमाणित होने के लिये श्रब समय श्रा चुका था । पुष्कर जाते ही वहाँ के निवासियों के व्यवहार की श्रनुभूति होने लगी । भगवान ने जिसके नाम देकर सावधान की थी वह माजी ने मीठा-मीठा बोलकर श्रपने वश करने का प्रयत्न शुरू किया । लेकिन गुजराती में कहा है–

वागे ज्यां बिन मीठुं, हरण तुं दोडी ना जाजे
विंधावु बाणनां करतां, मजा छे दूर रहेवामां

श्रर्थात् जहाँ मीठा बीन बजता हो, यह सुनकर वहाँ हिरन तुं दौड़ ना जाना, बाण से घायल होने के बजाय दूर रहने में मजा है ।

श्रब तो,

जीवनना रंग बदलता जाये, उषा ने संध्याना रंगो श्रावे ने वही जाये····

जीवन के रंग बदलते जा रहे थे, जैसे प्रातः श्रौर संध्या श्राती-जाती है ।

कंधे पर हाथ रखकर झूठा प्यार दिखाती हुई माजी बोली, "श्ररे मेरी बेटी, श्रच्छा हुश्रा तूं रहने को श्रा गई, मेरे राम ने ही मेरी सेवा के लिये तुझे यहाँ भेजा है" वगैरा । उनकी दृष्टि में लगता था, इसका कौन है ? इसके पास सामान भी क्या होगा ? परंतु जब व्यवस्थित हो गई

तब जीवन जरूरियात की चीजें देखकर जलन के साथ बोलने लगे, "यह सब लाई कहाँ से ? समझ में नहीं आता है, इसको देनेवाले तो कौन है ? इसका बाप तो कमाता नहीं है ।" ऐसी-ऐसी शीलहीन बातें इधर-उधर बोलती रहती थी और ठीक ढंग से रहते देखकर तेजोद्वेष के कारण मुझे निर्बल समझकर मंदिर में और कमरे में भी आकर कोई भी गल्तियाँ ढूंढकर कैसे भी शब्द सुना जाती थी । मंदिर में प्रभु चर्चा भी प्रभुकृपा के बिना किसको सुहाती है ?

तुलसी पूरव पाप से, हरि चर्चा न सोहाय
जैसे ज्वर के वेग से, भूख बिदा हो जाय

शुरू में अजमेर के लिये भी अनजान थी इसलिये मनहरभाई के सम्बन्धी जो अजमेर में रहते थे, मेरा जरूरी सामान पहुँचाने के लिए मनहरभाई उन्हें लिखते थे तब कभी कोई सामान देने वे आते थे तो उनके लिए भी शंका दृष्टि से देखकर कैसे भी अयोग्य शब्द बोलते थे और रोज शाम की आरती के बाद हम दो बहनें सामने श्री हनुमानजी के मन्दिर में प्रणाम करने जाते थे तब भी शंका से वहाँ जाना बंद करवा दिया, "दृष्टि वैसी सृष्टि ।" लेकिन मुझे भी अपनी इच्छानुकूल चलाना चाहते थे । रोज सुबह मन्दिर में आरती के वाद मैं १०८ परिक्रमा करती थी तब भी कुछ न कुछ दोष निकालते थे । कुछ नहीं तो मेरे बाल बनाने के विषय में दोष देखकर चोटी खींचते थे । रोज सुबह करीब ग्यारह बजे कमरे पर हकपूर्वक आकर खड़े रह जाते थे और क्या भोजन बनाया है उस विषय में पूछताछ करते हुए सब्जी की भगौनी खोल कर देखते थे । अधिकतर मैं रोटी-सब्जी ही बनाती थी उसके लिए भी बाहर जाकर टीका-टिप्पणी चालू कर देते थे । मन्दिर में शाम की प्रार्थना के समय चालू प्रार्थना में कुछ न कुछ कारण से उठाते रहते थे । पास बैठे हो तो हाथ से हिलाकर और दूर बैठे हो तो ताली बजाकर बुलाकर प्रार्थना में विक्षेप करते थे । ऐसी घटना से हारकर मैंने प्रार्थना में रामनाम लिखना चालू किया जिससे वे मुझे उठावे नहीं, यही भाव था । तो दूसरे दिन रामनाम लेखन की कोपी मेरे हाथ से छिन ली और कहते थे, "रामनाम लिखना हो तो कमरे में बैठों मन्दिर में नहीं आना ।" और खुद अपने घर के लिये सब्जी सुधारने का काम भी प्रार्थना में लेकर आते थे ।

उनके कहने से उनके पति भी कमरे पर आकर छोटे-बड़े डिब्बों की गिनती करते हुए कहते थे, "तुम्हें अंग्रेजी आती है ?" सिम्पल लीवींग एण्ड हाई थींकींग का अर्थ क्या ? अर्थ बताने पर कहते थे, "यह सब जीवन में उतारो ।" इसके अलावा बहुत कुछ बातें सुना जाते थे । उनका नौकर तक बिना कहे-पूछे हकपूर्वक कमरे में आकर घूम-फिर जाता था । माजी तो रोज आकर संडास, बाथरूम भी खोलकर देखती थी । पहले के समय में जैसे सास पुत्र-वधु को सताती थी, वैसा व्यवहार करते जा रहे थे । अपने घर का साल भर का अनाज साफ करने के लिए रामधाम में रहने वाले सबको हकपूर्वक बुलाते थे । पीछे से तो सब कोई मुँह बिगाड़कर चर्चा करते थे लेकिन मुँह पर कोई ना नहीं कह सकते थे । डर के कारण सब झुकते रहते थे । शुद्ध, शुभ आचरण के सामने अपने आप सिर झुक जाता है, देवी संपति से सम्पन्न संत हृदय किसी को झुकाना नहीं चाहते फिर भी लोग उनके सामने सहज ही नतमस्तक हो ही जाते हैं । जबकि आसुरी संपत्ति वालों को उसकी धन, सत्ता से डरकर जबरदस्ती लोगों को झुकना पड़ता है । जैसे राम और रावण के दर्शन में देखने को मिलता है । मुझे तो इस विषय में भगवान ने पहले से ही सावधान की थी जिससे मैं नहीं जाती थी । उन्हें राजी रखने के लिये कोई नाश्ते के डिब्बे भरकर दे के आता, कोई पापड़ बनाकर देता, तो कोई साल भरका आचार बनाकर देता कारण सब गृहस्थ थे और उनसे डरते थे । यह सब मेरा विषय नहीं था । परिणाम में मेरे प्रति उनका व्यवहार कठोर बनता जा रहा था क्योंकि अन्य लोगों की भाँति मेरे लिये वे लोग सर्व समर्थ नहीं थे । मैं सर्व समर्थ अपने भगवान के बल पर ही वहाँ रहती थी और सिर्फ उन्हें ही रिझाना चाहती हूँ । गुजराती में कहा है "प्रभु साथे सीधो परिचय छे मारे.... (मेरा परिचय सीधा भगवान के साथ है ।) इसलिये मैं उनकी हाँ जी हाँ नहीं कर सकती थी । कुछ वृद्ध लोग जिन्हें कोई सहारा न था उन्हें अपनी पहचान के कारण सत्ता के बल से वहाँ रहने दिये थे । साधक और साधना के सारको समझने के बदले वहाँ पर पूर्णतया संसारियों का प्रपंच चल रहा है । रामधाम का हेतु साधक के लिये रहने का था उसके बदले मानो एक वृद्धाश्रम बन गया है । जीवनभर के अपने दृढ़ संस्कार अब कैसे बदल सकते हैं ? उन लोगों की दृष्टि में साधक की

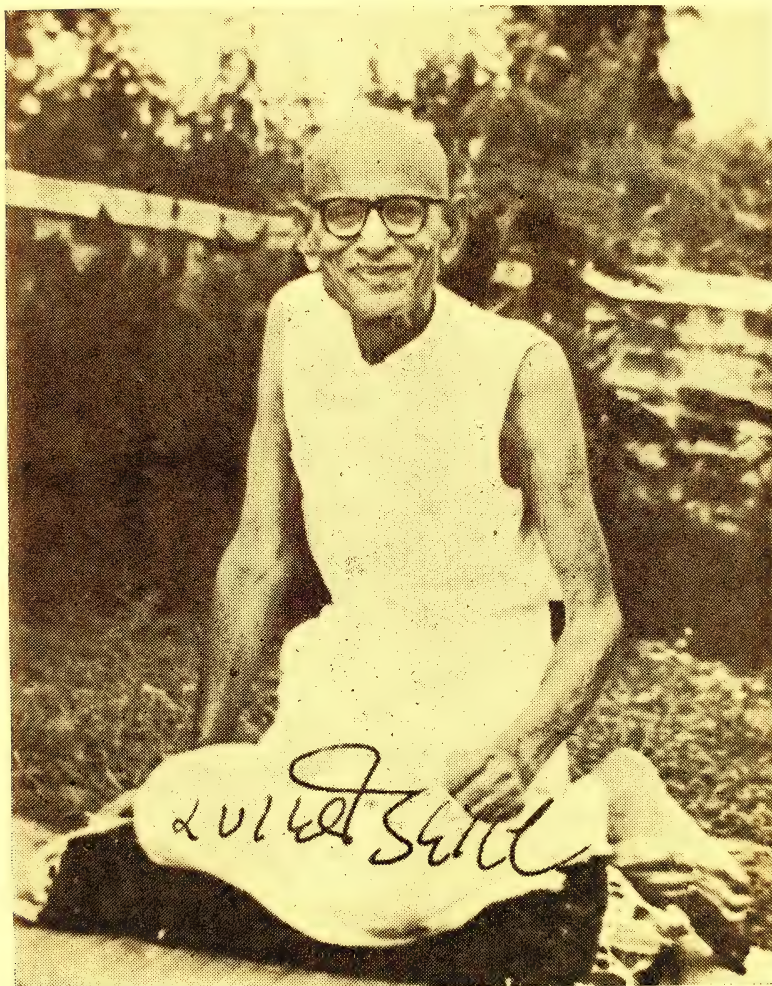
व्याख्या सुबह-शाम दो बार सिर्फ तन से मन्दिर की आरती में हाजिर रहना चाहे मन कहीं भी भटकता हो, दो-चार भजन, स्तुति गा लेना बस, बाद में कैसा भी आचरण कर सकते हैं। जैसा सब जगह चलता है। धर्म और जीवन को अलग चीज मानी जाती है, धर्म को जीवंत क्रियात्मक स्वरूप कहाँ दिया जाता है ? सिर्फ धर्म की बातें करना सरल है। भगवान के शब्दों में, "आध्यात्मिकता में चित्त शुद्धि की परम आवश्यकता है।" किसी गिरे हुए को उठा न सको तो हरकत नहीं परन्तु कोई अपने पैर से चल रहा हो उसे धक्का देकर गिराने की वृत्ति देखने पर खेद होता है कि यह कहाँ का धर्म ? किस प्रकार की मानवता ? गीताजी कंठस्थ, रामायण कंठस्थ, गुरुजी तो साक्षात् भगवान (सिर्फ बानी में) और आचरण ? ज्योतिष के शब्दों पर विश्वास ? लेकिन साक्षात् भगवान के शब्दों पर विश्वास नहीं ? या उनके शब्दों का कोई मूल्यांकन नहीं ?

सभी वृद्ध अपने स्वभाव और रीति-रिवाज के मुताबिक ही मैं रहूँ वैसा चाहते थे जो मेरे लिए पूर्णतया अशक्य था। जो कोई भी आते थे सबके मुँह पर मेरे लिए मनमाना बोलते थे। परिवार वालों को भी मेरे विरूद्ध उकसाते थे। ठीक कड़वी माँ का ही व्यवहार करते हैं। चोर को कहते चोरी कर, सेठ को कहते जागते रहना। जब कोई कुशलता पूछता था तब मानसजी की चौपाई याद आ जाती थी।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी, जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी

साक्षात् परमात्मा जहाँ बिराजते हों और स्वयं भगवान ने भी जिस स्थान के लिये कहा है कि, "वहाँ रहेगा उसको बराबर प्रेरणा मिलती रहेगी।" मुझे तो इसके अनुरूप कई अनुभव मिले हैं और प्रेरणा भी बराबर मिलती है, उसमें कोई संदेह नहीं। परंतु जो जीवात्मा का जीवन इस प्रकार का होगा तो परिणाम क्या आयेगा ? धनवान और गरीब के आदर सत्कार में बहुत ही मतभेद दिखाई देता था। दोनों के प्रति बानी, व्यवहार एकदम अलग देखकर काँप जाती थी। भगवान के सगुण स्वरूप की उपस्थिति में स्वयं भगवान जाति-भेद या ऊँच-नीच के भेद नहीं रखते थे। उस सिद्धांत को जब संकुचित मानस द्वारा भूलते जा रहे हैं, यह देखकर मन बहुत ही व्यग्र हो जाता है। भगवान के

मानव धर्म के महान प्रणेता परमात्मस्वरूप सद्गुरुदेव श्री
श्री रणछोड़दासजी महाराजजी (पुष्कर)



राघवं रामचंद्रम् च, रावणारिं रमापतिम् ।
राजीवलोचनं रामम्, तं वन्दे रघुनंदनम् ।।

स्वमुख के शब्दों का यही मूल्य ? जैसा हमेशा कहते थे, "पंगत भेद जैसा पाप नहीं ।" यह सब भेद मंदिर में प्राण प्रतिष्ठित हुए भगवान के विग्रह के सामने ही किये जाते हैं, तब लगता है कि इन्हें प्रत्यक्ष मानते हैं या पत्थर की मूर्ति ? समझ नहीं पाती । कोई-कोई व्यक्ति को तो बोलते भी सुना है कि अब भगवान कहाँ हैं ? वे तो चले गये और भगवान के ही नाते मेरे लिये भी भगवान नहीं हैं उस ढंग से मानवता को भी लज्जित करनेवाले शब्द बोलते हुए उन्हें संकोच नहीं होता है । और आश्चर्य की बात तो यह है कि भगवान नहीं है, कहकर भी पुष्कर मंदिर में जाते हैं, किसके दर्शन के लिये ? क्या यह दंभ और दिखावा नहीं तो और क्या है ? और ऐसे लोगों का आदर किया जाता है, जब कि....जिन हरिजन भाईयों के घर जाकर भगवान ने प्रसाद स्वीकार किया और राममंत्र दिया और जो पूर्ण भाविक हैं उन्हें भगवान के मंदिर में आने से रोका जाता है और कुछ व्यक्ति तो उनसे दूर भी रहते हैं । भगवान ने वर्णाश्रम धर्म का वर्णन करते हुए कहा है कि, "यह तो समाज की व्यवस्था के लिये वर्णाश्रम धर्म रखा गया है, न कि किसी को हल्का मानने के लिये । व्यक्ति का हल्कापन या भारीपन तो आचरण से देखा जाता है बाकी तो चारों वर्णों की उत्पत्ति शास्त्रों के आधार पर भगवान के ही श्रीविग्रह से हुई है । भगवान के श्रीमुख से ब्राह्मण, वक्षःस्थल से क्षत्रिय, कटि भाग से वैश्य और चरणोंसे क्षुद्र की उत्पत्ति हुई है ।

अब यह तो बताइये कि अपने यहाँ भगवत् पूजा में मुखारविंद की पूजा की जाती है या चरणों की पूजा करके चरणामृत लिया जाता है ? तो फिर क्षुद्र को हल्का मानना कितनी भारी भूल है ? और जो चरण शरीर का आधार है उसी को यदि हल्का या निर्बल मानेंगे या बनायेंगे तो जीवन की गति रुक जायेगी, उसमें संदेह नहीं है । मानसजी में भगवान ने स्वमुख से कहा है, जिसमें जाति भेद को अवकाश है ?

कह रघुपति सुनु भामिनी बाता, मानहुं एक भक्ति कर नाता
जाति पाँति कुल धर्म बडाई, धन बल परिजन गुण चतुराई
भक्तिहीन नर सोहहि कैसे, बिनु जल बारिद देखिय जैसे

चतुराई चूले पडो, धिक् पडो आचार
तुलसी हरि की भक्ति बिनु, चारों वर्ण चमार

क्षुद्र और हल्के जीवों की व्याख्या जो मैंने सुनी है, जो मुझे बहुत पसंद आई ।" संत और शास्त्र की मर्यादा का पालन न करे वह क्षुद्र और अन्य को हल्का माने, उसके जैसा हल्का कोई नहीं ।"

एक बार प्रभु प्रेरणा से तीन महीने के लिये मौन में रही, तब उर्वा मेरे साथ थी । उसके साथ जरूरी काम से बात करती थी परंतु जन-समूह और कलुषित वातावरण से बचने के लिये यह उपाय अच्छा था । तीन महीने तक यह अनुकूल रहने से अधिक समय के लिये इस तरह से मौन में रहने की इच्छा हुई । उसके पीछे दूसरा हेतु यह भी था कि संसारी व्यवहार में किसी के बुलाने पर अनिच्छा से भी जाना पड़ता था, परिणाम में दुःख ही रहता था जिससे तीन साल के लिये इस तरह से रहने का निश्चय किया । हो सके जितना राम-राम करती हुई अंदर पड़ी रहती थी । भगवान के शब्द याद आते थे, "जग की रोकड़ जग को दे दो, अपना माल बचाओ बाबा । किसी का कुछ सुनना नहीं, किसी को कुछ कहना नहीं । अपने काम से काम, लेना राम का नाम ।" मैं बाहर नहीं निकलती थी, इसलिये मेरे साथ उर्वा मदद के लिये रहती थी । वह भी यथाशक्ति जाप और मानस पाठ में समय बिताती थी ।

साधक रहे सदा संग से दूर, संग रंग लग जाता है कोविद को भी जरूर

"सबसे पहला साधन है एकांत" भगवान के इन शब्दों के मुताबिक १९७८ के अप्रेल महीने में श्री हनुमान जयंती से यह नियम चालू किया । पाँच महीने तक उर्वा मेरे साथ रही । साथ देने के बदले ईर्ष्या भाव से सताना चालू हो गया । भगवान के शब्द याद आये, "पुराने दुश्मनों से सावधान रहना ।" उस व्यक्ति ने पूर्ण रूप से अपना असली स्वरूप दिखाया । उन दिनों में मैनेजिंग ट्रस्टी स्व. श्री कनुभाई कोटेचा थे, उन्हें मेरे विरुद्ध उकसाया गया । मुझे मेरा नियम छोड़कर बाहर निकलने के लिये बिना कारण दबाव डाला गया । गुरु पूर्णिमा के उत्सव निमित्त बम्बई से मनहरभाई के परिवार की चार लड़कियाँ आई थीं, उनको मेरा नियम तुड़ाकर मेरे साथ रहने के लिये दबाव डाला गया । वे लोग माने नहीं जिससे उन्हें भी सताया गया ।

मानो रामयात्रा का यह प्रथम विघ्न नियम भंग करने का कहाने-वाले स्वजनों द्वारा विरोध चालू हुआ । मुझे चिट्ठी पहुँच सके इसलिये

उर्वा कोई काम से अजमेर गई, तब मेरे दरवाजे में से एक पत्र डाला गया । जो मैनेजिंग ट्रस्टी मुझे कहते थे, "आप तीन महीने मौन में रही बहुत ही अच्छा हुआ, मुझे भी आनंद हुआ, अब यदि अधिक समय बैठना चाहो तो मैं सब सुविधा करा दूंगा ।" उन्हीं का आज ऐसा विपरीत व्यवहार देखकर समझ में आया ।

को न कुसंगति पाय नसाई …

मेरे साथ रहती हुई उर्वा का विरोध होने से पाँच महीने बाद उसे बम्बई भेज दिया । बगलवाले माजी और दादाजी मेरे विरुद्ध का बाहर का वातावरण जानते थे जिससे उर्वा के जाने के बाद उन्होंने सहानुभूति से मेरा दरवाजा खटखटाकर कहा, "रमाबहन, घबराना नहीं, आप हमारी बेटी हो, जैसे उर्वा आपके साथ रहती थी वैसे अब आप रोज मुझे एक बार मिलना और जो भी काम हो वह मुझे बताना, हमारे ऐसे सद्भाग्य कहाँ ? मैंने स्वीकार किया, कारण एक व्यक्ति की मदद की जरूरत थी । दादाजी से नहीं मिलती थी, लेकिन माजी से रोज मिलती थी । हर महीने भी तीन दिन धार्मिक दृष्टि से उनकी मदद की जरूरत पड़ती थी । वे मुझे मदद करते थे और दादाजी बाहर गाँव जाकर वहाँ से पत्र लिखते थे, वह मैं माजी को पढ़कर सुनाती थी क्योंकि वे अनपढ़ थी । दादाजी की गैरमौजूदगी में कभी माजी बीमार हो जाती थी तब मैं उन्हें सम्हाल लेती थी । हो सके जितना बदले में तन, मन, धन और वचन से मदद करने की भावना हमेशा रही है । भगवान की परम कृपा से कभी भी किसी का ऋण रखना चाहती नहीं हूँ ।

संत पू. श्री मोटा के शब्दों में, "मेरा हजार हाथवाला समर्थ मालिक मुझे किसी का ऋणी रहने नहीं देता है । किसी ने भी की हुई मदद या सेवा से कभी दबकर रहना या तो आभार विवश नहीं हो जाता हूँ । लेना और देना दोनों प्रक्रियायें साथ ही चलती हैं । आज स्वजनों को खुला कह देता हूँ कि जो कुछ भी लेता हूँ उसके बदले की भावना से तो नहीं परन्तु भावना के सामने प्रतिभाव के रूप में मेरे भगवान कृपा करके ऐसा वर्ताव कराने के लिये पूर्ण रूप से जीवंत, जागृत, समर्थ बैठे हैं । यदि कोई मदद नहीं कर सकता है तो कोई हरकत नहीं, मदद लेने की इच्छा भी नहीं है परन्तु जिस प्रकार से अयोग्य वातावरण खड़ा

करते हो और मन ही मन में कैसे भी दोषारोपण करते रहते हो उससे तो तुम्हारा खुद का ही अहित होता है और यह सब विशेष मात्रा में इतनी वेदना भरा अखरता है । इसलिये उन्हें जागृत करके सावधानी के साथ फिर से सद्भावनाओं में सजीवन होने के लिये प्रभु कृपा से डाँटा जाता है ।"

करीब एक साल तक बगल वाले माजी ने इस प्रकार से साथ दिया । धीरे-धीरे अनुभव से मालूम हुआ कि उनकी वाणी और व्यवहार फर्क होने लगा है । बाहर के मेरे विरूद्ध के वातावरण में वे मिलते जा रहे थे । मुझे एकांत में विक्षेप न हो उस भावना से बम्बई से भी सवा साल तक कोई आया नहीं । अजमेर में रहने वाले एक सिंधी भाई मुझे अपनी बेटी मानकर सद्भाव रखते हैं । वे साल भर का अनाज और गैस सिलैन्डर वगैरे पुष्कर में न मिलने वाली चीजें अजमेर से देने आते थे । वे बड़ी उम्र के होने से कभी-कभी उनके पुत्र को भेजते थे । मेरा मौन समय का करीब डेढ़ साल पूरा हो चुका था उस वक्त उनका बेटा मेडिकल कॉलेज के अंतिम साल में निष्फल होने से निरुत्साही और निराश होकर कायरता से अयोग्य कदम उठाने को सोच रहा था । उस बारे में मुझे पत्र लिखा । पत्र द्वारा ही सहानुभूति से जो शब्द लिखे थे उसका असर होने पर फिर से परीक्षा देकर उत्तीर्ण हो गया । बगलवाले माजी के यहाँ पर वह मेरा सामान देने के लिये आता था तब उत्तीर्ण होने की खुशी में मिठाई लेकर आया था उसने एक बार मुझसे मिलने की इच्छा व्यक्त की तब उसको दुःखी देखकर वह माजी ने उसको मिलने के लिये मुझे आग्रह किया । थोड़ी देर मिलकर वह चला गया । मिलने का हेतु यही था कि निराश हुई व्यक्ति फिर से उत्साहपूर्वक अपने जीवन में आगे बढ़े ।

थोड़े समय बाद मैं बिमार हुई ऑपरेशन वाले कान में तेज दर्द के साथ चक्कर आने से उसको बुलाया गया । वह पूज्य भाव से मुझे बड़ी दीदी या माँ के रूप में मानता था । उसे कुछ प्रभु कृपा के अनुभव हुए थे वह बताना चाहता था और मैंने सामने से उसको बुलाया इसलिये बहुत खुश हो गया । इस प्रकार से कभी मेरी तबीयत के लिये और कभी सामान देने के लिये आता था तब माजी के आग्रह से मिलकर जाता

था । माजी पर मुझे विश्वास होने से बुजर्ग समझकर आदर के लिये भी मैं उनका कहना मान लेती थी । वह थोड़ी देर आप बीति कहने के लिये बैठता था परिणाम में माजी की वाणी, व्यवहार मेरी ओर बदलने लगे । उस समय से किसी को भी न मिलने के लिये बाहर ताला लगवाना चालू किया । कई बार किसी के न आने पर भी शंका से पूछते थे, "कौन आया था ?" ना कहने पर भी वे मानते नहीं थे और शंका के साथ अपने अनुमान से बहुत ही हल्के विचार करने लगे । वह विचारों का दर्शन उनकी वाणी में दिखाई देता था ।

रोज दोपहर में अथवाली रामायण मैं गाकर पढ़ती थी उसी वक्त माजी मुझसे मिलने आती थी तब रामायणजी सुनकर जरूरी काम की बातें करके चली जाती थी । एक दिन उनके घर में दादाजी सो रहे थे जिन्हें कम सुनाई देता था इसलिये माजी ने कहा, "आप मेरे घर में आकर पढ़ो तो अच्छा रहेगा, दादाजी उठ जायेंगे तो खबर नहीं रहेगी ।" उनकी बात मानकर उनके कमरे में मैं रामायण पढ़ रही थी । बाहर बरामदे में दादाजी सिर पर ओढ़कर सो रहे थे । उन्हें मेरी आवाज सुनाई दी होगी जिससे खड़े होकर उनके घर के प्रथम दरवाजे पर कान लगाकर मेरी आवाज सुन रहे थे । वे सोचते थे मैं किसी से बातें कर रही हूँ कारण कम सुनते थे । मैं उन्हीं के घर में बैठी हुई उन्हें देख रही थी । माजी दिवार का सहारा लेकर एक ओर बैठी थी इसलिये उन्हें दादाजी नहीं दिखाई दे रहे थे । पाँच-सात मिनिट सुनने के बाद खुश होते हुए माजी से अपनी मनमानी कहने आ रहे थे । कमरे में मुझे देखकर बहुत ही शरमिंदे होकर वापिस सो गये ।

इसी प्रकार से वहाँ पर रामायणजी के एक कथाकार आये थे जिनकी कैसेट सुनने के लिये मैं मंगवाती थी । रोज शाम को आरती के समय में अपने ब्लॉक में खिड़की के पास खड़ी-खड़ी भगवान की आरती करती थी कारण मंदिर में आरती होने की आवाज वहाँ सुनाई देती थी और बाद में खिड़की के पास ही मूढे पर बैठकर आधा, एक घंटा कीर्तन करती थी उसके बाद माला फेरते हुए वहीं पर बैठकर मेरे टेपरिकार्डर पर कथा की कैसेट सुनती थी । रात को बिना कारण मैं बिजली नहीं जलाती थी और खिड़की में बारीक जाली लगी हुई थी ।

जिससे बाहर का व्यक्ति मुझे नहीं देख सकता था, मैं उन्हें देख पाती थी । बगल के ब्लॉक वाली बहन दो-चार बार रात को बाहर मेरी खिड़की के पास कान लगाकर बहुत देर तक चारों ओर देखते हुए यह टेपरिकार्डर सुनते थे । लेकिन उनके मन में क्या-क्या कपट छिपा हुआ है या क्या अनुमान लगा रहे हैं उससे मैं अनजान थी । ऐसी बहुत-सी घटनायें मैंने खिड़की में से कई बार देखी थीं । लेकिन ऐसा करने का हेतु मैं नहीं जानती थी ।

ऐसे कारणों से भी मैंने सबको मिलना बन्द रखा था और वह डॉक्टर भैया को रामधाम में आने के लिये भी मैंने ना लिखी थी । इतने दिनों तक बीमारी में जरूर पड़ने पर जब भैया आता था तब उसमें भी में भगवान की कृपा मानती थी कि मैं अन्दर हूँ और जब किसी का भी साथ नहीं है तब भगवान कितने दयालु है कि बीमारी के वक्त भी घर का ही डॉक्टर भेज देते हैं । रामधाम में १९७२ से रहते हुए कई बार की अनुभूति थी कि शरीर अस्वस्थ होने पर कोई साथ तो नहीं देता था उल्टे व्यवहारिक ढंग से खबर पूछने के लिये आकर मेरे ही सामने मुँह छिपाकर हँसते थे । कोई ज्ञानी तो ऐसे भी बोलते थे कि, "हाँ यह तो प्रारब्ध के भोग है यह तो भोगने ही पड़ते हैं ।" यह शब्द तो खुद की बीमारी पर या निजी जन के लिये बोले जाय तभी शोभास्पद लगते हैं । खैर ! ऐसे लोगों से सहानुभूति के दो शब्दों की अपेक्षा रखना अपनी ही भूल है । नेत्रयज्ञ में मरीजों की सेवा के लिये जाते हैं और धार्मिक या सांसारिक परिवार की व्यक्ति की बीमारी के प्रति यदि ऐसा भाव रखते हो तो उस नेत्रयज्ञ की सेवा को क्या कह सकते हैं ?

१९७९ के नवम्बर में मनहरभाई अपने परिवार के साथ वहाँ आये थे । उन्हें मिलकर माजी की विचारधारा कहकर बाहर ताला लगाने की इच्छा व्यक्त की । उन्होंने बम्बई लौटते वक्त वहाँ पर सीता नाम की बहन थी जो सब का काम करती थी उसको मेरे काम की जिम्मेदारी सौंपकर, समझाकर बाहर से ताला लगवा दिया । रोज शाम को छः बजे सीता ताला खोलती थी और दूध, सब्जी तथा फूल और अजमेर से डॉक्टर भैया या उनके पिताजी उसके वहाँ पर जो भी सब्जी, फल या अन्य चीजें दे जाते थे वह पहुँचा देती थी । उसके पैसे मैं सीता द्वारा भिजवा देती थी ।

बाहर का वातावरण मेरे प्रति मानवता की सीमा पार कर चुका था जिससे मैं पूर्णतया अनभिज्ञ थी । मौन समय दौरान परिवार वालों के आग्रह से प्रसंगोपात् उन्हीं के काम से मुझे मिलना पड़ा है । कभी तबियत के कारण सीता को अन्दर बुलाती थी ।

पिताजी को भगवद् प्रेरणा से मालूम हुआ था कि छोटे भाई प्रमोद पर १८ नवम्बर, १९७८ का दिन बहुत भारी है, यह बात प्रमोद और उसकी पत्नी को मालूम होने से मेरे मौन समय से पहले उन्होंने पुष्कर आकर मुझे यह बात बताई थी । उसी दिन शाम की आरती के बाद वे लोग जयपुर लौट रहे थे तब आरती के वक्त भगवान को चँवर करते हुए मन ही मन प्रार्थना कर रही थी, "हे प्रभु ! मैं और तो क्या कर सकती हूँ परन्तु जैसे बाबर ने हुमायूं को उसकी नरम तबीयत होने पर अपनी जिंदगी के दिन देने को कहा था वैसे ही मेरी उम्र भले ही मेरे भाई को दे देना परन्तु उसकी रक्षा करना । प्रार्थना के सिवा मेरे पास कोई बल न था । तब प्रत्युत्तर मिला था, "तुम चिंता न करो, प्रमोद को कह दो, उन दिनों में यहाँ चले आना और उस दिन रामधाम से बाहर न जाना ।" यह सुनकर पूर्ण संतोष के साथ चिंता दूर हुई । प्रमोद-सविता को यह बात बताने पर वे लोग निश्चिंत होकर जयपुर गये ।

वे दोनों भगवान के प्रति श्रद्धा, भक्ति-भाव के साथ प्रेम रखते हैं जिससे भगवान के वचन पर विश्वास रखकर दो दिन के लिये पुष्कर रहने आये थे और घबराये हुए होने से मैं उनसे मिली थी । श्रद्धा के साथ १८ नवम्बर के दिन मन्दिर से बाहर वे कहीं भी नहीं गये और प्रभु रक्षा प्राप्त करके दूसरे दिन जयपुर के लिये रवाना हो गये । भगवान परम कृपालु है, बड़ी आपत्ति थोड़े में ही भुक्ता देते हैं । इसलिये थोड़े दिनों बाद प्रमोद जयपुर से देहली अपने काम के लिये गया था वहाँ पर किसी व्यापारी का स्कूटर लेकर जा रहा था तब एक मोटर के साथ अकस्मात् होने से उसको गहरी चोट आई थी फिर भी भगवान की परम कृपा से इतनी पीड़ा नहीं थी और पन्द्रह दिन में पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया था । सच है·······

गरुश्र सुमेरु रेणु सम ताही, राम कृपा करि चितवहीं जाही

इस प्रसंग से भगवान के शब्द सत्य प्रतीत होते हैं, "प्रभु, जो करे सत्य, जीव प्रार्थना के अतिरिक्त कर ही क्या सकता है ? तद्रुप होने पर मूर्ति बोलेगी, मूर्ति हमारी चैतन्य है । पक्का विश्वास रखो हमारा सुन रही है । साक्षात् समझने पर मूर्ति सुनेगी और उत्तर भी देगी ।"

मैंने मौन समय दौरान इस प्रकार की छुट्टी रखी थी कि जरूरत पड़ने पर किसी से भी मिलूंगी । किसी अन्य व्यक्ति ने तो नियम बनाकर दिया नहीं था कि मैंने कोई नियम का खण्डन किया ऐसा कोई कह सके? शान्तिपूर्वक प्रपंच से दूर रहने के लिये यह तीन साल का नियम रखा था । परिवार के लोग, रामधाम ट्रस्टी या वहाँ के रहने वालों ने मदद कितनी की और विक्षेप कितना किया उस विषय में तो सबके अंत:करण साक्षी है । अंत में प्रभु इच्छा से मेरे हित के लिये तीन साल के संकल्प का अभिमान सूक्ष्म रूप से भी शायद जीव स्वभाव से मेरे में होगा उसे तोड़ने के लिये ही भगवान ने कृपा की और मुझे पीलिया हुआ ।

पन्द्रह दिन से तबियत ठीक नहीं थी । खट्टी डकारे आती थी और भोजन से अरुचि हो गई थी । शरीर पीला दिखाई दे रहा था लेकिन मैंने सोचा भीतर ही रहती हूँ, चलना-फिरना होता नहीं है इसलिए ऐसा होता होगा । लेकिन बगल वाले को मालूम पड़ने पर उन्होंने डॉक्टर भैया को बुलाकर एक दिन मेरी तबियत देखने के लिये पाँच मिनिट भेजे थे तब उन्होंने उसी वक्त कहा था कि पीलिया है । उसके लिये दवाई देकर वे अपनी नौकरी के लिये बम्बई चले गये थे । पीलिया के कारण उल्टी होती थी उसकी आवाज माजी ने सुनी होगी जिससे मुझे पूछे बिना जयपुर से पिताजी को बुलाकर मिलने के लिए मेरे पास भेजे थे । वे तो मिलकर संतोष लेकर चले गये थे लेकिन उसके लिए भी इन लोगों ने इतने हल्के विचार किये थे जो बाहर निकलने पर सब बात मालूम हुई । रात को सोते वक्त कल्पना भी न थी कि कल सुबह मौन छोड़कर मुझे बाहर निकलना होगा । परन्तु सुबह नित्यक्रिया करके नियम में बैठने पर भीतर से लगातार कोई धकेल रहा हो वैसे अंत:करण की आवाज सुनाई दे रही थी कि, "बाहर निकल जाव ।"

विचारों से मन घिर गया । अंत में प्रभु प्रेरणा से १९८० की ८ मई को सुबह आठ बजे मैं बाहर निकली ।

मन्दिर में भगवान को प्रणाम करके पूजा करने के बाद तबियत नरम होने के कारण जयपुर नजदीक होने से वहाँ जाने के लिये निकलने वाली थी । उससे पहले बम्बई खबर देने के लिये फोन लगाया था इसलिए निकलने में देरी हो गई थी । मैं बाहर निकली हूँ यह खबर सबको मिलने पर सब लोग मिलने के लिये आने लगे । अनुभव होने पर भी उनके कपट भरे हृदय को न समझ सकी ।

जानि न जाय निशाचर माया, कामरूप केहि कारण आया

पुष्कर रहने गई तब से जो माजी सताते थे वह मुझे नीचे ऑफिस के पास ही मिल गये । मुझे गले लगाकर कहने लगे, "बेटी, दो साल से तेरा मुँह नहीं देखा था अब मैं तो एकदम वृद्ध हो गई हूँ, कल की क्या खबर किनारे बैठी हूँ (लेकिन अन्य को धक्का देने के लिये) अच्छा हुआ तू बाहर निकल गई । अब आज का दिन रुककर कल जयपुर जाना । शाम की आरती में हम सब लोग मिलकर तेरा स्वागत करेंगे ऐसी मेरी इच्छा है ।" मैंने कहा, "माँ, स्वागत कराने की इच्छा तो मेरी नहीं है फिर भी आप सबका प्यार है तो भले मैं कल जाऊँगी ।

इतनी बात होने पर फोन लग जाने से मैं कमरे पर गई । तबियत ठीक न होने से सामान तैयार करने के लिए सीता को बुलाने ही वाली थी इतने में तो सीता दौड़ती हुई आई और कहा, "बहन, आप जाना नहीं । आपके लिए बहुत ही गंदी बातें कर रहे हैं ।" यह बात करने वाली वह मीठा बोलने वाली माजी ही थी और अन्य सबका साथ था ।

आगे कह मृदु बचन बनाई, पाछे अनहित मन कुटिलाई
जाकर चित अहिगति सम भाई, अस कुमित्र परिहरे भलाई

सीता ने मुझे सारी बात बताई । पीलिया की बिमारी से उल्टी होने पर उन लोगों ने अपनी हल्की दृष्टि से अर्थघटन किया था और कहते थे सीता भी इसमें मिली हुई है । बाहर से ताला लगाकर डॉक्टर भैया को अन्दर रहने देती थी और रात को दस-ग्यारह बजे पीछे की दीवार

कुदाकर भेज देती थी । आज भी मैं जहाँ रहती थी वहाँ आठ फीट ऊँची दीवार और उसके ऊपर एक-एक फीट की दूरी पर पाँच काँटे वाले तार बंधे हुए हैं यह तेरह फीट की ऊँचाई मेरे सामने कूदकर तो कोई बतावे ? अंतिम आठ दिन तो भैया मेरे पास अन्दर ही था ऐसा कहते थे । उन दिनों में तो भैया बम्बई में मनहरभाई के घर पर थे वे अपनी नौकरी के लिए गये थे जिससे आज मैं जहाँ रहती हूँ उन नामांकित डॉ. एन. वी. सूचक के वहाँ भी गये थे । भगवान के शब्द याद आते हैं, "जन-समूह में धर्म भावना, सत्यासत्य निरीक्षण की बुद्धि बहुत न्यून्य होती जाती है ।" जिस तरह से सीताजी की निंदा करने वाले धोबी की मान्यता में पूरे अयोध्यावासियों की मौन संमति थी जभी तो उन लोगों ने सीताजी को वनवास देने से भगवान को रोका नहीं । उस प्रकार से आज कलिकाल में यह घटना कोई आश्चर्य नहीं है । मेरे साथ ऐसे तो बहुत ही अन्याय, भेदभाव एवम् आक्षेप किये गये हैं वह सारी कथनी का इतिहास क्या लिखूँ ? उदाहरणार्थ वहाँ पर मक्खी, मच्छर और चूहे आदि का बहुत ही त्रास होने से खिड़की-दरवाजे में बारीक जाली लगाने को मेरे खर्च से कहने पर भी साफ ना कहते हुए बहुत कुछ सुनाया था और तब भी हल्के विचारों से उस विषय में भी कहते थे, "सब कुछ बंद करवाकर ना जाने क्या चाहती है ?" लेकिन ट्रस्टी बहन कुछ समय के लिये रहने को आई तब उन्हें इसी बात का कष्ट होने पर संस्था के खर्च से उसी वक्त वह काम हो गया । ऐसे अनेक प्रसंगों की गिनती या लेखन बिलकुल असंभवित है ।

पुष्कर छोड़ने से पहले सीता द्वारा भगवान ने यह बात मेरे तक पहुँचा दी जिससे मैं अधिक समय वहाँ पर रुककर प्रमाण दे सकी । भगवान के शब्दों की यथार्थ अनुभूति हुई, "तुम उसका काम नहीं करोगी तो वह तुम्हारी बदनामी करेगी ।" ऊपर से चाहे कोई कितना ही मीठा बोले और अपने को निर्दोष बताने का प्रयास करे परन्तु

कर्म छिपे ना भभूत लगायो..........

कभी ना कभी तो सत्य प्रगट होता ही है । ट्रस्टी बहन की नौकरानी की भी इतनी हिम्मत थी कि वह ऐसे प्रसंग पर मुझे रोते हुए देखकर कहने लगी, "सच्चे हो तो फिर रोने का क्या ? अग्नि कसौटी

सीताजी की भी हुई है । अग्नि में बैठ जाव, आपको कुछ नहीं होगा ।" सत्य ही निर्भय हो सकता है इसलिए मैंने कहा, "भले चिता तैयार करो, एक क्षण की देर नहीं लगाऊँगी, यदि शंका हो कि चिता बनाने की मेहनत व्यर्थ जायगी तो चलो, पहले मैं बैठती हूँ, तुम चारों ओर लकड़ियाँ रखकर लगाओ आग ।" वे लोग चकित होकर रुक गये । सत्य के बल से भगवान पर पूर्ण भरोसा था और है कि सत्य को कोई जला नहीं सकता । भगवान के शब्दों में, "सत्य की परीक्षा करने से उसकी उज्ज्वलता बढ़ती है, घटती नहीं ।" क्योंकि :–

हरि ना बिसारे उसे हरि ना बिसारे.......

भगवान के शब्दों में,

मनुष्य यतन करता रहे, ईश्वर कृपा जो होई
लाखो दुश्मन होय पर, गांजी सके न कोई

ऐसी बातें होने के बाद उसी दिन दूसरी बार बम्बई फोन से खबर देने पर दूसरे दिन मनहरभाई और उर्वा प्लेन से आ गये । जयपुर से पिताजी भी आये थे । इन लोगों के डर से सब लोगों ने साथ दिया । अपने को निर्दोष बताने के लिये सब लोग मेरे साथ सत्य के पक्ष में खड़े हों वैसे बरतने लगे, बाकी तो इस घटना में सबका साथ था यह धीरे-धीरे मालूम हुआ । जिस माजी ने मनमाने हल्के आक्षेप किये थे उसके घर गये और इस बात के पूरावा का जवाब माँगा । वे खूब घबरा गये थे, क्या उत्तर दे सकते थे ? अपने असत्य आचरण के बचाव के लिये अन्य व्यक्तियों पर दोषारोपण करते हुए मंदिर के पुजारी को भी न छोड़े जो कि ऐसी बातों में बिलकुल ही निर्दोष और अनजान थे । अंत में असत्य कहाँ तक छिप सकता है ? हाथ जोड़कर माफी माँगते हुए बोले, "अब हम क्या करें ? आप जो भी कहें करने को तैयार हैं ।" और तो क्या बोल सकते थे ? हमारी भूल हुई है यह लिखकर दिया । बगल में रहने वाले माजी और दादाजी जिनके प्रति मेरा पूज्य भाव था, उन्होंने तो ट्रस्टियों के पास मेरी कैसी और किस प्रकार से असत्य बातें कीं जिसका वर्णन मानवता नहीं दानवता को भी शरमाने जैसा था । परिणाम क्या आया ? यह तो उनकी अंतर आत्मा ही कह सकती है । बोध पाठ मिला कि कभी किसी का विश्वास करना नहीं ।

बंदौ खल जस शेष सरोषा, सहस बदन बरणँहि परदोषा
पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना, पर अध सुनँहि सहस दस काना
वचन बज्र जेहि सदा पियारा, सहस नयन परदोष निहारा
बरू भल बास नरककर ताता, दुष्ट संग जनि देहि विधाता

[६६]

ताते करहि कृपानिधि दूरी

भगवान की इच्छा से ही उस प्रसंग के बाद बाईस दिन वहाँ रुककर मैं बम्बई आई । थोड़े समय के बाद श्री गुरु पूर्णिमा के महोत्सव पर मैं पुष्कर गई थी । उस वक्त मनहर भाई को गिर जाने से चोट लगी थी जिससे वे साथ में नहीं आ सके । मेरे साथ आठ बहनें आई थीं । इस वक्त भी किसी के कहने से एक बहन शंका से कमरे में देखने आयी थी । वे सोचते थे अब भी डॉक्टर भैया कमरे में हैं । कपट से आड़ी-टेढी बात करते हुए सब जगह देख रहे थे । लेकिन तब तो कमरा खुला था और मैं सबसे मिलती थी जिससे उनकी शंका का पुरावा न मिलने से मन ही मन शर्मिंदे हो रहे थे । गुरु पूर्णिमा के बाद ट्रस्टियों की मिटिंग में मुझे बुलाया गया । मेरे साथ अन्य किसी को आने के लिये मना किया था ।

मीटिंग में बुलाकर सब मौन बैठे थे, आखिर मैंने ही बात शुरू करके कहा, मेरे साथ जो घटना घटी है, उससे आप कोई अनजान नहीं हैं । आपके पास मेरे विरोध में जो बातें आई हैं और आपको मेरे जो भी दोष दिखाई दे रहे हों वे आप मुझसे कह सकते हो और एक बहन, बेटी के नाते आप मेरी बात को भी सुनो । प्रत्युत्तर में उन लोगों ने कहा । "हमें कुछ नहीं कहना है आप जो कुछ कहना चाहो कह सकती हो ।" मेरे से सत्य घटना सुनने के बाद एक दो ट्रस्टी की आँखों में आँसू भी आ गये थे परन्तु सत्य समझने पर भी मौन थे तो वह आँसू क्या काम के ? धार्मिक कहलाने वाले लोग अधर्म का आचरण देखते हुए भी मौन रहते

हैं तो फिर धर्म का पालन कैसे हो सकता है ? ऐसे समय पर दुःख में सहानुभूति के बदले कुछ लोग विपक्ष में खड़े रहकर खुश थे। महाभारत में द्रौपदीजी के चीरहरण के वक्त धृतराष्ट्र, भीष्म पिता, द्रोणाचार्यजी जैसे महापुरुषों को भी दुर्योधन का अन्न खाने से मौन रहकर उसको साथ देना पड़ा और विदुरजी जैसे नीतिमान, सत्य परायण व्यक्ति अकेले हो गये और उन्हें हर प्रकार से सहना पड़ा फिर आज तो कलियुग है। धर्मपालन के लिए कौन कष्ट मोल लेता है ? धर्म की बातें करना सरल है, आचरण बहुत ही मुश्किल है।

ट्रस्टी बहन सब जानते हुए भी पूछने लगी, "दो साल के दौरान आप किसी से मिली हो ? किस किस से मिली हो ? वगैरह।" सत्य बात सुनकर उस बारे में कोई क्या कह सकता था। कहते भी क्या ? कारण अंदर अकेली रहने वाली व्यक्ति को किसी न किसी की मदद लेनी ही पड़ती है। ट्रस्टी बहन खुद भी एक स्त्री साधक का जीवन बिता रही है। तेजोद्वेष छोड़कर सोचने पर समझने का प्रयत्न करे तो समझ सकते हैं लेकिन निज अनुभव के बिना किसी को बिना कारण सताना कितना बुरा होता है यह समझ में आना बहुत ही मुश्किल है। तब व्यक्ति अपना भविष्य भूल जाता है कि कल मेरा भी क्या होगा ?

कबीरजी ने ठीक ही कहा है—

कबीरा तेरी झोंपड़ी, गलकटों के पास ।
करेगा सो भरेगा, तू क्यों भये उदास ।।

कर्म का हिसाब तो सभी को चुकाना ही पड़ता है.......

मैंने मीटिंग में प्रश्न पूछा, "ट्रस्टी और यहाँ के रहने वाले भाई-बहनों ने कितना साथ दिया ? और दो साल में एक बार भी पूछा था कि कुछ काम हो तो बताना। यह सब अपने अंतःकरण से पूछो।" इस बारे में यदि कोई यह कहता है कि, "हमने आपका ठेका थोड़ी लिया है ?" तो भले ठीक है, भगवान की शरणागत व्यक्ति का ठेका लेने के लिए उसके इष्ट के सिवा कोई समर्थ है भी नहीं और भगवान के बल पर वह व्यक्ति कभी किसी से किसी प्रकार की आशा या मांग रखती भी नहीं है। लेकिन भगवान कोई भी व्यक्ति को निमित्त बनाकर उसके कार्य

के लिए भेजते हैं तब अन्य विषयी जीवों को, अपनी अभद्र दृष्टि से, पूर्वग्रह से मनमाने आक्षेप करके किसी भी व्यक्ति को सताकर बदनामी करने का कोई अधिकार भी नहीं है । क्या ऐसी हरकतें करने के लिए उस व्यक्ति को भगवान ने ठेका दिया है ? धार्मिक कहलाने वाले या भगवान के दास कहाने वाले भगवद् भक्तों के लिए क्या यह योग्य है ?

यह सुनकर सबकी निगाहें नीची हो गईं परन्तु जिस ट्रस्टी बहन ने किसी के भी साथ, सहकार से अगवानी कर सब प्रपंच की डोर अपने हाथ में रखी थी वे चुप कैसे रह सकते थे ? वे तो मेरा काम करने वाली सीता से सारी पूछताछ करते रहते थे और सब्जी की थैली, आटे के डिब्बे की भी समय-समय पर तलाशी लेते थे । सत्ता के बल से मेरे मालिक हो ऐसा व्यवहार करते थे और मानो रामधाम में अपने घर में रहने देते हों वैसे ही अपनी इच्छानुसार मेरा जीवन बनाने की इच्छा रखते थे । अहंता से व्यक्ति भूल जाता है कि

ना यह तेरा, ना यह मेरा, ईश्वर का यह राज है
ईश्वर का जल, ईश्वर का थल, ईश्वर का ही अनाज है

प्रश्न के जबाव में वे अपना बचाव करते हुए बोले "आपको साधना में विक्षेप न हो इसी सद्भाव से हमने आपको कोई चिट्ठी नहीं लिखी थी" कितना असत्य? विरोध करते वक्त मैनेजिंग ट्रस्टी श्री कनुभाई से कितना लंबा पत्र लिखवाकर दरवाजे में डालते वक्त विक्षेप का विचार नहीं आया था ? और पू. गुरुदेव के नाम से छपने वाला "सद्गुरु सरिता" नाम के मासिक अंक में दूसरों के जीवन की टीका-टिप्पणी दर्शाने वाले लेख छपवाकर वह भी मुझे पढ़ने के लिये भेजते समय विक्षेप का विचार नहीं आया ? तब तो मानो सबके जीवन का ठेका भगवान उन्हें सौंप गये हों ! उस मासिक पत्रिका के साथ चिट्ठी भी भेजी थी जो आज भी मेरे पास है कि "इस अंक में आप भी कोई लेख लिखकर देना ऐसी तंत्री की ओर से विनती की गई है" । सच है,

बैर प्रेम नहीं दुरय दुराये....

हित अनहित पशु पक्षीहु जाना, मानुष तन गुण ज्ञान निधाना

ऐसी असत्य, प्रपंची बातें बोलने या आचरण करते वक्त जीव विचारशून्य हो जाता है जिससे अपनी सुरक्षा भी ठीक ढंग से नहीं कर पाता । मिटिंग में सबके आचार-विचार देखकर लगा कि,

यहाँ हर किसी के चेहरे गुन्हेगार के हैं,
किसका इन्साफ किससे कराया जाय,
अब तो इन्सान को इन्सान बनाया जाय,
या कोई और नया भगवान बनाया जाय ।

यह व्यक्ति धर्मोपदेश करते हुए, आज के काल में माने जानेवाला धार्मिक जीवन व्यतीत करती है । यह देखकर भगवान के शब्द ताजे होते हैं, "गीता का स्वाध्याय करते जिन्होंने कर्म और भक्ति के रहस्यों को नहीं समझा, वे दया के पात्र हैं ।"

पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे

सर्व समर्थ भगवान भविष्य जानते थे, इसलिये उन्होंने मनहरभाई को भाई बनाये और सब प्रकार की व्यवस्था भी कर दी गई । इतना सब करने पर यह भी सूचन कर सकते थे कि अमुक व्यक्ति के साथ रहना लेकिन दुनिया की दृष्टि से अपने कहानेवाले समय पर बहुत दूर के बन जाते हैं । आज के युग में सर्व गुण धन में ही समाये हुए हैं । धन से व्यक्ति क्या नहीं कर सकता ? फिर चाहे वह धन कैसे भी क्यों न इकट्ठा किया गया हो । यह बात कुटुंब, समाज और सामाजिक या धार्मिक संस्थायें कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, हर जगह देखी जाती है । सत्य, संस्कार या आध्यात्मिकता का मूल्यांकन कोई नहीं होता है । कैसा भी आहार-विहार क्यों न हो, सत्ता और धन से मनुष्य खरीदा जाता है । इसीलिये "सत्य अकेला हो जाता है और झूठे का झूंड़ जम जाता है ।" अर्थात् समाज को धर्म नहीं केवल धन चाहिये । धनी ही हर क्षेत्र में आदरणीय और अग्रगण्य माने जाते हैं, वे धन का दान देते हैं जिससे सब उससे दब जाते हैं । कई धार्मिक संस्थाओं में तो भगवान के बदले प्रथम पूजा धनी की होती है । कोई श्रीमंत दान देता है तो उसका यह कर्त्तव्य है, उसे सत्कार्य करना ही चाहिये जिससे उनको पुण्य मिलता है, धन की शुद्धि होती है, कीर्ति बढ़ती है, याने हर प्रकार से वह अपने

लिये करता है । हाँ, इससे अन्य श्रीमंत या सद्गृहस्थ को भी सत्कार्य के लिये मार्गदर्शन अवश्य मिलता है । वह व्यक्ति श्रीमंतों से अवश्य दब सकता है जिसे अपना किसी भी प्रकार का कुछ स्वार्थ हो । भगवान भरोसे जीवन बिताने वाली व्यक्ति कभी भी धनी या श्रीमंतों के दबाव में नहीं आ सकती क्योंकि ऐसे साधक जीवन में साधक के लिये अपने इष्ट के बराबर कोई भी तत्त्व शक्तिमान नहीं दिखाई देता और यदि दिखाई दे तो उसके श्रद्धा, विश्वास और भक्तिभाव में बहुत बड़ी त्रुटि है । शैतान को भी रोटी मिलती है तो क्या साधक को नहीं मिल सकती ? उसे और क्या चाहिये ? धन जीवन व्यवहार के लिये आवश्यक है लेकिन मानव जीवन का लक्ष्य धन नही है । आखिर "अर्थ ही अनर्थ का मूल होता है ।" जब-जब कोई भी क्षेत्र में धर्म के बदले केवल धन को ही प्राधान्य दिया गया है, तब वहाँ पर मानवता का नामोनिशान नहीं रहता है और इसलिये जीवन में सही रूप में मानव बनने की ध्येय की पूर्ति होना असंभव है । आज तो,

कलि प्रभाव व्यापहिं चहुँ ओरा

यह मानसजी की चौपाई की यथार्थ अनुभूति हो रही है । आज के इस कठिन काल में,

जेहि राखे रघुवीर, ते उबरे यहि काल महँ....

भगवान के शब्दों में, "सत्य आच्छादित हो सकता है लेकिन उसकी हिंसा कभी नहीं हो सकती ।" सत्य की राह पर चलनेवालों को बहुत ही सहना पड़ता है । उसके समक्ष झूठा वृंद खड़ा नहीं रह सकता है । झूठे वृंद की तो आँख उठाकर सत्य के सामने देखने की भी हिम्मत नहीं होती है । इसीलिये सुनी हुई बात अनुभूति से सत्य लगती है कि, "राम का स्मरण और सत्य का आचरण करनेवाले का विश्व में कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।" सत्य में बड़ी ताकत है । झूठे आचरणवाले हो सके जहाँ तक अपने दोष ढकने के लिये सत्य को सताते हैं । आखिर हारकर पीठ के पीछे निंदा का सहारा लेते हैं, कारण सामने आ नहीं सकते ।

आज तक के जीवन में चारित्र्य के विषय में कोई घटना नहीं घटी ऐसा नहीं है, पाँच प्रसंग मेरे सामने उपस्थित हुए हैं, परंतु हमेशा परम

कृपालु परमात्मा जो एक क्षण भी मुझसे अलग नहीं हैं उन्होंने बराबर रक्षा की है । हरेक प्रसंग अंगत स्नेहियों में किसी ना किसी व्यक्ति को जरूर बता दिये हैं । वह भी इसी हेतु से कि ऐसी घटनाओं पर भगवद् कृपा कैसा काम करती है और उस वक्त अपने कहानेवाले कौन व्यक्ति निज स्वार्थ छोड़कर साथ देने को तैयार होता है, वह भी मालूम हो जाता है । ऐसी घटनाओं के वक्त ही तो भूतकाल में भगवान ने जो कुछ पत्र में लिखा था, **"पुरुष परखिये समय सुहाये"** यह यथार्थ समझ में आता है । जीवन बनाने के लिये ऐसे प्रसंग भी मानो जरूरी हैं कि इस दुनिया में सिर्फ दिखने वाले और कहलाने वाले मानव, सज्जन, धार्मिक, उज्ज्वल जीवात्मा भी कैसे-कैसे आचरण कर सकते हैं, उनका यह सच्चा स्वरूप दिखाई देता है । क्योंकि आज बाहरी और भीतरी जीवन में भू-आकाश का अन्तर होता है, यह कैसे मालूम हो ? गुजराती में किसी ने बहुत हो अच्छे शब्दों में अन्तर बताया है ।

नथी दीठी कदी भूखने छतां, ए भूख पर बोले
अनीतिमय भयुं जीवन, सभामां नीति पर बोले
पराई नारी ने देखो, नयन, जेनां आमतेम डोले
सभा मध्ये उभो थई ने, पाछो ब्रह्मचर्य पर बोले
ईर्ष्या मद अने ममता, लोभमां पांगळो थई ने
व्यासनी गादी पर जई ने, पाछो ए भक्ति पर बोले

भावार्थ :– अनुभूति के बिना भूख पर भाषण देना । अनीति मय जीवन होते हुए भी सभा में नीति पर भाषण देना । पराई स्त्री को देखकर अपने मन पर काबू न रखने वालों को सभा में ब्रह्मचर्य पर बोलना । ईर्ष्या, मद, ममता और लोभ से पंगु होते हुई भी व्यास गद्दी पर बैठकर भक्ति के विषय में बोलना ।

"यह सब कागज के फूल हैं" आचरण के बिना चरण की कोई महत्ता नहीं है । इस देश ने उसी के चरण पूजे हैं जिनके जीवन में आचरण आया । उसी के चरण धोकर चरणामृत लिया है और उसी के चरणामृत ने औषधि का भी काम किया है – जिन चरणों ने आचरण किया है । संतों से सुना है कि इसीलिये कोई भी शास्त्र में प्रथम मंगला-चरण किया जाता है जिसका भावार्थ है । इस शास्त्र को पाने के लिये

मंगल आचरण आवश्यक है। या इस शास्त्र के संग से मंगल आचरण बना सकते हो। बाकी साक्षात् परमात्मा के शब्द हैं, "आततताइयों को मारना पाप नहीं है।" आज भी हरेक जीवन में रामायण, गीता और महाभारत का दर्शन अवश्य मिलता है। हरेक के जीवन में ऋषि-मुनि और संत-भगवंत के दर्शन, मानवता-सज्जनता, भक्तजन और उसके साथ-साथ दानवता-दुर्जनता की अनुभूति अवश्य मिलती है। या राम-रावण, बालि-सुग्रीव, विभीषण-कुंभकर्ण, सीताजी-पार्वतीजी, अनुसूयाजी-शबरीजी और ताड़का-सूर्पनखा एवम् सुरसा और सिंहिका जैसे कई सुरी, आसुरी सभी तत्त्वों की भेंट होती है। आसुरी तत्त्व अधिक मिलेंगे क्योंकि "वंश बढ़ रहा है रावण का...........।" इस प्रकार से जीवन विकास के लिये जीवन में साधक और दोनों बाधक तत्त्व मिलते हैं। विवेकपूर्ण बाधक तत्त्वों के कुसंग से दूर रहना है और यह विवेक सत्संग से ही मिलता है कारण :–

बिनु सत्संग विवेक न होई.......

इसीलिये अपने शास्त्र प्राचीन होने पर भी अर्वाचीन युग में "दिने दिने नवम् नवम्" की अनुभूति कराते हैं।

मीटिंग में से आने के पश्चात् देखा हुआ और अनुभव किये हुए आचरण से विचार आया कि सही अर्थ में धर्म का आचरण करना हो तो धार्मिक स्थानों से शुरूआत होनी चाहिये कारण वह अधिक जिम्मेदार है। ट्रस्टी लोग आखिर तो संसारी ही हैं ना? संत और एक साधारण संसारी की विचारधारा में बहुत बड़ा अन्तर रहता है। ट्रस्टी का सही अर्थ "मालिक" नहीं अपितु "भगवान के विश्वासु सेवक" होता है। यदि संतों के सिद्धान्त का पूर्ण जागृति के साथ पालन न हो सके तो संतों के प्रति विश्वासघात ही कहा जा सकता है इसलिये उनकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है यदि प्रभु कृपा से समझ में आवे तो। कारण

सब ते सेवक धर्म कठोरा

किसी भी जीवात्मा के प्रति थोड़ा भी असत्य व्यवहार, अन्याय या भेदभाव मालूम होने पर उसी वक्त पूर्णतया विरोध करना ही चाहिये, चाहे सामने कोई भी व्यक्ति क्यों न हो या अपना कैसा भी स्वार्थ

छोड़ना पड़े तो क्या ? और यदि कड़क शासन रखने की हिम्मत या साहस न हो तो जितना हो सके जल्दी स्तीफा दे देना चाहिये। "हम क्या कर सकते हैं ?" ऐसे प्रत्युत्तर ट्रस्टियों के लिये योग्य है क्या ! वरना इस तरह से तो धार्मिक क्षेत्र भी राजकीय क्षेत्र बन जाता है।" समर्थ के साथ न्याय और असमर्थ के प्रति करुणा होनी ही चाहिये" उसके बदले उल्टा देखने को मिलता है। यह किसी की निंदा या परदोष दर्शन नहीं लेकिन अनुभूति की वेदना है। इसीलिये भगवान ने कहा है। "संसारियों को साधु संग मिल जावे तो उनको मिल जाए स्वर्ग और साधुओं को संसारियों के संग से मिल जाता है नर्क।" समाज में धार्मिक लोग तो बहुत हैं परन्तु धर्मशील कितने ? आज समाज को धर्मशील की जरूरत है इसलिये अब तो भगवान से एक ही प्रार्थना है कि

प्रभु ! मारो हतो अेवो फरी भारत बनावी दे
अमारा राम ने गौतम कनैयो भीष्म ने अर्जुन
सती सीता समा प्यारा, अमारा रत्नों लावी दे
अमारा वेदना मंत्रो, अमारा शास्त्रीना शब्दो
दयालु तुं दया करीने, हवे घर-घर वसावी दे प्रभु.......

भावार्थ :– हे प्रभु ! मेरा भारत देश जैसा था वैसा वापस बना दो। हमारे राम, कृष्ण, गौतम, भीष्म और अर्जुन तथा सती सीताजी जैसे हमारे प्यारे रत्नों को वापस ले आओ। हमारे वेद और शास्त्रों के मंत्रों को हे दयालु ! दया करके घर-घर में बसा दो।

एक व्यक्ति द्वारा मुझे कहा गया, यदि आप यहाँ सुख-शान्ति से रहना चाहो तो ट्रस्टी बहन जैसा करे और कहे वैसा करना होगा तो ही आप यहाँ पर अच्छी तरह से रह सकोगे। इन शब्दों का पालन करना मेरे लिये सर्वथा अशक्य ही है कारण वे एक संस्था के ट्रस्टी अवश्य ही हैं लेकिन मेरे जीवन में गुरु स्थान पर नहीं। सर्व समर्थ मेरे भगवान की परम कृपा से किसी भी प्रकार के सामर्थ्य के अधीन होना आता ही नहीं है। हाँ प्रेम और मानवता जो साक्षात् भगवान के ही स्वरूप हैं सदा उसके आधीन हूँ। असत्य को साथ देकर जीवन में आमके फल पाने के बदले सत्य की राह पर कांटेवाले बबूल के पेड़ मुझे स्वीकार

हैं । मीटिंग के समय सबकी विचारधारा देखने के बाद सोचा था कि अब यहाँ रहना ठीक नहीं है । भगवान के शब्द भी याद आये, "भविष्य में अनुकूल न पड़े तो पुष्कर छोड़ देना ।" इसलिए अब पुष्कर छोड़ना निश्चित हुआ कारण

गैर मुमकिन है कि यह दुनिया अपनी मस्ती छोड़ दे
इसलिए ए दिल ! तु ये बेकार बस्ती छोड़ दे

कह हनुमंत विपत्ति प्रभु सोई, जब तव सुमिरन भजन न होई

वहाँ के लोग खुश थे कारण,

परहित हानि लाभ जिन केरे, उजरे हर्ष विषाद बसेरे

मेरी आर्थिक परिस्थिति के अनुसार वहाँ के लोग चर्चा करते थे, "बम्बई की महंगाई में मकान मिलना मुश्किल है, कहाँ जाकर रहेगी ? अच्छा है ज्यादा परेशान होगी तब पता चलेगा ।" लेकिन जो भगवान की इच्छा से ही यह सब घटना घटी थी वे ही आगे की व्यवस्था के लिये साथ में है यह साधारण जीवों की समझ से परे हैं । भगवान चाहे किसी को भी निमित्त बनाते हैं ।

फानुस बनकर जिसकी, हिफाझत हवा करे
वो शमा क्या बुझे, जिसे रोशन खुदा करे

कुछ लोग धन और बुद्धि के बल से मानते और बोलते हैं कि, "उसको तो रहने के लिए गाँव में घर नहीं, सीमा पर खेत नहीं" परन्तु जिसके मालिक विश्वपति हो उसके लिए हर जगह अपना ही घर है । वैसे एक बंगले या थोड़ी जमीन की मालिकी से जीव अहंकारी बनकर भूल जाता है कि यह संपत्ति कभी किसी की हुई नहीं है और होगी भी नहीं ।

पुष्कर छोड़ने के बाद अकस्मात् से डॉक्टर भैया की अकाल मृत्यु होने पर खिन्नता छा जाना सहज था लेकिन उससे अधिक दुःख तो तब हुआ कि जब रामधाम के धार्मिक कहलाने वाले लोगों द्वारा यह शब्द सुनने को मिले कि, "वह तो अपने पाप से मरा है ।" ऐसे धार्मिक लोगों के लिये क्या कहा जाय ? कोई शब्द नहीं है । दुनिया में कोई अमर तो

है ही नहीं । उस लड़के ने तो प्रथम बार मेरे पास आने पर ही रोते हुए बताया था कि, "दीदी, मेरी आयुष्य बहुत कम है, मुझे किसी ने कहा है तुम्हारी उम्र २७ साल की ही है ।" इस कारण भी वह निरुत्साही बन गया था । ज्योतिष में मेरी बहुत श्रद्धा न होने से मैंने लक्ष नहीं दिया था । खैर ! वह जीवात्मा तो अपने प्रारब्ध अनुसार इस दुनिया में से चला गया लेकिन मुझे इस समाज का यथार्थ दर्शन करवाता गया, या इस घटना से जीवन में जागृति आने से मेरे कई प्रकार के स्वप्न टूट गये । भगवान के शब्द सही हैं कि, "कौआ मन्दिर के सर्वोच्च शिखर के कलश पर बैठ जाय तो वह तालाब के किनारे के हंस से बड़ा नहीं हो सकता है ।

इस प्रकार पुष्कर में धन और सत्ता के प्राधान्य का पूर्ण अनुभव मिला । साथ में बिहार में भगवान ने जिन-जिन व्यक्ति के नाम देकर सावधान किया था आठ साल दौरान उन सब बातों की प्रयोगात्मक अनुभूति मिली । डुकरिया पुराण के भी सुन्दर दर्शन हुए । जीवन को सुदृढ़ बनाने के लिए पुष्कर रामधाम मेरे लिये एक बहुत बड़ा शिक्षा केन्द्र था । जैसे अभ्यास पूरा होने पर पाठशाला और कॉलेज जाना छूट जाता है उसी प्रकार से अन्तिम कक्षा के अभ्यास के बाद मेरा यह शिक्षा केन्द्र भी छूट गया । सुना है बानर की ममता पूँछ पर और मानव की ममता नाक पर रहती है इसीलिए जब किसी को बहुत अधिक दुःख पहुँचाना हो तब समाज उसके चारित्र्य पर शब्द बाण का प्रहार करते हैं और अन्त में जला देने के भी प्रयत्न करते हैं । इतनी हद तक की घटना देखने पर तो आत्मज का ही खून उबलने लगता है अन्य लोगों को तो तमाशा मिलता है । इसलिये इस राह पर चलने वाले जो भी साधक जीवात्मा है उन्हें खूब सावधानी के साथ अपने इष्ट पर पूर्ण भरोसा रखकर दुनियादारी लोगों की किसी भी प्रकार की परवाह किये बिना आगे बढ़ते रहना चाहिये । वरना गिराने के लिये तो अपार प्रयत्न किये जाते हैं ।

कोई भी क्रिया करने पर प्रत्याघात ही मिलेगा । चाहे मौन, एकांत में रहो, चाहे जप-तप-व्रत करो या चाहे सत्संग, भजन और भगवद् कथा श्रवण करने साधु संतों के पास जाओगे । जैसे एक पुरानी कहानी है ना

पिता, पुत्र एक छोटे से घोड़े को लेकर एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहे थे। पिता घोड़े पर और पुत्र को पैदल चलते देखा तो पिता की निंदा करने लगे कि बालक को पैदल चला रहा है। यह सुनकर पुत्र को बिठाया तो लोग कहने लगे, जवान घोड़े पर और बाप पैदल ? दोनों बैठे तो दयाहीन कहा और दोनों पैदल चले तब मूर्ख कहा। बस यही है लोगों की छिद्रान्वेषी दृष्टि। चींटी जहाँ-तहाँ छिद्र ही तो देखती है ना ? जिसको भक्ति करनी है या परम को पाना है उसे ऐसी बातों पर कदापि ध्यान नहीं देना चाहिये।

हाथी चलत है अपनी चाल में........

गुजराती में एक भजन है

भक्ति करवी तो ना ड़खु, दुर्जन लोकथी रे...............
भक्ति मीरांबाई ये कीधी, मीराये झेर पियाली पीधी....

भावार्थ :–भक्ति करने वालों को दुर्जनों से नहीं डरना है। मीरांबाई ने भक्ति की तो उसको जहर की प्याली भी पीनी पड़ी....

इसीलिये

आ लोकना सागर महीं, कोई नावथी तरशो नहीं
दुनिया तणां दो रंगना, धोखा कदी धरशो नहीं

इस लोक सागर में या भवसागर में नाव से तैरने का प्रयत्न व्यर्थ है और दुनियादारी के बदलते हुए रंगों की ओर ध्यान देना व्यर्थ है कारण पू. श्री मोरारी बापू कहते हैं, यह तो दुनिया है जिसका नाम ही "दुनिया" है उसमें दो रंग मिलेंगे ही। एक ही बात को कभी ऐसे बोलेंगे कभी वैसे बोलेंगे जभी तो इसे एकिया या तीनिया न कहकर "दुनिया" कहा जाता है।"

१९८१ के जनवरी में मनहरभाई अपने परिवार को लेकर मेरे साथ पुष्कर आये। पुष्कर रामधाम में जहाँ साक्षात् भगवान बिराजमान हैं उन चरणों से दूर जाने में कितनी व्यथा होती है यह तो अनुभवी ही समझ सकता है, फिर भी ऐसा लगता है कि भगवान धाम की ममता छुड़वाकर कायम के लिये उस गंदे कीचड़ में से निकालकर सतसंग की स्वच्छ, सुगंधी फूलवाड़ी में रखना चाहते थे वह मैं नहीं समझ सकी थी।

संतसभा चहुँदिशि अमराई............

मंदिर में भगवान से रोते हुए बिदा ली,

व्याधि नाशहित जननी, गणहि न सो शिशुपीर

भगवान के शब्द याद आये, "मनुष्य भूल जाय इसकी परवाह न करना ईश्वर न भूले ऐसा जीवन बनाना और ईश्वर को न भूलना। ईश्वर के साथ जन्म के पहले और अंत में जन्मान्तर से संबंध होता है विचारयुक्त संबंध सुख का साधन हो सकता है।" आज भी कई बार पुष्कर जाती हूँ, केवल मेरे भगवान के लिये।

रमापति रघुनाथजी, तुम लग मेरी दौड़
बूढ़े काग जहाज को, मुझे और न ठौर

थोड़े ही दिनों में मालूम हुआ कि स्व. श्री कनुभाई कोटेचा को मेरे विरुद्ध उसकाने वाली व्यक्ति का अनुभव मिल जाने पर वे स्वयं अपने जीवन के अंतिम दिनों में राजकोट आश्रम में कुछ व्यक्तियों के समक्ष बोले थे, "उन व्यक्तियों के कहने में आकर मैंने रमा बहन को बहुत परेशान किया है, अब उनके तीन साल पूरे हो जाने के बाद मैं खूब धूम-धाम से उत्सव के साथ भंडारा कराऊँगा।" यह शब्द उनकी बेटी मंजु ने ही मुझे बताये थे। हरेक जीवात्मा को अंत:करण साक्षी देता ही है। उसकी अवहेलना करके अपने ध्यान नहीं रखते हैं यह बात अलग है परन्तु प्रभु इच्छा ऐसी रही कि वे अचानक इस दुनिया से चले गये और मेरे तीन साल भी पूरे न हुए। भगवान के सगुण स्वरूप की हाजरी में जो व्यक्ति जितना हो सके दूर हटाने का प्रयत्न करते थे उनका स्वभाव थोड़ा ही बदल सकता है? भगवान के श्री विग्रह से या आश्रम और मंदिर से अपने मामूली धन, सत्ता या बुद्धि बल के गर्व से हटा सकेंगे लेकिन भगवान के शब्दों में, "रमा, तुम विश्वास करो तुमसे एक क्षण अलग नहीं हूँ और न तुमको कभी भूलता हूँ" ऐसे मन मंदिर में सदैव जो भगवान बिराज रहे हैं उनसे कौन दूर हटा सकता है?

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों में
यह विनती है पल-पल छिन-छिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में····रहे

चाहे अग्नि में भी जलना हो, चाहे काँटों पर भी चलना हो,
चाहे छोड़ के देश निकलना हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में....रहे
चाहे बैरी सब संसार बने, मेरा जीवन मुझ पर वार बने,
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में····रहे
चाहे संकट ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अंधेरा हो,
पर चित ना डगमग मेरा हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में····रहे
तेरे कांटों से भी प्यार मुझे, तेरे फूलों से भी प्यार मुझे,
चाहे सुख में रहे या दुःख में रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में····रहे
मेरी बुद्धि सदा सात्विक रहे, मेरा जीवन भी निर्मल ही रहे,
राग द्वेष मुझसे दूर रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में....रहे
प्रभु कृपा तेरी सदा बनी रहे, तेरी दृष्टि से मुझे प्यार मिले,
फिर मस्ती आठों याम रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में····रहे

[१००]

तुम्हरी कृपा लहेउ विश्रामा

भगवान भरोसे हम पुष्कर से सब सामान लेकर बम्बई आये। मनहरभाई के लिये भी कीचड़ उछालना छोड़ा नहीं। कुछ व्यक्तियों द्वारा मुझे कहा गया, "मनहरभाई का साथ छोड़ दो।" जहाँ अंतरआत्मा पूर्णरूप से साक्षी है वहाँ पर यह तो कदापि शक्य न होने से उन्हें योग्य जवाब मिलने से दूसरी बार कहने की हिंमत नहीं कर सके लेकिन हारे हुए का शस्त्र है पीठ के पीछे बोलना, लेकिन उसकी परवाह नहीं है। अब कहाँ किसी संस्था में रहती हूँ कि भगवान के सिवा किसी को हिसाब देना पड़े। बम्बई का अशांत जीवन मुझे रुचिकर तो कदापि नहीं है। बचपन से ही शांति और एकांतप्रिय स्वभाव होने से अब इस महानगर में ऐसा स्थान मुझे कहाँ और कैसे मिलेगा ? यह विचार आता था, कारण आज काल के मुताबिक इतने पैसे की सुविधा तो मेरे पास है

नहीं कि ऐसी जगह आसानी से मिल सके । मनहरभाई का परिवार समेत पूर्ण साथ है ही फिर भी उनकी मर्यादा से आगे नहीं बढ़ सकते हैं ना ! ऐसे विचार आने पर सब भगवान भरोसे छोड़ देती थी और उनके शब्द ताजे होते हैं, "शरणागत को कभी चिंता न करनी चाहिये क्योंकि भगवान हित चिंतक हैं और मानसजी की चौपाई के आधार पर निश्चिंत हो जाती हूँ,

होईय सोई जो रामरुचि राखा, को करी तर्क बढावहिं शाखा

फिर भी कभी-कभी भूतकाल की याद से व्यथित हो जाने से सगुण स्वरुप की अनुपस्थिति बहुत ही अखरती थी । परिणाम में रात को नींद नहीं आती, रोती रहती थी । जिससे आर्तनाद से भगवद् भजन बढ़ जाता था । वास्तव में यही सुख के दिन थे, कारण :—

सुख ऊपर पथ्थर पड़ो, जो राम हृदय से जाय
बलिहारी वा दुःख की, जो हर पल राम रटाय

जब भरतजी प्रभु विरह में व्याकुल होते हुए चित्रकूट पहुँचे तब छोटे भाई लक्ष्मणजी ने भरतजी के आगमन के लिये शंकाशील होकर अनुमान से अपार विरोध जाहिर कर दिया । यह तो मानसजी में प्रमाण है, क्योंकि आखिर तो लक्ष्मणजी भी जीव स्वरुप हैं ना ? लेकिन उन्हें परब्रह्म परमात्मा का साथ होने से सत्य समझने में देर न लगी । जबकि आज कलिकाल में तो ऐसे प्रसंग पर दूसरों की बातों में आकर शंका और अनुमान से विरोधियों का झूंड खड़ा हो जाता है जिसे उन्हें कौन सत्य समझा सकता है ? और यदि सत्य समझ में आता है तब समय बीत जाता है जिससे उस समझ का कोई मूल्य नहीं । खैर ! मेरे लिये तो प्रभु कृपा से वे भी कल्याणकारी और सहायक हुए । कुछ व्यक्ति प्रभु कृपा से सत्य समझ पाये, फिर भी अहंकार के कारण स्वीकार नहीं कर सकते हैं । सब को प्रभु कृपा से कभी न कभी अवश्य समझ मिलेगी ।

मेरे रहने के लिये बम्बई में मनहरभाई सुरक्षित समाज के बीच सुरक्षित स्थान की तलाश में थे । पूना के संत पू. श्री रामबाबा द्वारा मनहरभाई को डॉक्टर सूचक साहब का परिचय हुआ था । उन्हें बहुत लोगों से पहचान होने के कारण मेरे रहने के लिये कोई स्थान ध्यान में रखने के लिये मनहरभाई ने कहा । इन दिनों में पू. श्री रामबाबा उनके

घर पर ही विराजमान थे, जिनके दर्शन को मैं गई थी । तब मेरा भी डॉक्टर साहब से परिचय हुआ और मुझे शारीरिक अस्वस्थ देखकर प्रेमभाव से मेरा योग्य इलाज शुरू किया, इस कारण मुझे एक महीना अपने अस्पताल में पारिवारिक सदस्य की भाँति रखा । एक महीने के सम्पर्क के बाद उन्होंने मनहरभाई से कहा, "रमा बहन के लिये कहीं भी रहने की जगह नहीं लेनी है, मेरे दोनों अस्पताल के सब कमरे मैं उन्हें दिखा देता हूँ, उन्हें जहाँ जिस तरह से रहना हो मैं सब व्यवस्था करा दूंगा । धीरे-धीरे उन्हें मेरे साथ घटी घटनायें मालूम होने पर बहुत ही नाराज होकर कहते थे, मुझे भी ऐसे धार्मिक समाज को देखना है ।

जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं उनकी जाति की बहन हूँ तब मेरा जीवन जानकर अपनी बहन से भी विशेष प्यार रखकर अपने अस्पताल के सत्संग हॉल के कमरे में मेरी इच्छानुसार उसी वक्त सारी व्यवस्था करवा दी । मेरे स्वास्थ के लिए भी बहुत ही चिंतित रहते थे । थोड़े ही समय के बाद वे अपनी पत्नी के साथ उरलीकांचन जा रहे थे तब मुझे साथ ले गये । वहाँ पर दो महीने तक पूर्ण आत्मीयता से मेरा ख्याल किया । प्रसंगोपात् कहते थे, "बहन आप मुझे इतनी देर से क्यों मिले ? अब मैं आपको कहीं जाने नहीं दूंगा । मेरी अनुपस्थिति में भी आप यह घर छोड़ना नहीं ।" आज उनके न होने पर भी उनके परिवार को मेरे प्रति इतना ही स्नेह है । ऐसे पुण्यात्मा दुनिया में बहुत कम होते हैं ।

उन्हें हृदय रोग की बीमारी थी । अंतिम दो साल मेरी इच्छानुसार पूर्ण सहकार देकर मेरी प्रसन्नता के लिये मुझे पू. श्री मोरारी बापू की कथा में भेजते रहे । मेरे स्वास्थ को देखते हुए मनहरभाई या उनके परिवार के व्यक्ति रोकते थे तो हमेशा कहते थे कि, "बहन को जाने दो तभी इनकी मानसिक अस्वस्थता दूर होगी ।" कथा श्रवण से मैं आनंदित रहती थी और भूतकाल भूलने से मन स्वस्थ होता जाता था । निरुत्साही जीवन में उत्साह बढ़ने लगा और मन का असर शरीर पर होने से शारीरिक स्वस्थता देखकर खुशी के साथ संतोष व्यक्त करते थे । फिर भी क्या लेन-देन होगी भगवान जाने कई बार कहते रहते थे, "बहन, आप जहाँ जाना चाहो, अवश्य जाना मैं आपको कभी भी रोकूंगा नहीं परंतु मेरी इच्छा है कि मेरे अंत समय पर आप हाजिर रहना ।" उनके ऐसे शब्दों से दुःख होता था लेकिन आखिर उनकी भावना

अनुकूल १९८३ के ९ अगस्त के दिन सावन शुक्ल प्रतिपदा की दोपहर में साढ़े बाहर बजे जब उन्होंने पार्थिव देह का त्याग किया तब योगानुयोग मैं हाजिर थी और अंत समय में तो मानो भगवान ने उनकी इच्छा पूरी की हो वैसे अचानक एक मिनिट में आँखें बंद होते वक्त उनका मस्तक मेरे हाथ में ही था । खूब प्रेमाल, उदार एवं करुणाशील, संत सेवा भावी स्वभाव से जीवनपर्यंत सतत परमार्थ कार्य में संलग्न रहे । साधु-संतों के प्रेमी होने से देश-विदेश के साधकों और संतों के सम्पर्क में रहते थे। सुना भी है और अनुभव भी है कि जीवन में सच्चा सुख दो ही जगह है, संतों के संग में या सत्संग में और हरि नाम में । अंतिम समय पर आस्ट्रेलिया के एक माताजी को पत्र लिखते हुए इस दुनिया से विदा ली उससे चार दिन पहले उन्हें श्री सीतारामजी, श्री राधाकृष्णजी और श्री शिव पार्वतीजी के दर्शन जागृत अवस्था में हुए थे यह बात मुझे बताते वक्त खूब प्रसन्नता से बोले थे, "बहन अब मुझे भगवान बुला ले तो हरकत नहीं, अब किसी में भी ममता नहीं है ।" वे चाहते थे, वैसे ही संत पू. श्री रामबाबाजी के सान्निध्य में उन्होंने देह त्याग किया ।

ऐसा सुना है कि मृत्यु उसी की धन्य है जिसे देखकर संतों की आँखें भीग जाती हैं । यह भी इस प्रसंग में देखने को मिला । कितने साधु-संत, जैन साधु-साध्वियों की आँखें इस दुःखद समाचार से भीग जाती थीं । ऐसे महान आत्मा की विदा केवल उनके परिवार के लिये ही नहीं अपितु अगल-बगल के समाज, गाँव और देश-विदेश में फैली हुई उनकी सुगन्ध से प्रेमीजनों को रुलाती है ।

पुष्कर की अंतिम घटना से भगवान की याद में निरुत्साही हो चुकी थी जिससे जीवन भाररूप लगता था । शारीरिक और मानसिक स्वस्थता के लिए डॉक्टर साहब ने मुझे परम पू. संत श्री मोरारी बापू की रामकथा का कैसेट सेट प्रथम बार सुनने को दिया था । उससे मानो मुझे नया जीवन मिला । इसके बाद प्रत्यक्ष सुनने के लिए मन तड़प रहा था । मैंने उनके बारे में सुना था और पुष्कर मौन समय वे वहाँ आये भी थे तब बाहर न निकलने के कारण मैंने खिड़की में से उनके दर्शन किये थे । अब तो प्रत्यक्ष सुनने के लिए उत्सुकता बढ़ती जा रही

थी । कथा सुनने के बाद समझ में आया कि मेरे भगवान ने इसीलिए पुष्कर में चरम सीमा की घटना उपस्थित की होगी । दिन प्रतिदिन इसके लिए भगवान की "अहैतुक कृपा" का दर्शन मिलता रहा । यदि इतनी हद तक घटना न घटी होती तो मैं पुष्कर छोड़ती नहीं और आज जो दुर्लभ संत समागम एवं श्री रामकथा सत्संग का अमूल्य लाभ पा सकी हूँ वह कदापि नहीं पा सकती थी । अब तो.......

और भी कुछ साँस लेने को, मजबूर सी हो जाती हूँ मैं,
क्योंकि, नफरत से भरी इस दुनिया में कहीं इन्सान की खूश्बू आ रही है ।

और सभी मिल जायेंगे, सतसंगत मिलना मुश्किल है
सतसंगत मिलना मुश्किल है, सतसंगत मिलना दुर्लभ है

माता मिले और पिता मिले, पत्नी, लड़के, भाई मिले
तन, धन और संसार मिले, सतसंगत मिलना मुश्किल है

राज मिले, सब साज मिले, लोक बड़ाई, मान मिले
बड़े बड़े सब धाम मिले, सतसंगत मिलना मुश्किल है

रिद्धि मिले और सिद्धि मिले, सब साधन का भी योग मिले
चाँद-सूरज का तेज मिले, सतसंगत मिलना मुश्किल है

काशी मिले, बद्रीकेश मिले, गंगासागर स्नान मिले
स्वर्ग सूर्य का भोग मिले, सतसंगत मिलना मुश्किल है

जन्म मिले, फिर मरण मिले, नाना योनि देह मिले
पुण्य बिना ना संत मिले, सतसंगत मिलना मुश्किल है

देव मिले, गुरुदेव मिले, सतसंगत में ज्ञान मिले
सतसंगत में नाम मिले, सतसंगत मिलना मुश्किल है

सतसंगत मिलना मुश्किल है, सतसंगत मिलना दुर्लभ है
संतों के दरशन दुर्लभ हैं, सतसंगत मिलना मुश्किल है

संत दरश अरु हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोई....
सतसंगति दुर्लभ संसारा, निमिष दंड भरी ऐको बारा

संत और सत्संग की महिमा का वर्णन शब्दों में कौन कर सकता है ?

कहो सक न शारद शेष नारद, सुनत पद पंकज गहे
अस दीनबंधु कृपाल अपने, भगत गुण निज मुख कहे

साक्षात् भगवान भी पूर्णरूप से संतों के गुण नहीं बता सकते हैं,

जानहिं राम न सकहिं बखानी

फिर भी संतकृपा प्राप्त होने से मानसजी में लंकिनी जैसी राक्षसी भी सत्संग का महिमा गान करती है, कारण मच्छर से लेकर गरुड़ तक सभी अपनी शक्तिनुसार आकाश में उड़ सकते हैं ।

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग

गोस्वामीजी श्री तुलसीदासजी महाराजजी के शब्दों में····

एक घड़ी आधी घड़ी, आधि में पुनि आध
तुलसी संगत संत की, कटे कोटि अपराध

इसलिये अब तो जो-जो जीवात्मा ऐसी-ऐसी घटनाओं में निमित्त बने हैं जिससे कुसंग से छुटकारा पाकर संतों के चरणों में रामकथा का अपार आनंद पा सकी हूँ । उन सबको बार-बार प्रणाम करती हूँ । साथ ही प्रभुकृपा से जीवन में जागृति भी आ चुकी है कि,

उदासीन बरु रहिय गोंसाई, खल परिहरिय श्वान की नांई

गुजराती में गनी दहींवाला का गीत याद आता है····

मारो हाथ झालीने लई जशे, मुझ दुश्मनो ज स्वजन सुधी

भावार्थ :—मेरे दुश्मन ही हाथ पकड़कर स्वजन तक पहुँचा देंगे ।

जीवात्मा के सच्चे स्वजन तो संत ही होते हैं । इसलिये गुजराती में गाया गया है,

प्रभुना भक्तों मारा सगा ने संबंधी···

और वैसे भी जीवन में ऐसी घटना से मालूम हुआ कि इस स्वार्थी जगत में कौन मेरा है ? जिन्हें मैं अपना मानकर बैठी थी, वे मेरे थे या नहीं ? मुझ में भी धैर्य, प्रामाणिकता और सहनशीलता है या नहीं ? यह सब कैसे समझ पाती ? कारण :—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपद काल परखिये चारी

सबसे बड़ी बात तो प्रभु कृपा आज भी निरंतर बरस रही है, उसकी प्रतीति कैसे हो सकती थी ? जीवन संघर्षमय है ही, इसलिये जीवन में लंकाकांड चल रहा था जिसमें प्रभु के पीठबल बिना आसुरी तत्त्वों के साथ लड़कर विजय पाना त्रिकाल में संभवित नहीं । ऐसा लगता है कि अब जीवन में राम राज्य की स्थापना हुई ।

[१०१]

जाकी कृपा लवलेश ते…

भगवान के श्रीमुख के शब्दों में :—

मों ते संत अधिक करि लेखे

इसीलिये,

संतन की रहियो छांया में, छांया में नित छांया में
संतन की रहियो छांया में….

संतन की महिमा न्यारी है, न्यारी है अति प्यारी है
संतन की रहियो छांया में….

भेद, कुभेद, खेद मिटे जहाँ, अपने और पराये में
संतन की रहियो छांया में….

जब द्रवत दीन दयालु राघव, साधु संगत पाइये

अनायास मेरे भगवान की असीम कृपा से कोल्हापुर में सर्वप्रथम संत श्री मोरारी बापू के द्वारा रामकथा सुनने का अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ । नौ दिन कथामृत का पान करने के बाद कथा के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा । बम्बई लौटकर कैसेट सुनती रही । पू. बापू की अमृतवाणी द्वारा रामकथा के सिंचन से धीरे-धीरे पूर्ववत मस्ती आने लगी । व्यथित मानस उत्साहित बनने लगा । चित्त की प्रसन्नता के कारण शरीर भी निरोगी बनता गया ।

रामचंद्र गुण बरणन लागे, सुनतहि सीताकर दुःख भागे
तुम्हरे भजन राम को पावै, जन्म जन्म के दुःख बिसरावै

इस चौपाइयों के अनुसार दुःख भागने लगे । भगवान के शब्दों में कहूँ तो, "सद्गुरु या संत महात्मा का संयोग प्रभु की परिपूर्ण दया से ही होता है । भगवान की कृपा तब मानी जाती है जब गुरुदेव या सतसंग मिले । निश्चय करो जीव ईश्वर का अंश है । प्रभु की विशेष कृपा तथा इच्छा से एक बहुत बड़े महत्त्व के कार्य की पूर्ति करने आये हैं, वह कार्य है परम शांति, भगवद् प्रेम और भगवद् प्राप्ति । जो मनुष्य इस महान कार्य की पूर्ति में लगा रहता है वही यथार्थ में मनुष्य है । सब संत सद्गुरु स्वरूप ही हैं जैसे सब स्त्री माता के समान ही होती हैं परन्तु पयपान कराने वाली माता तो एक जन्मदाता माँ ही होती है वैसे ही संत, सद्गुरु समान होने पर भी स्वानुभवामृत पान कराने वाली ईश्वर-युक्त सद्गुरु माता एक ही होती है । मुमुक्षु शिशु जब भूख से व्याकुल होकर रोने लगता है तब सद्गुरुरूपी माता से एक क्षण भी नहीं रहा जाता और जैसे माता शिशु को पयपान कराने दौड़कर आती है वैसे ही सद्गुरु दौड़कर आकर मुमुक्षु को अमृत पान कराते हैं ।"

धार्मिक क्षेत्र में भी संकुचित मानस द्वारा एक ही संप्रदाय में भी अलग-अलग ग्रुप माने जाते हैं । लेकिन संतों की दृष्टि में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होता है वे तो हर संप्रदाय के मूल में सत्य को ही देखते हैं । क्योंकि मानसजी में संत को अनंत के समान कहा गया है,

मानहु संत अनंत समाना

इसलिये वे सब सीमाओं से पर हैं । विश्व के कल्याण हेतु उनका जीवन होता है । भगवान ने भी कहा है, "गुरु को शिष्य प्रिय । संत गुरु है और गुरु संत है । भेदभाव की विचारधारा रखने वाले भक्ति रस को क्या समझ सकते हैं । कोई भी संत धर्मानुसार आचरण बनाने के लिये ही समाज, देश और विश्व को कहते हैं । धर्म एक ही है, संप्रदाय अलग-अलग हो सकते हैं ।

संतन के मन बसत है, सबके हित की बात
घट-घट देखे हरि को, पूछे जात न पात

कबीरा कुआं एक है, पनिहारी अनेक
बर्तन सब न्यारे भये, पानी सब में एक

और भी किसी ने कहा है,

सितारों ने कहा, सारा गगन बदल गया
बुलबुलों ने कहा, सारा चमन बदल गया
तब एक सूफी ने कहा, कुछ नहीं बदला
मुर्दा वो ही का वोही है, सिर्फ कफन बदल गया
है भक्ति में रस क्या ? अनजान क्या जाने ?
अरे ! उसमें मजा है क्या ? मजा करने वाले ही जानें ।

जभी तो गोस्वामीजी ने भी संत वंदना में कहा है :-

वंदौं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोई....
संत सरल चित जग-हित, जानि सुभाव सनेहू....

रामकथा सुनने पर उसीमें सच्चे सुख की प्रतीति होने लगी क्योंकि

जीवन मुकत ब्रह्मपर, चरित सुनहि तजि ध्यान....

लेकिन

आवत इहिसर अति कठिनाई, राम कृपा बिनु आई न जाई
कठिन कुसंग कुपंथ कराला, जिन्ह के बचन ब्याध हरि ब्याला

थोड़े समय के बाद राजकोट में गुरु, भाई-बहनों की ओर से पूज्य बापू की रामकथा का आयोजन किया गया। तब वह कथा सुनने के बाद मन ही मन सोचा कि अब से भारत में पूज्य बापू की कथा जहाँ-जहाँ होगी वहाँ हर जगह जाने के लिये मैं प्रयत्न करूँगी। क्षण भर आर्थिक परिस्थिति का विचार आया लेकिन आज तक कभी भी इस कारण से रुकावट नहीं आई है। भगवान की परम कृपा से १९६० से घूमती रही हूँ जिसमें आज तक इस विषय में कभी भी बाधा नहीं आई है। मेरे भगवान किसी को भी निमित्त बनाकर हमेशा सम्हालते रहे हैं। पूज्य बापू की कथा जो भारत में होती है उसमें अधिकतर जाती हूँ लेकिन किसी भी प्रकार से कोई भी तकलीफ नहीं होती है। यह संत और भगवंत की कृपा का ही फल है। अब तो कोई चिंता ही नहीं है कारण :-

आनंद ही आनंद बरस रहा, बलिहारी ऐसे सद्गुरु की
धन भाग हमारे आज हुये, बलिहारी ऐसे सद्गुरु की
पावन कीन्हीं भारत भूमि, बलिहारी ऐसे सद्गुरु की
खुदा अपने बंदे की खुद करता निगेहबानी
नया मंजर, नया बिस्तर, नया दाना, नया पानी

अब तो प्रभु कृपा से रामकथा का आधार मिल गया और संत की कृपा दृष्टि भी होने से जीवन जीने जैसा लगता है ।

महा मोह महिशेष विशाला, रामकथा कालिका कराला
रामकथा शशि किरण समाना, संत चकोर करहिं जेहि पाना

रामकथा की महिमा का पार तो कौन पा सकता है ? स्वयं योगेश्वर महादेवजी जिसका गान और पान करते रहे हैं । भगवान के शब्दों में, "विद्वान और संत में भू-आकाश का अंतर है । विद्वान की वृत्ति शास्त्रावलोकन करके तर्कमय अधिकतर हो जाती है । संत की अधिकतर सदा आचरणमय वृत्ति होती है" और

बनादास तुम कहते थे, संगत से गुण होय
बिच शेरडी रसरो, रस कहीं नहीं होय
लखे लेख उत्तम सदा, करे बहुत व्याख्यान
तजे न तीन ककार बिनु, बना दूर भगवान
(कंचन, कीर्ति, कामादि)

संतों की कृपा दृष्टि की शीतल छाया में शेष जीवन व्यतीत हो उससे अधिक जीवन की सार्थकता क्या हो सकती है ? और यह प्रभु कृपा के बिना दुर्लभ है । इसलिये यही प्रार्थना है :—

अब कछु नाथ न चाहिये मोरे, दीन दयाल अनुग्रह तोरे

कथा में और यात्रा में अनेक जीवों का संपर्क होता है । कई व्यक्ति आपबीति कहते हैं जिसमें से कई प्रसंग तो इतने हृदय द्रावक होते हैं कि उनके साथ प्रेम भाव से बोलने पर भी उन्हें बहुत बड़ा सहारा मिल जाता है इसीलिये भगवान भी नेत्रयज्ञ में कुछ सेवा न हो सके तो मरीजों के साथ आत्मीयता के साथ प्रेम भाव से कुशल खबर पूछने को कहते थे । सच है,

प्रेम परिचय को पहचान बना देता है
प्रेम विराने को गुलिस्तान बना देता है
मैं आपबीति कहता हूँ गैरों की नहीं
प्रेम इन्सान को भगवान बना देता है

काल के प्रभाव के कारण घर-घर की सीता का जीवन सुनकर काँप उठती हूँ । संतों के पास स्त्री, पुरुषों का भेद नहीं होता है फिर भी बहनें, पुरुष शरीर धारण किये हुए संतों के पास अपना हृदय खोलकर आपबीती नहीं बता सकती हैं और या तो उनके लिये परिस्थितिवशात् संतों के चरणों तक पहुँचना भी कठिन होता है । इसलिये नौ दिन के सम्पर्क में पूर्ण आत्मीयता के साथ अधिकतर बहनें अपने हृदय का बोझ हल्का करती हैं तब उन्हें तन, मन, धन या वचन से यथाशक्ति सुख पहुँचाने का अमूल्य अवसर मिलता है । भगवान के शब्दों में, "वह मानव ही क्या ? जो दूसरों के सुख का साधन न बने ।"

वैसे तो पू. बापू की अलौकिक वाणी के प्रभाव से मेरी तरह अनेक जीवात्माओं को अपनी-अपनी भूमिकानुसार मार्गदर्शन, उत्साह और प्रेम भाव के साथ पूर्ण जीवन दृष्टि मिलती रहती है । वैसे आँखें तो सबके पास हैं लेकिन दृष्टि कहाँ ? दिव्य जीवन दृष्टि तो सद्‌गुरु या संतों की कृपा से ही प्राप्त होती है । कितने ही लोगों का विविध प्रकार से कल्याण होता है । यह तो अमूल्य लाभ प्राप्त करने वाले जीवात्मा ही अपनी अनुभूति बता सकते हैं । सही में तो इसका अनुभव ही शक्य है । शब्दों में वर्णन नहीं ।

आज के युवा भाई बहन सुख-शांति की चाह में भटकते हुए पाश्चात्य विचारधारा का अनुकरण कर रहे हैं जिससे भारतीय संस्कृति नष्ट होती जा रही है और युवा धन लूटा जा रहा है । ऐसे समय पर उन्हें सत्य की राह पर मोड़ने के लिये देश काल के अनुकूल पू. बापू कथा के माध्यम से, सब प्रकार से सुन्दर सूत्रों द्वारा जीवन में प्रेम, सादगी और त्याग-तपस्या का भाव उदित कराते हैं । जिसके सिवा सुख, संतोष की प्राप्ति होना असंभवित है । पू. बापू पू. गांधीजी के शिक्षात्मक सूत्रों की भी याद दिलाते हैं, जो गुजराती में है,

सत्य, अहिंसा, चोरी न करवी, वरण जोतुं नव संघरवुं
ब्रह्मचर्य ने जाते मेहनत, कोई अडे ना अभडावुं

अभय, स्वदेशी, स्वाद त्याग ने सर्व धर्म सरखा गणवा
ओ अगियार महाव्रत समजी, नम्र पणे नित आचरवा

भावार्थ :–सत्य, अहिंसा, चोरी, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, स्वावलंबी, अस्पृश्यता, अभयता, स्वदेशी, संयम, सर्वधर्म समान, ये ग्यारह बातों को महाव्रत समझकर नम्रता के साथ आचरण करना । इसलिये संतों को परोपकारी कहा गया है । संत का जीवन परमार्थी अर्थात् परहित के लिये ही होता है जिससे मानसजी की चौपाई में परोपकारी की गिनती में प्रथम स्थान संत को ही दिया गया है ।

संत विटप सरिता गिरि धरणी, परहित हेतु सबनकर करणी

विश्व में कई जगह साधु चरित सज्जन व्यक्तित्व पाये जाते हैं लेकिन सुना है कि संत केवल भारत की ही देन है । ब्रह्मानंदजी ने ठीक ही कहा है :—

संत परम हितकारी, जगतमांही संत परम हितकारी
प्रभु पद प्रगट करावत प्रीति, भरम मिटावत भारी
सदा कृपालु सकल जीवन पर, हरि सम सब दुःख हारी
जगत मांही संत परम हितकारी........

त्रिगुणातीत फिरत तनु त्यागी, रीत जगत से न्यारी
ब्रह्मानंद संतन की सोबत, मिलत है प्रगट मुरारी,
जगतमांही संत परम हितकारी.......

संतों की महिमा अपार है जिनका वेद भी पार नहीं पा सकता है । पूर्ण ब्रह्म परमात्मा श्री कृष्ण भगवान भी कहते हैं........

ऊधो, मोहे संत सदा अति प्यारे,
मैं संतों के पीछे जाऊं, जहाँ जहाँ संत सिधारे,
संत चरणरज अंग लगाऊँ, संत मोहे प्राण पियारे
संत सदा अति प्यारे.......

ऐसे भगवान के परम प्यारे, लाड़ले, दुलारे संतों की महिमा कौन बखान सकता है ? पू० बापू की अलौकिक वाणी द्वारा मैंने संत की कोमलता का वर्णन जो सुना है एकदम यथार्थ है जो हृदय को छू जाता है........

कमल कितना कोमल है ! जिसमें लक्ष्मीजी विराजमान होती है, तब कल्पना करो कि वे लक्ष्मीजी कितनी कोमल होगी ? वो ही लक्ष्मीजी अपने कर-कमलों द्वारा भगवान के चरण-कमलों की सेवा के समय श्रीचरणों को दुलार करती है, तब वे भगवान के चरण-कमल कितने कोमल होंगे ! ! और यदि चरण-कमल इतने कोमल हैं तो कर-कमल कैसे होंगे और कर-कमलों के मुकाबले, मुख-कमल कितना कोमल होगा, मुख-कमल से भी नयन-कमल कैसे होंगे ? नयन-कमल अत्यधिक कोमल हैं तो हृदय-कमल ? और उस हृदन-कमल में स्वयं भगवान अपने प्यारे संतों को स्थान देते हैं तो वे संत की कोमलता का नाप-तोल कैसे किया जा सकता है ?

साधु और संत में थोड़ा अन्तर है। साधु बनना आसान नहीं है लेकिन संतत्व सर्वोत्तम पराकाष्ठा की स्थिति है, इनमें थोड़ा मौलिक अन्तर है। साधु का अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुसार गणवेश तिलक आदि होता है जबकि संत किसी भी वेश में हो सकते हैं उनका कोई संप्रदाय नहीं होता। संत स्वयं साधु समाज का तिलक है। साधु का अमुक आसन, मान-मर्यादा होती है जबकि संत इन सीमाओं से पर है। यह मेरा अनुभव है। शब्द तो सब पू० बापू के हैं।

हद में चले सो औलिया, बेहद चले सो पीर।
हद, अनहद दोनों चले, उसका नाम फकीर ।।

आज कोई-कोई शक्ति, सम्पत्ति या बुद्धि वाले लोग समझते हैं कि हम अपने बल से संत को खरीद लेंगे। क्योंकि दुनिया में तीन ही तो शक्ति जीवात्मा के पास हैं, धन (लक्ष्मीजी), बुद्धि (सरस्वतीजी) और शक्ति (दुर्गा, अंबा)। लेकिन यह कदापि संभव नहीं है। संत कभी भी किसी के धन, सत्ता की फूंक से उड़ाये नहीं जाते। हां देशकाल के प्रभाव से वेषधारी साधु पर उनका प्रभाव हो सकता है लेकिन संत के लिए यह सोचना बहुत भारी भूल है।

बस अब तो जीवन के निज अनुभव से संत सान्निध्य में रहते हुए निर्बल, जगत से अपमानित और ठुकराये गये, निरुत्साही, हारे हुए दीन जीवात्माओं के प्रति खूब प्रेमभाव प्रगटता है क्योंकि उनके दुःख दर्द को सहज में समझा जाता है। सभी जीवात्माओं को प्रेम की आवश्यकता होती है इसलिए,

तुम मानो न मानो यह हकीकत है कि प्रेम इन्सान की जरूरत है।

और सही रूप में धर्म भी यही है।

धर्म तो एक ही सच्चा, जगत को प्यार देवें हम

जगत में दीन जन जितने, जगत में पद दलित जितने
उन्हें ऊपर उठावें हम.......... जगत को प्यार.......

न कोई विश्व में जिनका, सदा मन रो रहा जिनका
उन्हें सुख शान्ति देवें हम.......जगत को प्यार...........

साहस दे अनाथों को, सदा धीरज अधीरों को
मधुर ही बोल बोले हम.......जगत को प्यार...........

सदा जो अति व्याकुल है, जिन्हें सब ही सताते हैं
उन्हें जाकर हँसावे हम....... जगत को प्यार...........

किसी को कष्ट नहीं देवें, किसी को दुःख नहीं देवें
सभी को बंधु मानें हम.......जगत को प्यार...........

जहां नैराश्य का गम है, नहीं आलस्य भी कम है
वहां आह्लेक देवें हम.......जगत को प्यार...........

हमारे पास जो कुछ है, चाहे विद्या चाहे धन
रहे देते उसे ही हम..........जगत को प्यार...........

जगत में मोह भर जावे, जगत में शोक सरसावे
करे यह ध्येय पूरे हम..........जगत को प्यार...........

धर्म का सार यही है, सत्य का सार वही है
परार्थे प्राण देवे हम..........जगत को प्यार...........

हमें यदि धर्म प्यारा है, हमें भगवान प्यारा है
बने तो प्रेममय ही हम.......जगत को प्यार...........

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआं, पंडित हुआ न कोई।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होई।।

लेकिन,

प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय···

श्रीचरणों में मेरी यह नम्र अरज है कि ऐसी उदात्त भावना जीवन-पर्यन्त बनी रहे और वैसा ही आचरण भी बने। वैसे तो जीव-मात्र पर प्रभु कृपा है ही परंतु भगवान वेद व्यासजी के कथनानुसार, "जिन्हें प्रभु नाम, प्रभु प्रसाद और प्रभु कथा में प्रेम है, उन पर प्रभु की महत्ती कृपा है।

भक्ति के चार स्वरूप माने गये हैं, नाम, रूप, लीला और धाम। बारह साल का एक कल्प माना गया है लेकिन मेरे भगवान ने कहा है, "काशी में बारह साल और पुष्कर में तीन साल रहना बराबर है, इसलिये भी तीन साल के लिये नियम व्रत के साथ पुष्कर में रहना सोचा था। खैर! वह समय तो गया लेकिन ऐसा लगता है कि जीवन में हर बारह साल पर एक-एक स्वरूप की झांकी प्रभु कृपा से मिलती रही है। जीवन के बालकांड में पाँच साल की उम्र से सत्रह साल की उम्र तक नाम, स्वरूप के दर्शन, अयोध्या कांड में सत्रह से अट्ठाईस तक स्वरूप दर्शन, अरण्य, किष्किधा, सुन्दर एवम् लंकाकांड में अट्ठाईस से चालीस साल की उम्र तक धाम दर्शन (रामधाम) और अब उत्तरकांड में पू. बापू की रामकथा द्वारा लीला दर्शन प्राप्त हो रहा है।

मेरे नित्य प्रार्थना के शब्दों में भगवान ने सही भी कर दी है,

"बराबर"

राम राघव हमारी सुध लेना, भूलाय नहीं देना
विनय तोहे बारबार है, राम राघव···("बराबर")

उसी प्रकार से आज भी **बराबर** सम्हाल लेते रहे हैं और लेते रहेंगे, यह पूर्ण विश्वास है, इसी से अभय हूँ।

धन धन भाग हमारे प्रभुजी! धन धन भाग हमारे
आज धन्य मैं धन्य अति, यद्यपि सब विधि हीन
निज जन जानि राम मोहि, संत समागम दीन्ह

[illegible]

नाथ यथामति भाखेऊ, राखेऊ नहिं कछु गोय
चरितसिंधु रघुनाथकर, थाह कि पावै कोय

राम उपासक जे जगमाहीं, यहि सम प्रिय तिन कंह कछु नाहीं
रघुपति कृपा यथामति गावा, मैं यह पावन चरित सुहावा
यह कलिकाल न साधन दूजा, जोग जज्ञ जप तप व्रत पूजा
रामहिं सुमिरिय, गाइय रामहिं, संतत सुनिय रामगुण ग्रामहिं
जासु पतितपावन बड़ बाना, गावहिं कवि श्रुति संत पुराना
ताहि भजिय मन तजि कुटिलाई, राम भजे गति केहि नहिं पाइ

पाइ न गति केहि पतितपावन, राम भज सुनु शठ मना
गणिका अजामिल व्याध गीध, गजादि खल तारे घना....

जा कि कृपा लवलेश ते, मतिमंद तुलसीदास हूँ
पायो परम विश्राम, राम समान प्रभु नाहीं कहूँ.

मोसम दीन न दीन हित, तुम समान रघुवीर
अस बिचारी रघुवंशमणि, हरहुँ विषम भवभीर
कामिही नारी पियारी जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम

इस ग्रन्थ में संत पू. श्री मोरारी बापू ने प्रेमभाव से आशीर्वचन लिख दिये हैं।

परमात्मा और संत की प्यार भरी कृपा विशेष मिले। यही प्रभु प्रार्थना और राम स्मरण के साथ। मोरारी बापू, २१-८-८४।

करहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना, निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।
अब कृत कृत्य भयउ मैं माता, आशिष तब अमोघ विख्याता।

संत में एक नहीं अनेक माता का प्यार और ममता समायी रहती है।

सप्तम सब मोहिमय जग देखे, मोंते संत अधिक करि लेखे।
जे गुरु पद अंबुज अनुरागी, ते लोकहु वेदहु बड़भागी।
राखे गुरु जो कोप विधाता, गुरु विरोध नहिं कोउ जगत्राता।



जाऊँ कहाँ तजी चरन तुम्हारे...............
काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पियारे ।।१।।
कौन देव बराई बिरद हित, हठि-हठि अधम उधारे ।
खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ।।२।।
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, सब माया बिबस बिचारे ।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे ।।३।।

•

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति

•

भाषाबद्ध करब मैं सोई, मोरे मन प्रबोध जेहि होई

•

निज गिरा पावन करण कारण रामयश तुलसी कह्यो

•

तुम कहते हो कागज लेखी, मैं कहती निज नयन की देखी

मूल्य : 40/-

अहैतुक कृपा